पत्र और पत्रकार

लेखक

कमलापति शास्त्री, एम० एल० ए०

पुरुषोत्तमदास टंडन 'पत्रकार'

प्रकाशक

ज्ञानमण्डल (पुस्तक-भण्डार) लिमिटेड,

बनारस
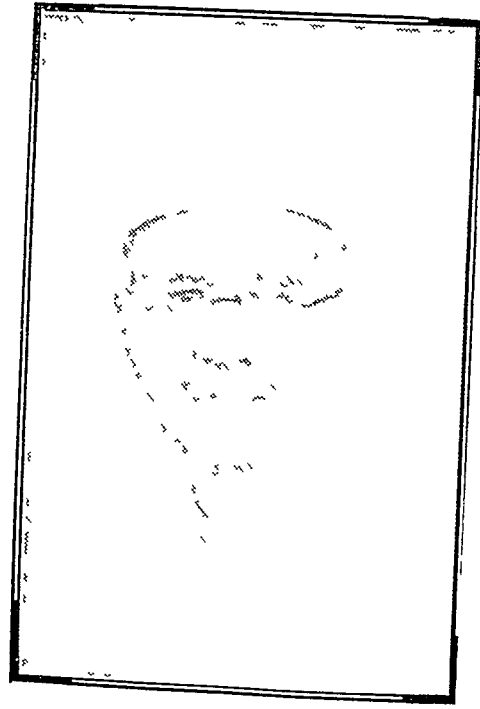
श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर

समर्पण

जिनके निकट बैठकर लेखनीका सञ्चालन करना सीखा है, जिनके जीवनमें पत्रकारका आदर्श सजीव रूपमें मूर्त हुआ है और जिन्होंने हिन्दी पत्रकार-कलाको जन्म दिया, उसका पालन करने तथा उसके स्तरको ऊँचा उठानेका श्रेय प्राप्त किया है

उन्हीं

पंडित बाबूराव विष्णु पराड़कर

को

यह कृति सभक्ति समर्पित है।

विनीत

नैनीकी कारा कोठरीसे } कमलापति

निवेदन

यदि मैं पत्रकार होनेका दावा करूँ तो यह मेरी धृष्टता होगी। पत्रकारका पद इतना ऊँचा, उसका उत्तरदायित्व इतना महान्, उसका अधिकार इतना व्यापक होता है कि मेरे सदृश साधारण व्यक्ति अपनेको उस हैसियतमें उपस्थित करनेका प्रयत्न करे तो वह उसका दुस्साहस ही कहा जायगा। पत्रकारके व्यक्तित्वमें जिस उज्ज्वलता, चरित्रमें जिस निश्कलंकता, बुद्धिमें जिस व्यापकता, हृदयमें जिस उदारता, दृष्टिमें जिस पारदर्शिता, कार्यमें जिस दृढ़ता तथा जीवनमें जिस आदर्शवादिता तथा उत्सर्गका समावेश होना चाहिये वह भला मुझमें कहाँ? फलतः मैं अपनेको पत्रकार तो नहीं कह सकता पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मैं पत्रकार-कलाका एक छोटा-सा किन्तु नैष्ठिक उपासक अवश्य हूँ। पत्रकार-कलामें जो आकर्षण है, जो स्पन्दन है, भावुकताके उद्बोधनकी जो शक्ति है, अनुभूतिके अनुभवके लिए अग्रसर करनेकी जो उत्प्रेरणा है, सत्यकी जिज्ञासा जागृत करनेका जो नोदन है उसने सदा मुझे प्रभावित किया है। उसमें मुझे सम्मोहन दिखाई देता है। पत्रकार-कला हृदयके अन्तर तम प्रदेशका स्पर्श करनेमें समर्थ होती है और जीवनके विकासमें सहायिका होती है।

साधकके लिए साधनाका, त्यागीके लिए उत्सर्गका, तपस्वीके लिए कष्ट-सहन तथा अनासक्तिका, योद्धाके लिए संघर्ष और रणका, कविके लिए अनुभूतिकी अभिव्यक्तिका, कलाकारके लिए संसृतिके गूढ़ और रहस्यमय चित्रोंके चित्रण करनेका, आलोचकके लिए जीवनकी स्थूल और सूक्ष्म धाराके विवेचनका, साहित्यिकके लिए लौकिक और अलौकिक, यथार्थ और भावुक जगतको प्रकाशमें लानेका पथ एक साथ ही उपस्थित कर देनेमें सिवा पत्र-कारिताके आज कौन समर्थ है? ज्ञान और विज्ञान, दर्शन और साहित्य, कला और कारीगरी, राजनीति और अर्थनीति, समाजशास्त्र और इतिहास, संघर्ष और क्रान्ति, उत्थान और पतन, निर्माण और विनाश, प्रगति और दुर्गतिके छोटे-बड़े प्रवाहोंको प्रतिबिम्बित करनेमें पत्रकारिताके समान दूसरा कौन सफल होता है? जीवन, समाज, संस्कृति और विश्वका उत्कृष्ट

दर्पण बननेमें पत्रकार-कलाके समान आज दूसरा कौन है ? अन्यायका प्रतिरोध करनेमें नव-विचारों और कल्पनाओंका वाहन बननेमें, नव-रचना-के सन्देशका अग्रदूत होनेमे तथा अन्ततः जीवन-सागरमें उठनेवाली लहरियों, हिलोरों, तरंगों तथा तूफानोंका प्रतिनिधित्व करनेमे पत्रकार-कलाकी सजीव प्रतिमाके रूपमें आधुनिक पत्र अपना सानी नहीं रखते।

यही कारण है कि आज जन-जीवनमें उसका असाधारण स्थान है। यही कारण है कि व्यापक मानव समाजपर उसका अभूतपूर्व प्रभाव है। अपनी इसी विशेषताके कारण भावुक और आदर्शवादी, साहसी और धीर तथा क्षण प्रतिक्षणमें परिवर्तित होनेवाले विश्वकी गतिविधिका दर्शन करनेके इच्छुक नवयुवकोंको पत्रकार कला अपनी ओर आकृष्ट करती रही है और जबतक उसकी उक्त विशेषता जीवित रहेगी तबतक वह आकृष्ट करती रहेगी। ऐसी सजीव तथा प्रतिभा सम्पन्ना कलामयीकी आराधना करनेकी इच्छासे यह पुस्तक पुष्पांजलिके रूपमें प्रस्तुत करनेका साहस मैंने भी किया है।

पर इस ग्रन्थके प्रणयनका केवल यही एक हेतु नहीं है। काराकी उत्तुङ्ग प्राचीरोंमे आवेष्टित वन्दीके जीवनमे उसकी अपनी अनेक विशेष समस्याएँ होती हैं, जिनका अनुभव वे नहीं कर सकते जिन्हे उक्त जीवनका अनुभव नहीं है। इस ग्रन्थकी रचना करते समय और इन पक्तियोंको लिखते समयतक भी मै बन्दी ही था। फलत· मेरी कुछ विशेप समस्याएँ भी इसकी रचनाका कारण हुईं। पत्रकार कलाका छोटा-सा उपासक होनेके नाते मुझे बाहर प्रतिदिन कुछ न कुछ लिखना ही पडता था। वर्षोंका यह अभ्यास यहाँके जीवनमें एक समस्या हो गयी। कहाँ बन्दीका निष्क्रिय, निर्जीव और स्थिर जीवन और कहाँ बाहरके एक छोटेसे पत्रकारकी सघर्षात्मिका दिन-चर्या ! भला दोनोंका मेल कैसे बैठ सकता था ? फिर बाहरका दिन प्रति-दिनका लिखनेका अभ्यास यहाँ कलेजा कचोटने लगा था। ऐसा मालूम होता मानो क्षणके बाद क्षण व्यर्थ ही बीतते चले जा रहे हैं। करूँ तो क्या करूँ ? ताश या शतरंजमें, गप्प लडाने या व्यक्तिगत टीका-टिप्पणी करनेमें, सारे दिन और सारी रात सोने या झगडा करनेमें, नयी-नयी मित्रता या शत्रुता पैदा करनेमें जिसे रस न मिले वह वर्षों का बन्दी जीवन कैसे यापन करे ?

इन समस्याओंको हल करनेमें इस ग्रंथकी रचना सहायक हुई। जिस कलाकी मोहिनी मूर्तिके प्रति बाहर आकृष्ट था उसकी स्मृतिका जेलके भीतर तीव्र हो जाना स्वाभाविक था। सोचा कि जिसकी पूजामें बाहर संलग्न था उसीकी उपासना यहाँ भी क्यों न करूँ? हिन्दी पत्रकार-क्षेत्रका कुछ अनुभव तो था ही। हिन्दी पत्रकार-कलाकी कुछ विशेषताओंके साथ साथ उसकी त्रुटियो और दोषोंका थोडा बहुत ज्ञान भी था ही। यह जानता हूँ कि भारतकी पत्रकारिता और विशेषकर हिन्दी पत्रकारितापर महान उत्तरदायित्व है। भारतीय क्रान्ति और उत्क्रान्तिकी सफलताकी बहुत बडी जिम्मेदारी भारतीय पत्रकारोंपर है। भारतने अतीतमें मानव-समाजको अपनी विकास-यात्रामें सहायता प्रदान की है। हम विश्वास कर सकते है कि भविष्यमें भी वह जगतके उत्थानमें अपना भाग पूरा करेगा। पर वर्तमान उसका संकटापन्न है उसी प्रकार जिस प्रकार सारी धरित्री विपद्ग्रस्ता है। विश्व आज उस ऐतिहासिक युगसे जा रहा है जब वर्तमान विनष्ट हो रहा है। वह क्षण दूर नहीं है जब उद्ध्वस्त वर्तमानके अवशिष्ट खँडहरपर नव-जगतकी रचना करनी होगी। भूमण्डलके इस विशाल रंगमंचपर भारतको अपना अभिनय सफलतापूर्वक करना है। नव रचनामे कुशल शिल्पीकी भाँति उसे अपने और जगतके भविष्यको सावधानीके साथ गढना है। भारतको आज उक्त कार्यको पूर्ण करनेकी क्षमता सम्पादन करना है। उसे उठना है, ऊँचे उठना है और आगत भारको अपने सुदृढ स्कंधोंपर साहसके साथ स्थापित करना है। यही है आजके युगकी आवश्यकता और कालात्माकी पुकार।

उक्त आवश्यकताकी पूर्ति करने और पुकारपर उठ खडे होनेके योग्य भारतको बनानेका उत्तरदायित्व पत्रकारोंपर अपेक्षाकृत सर्वतोधिक है। फिर हिन्दी तो राष्ट्रभाषाके उच्च और आदरणीय पदपर विराजमान हो चुकी है। हिन्दी पत्रकारिताको सुदूर गाँवोंकी अन्धकारावृत झोपडियोंमें पड़े बुभुक्षित नर-कंकालोंसे लेकर गगनचुम्बी अट्टालिकाओंमें विलासके झूलते हिंडोलेमें मदमत्त पडे स्व-तृप्त प्राणियोंतकके जीवनको आमूल आलोडित कर देना है। उसे भारतके कण-कणमें सजीवता और स्पन्दन, नवस्फूर्ति और जागरण, सक्रियता और गतिशीलताका मन्त्र फूंक देना है। वस्तुतः हमारी पत्रकार-कलाको आज

ऐसे पत्रकारोंकी आवश्यकता है जो कल्पनाशील रचयिता हों, जो प्रकर्ष योद्धा और कठोर कर्मठ हों, जो उत्कृष्ट नेता और महाप्राण मानव हों। तभी वह अपने उत्तरदायित्वको पूरा कर सकेगी।

दु:खके साथ हम कहते हैं कि हमारा पत्रकार-क्षेत्र ऐसे ही तत्वोंसे वंचित है जिनके अभावके कारण हमारा विकास कुंठित हो गया है। यही है हमारी त्रुटि, हमारा दोष और विचार। पर जहाँ यह है, वहाँ आप देख सकते हैं कि हमारा भविष्य उज्ज्वल है। फिर कोई कारण नहीं है कि हम दृढसंकल्पके साथ अपनी त्रुटियों और विकारोंका परिहार करनेमें न संलग्न हो जायँ। भारतमें आदर्शवादी, तपस्वी और कल्पनातीत भावुक नवयुवकोंकी कमी नहीं है। ऐसे नवयुवक जिनके हृदयमें देशकी पीड़ा है, जो जन-सेवामें पुनीत पथका अवलम्बन करना चाहते हैं और जो मानवताके विकासकी गतिको अकुंठित करनेमें अपनेको होम देनेके लिए तैयार हैं, पत्रकारिताके क्षेत्रमें पदार्पण करनेके लिए आमन्त्रित किये जा सकते हैं। वे पत्रकारिताके धरातलको ऊँचा उठानेमें समर्थ होंगे और देशकी सेवाका महान आदर्श प्रतिष्ठापित कर जायेंगे। यही है उपाय और उपचार जिसके द्वारा हम अपने दोषका शमन कर सकेंगे।

उसी समय भारतकी पत्रकार कला जगतके उन्नत देशोंकी पत्रकारिताकी पंक्तिमें आदरणीय स्थान प्राप्त कर सकेगी। इतना ही नहीं, प्रत्युत उसी समय उसमें उस शक्तिका उदय और सञ्चार होगा जिसके सहारे वह उस महान लक्ष्यकी प्राप्ति कर सकेगी जिसे प्राप्त करनेका उत्तरदायित्व आजका युग और ऐतिहासिक प्रवाह उसपर छोड चुका है। इस ग्रन्थकी रचना करते हुए हृदयमें भाव यही था और यही था उद्देश्य कि योग्य तथा पात्रता-सम्पन्न नवयुवक पत्रकारिताकी ओर आकृष्ट हो जो पत्रकार कलाकी एकान्त उपासनामें अपनेको उत्सर्ग कर दे। यह ग्रन्थ ऐसे लोगोंका पथ प्रशस्त कर सके, उन्हें थोड़ी बहुत भी सहायता प्रदान कर सके, यही थी कामना।

मैंने देखा कि बैठे बैठे इसी भाँति पत्रकार-कलाकी उपासना भी कर सकूँगा। मेरे इस विचारको मेरे परम मित्र श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनसे असाधारण पुष्टि, स्फूर्ति और उत्तेजना मिली। कभी कभी कष्टजनक और खेदजनक परिस्थितियाँ भी सौभाग्यका कारण हो जाती हैं। श्री टण्डन और

मै दोनों, सहबन्दीकी हैसियतमें एक दूसरेके सम्पर्कमें आये और महीनोंतक अहोरात्रिका हमारा सह-निवास हम दोनोंको परस्पर निकट लानेका कारण हुआ। मैंने देखा कि श्री टण्डन उन युवकोंमें हैं जो जन्मजात पत्रकार होते हैं। उनके लिए पत्रकार-कला इष्टदेवीकी भाँति है जिसकी स्मृति, कीर्तन और पूजनमें वह उठते-बैठते, सोते-जागते संलग्न रहते हैं। गिरफ्तार किये जानेके पूर्व वे 'नेशनल हेरल्ड' तथा अन्य कतिपय प्रमुख पत्रोंके यशस्वी तथा सफल संवाददाता रहे हैं। सक्रिय और देशभक्त पत्रकार होनेका मूल्य चुकानेके लिए ही उन्हे सोलह महीनेतक विदेशी सरकारकी काराका निवास भी करना पडा।

वे बार बार मुझे उभाड़ते रहे कि मैं पत्रकारितापर पुस्तककी रचना करूँ। इच्छा होते हुए भी मुझे इस विषयपर लिखनेका साहस न होता क्योंकि मैं उसके लिए अपनेको अयोग्य समझता, पर टण्डन मुझे सदा साहस, स्फूर्ति और बल प्रदान करते रहे। उन्होंने अपने अनुभवसे, अपनी 'कटिङ्ग' और फाइलोंसे, अपने पुस्तकालयकी पत्रकार-कला सम्बन्धी पुस्तकोंसे भी मेरी सहायता करनेका वचन दिया। फलतः इस कार्यमे संलग्न हुआ, जिसका परिणाम प्रस्तुत ग्रन्थके रूपमें पाठकोंके सम्मुख उपस्थित है।

यद्यपि इस ग्रंथका प्रत्येक अक्षर और प्रत्येक वाक्य तथा पंक्ति मेरी लिखी हुई है फिर भी श्रीटण्डनसे जो सहायता मिली उसे देखते हुए मैने उनसे प्रार्थना की कि वे ग्रन्थके प्रणेताके रूपमे मेरे साथ कृपा करके अपना नाम जोड़ देनेकी अनुमति भी मुझे प्रदान करें। मुझे हर्ष है कि उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

ग्रन्थके सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं कह सकता। मैं जानता हूँ कि पत्रकार-कलाके विषयमें लिखनेकी योग्यता मुझमें नहीं है और न मैं उसका विशेषज्ञ ही हूँ। अवश्य ही मुझे दस-ग्यारह वर्षोंके पत्रकार-जीवनका अनुभव है, पर केवल इतनेसे तद्विषयक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखनेके अधिकारका दावा मैं नहीं कर सकता। इसके सिवा जिन बन्धनों, रुकावटों और असाधारण स्थितियोंमें इसकी रचना हुई वे भी ग्रन्थको सर्वगुणसम्पन्न तथा परिपूर्ण बनानेमें बाधक ही रहीं। ऐसी अवस्थामें इसमें अधूरापन होगा, दोष होंगे, कमियाँ होंगी।

पुस्तककी पुनरावृत्ति तथा प्रूफ संशोधन करनेका अवसर भी मुझे नहीं मिला। इन कारणोंको उपस्थित करके यदि अपने पाठकोंसे यह भिक्षा माँगू कि वे मेरी त्रुटियोंके प्रति उदार दृष्टि रखें तो क्या अनुचित होगा? अन्तत मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यह ग्रन्थ यदि उन लोगोंकी थोडी भी सहायता कर सका जो पत्रकार-जीवन अपनानेके आकांक्षी हैं तो हम अपने प्रयासको सफल समझेंगे।

इन पक्तियोंको समाप्त करनेके पूर्व मै 'अमृतवाजार पत्रिका', 'लीटर', 'नागपुर टाइम्स', 'हिन्दोस्तान टाइम्स', 'आज', 'विश्वमित्र', 'भारत', 'संसार' आदि पत्रोंके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर देना आवश्यक समझता हूँ, जिनके विभिन्न अङ्कोंमें समय समयपर प्रकाशित लेखों और व्याख्यानोंसे मुझे काफी सहायता प्राप्त हुई है। मैं श्री लीलाधर शर्माका भी कृतज्ञ हूँ। उन्होने जेलमे ही इस ग्रन्थके परिशिष्टोंकी रचनामें मेरी बडी सहायता की।

५ सितम्बर १९४४
नैनी सेण्ट्रल जेल

कमलापति त्रिपाठी

★

विषय-सूची

पत्र और पत्रकार

जीवनमें पत्रका स्थान और प्रभाव

मनुष्य चेतनाशील प्राणी है। वह अपने चारो ओरकी दुनियाको देखता है और उससे प्रभावित होता है। जो पदार्थ और वस्तुस्थिति उसे घेरे हुए रहती है उनका दर्शन उसकी अनुभूतियोका कारण होता है। जब किसी पदार्थकी सत्ताका भान होता है तो उसके सम्बन्धमें और कुछ जाननेकी इच्छा पैदा होती है। जिज्ञासाकी यह मनोवृत्ति मनुष्यके स्वभावकी विशेषता है। इस प्रवृत्तिने उसके विकास और उसकी प्रगतिके मार्गको प्रशस्त करनेमें कदाचित् सबसे अधिक हिस्सा लिया है। ज्ञान, और अधिकसे अधिक ज्ञान उसकी प्रबल पिपासा रही है जिसकी शान्ति करनेके प्रयासमें उसने क्या नहीं किया ? रातमें आकाशके चमकते हुए सितारे, चन्द्रकी चन्द्रिकाकी मनोहर शीतलताका अनुभव, भोरमे प्राचीके अन्तरिक्षमे मोहनी उषाकी रक्ताभा, सावनके नभमें गरजते हुए काले बादलोकी घरघराहट और क्षण-प्रतिक्षण चमककर विलुप्त हो जानेवाली चपलाकी चञ्चलतासे मनुष्य सदा प्रभावित होता रहा है जिसके रहस्यका उद्घाटन करनेके लिए उसकी जिज्ञासाशील चेतना विकल होकर खोजके लिए प्रवृत्त होती रही है। उसी जिज्ञासाने उसे प्रकृतिके रहस्यका उद्घाटन करनेके लिए उत्प्रेरित किया। उसीके गर्भसे बड़े-बड़े दर्शनोकी उत्पत्ति हुई। उसीके उदरसे आजका विज्ञान पैदा हुआ। इन सबने मिलकर मनुष्यको जगत्के अन्य प्राणियोसे कहीं अधिक ऊँचा उठा दिया है। आजके मनुष्यका ज्ञान विशाल है, उसकी बौद्धिक सीमा दृश्य जगत्को पार करके कहीं दूर पहुँच रही है और वह सारे विधि-प्रपञ्चके तत्त्व तकका साक्षात्कार करनेपर तुला दिखाई दे रहा है। यह सब उसकी जिज्ञासाका ही परिणाम है।

बातोंको जानने और समझनेकी उसकी यह उत्सुकता विविध रूपोंमें प्रकट होती रही है। उसका एक रूप वह है जो समाचारपत्रोंके जन्मका कारण हुआ है। समाचार जाननेकी इच्छा मनुष्यमें आदि-कालसे ही चली आ रही है। जिस युगमें यह प्राणी जङ्गलोंमें अथवा पर्वतोंकी गुफाओंमें और वृक्षोंकी डालपर बैठकर जीवन बिताता था उस कालमें भी कदाचित् उसे खबरोंको जानने और सुननेकी चाह रहा करती थी। मनुष्यकी कुछ आदिम जातियोंमें, जो अब भी वन्यस्थितिमें रहती हैं और सभ्यताके भावसे अछूती हैं, यह प्रवृत्ति मनोरञ्जक ढङ्गसे दिखाई देती है। ऐसे लोग जङ्गलोंमें समूह बाँधकर रहते हैं। जब कभी किसी प्रकारका खतरा दिखाई देता है, अथवा शत्रुओंपर आक्रमण करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है, अथवा भोज्य सामग्रीका कहीं पता चलता है तथा अपने या पड़ोसी समूहोंमें कोई विशेष घटना हो जाती है तो ये समाचार सबको सुनाये जाते हैं। अपने समूहके कुछ लोगोंको समूहका मुखिया ऐसे समाचारोंको प्राप्त करनेके कामपर नियत कर देता है और अवसर आनेपर वे ढोल या डफली या डुग्गीके प्रकारका बाजा पीटते हुए निकलते हैं। समूहके सब नर-नारी और बाल-वृद्ध उसे सुनकर समझ जाते हैं कि कोई ज्ञातव्य बात हो गयी है और तत्काल एक स्थानपर एकत्र हो जाते हैं जहाँ ये बातें उन्हें सुना दी जाती हैं।

मनुष्य जैसे-जैसे उन्नत होता गया वैसे-वैसे समाचारोंको जानने और बतानेके उन्नत तरीके भी निकलते गये। जिस जमानेमें गमनागमनके साधन दुर्लभ थे, जब भौतिक और भौगोलिक बाधाओंसे एक प्रदेश दूसरे प्रदेशके लिए अगम्य था, उस जमानेमें भी साहसी व्यापारियोंके झुण्ड अपने-अपने दलके साथ एक स्थानसे दूसरे स्थानोंमें आया-जाया करते थे। इन व्यापारियोंका बड़ा भारी काम यह भी था कि वे एक स्थानके समाचार दूसरे स्थानोंमें सुनाया करते थे। पूरब और पश्चिमके तत्कालीन बाजारोंमें कहानी कहनेका पेशा करने-वाले विशेष रूपसे लोगोंको आकृष्ट किया करते थे। इनका काम उपर्युक्त प्रकारके व्यापारियोंसे तरह-तरहका समाचार संग्रह करना और उसे लोगोंको कहानियोंके रूपमें सुनाना था। अवश्य ही उन समाचारोंके साथ कहनेवालोंका अपना नमक-मिर्च लगा रहता था, फिर भी बहुत कुछ बातें एक देशके लोग

दूसरे देशोंके बारेमें इसी स्रोतसे जान पाते थे। पुराने समयके सङ्घटित राज्योंके शासक और उनकी सुसङ्घटित प्रजा तो सदा तरह-तरहके उपायोंका अवलम्बन करके खबर जानती और सुनती रही है। ऐसे समाचार, जिनको जाननेमे ही उन राज्योंकी भलाई थी, एकत्र करनेके लिए राजदूत और गुप्तचर, दरबारी और विरुदावली पढनेवाले भाट तथा हरकारे काममें लाये जाते रहे है।

जब न छापनेकी मशीन थी और न कागज था उस युगमें भी राजाज्ञाओं और आदेशोको प्रकाशित और वितरित करनेका प्रयत्न किया जाता रहा है। शिलालेखो और स्तम्भ-लेखोंके द्वारा ऐतिहासिक कालके अति अतीत युगमे, ईसवी सदीके पूर्व, तत्कालीन सभ्य देशोमें जनताको सरकारकी आज्ञा तथा प्रजाके कर्तव्योंका ज्ञान करानेकी परिपाटी रही है। मिस्रमें, फारसमे, भारतमे राजाओके ऐसे उपलब्ध अभिलेखोंमें हम आवश्यक बातोंके प्रकाशन तथा लोगोंको उनकी सूचना देनेकी मनोवृत्तिकी झलक पाते है। जूलियस सीजरके समयमें रोममे तो समाचारोंके सङ्कलन और प्रकाशनका विशेष तथा उन्नत उपाय काममे लाया जाता रहा है। सार्वजनिक स्थानोंमे नागरिक जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले समाचार लिखकर चिपका दिये जाते थे। सरकारी आज्ञाएँ और अदालतोंमे हुए मुकदमोंके फैसले, जन्म और मरणके लेखे, ऋतु सम्बन्धी सूचनाएँ, आग लगने अथवा किसी प्रकारकी विशेष घटनाके समाचार आदि विभिन्न प्रकारकी बातें, जिनसे जनसाधारणको दिलचस्पी हो सकती थी, स्थान-स्थानपर चिपकी दिखाई देती थीं। ऐतिहासिक युगमे कदाचित् जूलियस सीजरका यह आयोजन आधुनिक समाचारपत्रोके प्रकाशनकी प्रवृत्तिका सबसे पुराना प्रतीक है। जगत्का सर्वप्रथम दैनिक समाचारपत्र कहाँ प्रकाशित हुआ यह कहना कठिन है, पर कुछ विद्वानोके मतसे सन् १२४० ईसवीमें चीनमे 'पेकिङ्ग गजेट'के नामसे एक विज्ञप्ति प्रकाशित होती थी जिसे जगत्का प्रथम समाचार-पत्र माना जा सकता है। यह विज्ञप्ति स्पष्टत· समाचार छापनेका काम नहीं करती थी। इसमे प्रकाशित होनेवाले विषय अधिकतर सरकारी थे। सरकारी कर्मचारियोंकी नियुक्ति, राजाज्ञाएँ, राज्यविषयक सूचनाएँ जिस प्रकार आजकल भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारोंके 'गजेट'मे प्रकाशित हुआ करती हैं उपर्युक्त चीनी 'गजेट'में छपा करती थीं। विशेषता यह थी कि यह विज्ञप्ति छपा

करती थी क्योंकि चीनके लोग उस समय भी मुद्रणकलासे परिचित थे। आजसे पाँच शताब्दी पूर्व वेनिसमें वहाँकी तत्कालीन सरकारकी आज्ञासे जो प्रबन्ध किया गया वह यूरोपके आधुनिक पत्रोंका जनक माना जा सकता है। सरकारकी ओरसे नगरके तथा दूसरे स्थानोंके जो समाचार सङ्कलित किये जा सकते थे किये जाते थे और उन्हें लिखकर सार्वजनिक स्थानोंमें लगा दिया जाता था। कुछ समय बाद जब मुद्रण-यन्त्रोंका प्रयोग करना सम्भव हुआ तब यह हस्तलिखित समाचारपत्र छापा जाने लगा जो 'गजेट'के नामसे विख्यात था। वेनिसके इस उदाहरणको पहले जर्मनीने और फिर धीरे-धीरे यूरोपकी अन्य प्रमुख नगरियोंने भी अपनाया और क्रमश. वहाँ भी इस प्रकारके 'गजेट' छपने लगे। 'गजेट' शब्दकी उत्पत्तिका भी छोटासा इतिहास है। यह इटालियन शब्द है जो उस समय एक छोटे सिक्केके लिए प्रयुक्त होता था। उक्त पत्रकी एक प्रति एक 'गजेट'में वेची जाती थी अतः पत्र 'गजेट'के नामसे विख्यात होने लगे।

श्री लोवारेनके कथनानुसार लन्दनमें पहला साप्ताहिक समाचारपत्र सन् १६२२ ईसवीके अगस्त (श्री ए० जे० कामन्सके मतसे मई) में पहले-पहल प्रकाशित हुआ और तभीसे वहाँ 'प्रेस'का प्रवेश हुआ। जर्मनीमें पन्द्रहवी शताब्दीके मध्यसे, फ्रांसमे सत्रहवीं शताब्दीके आरम्भसे छोटे-मोटे पत्र निकलने लगे थे। यूरोपमे सर्वप्रथम मुद्रणकलाका आविष्कार पन्द्रहवीं शताब्दीके आरम्भिक युगमे जर्मनीमें हुआ था। इस आविष्कारने समाचार-पत्रोंके प्रकाशनको अति सुलभ कर दिया। फिर तो धीरे-धीरे सारे जगत्मे प्रेसने अपनी सत्ता जमा ली। सत्रहवीं, अठारहवी और उन्नीसवीं शताब्दियोंमे प्रेसकी महिमा धीरे-धीरे किस प्रकार विकसित होती गयी है और समाचारपत्रोंका विकास कैसे होता गया है इसकी कहानी मनोरञ्जक है। आरम्भिक पत्र कैसे निकलते रहे हैं, कैसे समाचारोंका सङ्कलन, सम्पादन और प्रकाशन तथा वितरण होता रहा है और किस प्रकार वे जनताके जीवनमे क्रमश अधिकाधिक प्रविष्ट होते रहे है यह स्वतन्त्र विषय है जिसके लिए अलग ही ग्रन्थ लिखा जाना आवश्यक होगा। समाचारपत्रोंका इतिहास और उसका विवेचन इस ग्रन्थका विषय नहीं है। विभिन्न देशोंके समाचारपत्रोंका इतिहास भिन्न-भिन्न है। विभिन्न समयमें उनकी स्थापना हुई और वे विकसित हुए।

फलतः उनके इतिहासका उल्लेख करके इस ग्रन्थका आकार बढाना सम्भव नहीं है।

पर इतना कह देना आवश्यक है कि मुद्रणकी नयी वैज्ञानिक कलाने मानवताके विकास और मनुष्यके जीवनमें सहसा गहरी गति प्रदान कर दी। उसके प्रभावसे मनुष्यका ज्ञान तीव्र गतिसे व्यापक और विस्तृत हुआ तथा मनुष्यके विचारों, भावों और आदर्शोंने तेजीके साथ एक स्थानसे हजारों कोस दूर किसी दूसरे स्थानकी यात्रा देखते-देखते तै की। सांस्कृतिक सङ्घर्ष और सांस्कृतिक आदान-प्रदानके द्वारा उसने भूमण्डलके मानवसमाजको एक दूसरेके अत्यन्त निकट ला दिया। जिज्ञासा और ज्ञान प्राप्त करनेकी जो सहज उत्सुकता मनुष्य-स्वभावमें होती है उसकी परितृप्तिमें मुद्रणकला असाधारण रूपसे सफल हुई। समाचारोंको जाननेकी लालसा पूरी करनेके लिए संवादपत्रोंका प्रकाशन दिन-दिन उन्नत और समुचित ढङ्गसे होने लगा और आज हम आधुनिक समाचार-पत्रोंको उस रूपमें पाते हैं जिस रूपमें वे हमारे सामने हैं। मार्केकी बात है कि मुद्रणकलाके विकसित होते ही अधिक समय भी बीतने नहीं पाया था कि प्राय. समस्त सभ्य जगत्‌में समाचारपत्र किसी न किसी रूपमें प्रकाशित होने लगे। यह भी इस बातका प्रमाण है कि मनुष्य सर्वत्र ही खबर जाननेकी उत्सुकताका शिकार समान रूपसे रहा है।

साथ ही साथ हम यह भी देखते हैं कि आरम्भमे ही समाचारपत्रोंके सामने उनकी जो समस्याएँ उत्पन्न हो गयीं, वे भी प्रायः सर्वत्र समान ही रही हैं। उनको सर्वत्र समान ढङ्गके विरोधियोंका सामना करना पड़ा है। सभी देशोंमें वहाँकी तत्कालीन सरकारोंने समाचारपत्रोंके प्रकाशित होनेके कुछ समय बाद ही उनकी शक्ति और स्वतन्त्रताको नियन्त्रित करनेकी चेष्टा की। सभी स्थानोंमे वह वर्ग, जो शासन-यन्त्रसे सम्बद्ध था, जिसका स्वार्थ तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक ढाँचेमें स्थिर था, इस नवोद्भूत शक्तिसे सशङ्क हुआ और उसकी सीमा तथा प्रभावको दबानेके लिए यत्नशील हुआ।

दुनियाके समाचारपत्रोंके इतिहासमें जो बात विशेष रूपसे दिखाई देती है वह यही है कि सर्वत्र उन्हें अति आरम्भिक कालसे ही अपनी स्वतन्त्रता और

सत्ताके लिए शासकोंसे सङ्घर्ष करते रहना पड़ा है। अनायास उन्हें आरम्भसे ही दलित और शोषित वर्गों तथा सर्वसाधारणके हितोंकी रक्षा करने, उनके मतका प्रदर्शन करने तथा दमन और निरङ्कुशताका विरोध करनेका सेहरा अपने सिर बाँध लेना पड़ा है। जन्मसे ही सङ्घर्षमें पड़े समाचारपत्रोंको आजतक उससे छुटकारा नहीं मिला है। पर इस रगड़ और खींचा-तानीके फलस्वरूप ही कदाचित् समाचारपत्रोंका प्रभाव क्रमशः बढ़ता गया है। उनका दमन करनेकी जितनी चेष्टा की गयी और उनके क्षेत्रको जितना अधिक सङ्कुचित करनेका प्रयत्न किया गया उतना ही उनका प्रभाव बढ़ता गया। शताब्दियोंसे मुकाबिला करनेवाला यह तत्त्व आज इतना प्रभावशाली हो गया है कि उसे 'फोर्थ स्टेट'-चौथी रियासतके नामसे पुकारा जाता है। धर्म, राज्य और प्रजा आधुनिक जगत्में तीन रियासतें मानी जाती हैं जिनका अपना-अपना अधिकार-क्षेत्र है और जिसपर समस्त सामूहिक तथा सामाजिक जीवन निर्भर करता है। पर अब 'संवादपत्र' चौथी रियासत है जिसकी शक्ति और प्रभावकी उपेक्षा न धार्मिक महन्त कर सकता है, न प्रबल शासक और न विस्तृत तथा व्यापक जनवर्ग। सब उसकी ओर देखते रहते हैं, सब उसके गर्जनसे त्रस्त होते हैं, सब उसकी अनुकम्पा तथा मधुर दृष्टिके भूखे रहते हैं और सब उसके समर्थनकी कामना किया करते हैं। सब उसकी भृकुटीके कुटिल होते ही थर्राते हैं और शासकवर्ग तो अपनी रक्षाके लिए सारी शक्ति लगाकर उसका सामना करनेकी तैयारी करता ही रहता है।

सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनमें पत्रोंका वह स्थान हो गया है कि सब उसकी मित्रताके इच्छुक रहते हैं और बहुधा उससे प्रकाश, पथप्रदर्शन तथा सहायता प्राप्त करते हैं। आज समाजके जीवनमें और व्यक्तिके जीवनमें समाचारपत्रका असाधारण और अद्वितीय स्थान हो गया है। हमें एक दो दिन भोजन न मिले तो भूखकी पीड़ाका सहन कर लेंगे, पर संवादपत्र यदि प्रातः या सायं दर्शन न दे जाय तो विकल हो उठेंगे। समाचारपत्र पढ़ना अफीम और तम्बाकूके नशेसे भी गहरा नशा हो गया है जिसके बिना आधुनिक मनुष्यको चैन ही नहीं मिलता। वह तो आज आदर्शकी बात हो गयी है। करोड़ो नरनारी समाचारपत्रका पारायण प्रतिदिन करते हैं, भले ही सब समाचार जाननेके

लिए ही न पढते हों, भले ही बहुतसे काल-यापनके लिए उसे उलटते-पलटते हों, चिन्ता और दिन-प्रतिदिनके जीवन-सङ्घर्षकी परेशानियोंके कठोर बोझसे थोड़ी देरके लिए अपनेको मुक्त करनेके लिए ही देखते हो पर सबकी आँखें उसके एकके बाद दूसरे स्तम्भोकी यात्रा नियमित रूपसे करेंगी अवश्य। संवादपत्र आजकी जनताका ऐसा साथी और मित्र हो गया है जिससे वह जीवनके प्रत्येक पहलूमे सहायताकी अपेक्षा करती है। राजनीतिक विषयोंमें तो समाचारपत्र बहुत पहलेसे जन-साधारणका पथप्रदर्शक और गुरु रहा है, पर आज उसका क्षेत्र उससे कहीं अधिक विस्तृत हो गया है। मनुष्यके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी छोटी-बडी समस्याएँ हैं या हो सकती है उन सबसे सम्बन्धित सूचना प्रदान करना और उनपर अपना मत प्रकट करना उसका काम हो गया है। भोजनके विषयमें, फैशनके विषयमें, स्वास्थ्य और सौन्दर्य, स्त्री और बच्चे, विवाह और प्रेम, विनोद और विलास, कला और विज्ञान, दर्शन और साहित्य, सिनेमा और थियेटर, अभिनय और नृत्य, व्यायाम और खेल, व्यापार और व्यवसाय, रेस और सट्टा, ताश और शतरञ्ज, आभूषण और फर्नीचर, आदि कोई भी विषय क्यों न हो सबके सम्बन्धकी सूचना साधारण मनुष्य समाचारपत्रसे पानेकी अपेक्षा करता है। जीवनका कोई अङ्ग नहीं है, कोई पहलू नहीं है, कोई समस्या नहीं है जो आधुनिक समाचारपत्रकी सीमा और क्षेत्रसे बाहर हो और जिसके विषयमें जाननेकी बातें जनता उसके द्वारा उपस्थित किये जानेकी आशा न करती हो।

फिर विचार तो कीजिये कि जीवनमें समाचारपत्रका कैसा विचित्र और महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया है? एक समय था जब ज्ञान-विज्ञानकी बातें कुछ थोडेसे बुद्धि विलासियो तक ही परिमित थीं। जिन लोगोंकी ऊँची शिक्षा थी, जो बुद्धि और विद्याके उपासक थे वे पुस्तकों और महान ग्रन्थोंमें गोते लगाते थे और ज्ञान प्राप्त करके अपनी ही दुनियामे मस्त रहते थे। साधारण जनताके जीवनसे उन बातोंका कोई सम्बन्ध ही न था। पर आज समाचारपत्रोंने दार्शनिकोंकी ऊँची उडान, धर्म-गुरुओंके दिव्य ज्ञान, महावैज्ञानिकोंकी तीखी खोज और प्रयोगको, उत्तुङ्ग ज्ञानाकाशसे घसीट लाकर सर्वसाधारणके लिए ... रख दिया है। बड़े-बड़े विद्वान् और पण्डित तथा विशेष विषयोंके विशे...

लिए समाचारपत्रोंके स्तम्भोंने अभिव्यक्तिका नव-साधन प्रदान कर दिया है जिसके द्वारा सीधी और सरल भाषा तथा ढङ्गसे ऊँची-ऊँची ज्ञानकी बातें साधारण लोगों तक पहुँचायी जा रही हैं। आजका मनुष्य किसी भी पूर्व युगकी अपेक्षा विविध विषयोंका कहीं अधिक जानकार है। भले ही विभिन्न विषयोंकी गहरी जानकारी केवल पण्डितोंको ही हो, उन लोगोंको भी पत्रोंके द्वारा गम्भीर विषयोंका थोड़ा-बहुत ज्ञान हो ही जाता है जो न विद्वान् हैं और न बुद्धिपूजक और न सरस्वतीके आराधक। आज इन पत्रोंने हमें वह अवसर प्रदान किया है जब हम काशी या प्रयागमें बैठे हुए यह जान लेते हैं कि लन्दनका मजदूर किस प्रकार सोचता है और रूसका किसान किस तरह काम करता है। यह ज्ञान इतना आधुनिक है कि दिन-प्रतिदिन उनमें होनेवाले परिवर्तनोंकी लहरियोंका दर्शन भी मिल जाता है।

आज हम देखते हैं कि जो ज्ञान मुट्ठीभर प्रतिभाशाली व्यक्तियोंकी सम्पत्ति बनाकर रखा जाता था, समाचारपत्रोंने बड़ी दृढ़ता, सफलता और सुन्दरताके साथ उसका समाजीकरण कर डाला है। मानवसमाजको समाचार-पत्रोंकी यह महती देन है। जो विषय विशेषज्ञोंके लिए ही थे उन्हें सार्वजनिकता प्रदान करके उन्होंने साधारण मनुष्योंकी महती सेवा की है। उन्होंने उनकी बौद्धिक उत्सुकताको बेतरह बढ़ा दिया है जिसके फलस्वरूप उनके मस्तिष्कमें आज जिज्ञासा प्रबल हो गयी है। समाचारपत्रोंमें यदाकदा प्रकाशित विशेष लेखोंने सहस्रों युवक-युवतियोंको रुचिके अनुसार विशेष विषयोंकी ओर अधिक जानकारी प्राप्त करनेके लिए उत्प्रेरित किया है। हम जानते हैं कि समाचारपत्र अपनी लोकप्रियताके लिए अक्सर अपने प्रभाव और पदका दुरुपयोग भी करते हैं। जनता उनकी प्रतियाँ अधिकसे अधिक खरीदे अथवा प्रतिस्पर्धामें प्रतिद्वन्द्वी टिक न पाये, इसलिए समाचारपत्र मनुष्यकी हीन प्रवृत्तियों और उसकी इन्द्रिय-लोलुपताके साथ खिलवाड़ भी करते हैं। उसे उत्तेजन प्रदान करके जनप्रियता प्राप्त करनेकी चेष्टा की जाती है। इस बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि यह नीति समाचारपत्रको उसके आदर्शसे भ्रष्ट कर देती है। इंग्लैण्ड और अमेरिकाके अधिकतर पत्रोंमें तो यह प्रवृत्ति बढ़ती ही दिखाई देती है। सौभाग्यकी बात है कि अब तक कुछको छोड़कर भारतके

अधिकतर पत्र इस दोषसे बड़ी सीमा तक मुक्त हैं। अत समाचारपत्रोंमें इस त्रुटि और दोषका अस्तित्व स्वीकार करते हुए भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि आज उन्होने मानवज्ञानके क्षेत्रको अपेक्षाकृत कही अधिक विस्तृत और व्यापक कर दिया है तथा विविध दिशाओमें मनुष्यकी कुतूहल-प्रवृत्ति और जिज्ञासाको तोष प्रदान किया है। उनकी इस विशेषताने जन-जीवनमे जान डाल दी है और वे स्वतः सजीव जनताके हृदयके निकट आकर स्वयं सप्राण हो गये हैं। साधारण मनुष्यके जीवनकी साधारण बातोका चित्रण करके जीवन और ज्ञान तथा जगत्के अनेक और विभिन्न पहलुओंको मनोरञ्जक ढङ्गसे उपस्थित करके समाचारपत्रोंने सामाजिक क्षेत्रमें आज वह स्थान प्राप्त किया है जो किसी दूसरेको नसीब नही हो सकता।

पुलिसके मामले और अदालतोके इंसाफ, अपराध और आत्महत्या, तलाक और शाश्वत प्रवृत्तियोंसे प्रवाहित मानवाचरण और मनोभावसे लेकर महान साम्राज्योंके सञ्चालनकी नीति तकको लिपिबद्ध और मुद्रित करके आज प्रेस सारे सामाजिक जीवनपर छा गया है। फलत. मनुष्यके विचारों और आचरणों तथा आदर्शों और विवेक तथा ज्ञानको उससे अधिक प्रभावित करनेवाला पदार्थ शायद दूसरा नहीं है। यही कारण है कि उसकी शक्ति आज अपरिमित हो रही है। वह जनताका प्रतिनिधित्व करता है और जनता उसका प्रतिनिधित्व करती है। वह जन-भावको प्रकट करता है और जन उसके भावसे परिचालित हो जाता है। परस्परका यह घात-प्रतिघात दोनोंको बल और जीवन प्रदान करता रहता है। यही कारण है कि विशाल साम्राज्योंपर शासन करनेवाले मन्त्रिमण्डलोंके सदस्य उससे काँपते हैं, सरकारें उससे थर्राती है और स्थिरस्वार्थी वर्ग सुरक्षित आलीशान अट्टालिकाओमें बैठा-बैठा सिहरा करता है। यही कारण है कि प्रेसको सदा अपने विरोधियोका सामना करते ही बीतता है; उसका विकास ही विरोध, शत्रुता और दमनका सामना साहसपूर्वक करते रहनेमे हुआ है। स्वत्व, क्रूरता और अन्याय एक ओर और क्लेश, क्षोभ और प्रतिरोध दूसरी ओर दो परस्पर विरोधी शक्तियोके रूपमे सदासे रहे है जिनकी ओर निर्भयताके साथ समाचारपत्र सदासे सङ्केत करते आये हैं। उनकी इस निर्भयताके कारण जो बल उन्हे प्राप्त होता रहा है और उसके

फलस्वरूप सामाजिक सङ्घटनपर उनका जो प्रभाव होता रहा है उसकी उपेक्षा शासकवर्ग कभी नहीं कर सका। शासकोंकी ओरसे उसे दबानेका जो प्रयत्न होता रहा है वही उसकी शक्ति और प्रभावका सबसे बड़ा सबूत है। जिन देशोंमे निरङ्कुशता रही है उन्हे तो जाने दीजिये, पर जहाँ जन-स्वातन्त्र्य तथा लोकतन्त्रकी भावना आरम्भसे ही प्रबल रही है उस इंग्लैण्डके समाचार-पत्रोंको आरम्भिक कहानी शासकोंकी दमन-प्रवृत्ति तथा पत्रोंकी स्वतन्त्रताको कुचलनेकी चेष्टाकी कहानी है।

क्रामवेलने ब्रिटिश नरेश प्रथम चार्ल्सका मस्तक खड्गके एक झटकेसे उड़वाकर इंग्लैण्डका शासन-सूत्र अपने हाथमे लिया, पर वह प्रेसकी शक्तिकी उपेक्षा न कर सका। सन् १६४९ ईसवीमें उसने पत्रोंकी स्वतन्त्रताका अपहरण करते हुए एक कानून बनाया जिसके अनुसार सरकारसे स्वीकृत हुए बिना किसी मामलेपर मत प्रकट करना अपराध घोषित किया गया और इसके लिए गहरे दण्डकी व्यवस्था की गयी। क्रामवेलके बाद जब द्वितीय चार्ल्स ब्रिटिश राजसिहासनपर आसीन हुए तो उन्होने क्रामवेलसे भी दो कदम आगे बढ़कर सन् १६६२ ईसवीमें 'प्रेस कानून'का निर्माण कराया जिसके फलस्वरूप समाचारपत्रोंकी रही सही स्वतन्त्रता भी नष्ट हो गयी। ये घटनाएँ इस बातके प्रमाण हैं कि प्रेसके प्रभावको सरकारें सदा अनुभव करती रही हैं और उनसे भयत्रस्त होकर अपनी रक्षाके लिए प्रयत्नशील रही हैं। प्रेसने भी सदा अपनी इस स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए युद्ध किया है। इग्लैण्डका प्रेस एक्ट भी सन् १६९५ ईसवीमे समाप्त हो गया और तबसे वहाँके पत्र स्वतन्त्र माने जाते है। इंग्लैण्ड तथा यूरोपके अन्य देशोके पत्रोंकी स्थिति क्या है और उन्हे वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त है या नहीं इसपर हम अगले अध्यायमे विचार करेंगे। यहाँ इतनी बातका उल्लेख केवल यह दिखानेके लिए किया गया है कि सामाजिक जीवनमें पत्रका स्थान और उसका प्रभाव इस प्रकार स्थापित है कि सरकारें सदा उससे भयभीत होकर उसकी स्वतन्त्रताका दमन करनेमे लगी रहती है। फासिस्ट इटली और नाजी जर्मनी तथा कुछ सीमा तक बोलशेवी रूसके पत्रोंका तो आज स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं रह गया है। अमेरिका और इग्लैण्डके पत्र पूँजीपतियो और व्यवसायियोंके चङ्गुलमे हैं

यद्यपि अब भी वे अपनी कुछ स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं। भारतके पत्रोंका गला तो सदासे रेता जा रहा है।

यह सब परिणाम है पत्रोंके प्रचण्ड प्रभावका। आज वे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक तथा धार्मिक जीवनकी ही प्रतिच्छाया नही हैं बल्कि उस महान दर्पणके समान है जिसमे सारा विश्व प्रतिबिम्बित होता रहता है। वे स्वयं जब प्रकम्पित होते है तो जगत् अपनेको हिलता देखता है और देखकर स्पन्दित हो उठता है। यूरोपमें एक जमाना था जब चर्च और धार्मिक महन्तोकी प्रभुता छायी हुई थी। कहा जाता है कि इस प्रभुताकी समाप्ति करनेमें सबसे अधिक भाग समाचारपत्रोने ही लिया है। व्यापक जनवर्गकी भावुकताको व्यापक रूपसे प्रेस किस प्रकार प्रभावित करता रहता है इसके अनेक प्रमाण है जो इतिहासके विषय होगये है। आज यह मानी हुई बात है कि फ्रांसकी प्रसिद्ध राज्य-क्रान्तिका सूत्रपात करनेमे तत्कालान फरासीसी समाचारपत्रोंके स्तम्भोंसे झरनेवाले आगके अङ्गारोका हिस्सा सबसे अधिक रहा है। श्री स्काट जेम्सने लिखा है कि फरासीसी पत्रोंने जनताको सामूहिक रूपसे विचार करना तो नही सिखाया पर एक होकर उलट-पलट कर देनेकी क्षमता अवश्य प्रदान कर दी। न जाने कितनी क्रान्तियो और अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों तथा मन्त्रिमण्डलोके विघटनमें समाचारपत्र मुख्य कारण रहे हैं। गत महायुद्धके समय जब सिराजीवोमें आस्ट्रियाके आर्कड्यूक फर्डिनेण्ड और उनकी पत्नीकी हत्या हुई तो ब्रिटिश पत्रोने उस समाचारके प्रकाशनके साथ-साथ यह टीका की कि सर्विया चूल्हेमें जाय, इग्लैण्डको यूरोपके मामलेसे कोई मतलब नहीं है, पर कुछ घण्टे भी नही बीते थे कि वे तत्काल तलवार उठानेके लिए चिल्लाने लगे।

युद्धकालमे शत्रुके विरुद्ध सच्चा-झूठा प्रचार करके विभिन्न देशोके समाचार-पत्र अपने देशकी जनताके हृदयमें कैसी आग भड़काते है इसका अनुभव उन सब लोगोको होगा जो आज युद्ध-कालमे समाचारपत्रोका ढङ्ग और उनके द्वारा होनेवाले विष-वमनको देख रहे है। श्री कमिंग्स 'दि प्रेस' नामक अपनी पुस्तकमे गत महायुद्धके समयकी एक घटनाका उल्लेख करते हैं जो इस बातका प्रमाण है कि युद्धकालमें समाचारपत्र कैसे बे-सिर-पैरके निराधार समा-चारोको फैलाकर अपने देशकी जनताके क्रोधको उभाड़ते हैं और शत्रुके विरुद्ध

भयावनी घृणा उत्पन्न कर देते हैं। उपर्युक्त लेखक लिखता है कि सन् १९१७ ईसवीमे लन्दनके 'टाइम्स'ने अपने १९ अप्रैलके अङ्कमें यह समाचार छाप दिया कि 'जर्मनीमें एक कारखाना खोला गया है जिसमें मरे हुए सैनिकोंके शवको पीसा जाता है। शवसे निकाली हुई चर्बीसे 'लुब्रिकेटिङ्ग आयल' बनाया जाता है और हड्डियोको पीसकर सूअरोंको खिला देते हैं।' इस रोमाञ्चक समाचारने जर्मनोके प्रति जिस व्यापक घृणाका सर्जन किया होगा उसकी कल्पना कर लेना कठिन नहीं है। मनोरञ्जक बात यह है कि यह सारा समाचार ऊपरसे नीचेतक झूठा था। गत महायुद्धके समय लन्दनके 'टाइम्स'ने युद्धके पक्षमें इग्लैण्डकी जनताको इतना उत्तेजित किया था कि युद्धोपरान्त जर्मनीके प्रसिद्ध नेता लूडेनडार्फने कहा कि इस युद्धमे इग्लैण्डकी विजय लायड जार्जकी विजय नही बल्कि लार्ड नार्थक्लिफकी विजय है। लार्ड नार्थक्लिफ 'डेलीमेल', 'टाइम्स' आदि पत्रोके मालिक तथा ब्रिटिश सरकारके प्रचार और प्रकाशन-विभागके अध्यक्ष थे। यह है समाचारपत्रोंका प्रभाव जो जनताके हृदयपर, उसकी भावना और बुद्धिपर स्थापित है।

इस देशमे साम्प्रदायिकताकी आग लगानेमे अधिकतर साम्प्रदायिक उर्दू तथा हिन्दी पत्र किस सीमातक सफल होते है यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। प्रेसकी शक्तिके सम्बन्धमें एक और मनोरञ्जक कहानीका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। कहा जाता है कि लन्दनके किसी संवादपत्रके एक सम्पादक तथा वहाँके मन्त्रिमण्डलके एक प्रमुख सदस्यके बीच एक समय प्रेसके प्रभाव और उसकी शक्तिके सम्बन्धमें विवाद उठ खडा हुआ। मन्त्री महोदय समाचारपत्रकी शक्ति और प्रभावको स्वीकार करनेके लिए तैयार न थे। सम्पादकने उन्हें चुनौती दी कि एक दिन वह सिद्ध कर देगा कि प्रेसमें कितनी शक्ति होती है। कुछ समय बाद उसी समाचारपत्रमे एक दिन प्रात.काल बडे बडे शीर्षकोंमें यह सवाद प्रकाशित होकर आया कि लन्दनकी जन्तुशालाके तमाम पशु किसी भूलके कारण अपने कठघरोंसे निकल पडे है और अब तक नियन्त्रित न किये जा सके। संवादपत्रमें इस समाचारका प्रकाशित होना था कि सारे लन्दनमे तहलका मच गया। जिसे देखिये अपने घरकी ओर भागता नजर आता। शेर, भालू, चीते और सर्पोंका सामना कौन करे? देखते-देखते

लन्दनकी सड़कें सुनसान हो गयीं। दो घण्टे बाद उसी पत्रका दूसरा संस्करण निकला कि संवाद भूलसे प्रकाशित हो गया और पता चला है कि सब पशु ठिकाने-ठिकाने बन्द है। तत्काल ही नागरिक जीवन पुनः चालू हो गया। वास्तवमें उक्त सम्पादकने इस निराधार संवादको प्रकाशित किया था प्रेसकी शक्ति मन्त्रिमण्डलके सदस्यके सम्मुख सिद्ध करनेके लिए।

आस्करवाइल नामक प्रसिद्ध लेखकने समाचारपत्रकी शक्तिके सम्बन्धमें मजेदार बात लिखी है। वह कहता है कि 'शायद बर्कने यह कहा था कि समाचारपत्र चौथी रियासत है। उस समय यह बात अवश्य सत्य रही होगी पर आज तो प्रेस ही एकमात्र रियासत है क्योंकि अन्य तीनोंकी शक्तियोंको वह अकेले ही हजम कर गया है। राजा बोलता नही, धार्मिक अधिकारीको कुछ बोलना है ही नहीं और साधारण सभाके पास कुछ कहनेको ही नहीं है यद्यपि वह कुछ न कुछ कहा करती है। इस युगमें तो हमपर समाचारपत्रोंकी ही प्रभुता है। अमेरिकामें वहाँका राष्ट्रपति केवल चार वर्षके लिए हुकूमत करता है पर समाचारपत्र तो सदा शासन करते रहते है।'

वस्तुतः आस्करवाइलका कहना सत्य है। आज अधिकतर साक्षर जनताके लिए, लाखो नरनारियोके लिए, समाचारपत्रके सिवा कोई दूसरा साहित्य ही नहीं है। वही उनकी पाठशाला, वही उनका साथी और पथ-प्रदर्शक और वही शिक्षक तथा साहित्य हो गया है। वेण्डेल फिलिप्स नामक विद्वान्ने लिखा है कि 'आजका समाचारपत्र एकबारगी जनवर्गका माता-पिता, स्कूल-कालेज, शिक्षक, थियेटर, आदर्श और उदाहरण, परामर्शदाता तथा साथी हो गया है। मुझे समाचारपत्र निकालने दो फिर इस बातकी मै कोई परवा नहीं करता कि कौन धर्मका नियामक है और कौन कानूनका निर्माता। श्री वेण्डेल फिलिप्सके इस उद्गारमें सचाई है इसे कोई अस्वीकार नही कर सकता। आधुनिक युगका मनुष्य समाचारपत्रके उत्तरोत्तर बढते हुए प्रभाव और उसकी शक्तिका दिन-प्रतिदिन अनुभव कर रहा है। कारण यह है कि आज-का समाचारपत्र केवल समाचारोंका सङ्कलन करके उसके प्रकाशनमात्रसे सन्तोष नहीं करता। उसका कर्तव्य इससे बहुत अधिक है। समाचारके प्रकाशनके साथ-साथ मतका प्रकटीकरण भी उसका मुख्य कर्तव्य है। समाचारपत्र न

केवल समाचार वेचनेका एक उपाय है और न व्यवसायियों तथा व्यापारियोंके उद्योग और व्यापारके प्रकाशन करनेका एक साधनमात्र। वह एक ऐसा उद्योग है जो सहयोगके सिद्धान्तपर आश्रित है और जिसमें एक हिस्सेदार जनता-जनार्दन है। उसकी शक्तिका रहस्य इस वातमें है कि वह जनताके हृदय, उसकी भावना और उसकी वुद्धिका स्पर्श करता है, उसमे गति और स्पन्दन प्रदान करता है, समाचारोंके सङ्कलनके साथ-साथ उनपर मत प्रकट करता है, जिन वातोंके रहस्यको जन-चक्षु नहीं देख पाते उन्हे अपनी सूझ और कल्पनाके आधारपर वाहर निकाल लाता है, भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाओंकी सम्भावनाकी ओर सङ्केत करता है और तदनुकूल क्या करना और क्या न करना चाहिये इस सम्वन्धमें जनताको सलाह देता है। जीवनके सभी अङ्गोंमें विधिनिपेधकी ओर सङ्केत करना और जनताको उसके हित और कल्याणकी ओर उत्प्रेरित करना उसका आदर्श है जो वस्तुत· उसकी शक्ति और प्रभावका स्रोत है। जनहितकी यह साधना और उस हितकी रक्षाके लिए उसकी सचेष्टता उसके वलका मूलाधार है। इसीके लिए वह युद्ध करता है और वहुधा अपनेको शक्तिशालियोंकी क्रोधाग्निमे भी भस्म कर देनेमें सङ्कोच नहीं करता।

जनहित उसकी धरोहर है और सरक्षक होनेके नाते उसकी रक्षा करना उसका पुनीत कर्तव्य है। इस प्रकार समाचारपत्र केवल संवाद वेचनेका व्यापार करनेके लिए नहीं है और न सिर्फ विज्ञापनवाजोंके लिए स्थान प्रदान करनेके लिए है। वह यह सव करता है पर इनके साथ-साथ वह नैतिक आदर्शों तथा उन समस्त विवेकपूर्ण उज्ज्वल भावोंका व्यापार भी करता है जिनके द्वारा मानव-जीवनका मूल्याङ्कन किया जाता है। यही उसकी शक्ति और प्रभावका स्रोत है और जवतक उसका यह आदर्श है तवतक किसी लोभ, किसी दमन, किसी प्रहार और किसी कुचालके द्वारा उसकी शक्ति और प्रभावको मिटाया नही जा सकता। हाँ, जिस दिन वह अपने आदर्शसे भ्रष्ट होगा उस दिन किसीके वचाये उसकी शक्ति और प्रभाव वचेगा भी नहीं। आज इंग्लैण्ड और अमेरिकाके विचारशील और आदर्शवादी पत्रकारोंके हृदयमे अपने-अपने देशके पत्रोंकी वर्तमान गतिको देखकर कुछ आशङ्का उत्पन्न होने लगी है। वे वहुधा अपने भयको प्रकट भी करने लगे हैं। स्पष्ट है कि जिस प्रेसमे यह

शक्ति है कि वह अपने स्तम्भोंके द्वारा राष्ट्रके राष्ट्रको किसी एक दिशाकी ओर प्रेरित कर दे वह ऐसी वस्तु नहीं है जिसकी गतिकी उपेक्षा की जा सके। शक्ति विकट पदार्थ है जो दुधारी तलवारके समान है। यदि उसका सदुपयोग किया जाय तो वह जितनी मङ्गलमयी हो सकती है उतनी ही दुरुपयोगके फल-स्वरूप अभिशापमयी भी बन जा सकती है। जो राष्ट्रके जीवनको भलाईकी ओर, उन्नतिकी ओर और औचित्यकी ओर उत्प्रेरित करनेकी क्षमता रखता है वह उसे भ्रष्टता, गन्दगी और पतनकी ओर भी ले जा सकता है। साधारण व्यक्ति अपने आचरणके सम्बन्धमे उचित-अनुचित और कर्तव्याकर्तव्यके सम्बन्धमें स्वयं सोचकर मार्ग निर्धारित करनेका कष्ट नहीं उठाया करता। उसकी प्रवृत्ति होती है कि यह काम कोई दूसरा उसके लिए कर दे और जो बातें निश्चित रूपमे उसके सामने उपस्थित कर दी जाती हैं उन्हे ही वह ग्रहण कर लेता है।

मनुष्यका स्वभाव है कि वह बुराईको और बुरे प्रभावको भली बातोंकी अपेक्षा जल्दी ग्रहण कर लेता है। यदि समाचारपत्र, जो जन-जीवनकी गहराईमें घुस पडे हैं, मनुष्यकी बुराइयो और हीन तथा तुच्छ प्रवृत्तियोंको उत्तेजन प्रदान करें तो भला तज्जन्य प्रभावको रोकनेकी सामर्थ्य किसमें हो सकती है? जनता तो बहुत बडी सीमातक इन पत्रोंके मतसे ही प्रभावित होती है। किसी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नके सम्बन्धमे साधारण लोगोंको बातचीत करते सुन लीजिये और देख लीजिये कि पत्रोंके मतका प्रभाव कितना व्यापक होता है। बाजारोंमे या रेलके डब्बोंमे या कचहरियोके अहातोमे, जहाँ साधारण लोग जुटते है, अक्सर किसी न किसी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नकी चर्चा होती दिखाई देती है। उनकी बातचीत सुनिये और आप यह देखकर चकित हो जायँगे कि बहुधा लोग वही मत प्रकट करते दिखाई देते हैं जो उनके समाचारपत्र प्रकट कर चुके होते हैं। सम्पादककी लेखनीसे निकले शब्द अनजानमे उनके मस्तिष्कमे मढ उठते हैं और उसीके अनुकूल उनके विचार हो जाते है। इस स्थितिमे जो संवादपत्र अपने व्यावसायिक लाभके लिए अथवा लोकप्रियताके लिए, अथवा अपना सञ्चलन बढानेके लिए उचित-अनुचित तथा जनताके हिताहितको भूलकर केवल उन बातों-को ले उडते है जिन्हे वे समझते है कि जनता पसन्द करेगी वे वस्तुतः न केवल आदर्शभ्रष्ट होते है बल्कि समाजके लिए अभिशाप हो जा सकते है। यह होगा

अपनी शक्तिका भयानक दुरुपयोग ! इंग्लैण्ड और अमेरिकाके कुछ पत्रोंमें यह प्रवृत्ति उदीयमान होती दिखाई दे रही है। इसके फलस्वरूप कुछ पत्र अपनी लोकप्रियता भले ही बढ़ा लें और लाखों प्रतियाँ बेचकर पैसा भी कमाने की चेष्टा कर लें पर उनके इस कृत्यसे समाचारपत्रोंका प्रभाव धीरे-धीरे घटने लगा है। उन देशोंके विद्वान् यह स्वीकार करने लगे हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी में पत्रोंका जो प्रभाव था उसमे उस समयकी अपेक्षा आज कमी होने लगी है।

गम्भीरता, पथप्रदर्शन और गुरुताका पद त्यागकर जब केवल मनोरञ्जन का साधन बननेका आदर्श अपना लिया जायगा तो फिर पत्रोंका स्थान किसी नाटक, सिनेमा अथवा खेल-कूदके आयोजनके सिवा दूसरा क्या रह जायगा ? यह है खतरा जिससे समाचारपत्रोंको अपनेको बचाना होगा। सौभाग्यकी बात है कि इस प्रवृत्तिके प्रतीक पत्रोंकी संख्या यूरोप और अमेरिका तथा इंग्लैण्डमे भी बहुत अधिक नहीं है। भारतके सम्बन्धमें तो कहा जा सकता है कि यहाँके पत्रोंमे और चाहे जो त्रुटियाँ हों पर इस दोषसे वे प्रायः अछूते हैं। उपर्युक्त देशोके कुछ पत्रोंमें यह प्रवृत्ति अवश्य उदग्र हुई हैं पर उसका भी विशेष कारण है जिसकी चर्चा आगे की जायगी। यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस दोषके थोडा-बहुत होते हुए भी आज अधिकतर समाचारपत्र अपने पदपर स्थित है और उनका प्रभाव तथा स्थान जीवनमें अक्षुण्ण है। प्रसिद्ध कवि किपलिङ्गने लिखा है कि बडे-बड़े राजसिंहासन और शक्तिशाली वर्ग यह जानते हैं और अनुभव करते है कि दम्भ और अभिमान और दर्पके जितने बच्चे हैं उन सबका शासक और प्रभु एकमात्र प्रेस है। आज उसे दम्भियोंकी बुद्धि ठिकाने करनेको और प्रमादियोंको होश प्रदान करनेको जीवित रहना है। निर्बलोंकी रक्षा करनेके लिए और अन्धविश्वासियोंकी आँखें खोलनेके लिए, दकियानूसोंको नवज्ञान प्रदान करनेके लिए और निर्भय होकर सत्यका समर्थन तथा अन्यायका प्रतिरोध करनेके लिए, कायरोंको बल और अज्ञानियोंको जीवनके हर पहलूमे नवज्योति प्रदान करनेके लिए समाचारपत्रोंको जीवित रहना है। जब तक वह इस पुनीत कर्तव्यकी पूर्ति करता रहेगा तब तक उसकी शक्ति और प्रभावको कोई आघात नहीं पहुँचा सकता। जिस दिन वह अपने इस पुनीत पथसे विरत होगा उस दिन उसके मिट जानेमें ही जगत्का कल्याण होगा।

पत्रोंकी रचना और प्रकाशन

किसी भी बडे नगरमें प्रातःकाल बाइसिकिलपर दौड़ते हुए अखबारवालेको आप देखेंगे। अपने समाचारपत्रका नाम ले लेकर वह बेसुरे ढङ्गसे चिल्लाता हुआ लोगोंकी भोरकी मीठी नींदका नाश करनेमें सङ्कोच नहीं करता। घर-घर एक प्रति देता हुआ वह तेजीसे निकलता चला जाता है। बाजारोंके चौराहोंपर, रेलवे स्टेशनोंपर, आप गट्ठरके गट्ठर अखबार देखेंगे और देखेंगे कि आने-जानेवाले प्रायः सभी अखबार खरीदनेके लिए उधर लपकते हैं। जहाँ सायंकाल पत्रोंके संस्करण निकलते हैं वहाँ हाकरोंका दौड़ना उसी भाँति दिखाई देता है। दूकानोंपर बैठे हुए दूकानदार उत्सुकतापूर्वक उनकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। लाखों-करोड़ों आदमी प्रतिदिन समाचारपत्र पढते हैं। लन्दनमें सब पत्रोंको मिलाकर करीब सवा करोड प्रतियाँ प्रतिदिन खप जाती हैं। अमेरिकामें प्रायः दो करोडसे अधिक कापियाँ रोज छपती हैं, बिकती हैं और रद्दीखानेमें फेंक दी जाती है। लन्दनका 'डेलीमेल' प्रतिदिन १५ लाख प्रतियाँ बेच डालता है। 'डेली एक्सप्रेस' और 'डेली हेरल्ड' आदि समाचारपत्रोंकी बीस-बीस लाख कापियाँ-तक प्रतिदिन खरीदी जाती हैं। 'टाइम्स' ऐसा गम्भीर पत्र भी प्रतिदिन २ लाख प्रतियोंसे कम नहीं बिकता। भारतमें साक्षरताके अभावके कारण किसी भी देशी-भाषा या विदेशी भाषाका पत्र ऐसा नहीं है जिसका सञ्चलन सत्तर-पचहत्तर हजारसे अधिक हो। इतनी कापियाँ भी दो ही तीन पत्र ऐसे हैं जो बेच पाते हैं। अधिकतर संवादपत्रोंकी चार-छः हजार प्रतियाँ ही निकलती हैं। जो दस-बीस हजारतक अपना नम्बर पहुँचा देते हैं वे सफल माने जाते हैं। फिर भी सब मिलाकर लाखों प्रतियाँ प्रतिदिन यहाँ भी बिक ही जाती हैं।

हमारे प्रतिदिनके जीवनसे संवादपत्रोंका निकट सम्बन्ध हो गया है। कुछ उससे समय बितानेका काम लेते हैं, कुछ उसे मनोरञ्जनका साधन समझते हैं, कुछ ज्ञानके लिए पढते हैं और अधिकतर समाचारकी जिज्ञासाकी पूर्ति करते हैं। बहुतसे लोग व्यापार-व्यवसायके लिए बाजार-दर और चीजोंका

भाव जाननेके लिए, खेल कूदका हाल समझनेके लिए तथा कहानी-किस्सा और सनसनीदार बातोंको पढनेके लिए और कभी-कभी कुछ लोग नये-नये विज्ञापन देखनेके लिए भी पत्रोंको खरीदते रहते हैं। पर जो पदार्थ करोड़ों नरनारियोंके हाथोंमें प्रतिदिन पहुँचता है, जो उनके जीवनका ही एक अङ्ग हो गया है, जो तरह-तरहके लोगोंकी तरह-तरहकी प्रवृत्ति और रुचिके अनुकूल उनकी माँग पूरी करता रहता है उसका निर्माण कैसे होता है इसे कदाचित् थोडेसे लोग भी न जानते होंगे। नया-नया कलेवर धारण करके हमारा समाचारपत्र प्रतिदिन सेवामें उपस्थित होता है, दूर-दूरकी खबरें लिये आता है, सारे जगत्को चित्रित करके सामने रख देता है; पर हम यह कहाँ जानते हैं कि उसका उत्पादन कैसे होता है, कैसे हजारों मील दूरके संवाद प्रतिदिन पङ्क्तिबद्ध हो जाते हैं, कैसे नये-नये उपादानों और आभूषणोंसे आभूषित होकर वह सम्मुख उपस्थित होता है। किन लोगोंकी तपस्या और अध्यवसायसे उसका निर्माण होता है और इन स्तम्भोंके पीछे कौनसा रहस्य छिपा हुआ है इसपर प्रकाश डाले बिना समाचारपत्रों और पत्रकारोंके सम्बन्धमें कुछ कहना अधूरा ही रह जायगा। यह आवश्यक है कि जो नित्यप्रति संवादपत्रोंका पारायण करते हैं इस कहानीको सुन लें। जो पत्रकारीको अपना पेशा बनाना चाहते है उनके लिए तो और भी आवश्यक है कि उसकी रूपरेखाका दर्शन करलें। जब सारी दुनिया सुखकी नींद लेती रहती है और दूसरे लोग दिन भरके आयासके बाद अपने प्रियजनोंके संसर्गमें विश्रामका आनन्द लूटते रहते हैं उस समय किसी भवनके कमरोंमें पत्रका निर्माण करनेवाले जीवन और जगत्की समीक्षा करते हुए दिक् और कालसे गम्भीर युद्ध ठाने रहते हैं। दुनिया उनके प्रयत्नको नही देखती पर वे उन लोगोंके लिए सुख और मनोरञ्जन तथा ज्ञान प्रदान करनेवाले पदार्थका निर्माण करते रहते हैं जो सारी रातके विश्रामके बाद सजीव होकर उठते ही चायके प्यालेके साथ-साथ अपने पत्रको भी अपने हाथमे पहुँचा हुआ पाना चाहते हैं।

पर जब यह पत्र आपके हाथोंमें पहुँचता है तो आपमेसे अधिकतर पाठक नाक-भौं सिकोड़े बिना सन्तोषका अनुभव नहीं करते। कोई कह देगा कि 'आज कल पत्रोंमें कुछ नही रहता', किसीको कोई लेख पसन्द न आयेगा और

किसीको पत्रकारोंको कोसनेमें ही आनन्द मिलेगा। यदि प्रूफ-रीडिङ्गमें कोई गलती रह गयी है, अथवा किसी प्रकार कोई भूल बाकी बच गयी है तो तत्काल फैसला कर दिया जायगा कि आजकलके पत्रकार निकम्मे, अयोग्य और मूर्ख होते हैं। सैकड़ों मील दूरसे, किसी जिलेके संवाददाता द्वारा भेजी गयी किसी रिपोर्टसे, जिसके रहस्यका पता सम्पादकीय विभागके कमरेमें बैठे हुए और कामके बोझसे पिसते हुए बिचारे सहायक सम्पादकको नहीं हो सकता, अगर कोई ऐसी गन्ध भी निकलती हो जिसे आप अपनी शानके खिलाफ समझते हों, तो दूसरे दिन उस पत्रपर आप वज्रप्रहार करनेको तैयार हो जाते है। सम्पादक और मुद्रक जेलकी हवा खाये अथवा हजारों रुपया हर्जाना अदा करके आपको शान्ति प्रदान करे। विचित्र कठिनाइयों, परिस्थितियोंके बीच अथक परिश्रम करके जो मण्डली आपके मनोरञ्जनके लिए प्रातःसायं आपके सामने अपनी भेंट लिये उपस्थित रहती है, उसपर क्षणभरके लिए भी उदारतापूर्ण दृष्टिपात करनेके लिए आप तैयार नहीं रहते। पत्र सबको चाहिये। सरकारको उसका समर्थन चाहिये, जनताको ज्ञान चाहिये, विलासियोंको मनोरञ्जन चाहिये, व्यवसायियोंको प्रकाशन चाहिये, राजनीतिज्ञोंको अपने भाषणोंकी रिपोर्टिङ्ग चाहिये, व्यापारियोंको बाजार-भाव चाहिये, स्त्रियोंको घर-गृहस्थी और अपने फैशन तथा शृङ्गार और आभूषणके सम्बन्धमें आधुनिक और नयी परिपाटियोंका पता चाहिये पर उसे उत्पन्न करनेवालोंपर मौके-बे-मौके आघात करनेमें न सरकार चूकती है, न राजनीतिज्ञ, न व्यवसायी और न जनता।

सेवा-धर्म यों ही परम गहन है, क्योंकि अपने एक-दो प्रभुओंको भी प्रसन्न रखना दुष्कर हुआ करता है। फिर जिसके लाखों-करोड़ों मालिक हों, जो विभिन्न मत, अभिरुचि और बहुधा परस्पर विरोधी हित रखनेवाले हों उन सबको सन्तुष्ट करना कितना कठिन और असम्भवप्राय काम होता होगा इसकी कल्पना कर लेना सरल है। फिर भी संवादपत्र निकाले जाते हैं और जगत्में यह काम इतने व्यापक रूपमें फैला हुआ है कि उसकी गिनती एक प्रकारसे बड़े व्यवसायोंमें होने लगी है। यदि विचार करके देखिये तो उसके अनेक विभागोंमें मिलाकर करोड़ों नरनारी पत्र-निर्माण-कार्यमें लगे हुए हैं। सम्पादकीय विभाग, व्यवस्थापन, प्रूफ-संशोधन, कम्पोजिङ्ग, प्रेस-मैन, हाकर,

पत्र-वितरण करनेवाली अनेक एजेंसियाँ, दफ्तरके छोटे-मोटे चपरासी और कर्मचारी, समाचार-सङ्कलन करनेवाले रिपोर्टर, समाचार संग्रह करनेवाली एजेंसियोंके रिपोर्टर, समाचार-वितरण-कार्यालयके कर्मचारी, विशेष संवाद-दाता, स्वतन्त्र पत्रकार, विशेष विषयोंके विशेषज्ञ लेखक, आदि विभिन्न विभागोंमें काम करनेवाले करोड़ों नर नारी धरातलपर फैले हुए हैं और इस महान् उद्योगका परिचालन कर रहे हैं। अप्रत्यक्ष रूपसे इनमें सहायता देने-वाले सम्बद्ध लोगोंको जोड़ लिया जाय तो यह संख्या न जाने कितनी बढ़ जायगी। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ जो अखबार निकालनेके लिए पूंजी लगाती हैं उनके हिस्सेदारोंको, विज्ञापनदाता व्यवसायियोंको, अखबारी कागज बनाने-वाली मिलोंको, तार और टेलिफोन तथा डाक विभागको, छापनेकी तरह-तरहकी मशीन और कल-पुरजे बनानेवाले कारखानोंको जोड़ लें तो पत्रोत्पादनमें लगे हुए तथा उनके सहायकोंका विस्तार अकल्पित ढङ्गसे बढ़ जाता है। आज इन सबके सहयोग, सहायता तथा सहोद्योगके फलस्वरूप वह पदार्थ आपके सामने प्रातः-सायं उपस्थित हो पाता है जिसे आप समाचारपत्र कहते हैं और जिसे आजकलकी चलती भाषामें 'प्रेस' कहा जाता है।

ये सब मिलकर किस प्रकार उसका निर्माण करते हैं इसकी ओर क्या कभी आपने क्षण भरके लिए भी विचार-दृष्टि फेरी है? क्या कभी आपने सोचा है कि इन छपी हुई पंक्तियोंके पीछे कौनसी दुनिया और कौन-सा रहस्य छिपा हुआ है और कितने लोगोंने अपनी नींद और अपना सुख तथा अपने जीवनकी सारी कामना इस कार्यकी पूर्तिके लिए होम कर रखी है? इस कहानीको कहने-के पूर्व इस प्रश्नका उत्तर दे देना आवश्यक है कि समाचारपत्र वास्तवमें है क्या? साधारणतः अधिकतर पाठक दुनियाके, अपने पास-पड़ोसके, अपने देशके संवाद जाननेके प्रयोजनसे ही समाचारपत्रोंकी आकांक्षा किया करते हैं। उनकी जिज्ञासा यह माँग करती है कि उन्हें संवाद मिले और समाचारपत्र उसी माँगकी पूर्ति करनेके लक्ष्यसे प्रकाशित होते हैं। परन्तु इसके साथही यह भी स्मरण रखनेकी बात है कि समाचारपत्रोंके सभी पाठक किसी एक ही प्रकारका समाचार जानना नहीं चाहते। यह समझना भूल है कि किसी बड़े नेताका व्याख्यान अथवा व्यवस्थापक सभाओंका विवरण अथवा राष्ट्रीय महासभाकी

रिपोर्टमात्र जाननेकी इच्छासे समाचारपत्रोंकी खपत होती है। वास्तवमें मनुष्यको अपने जीवनके तथा जगत्के प्रत्येक पहलूके सम्बन्धमें जाननेका कुतूहल होता है और चाहता है कि सबकी जानकारी इन पत्रोंसे हो जाय ; पर उसका सन्तोष इतनेसे भी नहीं होता। वह यह भी चाहता है कि संसारकी असाधारण तथा जीवनकी विभिन्न घटनाओंपर, जिन्हें संवादपत्र प्रकाशित करते हैं, टीका की जाय, उनकी व्याख्या हो और न केवल विस्तारसे अर्थ समझाया जाय बल्कि यह भी बताया जाय कि उनके सम्बन्धमें पाठक किस प्रकारके भाव और विचारको ग्रहण करे। इस प्रकार यदि समाचारपत्रकी व्याख्या की जाय तो कहना होगा कि उसका लक्ष्य जनताको संवाद देना तथा संवादोंकी समीचीन व्याख्या करना और उसपर मत-प्रकाश करना है। जिन संवादोंका सम्बन्ध सार्वजनिक जीवनसे विशेषरूपसे है उनकी ओर जनताको कौनसा भाव तथा कौनसी दृष्टि ग्रहण करनी चाहिये यह बताना भी उसका काम है और जो यह कार्य करे वही समाचारपत्र कहा जायगा। साधारणतः समाचारपत्र दैनिक होते हैं और कुछ साप्ताहिक भी होते है जो सप्ताह भरके संवाद सङ्कलित करके निकलते हैं। अवश्य ही साप्ताहिक पत्रोमें सब नहीं किन्तु सप्ताह भरके मुख्य-मुख्य समाचार ही प्रकाशित किये जाते हैं। साप्ताहिकके बाद जो पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाएँ होतो है वे समाचारपत्र नहीं कही जातीं और न संवाद देना उनका मुख्य काम होता है। वे विविध विषयोंके लेख आदिका प्रकाशन करती हैं और उसीके लिए उनका उपयोग किया जाता है। व्यावसायिक ढङ्गसे कहें तो कह सकते हैं कि संवादपत्रोका उत्पादन एक व्यवसाय है जो समाचार तथा तत्सम्बन्धी उचित मतकी बिक्री करके अपना जीवन व्यतीत करता है।

यह व्यवसाय समाजके हितकी दृष्टिसे अपना महत्त्व रखता है और यदि उत्तरदायित्वके बोध और ईमानदारीके साथ प्रेस अपने कर्तव्यकी पूर्ति करे तो उसका कार्य अत्यन्त आदरणीय और पवित्र समझा जाता है। इसपर किसी राष्ट्रके राष्ट्रका हित और भविष्य निर्भर कर सकता है। भूतलपर क्या हो रहा है, जीवन किधर प्रवाहित है और भविष्यमें क्या हो सकता है यह बताना समाचारपत्रका काम है जो स्वयमेव किसी भी प्रकारकी सार्वजनिक सेवासे कम नहीं है; पर जब हम समाचारपत्रकी व्याख्या करते हैं तो दूसरा प्रश्न यह उठता है कि

समाचार किसे कहते हैं ? किसी पत्रकारके लिए तो इस प्रश्नका उत्तर अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि उसीपर उसका समाचारपत्र, उसकी कला और उसका सारा भविष्य निर्भर करता है। दुनिया तो एक प्रकारका विशाल अजायबघर है जिसमें कुछ न कुछ साधारण और असाधारण घटनाएँ निरन्तर घटती ही रहती हैं। पर उन समस्त घटनावलियोंको न प्रकाशित किया जाता है और न किया जा सकता है। प्रकाशनके लिए वे ही बातें चुनी जाती हैं जिनका समाचारकी दृष्टिसे मूल्य होता है, पर मूल्याङ्कन तभी सम्भव है जब हम पहले यह जान लें कि समाचार कहते किसे हैं।

देखनेमें यह प्रश्न अत्यन्त सरल ज्ञात होता है पर वास्तवमें उसका उत्तर देना बडा कठिन है। यदि कोई पत्रकार उपर्युक्त प्रश्नके सम्बन्धमे अपने समस्त पाठकोको अपने उत्तरसे सन्तुष्ट कर सके तो सचमुच उसका स्थान पत्रकारीके क्षेत्रमे अमूल्य और अद्वितीय मानना चाहिये। पर आजतक दुर्भाग्यसे कोई ऐसा व्यक्ति न उत्पन्न हुआ और न ऐसी एक व्याख्या की जा सकी जिसके द्वारा समाचारका निश्चित स्वरूप बताया जा सके। कारण यह है कि समाचारका मूल्य सापेक्ष है। उसका समाचारत्व अनेक और असंख्य बातोंपर निर्भर करता है। जो बात काशीकी जनताके लिए समाचारका मूल्य रखती है सम्भवतः उसका कोई महत्त्व बम्बईवालोंके लिए नही होगा, जो किसी मुसलमानके लिए महत्त्व रखता है उसमें हिन्दूको कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती। जिसके जाननेके लिए व्यापारी उतावला रहता है उस स्तम्भकी ओर हम आँख उठाकर भी देखना समयका दुरुपयोग करना समझेंगे। इस स्थितिमें समाचारत्वकी ऐसी व्याख्या करना जिसे सब स्वीकार करलें क्या असम्भव नही है ? फिर भी पत्रकारको इस कठिनाईसे पार निकलनेका रास्ता ढूँढना ही पड़ता है। उसे एक कसौटी निश्चित करनी ही होती है जिसके आधारपर स्थूलरूपसे संवादके सवादत्वकी परीक्षा की जाती है यद्यपि उसके साथ-साथ विभिन्न लोगोंकी रुचि और रस तथा आवश्यकताको देखते हुए तरह-तरहकी बातोका समावेश अपने पत्रमें करना पडता है।

साधारणतः किसी सवादका समाचारत्व उसकी असाधारणतामें माना जा सकता है। जो बातें प्रतिदिन होती है और साधारण हैं उनमे समाचारत्व

नहीं दिखाई देता। एक बार किसी पत्रकारने समाचारकी व्याख्या करते हुए कहा कि 'बुराईमे समाचार हैं'। आप ईमानदारीसे काम करते हैं इसमें समाचारत्व कुछ नहीं है पर यदि चोरीमें पकड़ जायँ तो वह समाचार हो जायगा। पत्रकारके कहनेका अर्थ यह था कि बुराईमें कुछ न कुछ असाधारणता, कुछ नवीनता, कुछ सनसनी और लोगोंके लिए कुछ कुतूहल रहता है अतः उसका समाचारकी दृष्टिसे मूल्य है। एक अमेरिकन पत्रकारने समाचारकी व्याख्या करते हुए कहा था कि कुत्तेने आदमीको काट खाया, यह समाचार नहीं है पर यदि आदमी कुत्तेको काट खाये तो उसे समाचार कह सकते हैं। तात्पर्य यह कि जो बात असाधारण हो, जिसमे नवीनता हो, जो तत्कालकी घटी घटना हो, जिसमें ताजगी हो और जो लोगोंके हृदयमे कुतूहल उत्पन्न करता हो, उसमें समाचारत्वका गुण माना जा सकता है। जो घटना अधिकसे अधिक लोगोंको आकर्षित करती हो, अपने प्रति अधिकसे अधिक पाठकोंकी उत्सुकता, कुतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न करती हो और लोगोकी जिज्ञासा-प्रवृत्तिकी पूरक हो वह समाचार कही जा सकती है। पर इन सबके साथ-साथ समाचारका एक और अति आवश्यक और अनिवार्य गुण है जिसके बिना कोई संवाद समाचार हो ही नहीं सकता। गुण हो सत्यताका। सङ्कलित तथा प्रकाशित घटना सत्य हो और केवल तथा विशुद्ध सत्य हो। जो संवादपत्र सत्यको छिपाते है अथवा झूठ और निराधार बातोंको सनसनीदार शीर्षकोंके साथ प्रकाशित करते हैं वे अनर्थ और अपराध करते है। बहुधा लोकप्रियताके लिए, अपनी बिक्री और सञ्चलन बढ़ानेके लिए ऐसी नीति बरती जाती है। यह पत्रकला नहीं है और न समाचारपत्रका आदर्श इसे स्वीकार करता है। जो वास्तविक पत्रकार है, वे इस प्रवाहका नियमन करनेकी चेष्टा किया करते हैं। वे वही संवाद प्रकाशित करते है जो उपर्युक्त गुणोंकी कसौटीपर अपने संवादत्वको सिद्ध कर देता है। वे मत प्रकट करते है जिससे जनता घटनाओंका तथ्य समझ सके। वे उन लोगोंके लिए जो बौद्धिक दृष्टिसे बालक हैं सीधे और सरल प्रकारसे विविध विषयों, घटनाओं तथा प्रवाहोंके सम्बन्धमे ज्ञान प्रदान करते हैं। साथ-साथ वे मनोरञ्जनका साधन भी प्रस्तुत करते हैं। काव्य और सङ्गीत, थियेटर और सिनेमा, चित्रकला और मूर्तिकला, उपन्यास और नाटक, व्यवसाय और अर्थ-नीति,

राजनीति और परराष्ट्रनीति आदि सभी छोटे वडे प्रश्नोंके सम्बन्धमें तथा उनकी आधुनिक धाराके विषयमे विवेचनात्मक और आलोचनात्मक ढङ्गसे लिखे लेखोंके द्वारा मनुष्यको अनेक प्रकारकी रुचि और रसका न केवल शमन करते हैं प्रत्युत लोगोंको उनके सम्बन्धमें वोध भी प्रदान करते हैं।

हम समझते हैं कि उपर्युक्त पंक्तियोंमें समाचारपत्र क्या है और समाचार किसे कह सकते हैं, इस प्रश्नका उत्तर संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूपसे पाठकोंको मिल गया होगा। इस उत्तरसे ही समाचारपत्रोंके निर्माण-कार्यकी जटिलताका वोध भी हो गया होगा। जिस विषयके इतने विविध अङ्ग हों, जो दिन-प्रतिदिन सारे जगत्की नयी और समाचारत्वके गुणसे ओतप्रोत घटनाओंको लेकर पाठकोंके सम्मुख आता हो, जिन्हें उसे न केवल प्रकाशित करना है अपितु उनपर मत भी प्रकट करना हो, जो मनोरञ्जक होनेके साथ-साथ ज्ञानका दाता और पथका प्रदर्शक भी हो, जो उपदेशक होते हुए खिलौना भी बना हुआ हो, व्यवसायके साथ-साथ समाजसेवा जिसका मुख्य लक्ष्य हो, कुतूहलजनक और सनसनीदार होनेके साथ-साथ सत्यका ही प्रचारक और आराधक हो वह अपने इन परस्पर विरोधी गुणोंके कारण कितना जटिल होगा इसे क्या वतानेकी जरूरत है? पर उसकी जटिलता उसके स्वरूपमें ही समाप्त नहीं हो जाती, उसके उत्पादनका ढङ्ग और भी अधिक उलझा हुआ और टेढा है। स्पष्ट है कि किसी भी आधुनिक समाचारपत्रका प्रथम कर्तव्य यह है कि वह अपने पाठकोंको प्रत्येक प्रकारके सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत जीवनकी गति-विधिसे दिन-प्रतिदिन परिचित कराये, जगत्में वहनेवाले क्षण-प्रतिक्षणके प्रवाहकी रूपरेखा उनके सामने उपस्थित करे। यह काम इतना व्यापक और विशाल है कि सम्पादकीय विभागके थोडेसे व्यक्तियोंसे ही उसकी पूर्ति नहीं की जा सकती। सम्पादकीय विभाग कार्यालयमें वैठकर काम कर लेता है पर भूमण्डल भरके समाचारोंका सङ्कलन कर लेना उसके वूतेकी वात नहीं है। फिर समाचारकी अनेक विशेषताओंमें उसका ताजा होना भी एक विशेषता है जिसकी ओर अत्यधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता होती है। दैनिक पत्रोंमें प्रकाशित समाचार आजका हो, अभीका हो, और पत्रके प्रकाशित होनेके समयतकका हो। सभी समाचारपत्रोंकी यही चेष्टा होती है कि वे अपना कलेवर निर्मित होने-

तकके संवादको अपने 'छपते-छपते' स्तम्भमें स्थान दे सकें। सम्भव है कि कुछ समाचार ऐसे भी हों जो कलके हों और जिन्हें प्रकाशित कर देना आवश्यक हो, पर इससे अधिक पुरानी बातें किसी कामकी नहीं रह जातीं। पुराने तथा दूसरे पत्रोंमें पहले प्रकाशित हो गये समाचारको मरा हुआ संवाद समझिये जिसको प्रकाशित करके संवादपत्र अपनेको भी निष्प्राण ही सिद्ध करेगा।

फलतः ताजा खबरोंके सङ्कलनके लिए विशेष आयोजन करना पड़ता है। जो पत्र पर्याप्त धन व्यय कर सकते हैं, समाचारोंके सङ्कलनके लिए विराट प्रबन्ध करते हैं वे स्थानीय संवाददाता नियुक्त करते हैं जो पास-पड़ोसका समाचार संग्रह करता है। फिर विभिन्न जिलोंमें नियुक्त सवाददाता वहाँ-वहाँके समाचार भेजते हैं। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय राजधानियोंमें विशेष संवाददाता नियुक्त किये जाते हैं जो सरकारी और गैर-सरकारी ऐसी अनेक बातोंकी गहरी छानबीन तथा खोज करते हैं जो परदेके पीछे घटती रहती हैं। विदेशोंका समाचार देनेके लिए विभिन्न देशोंमें अनुभवी, तीव्र बुद्धिवाले, चतुर तथा संवाद-सङ्कलनकी कलामें पारङ्गत संवाददाता नियुक्त किये जाते हैं। इन सबके सिवा अदालतोंकी रिपोर्टिंगके लिए, पुलिसके मामलोंके लिए, अपराधोंके लिए, व्यवस्थापक सभाकी काररवाइयोंके लिए, खेलकूद तथा तरह-तरहके मैचोंके लिए, सिनेमा और थियेटरके लिए, व्यापार और व्यवसायके लिए बहुधा अलग-अलग संवाददाताओंकी नियुक्ति भी की जाती है जो विषय-विशेषके समाचारों तथा उनके विवरण आदि भेजा करते हैं। इस प्रकार धनी और श्रीसम्पन्न संवादपत्रोंके संवाददाताओंका जाल-सा सारे जगत्में बिछा हुआ होता है। पर इस व्यापक सङ्घटनका बोझ सब नहीं उठा सकते। साधारण समाचार-पत्रोंको अधिकतर उन सूत्रोंपर निर्भर करना पड़ता है जिन्हें हम 'न्यूज एजेन्सियाँ' या 'समाचारकी एजेन्सियाँ' कहते हैं। इन एजेन्सियोंका काम ही यह है कि वे संसार भरके समाचारोंका संग्रह और वितरण किया करती हैं। यद्यपि इन एजेन्सियोंपर अधिकतर पत्र निर्भर करते हैं तथापि छोटे-मोटे संवादपत्र भी थोड़े-बहुत संवाददाता रखते ही हैं। स्थानीय अथवा कुछ मुख्य जिलोंमें संवाददाताओंकी नियुक्ति किये बिना उनका काम नहीं चलता। पत्रोंकी पार-

पारस्परिक स्पर्द्धासे पार होनेके लिए सभीको अपने पत्रके लिए कुछ न कुछ नवीनता खोज निकालनी होती है। उपर्युक्त एजेन्सियोंके सवाद तो सभी पत्र समान रूपसे छापते हैं, फिर नवीनता कहाँ रह सकती है ? इसके लिए अपने संवाददाताओंपर भरोसा करना अनिवार्य होता है।

'समाचार एजेन्सियों'की स्थापनाने पत्रोंकी बडी भारी सहायता की है। यदि वे न होतीं तो उन संवादपत्रोंका जीवित रहना असम्भव होता जो देश-विदेशमें अपने संवाददाताओंकी सेना खडी करनेकी शक्ति नहीं रखते। फलत. इन एजेन्सियोंका आधुनिक पत्रोंके निर्माणमें बडा भारी हाथ है। उनकी स्थापना करनेकी कल्पना तथा विचारका उद्रेक कैसे हुआ होगा इसपर विद्वानोंने बहुत कुछ सोचा है। कहा जाता है कि इस कल्पनाका बीज यूरोपसे नहीं बल्कि पूर्वसे आया है जहाँ बहुत पुरातन कालसे बाजारोंमें समाचारोंका ढेर पहुँचता था और वहाँसे दूर-दूर तक विवरण होता था। एक समय आया जब पूर्वके व्यापारियोंका काफिला मध्य एशियाको पार करता हुआ मध्य यूरोपके प्रमुख नगरों तथा बाजारोंमें प्रविष्ट होने लगा; उस समय वहाँ भी इसी प्रकार उनके द्वारा विभिन्न स्थानोंके समाचार पहुँचने लगे। चौदहवीं शतीमें आग्सबर्गमें फुग्गर नामक एक व्यापारी था जो यूरोपके बडे-बडे नामी व्यापारियोंमें प्रमुख माना जाता था। फुग्गरका परिवार व्यापारके साथ-साथ बाजारोंसे विभिन्न देशोंके विभिन्न प्रकारके समाचार भी सग्रह करता और सारे यूरोपमें फैलाता। सोलहवीं शतीमें फुग्गर परिवार मध्य यूरोपका सर्वोत्कृष्ट व्यापारी-परिवार बन गया था जो पूर्व और पश्चिमके व्यापारको जोडनेवाली कडीके रूपमें माना जाता था। व्यापारकी सफलताके लिए इन लोगोंने विभिन्न देशोंका समाचार संग्रह करनेके लिए विशेष आयोजन किया था। देश-विदेशके समाचारोंसे पूर्ण डाक उनके पास आया करती थी जिसके फलस्वरूप वे अपने प्रतिद्वन्द्वियोंकी अपेक्षा बाजारकी गतिको कहीं अधिक विस्तार और शीघ्रतासे समझनेमें सफल होते थे। व्यापारमें उनकी सफलताका मुख्य रहस्य यही था।

१९ वीं शतीमे फ्रांकफर्ट, वियना, पेरिस और लन्दनमें व्यापार करनेवाले राथचाइल्ड परिवारने भी इसी पद्धतिसे धन कमाया। कहा जाता है कि लन्दनके राथचाइल्डोंको वाटरलूमें नेपोलियनकी पराजय और विलिङ्गटनकी जीतका

समाचार अपने इसी प्रवन्धके कारण सबसे पहले मिल गया था जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने अपने व्यापारमें बेहद मुनाफा कमाया। स्मरण रखनेकी बात है कि उस समय तक तार भेजनेका आधुनिक तरीका नहीं निकला था। राथचाइल्ड परिवारने अपनी डाकके लिए विशेष आयोजन किया था जिसमें सबसे बडा भाग उड़ाके कबूतरोंका था जो सैकड़ों मीलकी उडान लेकर एक स्थानसे दूसरे स्थानतक समाचार ले जाया करते थे। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें जर्मनीके केसल नामक नगरमें जूलियस रायटर नामक एक यहूदी एक बैङ्कमें क्लर्क था। इस कल्पनाशील व्यक्तिने अपने कामके सिलसिलेमें यह देखा कि जर्मनीके समस्त व्यापारी अपने व्यापारके लिए पेरिसकी बाजार-दरपर निर्भर रहते हैं जिसकी सूचना ब्रूसेल्ससे डाकके जरिए आती है। उस समय यह डाक घोड़ागाडीसे आया-जाया करती थी जिसमें काफी समय लग जाता था। तार भेजनेका आजकलका तरीका यद्यपि चल पडा था पर अभी वह उन्नत दशामें नहीं पहुँचा था। फरासीसी सरकारकी तारकी व्यवस्था उस समय ब्रूसेल्सकी सीमातक पहुँचकर समाप्त हो जाती थी और जर्मन तारविभाग एक्सलाचापेलसे आरम्भ होता था। रायटरने ब्रूसेल्स और एक्सलाचापेलके बीच कबूतर-डाक-पद्धति आरम्भ की जिसके फलस्वरूप पेरिसका बाजारभाव समस्त जर्मन व्यापारिक नगरोंमें पूर्वकी अपेक्षा कई घण्टे पहले पहुँचने लगा।

रायटरने पेरिसके बाजारभावको पहले इस प्रकार संग्रह करनेका काम केवल व्यापारिक और व्यावसायिक दृष्टिसे आरम्भ किया। समाचार-सङ्कलनका काम उसने अभी आरम्भ नहीं किया था। इस नये आयोजनकी सफलताने उसे साहस प्रदान किया। उसने अपना काम बढानेका निश्चय किया पर जर्मनीकी राजनीतिक स्थिति उसके अनुकूल न थी। सारा देश छोटी-छोटी रियासतोंमें बँटा हुआ था अतः रायटर लन्दन आया और वहाँ विभिन्न देशोंकी बाजार-दरोंके सङ्कलनका काम करता रहा। पर अब उसे एक बात और सूझी। जिस प्रकार बाजार-भाव व्यापारियोंके लिए संग्रह किया जाता है उसी प्रकार समाचारपत्रोंके लिए संवादोंका संग्रह क्यों न किया जाय? फलतः रायटरने संवादसङ्कलनके लिए अपनी समाचार एजेंसी कायम की। इसी समय जर्मनीमें एक दूसरे यहूदी वुल्फने 'वुल्फ ब्यूरो' तथा फ्रांसमें हावास नामक एक और यहूदीने

हावास एजेंसीकी स्थापना की। सन् १८५९ में इन तीनों एजेन्सियोंने आपसमें एक इकरारनामा किया जिसके अनुसार वुल्फ और हावासने सारे यूरोपके संवाद संग्रह करनेका भार उठाया और रायटरको सारा ब्रिटिश साम्राज्य तथा शेष भूमण्डल दिया गया। इस इकरारनामेके अनुसार रायटर यूरोपके सम्बन्धमें उपर्युक्त एजेंसियों द्वारा सङ्कलित समाचार लेकर वितरित करता और वे दोनों एजेंसियाँ शेष जगत्का समाचार रायटरसे लेकर अपने ग्राहकोंको प्रदान करतीं। इस प्रकार रायटरने अपनी एजेंसीका सूत्रपात किया जो आज विशाल जगत्-व्यापी सङ्गठनके रूपमें वर्तमान है। १८६५ ई० में रायटरने इसे एक लिमिटेड कम्पनीका रूप दे दिया। रायटर और उसके बाद उसके पुत्रने एजेन्सी चलायी पर दोनोंके मरनेके बाद सर रोडिरिक जोन्सने पाँच लाख पाउण्डमें इस कम्पनीको खरीदकर उसे प्राइवेट ट्रस्ट बना दिया। कुछ समय बाद इंग्लैण्डकी एक और न्यूज एजेंसी 'प्रेस असोसिएशन' ने रायटर कम्पनीके प्रबन्धका उत्तरदायित्व उठाया। इस 'प्रेस असोसिएशन' की स्थापना समस्त ब्रिटिश पत्रोंकी सम्मिलित पूँजीसे हुई है। यह असोसिएशन देशके समाचारोंका संग्रह करता है और रायटर विदेशी संवादोंके सङ्कलनका विशेषज्ञ है।

आज भारतमें सारा विदेशी समाचार रायटरके द्वारा ही आता है। देशी समाचार संग्रह करनेके लिए 'असोशियेटेड प्रेस' और बहुत बाद यूनाइटेड प्रेसकी स्थापना हुई है पर विदेशी समाचार तो रायटर ही सङ्कलित करके वितरित करता है। भारतका असोशियेटेड प्रेस तो बहुत कुछ रायटरके अधीन और उससे सम्बद्ध है। रायटरके संवाददाता सारे संसारमें फैले हुए हैं, जगत्के प्रमुख नगरों और राजधानियोंमें हैं तथा आज युद्धस्थलपर भी डटे हुए हैं। वे अपने संवाद सर्वत्रसे एकत्र करके लन्दन भेजते हैं और वहाँसे रायटरका समाचार विभिन्न देशोंके पत्रोंके लिए उन देशोंमें भेजा जाता है। भारतमें लन्दनसे जगत्भरका समाचार रायटरके केन्द्रीय दफ्तरमें आता है और केन्द्र प्रादेशिक दफ्तरोंको भेजता है जहाँसे वे विभिन्न प्रान्तोंके विभिन्न जिलोंको जाते हैं। समाचार भेजनेके लिए ये एजेन्सियाँ असाधारण और अद्भुत वैज्ञानिक तरीकोंसे काम लेने लगी हैं। तारके द्वारा 'प्रेस टेलिग्राम' तो पहलेसे ही भेजे जाते रहे हैं पर अब बिजलीका टेलिप्रिण्टर प्रायः सभी बड़े अखबारोंके

दफ्तरोंमें रायटरकी ओरसे लगा दिया गया है। इस मशीनकी लीला देखते ही बनती है। पहले तार विभागके तारों द्वारा समाचार आते थे और विभिन्न जिलोंके टेलिग्राफ आफिसोंसे समाचारपत्रके कार्यालयोंमें भेज दिये जाते थे। इसमें काफी समय लग जाता था। अब टेलिप्रिण्टर जहाँ कहीं जिस समाचार-पत्रके कार्यालयमें लगा हुआ है वहाँ न्यूज एर्जेसीके आफिससे सीधे तार पहुँच जाते हैं। यह मशीन न केवल उन तारोंको ग्रहण करती है बल्कि उसमें लगा हुआ टाइपराइटर स्वयमेव उन तारोंको टाइप करके दे देता है। न्यूज एजेन्सीके कार्यालयमें बैठा हुआ एक आदमी अपने 'ट्रान्समिटर टेलिप्रिण्टर' (संवाद भेजनेवाले) पर जो तार टाइप करता है वही दूर समाचारपत्रोंके कार्यालयोंमें लगे हुए 'रिसीवर टेलिप्रिण्टर' (ग्रहण करनेवाले) पर आपसे आप छपता जाता है।

इस व्यवस्थासे समय और दूरीकी सारी अड़चनें अद्भुत रूपसे हल हो गयी हैं। आज न्यूयार्कका बाजारभाव न्यूयार्कमें प्रकाशित होनेके डेढ़-दो मिनटके अन्दर बम्बई पहुँच जाता है। इन पङ्क्तियोंके लेखकको भी उस शीघ्रताका थोड़ासा अनुभव है जो संवाद प्राप्त होनेमें दिखाई देती है। उसे स्मरण है कि सन् १९४० में महात्मा गान्धी वाइसरायसे मिलनेके लिए दिल्ली गये थे। गान्धीजी सवा दो बजे दोपहरमें वाइसराय-भवनमें पहुँचे और टेलिप्रिण्टरने २ बजकर २५ मिनटपर काशीमें यह सूचना दे दी कि गान्धीजीकी मोटर ठीक सवा दो बजे वाइसराय-भवनमें प्रविष्ट हुई है। इससे भी बढ़कर एक दूसरी घटनाका स्मरण हो रहा है। लेखकको तिथि और वर्षकी स्मृति तो नहीं है पर इतना याद है कि एक बार हिटलरका कोई भाषण बरलिनमें होनेवाला था। भाषणका जो समय घोषित किया गया था वह भारतमें रातको प्रायः ११॥ बजे पड़ता था। उसका भाषण ९० मिनटतक हुआ, अर्थात् १ बजे भाषण समाप्त हुआ होगा। ठीक तीन बजे काशीमें टेलिप्रिण्टरसे हिटलरके भाषणकी रिपोर्टका पहला अंश हमें मिलने लगा। विचार कीजिये कि डेढ़-दो घण्टेमें वह भाषण बरलिनसे चलकर लन्दन पहुँचा, वहाँसे बम्बई आया, वहाँसे दिल्ली, वहाँसे प्रयाग और प्रयागसे बनारस पहुँच गया। दो घण्टेमें कितने सहस्र मीलकी यात्रा समाप्त करके वह समाचार काशी पहुँचा। दिक्कालकी बाधा

कहाँ रह गयी ? इस प्रकार सवादवितरण करनेवाली एजसियाँ दुनिया भरका समाचार जुटाकर समाचारपत्रोंके कार्यालयोंको भेजती रहती है। अब तो इन टेलिप्रिण्टरोंका स्थान 'डायरेक्ट प्रिण्टर' लेनेवाले हैं जो और भी अधिक अजीब पदार्थ है। कहते है कि 'डायरेक्ट प्रिण्टर' टेलिप्रिण्टरकी तरह एक-एक अक्षर टाइप नहीं करते बल्कि साराका सारा समाचार एकबारगी दे देते हैं। न्यूज एजेंसीके कार्यालयमे पूरे समाचारकी कापी वहाँ लगी मशीनमें डाल दी जायगी और यहाँकी मशीन एक साथ ही छपी-छपायी कापी इधर तैयार करके दे देगी। विज्ञानकी अद्भुत सफलता और असाधारण शक्तिकी सहायतासे समाचार वितरण करनेवाली एजेसियॉ संवाद-सङ्कलन और वितरण करनेमें आश्चर्यजनक रूपसे सफल हो रही हैं। इन एजेंसियोंको उनकी सेवाके लिए हजारों रुपये महीने संवादपत्रोंको देने पडते हैं। पर यह न समझिये कि सवाद-पत्रोंका काम केवल उन्हींसे चल जाता है। जैसा कि कह चुके हैं, पत्र केवल इनपर निर्भर नही करते। बडे पत्रोंके अपने संवाददाता तो व्यापक रूपसे रहते हैं पर छोटोंको भी अधिक नहीं तो थोड़े-बहुतको तो इस काममें अनिवार्यत लगाना ही पडता है।

अब पाठक थोडी देरके लिए समाचारपत्रके कार्यालयकी ओर चलें। कल्पना कीजिये कि न्यूजएजेंसियों, संवाददाताओं और विशेप संवाददाताओं द्वारा भेजे गये समाचारोंका निरन्तर प्रवाह सम्पादकीय विभागके दफ्तरमें हो रहा है। तार, टेलिफोन, टेलिप्रिण्टर, डाक, सबके सब बोझके बोझ संवाद पहुँचाते चले जा रहे है और उनका ढेर लगता चला जा रहा है। समय हो गया है जब सम्पादकीय विभाग अपने काममें जुटने लगा है। प्रातः संस्करण हो चुका है और विशाल मुद्रक यन्त्रोंके चलनेसे कम्पित कार्यालय भवन स्थिरता प्राप्त करके अभी होश भी सँभाल नही पाया है कि सायं संस्करणके लिए सम्पादकोंकी टोली एकत्र होने लगी। संवाद तो एकत्र कर लिया गया पर उसको वह स्वरूप प्रदान करना है जिसे देखकर पाठक प्रसन्न होता है। कोई महत्त्वपूर्ण बात छूट न जाय, महत्वहीन प्रकाशित न हो जाय, निराधार अथवा अपमानकर और कानूनी दृष्टिसे अपराधजनक बात छप न जाय, अपने महत्वके अनुकूल कौन संवाद किस पृष्ठमें जाय, सबका प्रकाशन इस ढङ्गसे

हो कि वह न केवल पठनीय तथा मनोरञ्जक हो बल्कि चित्ताकर्षण भी करे; संक्षिप्त, अर्थगर्भ और भड़कीले शीर्षक लगा दिये जायँ, विभिन्न प्रकारके पाठकों-की रुचि देखते हुए भिन्न-भिन्न तरहके समाचारोंका समावेश कर दिया जाय, महत्त्वपूर्ण घटनाओंको समझानेके लिए सम्पादकीय लेख और टिप्पणियाँ दे दी जायँ, समाचारोंके अनुकूल नक्शे और चित्र छाप दिये जायँ, आदि तमाम बातों-का प्रबन्ध करना बाकी है। प्रबन्ध करते समय यह भी ध्यान रखा जाय कि ताजासे ताजा खबरें पहले दी जायँ। यह सब करते हुए क्षणमात्रके लिए भी यह विस्मृत न किया जाय कि निर्धारित समयपर पत्रको प्रकाशित कर देना है। साथ-साथ यह भी याद रखा जाय कि पत्रमें स्थान भी आकारकी दृष्टिसे निर्धारित है।

यह सारा काम कुछ घण्टोंके बीच सहायक सम्पादकोंको पूरा कर देना है। बड़े पत्रोंमें प्रधान सहायक और संवाद-सम्पादक दो होते हैं पर भारतमें देशी भाषाके पत्रोंमें प्रायः एक ही व्यक्ति होता है जिसे प्रधान सहायक कहिये अथवा समाचार-सम्पादक। प्रधान सहायक अथवा संवाद-सम्पादक सर्वप्रथम आजाता है और आते ही अपने काममें जुट पड़ता है। उसे तमाम दूसरे समाचारपत्रोंपर आलोचनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टि डालनी है और देखना है कि कौनसी बात उसके पत्रके गत संस्करणमें नहीं प्रकाशित हुई जिसे दूसरे पत्रोंने छाप दिया है। फिर अपने पत्रके एक-एक वाक्यको देखना है जिसमें अपनी भूलोंकी ओर साथियोंका ध्यान आकर्षित कर सके। उसकी तीक्ष्ण दृष्टिको थोड़ेसे समय-में अपना काम कर डालना है। उसका काम पूरा भी नहीं हो पाया है कि उसके दूसरे साथी भी आधमके। अब उसे तारोंके भारी गट्ठरका सफाया करना है। उनको पढ़ना है, आवश्यक और महत्वपूर्णको अनावश्यकसे छाँटकर पृथक् करना है और विषयके अनुसार अलग-अलग करना है। इस प्रकार छँटाई करनेके बाद समाचार-सम्पादक सहयोगियोंके पास तार भेज देता है। सम्पादकोंमें जो विदेशी संवादोंको देखते हैं उनके पास विदेशी और इसी प्रकार स्थानीय, देशी, पार्लमेंटरी, खेलकूद, रेस, सट्टा, व्यापार-वाणिज्य, व्यवसाय, अर्थनीति, आदि सम्बन्धी समाचार अलग-अलग विभाग करके अलग-अलग सहायक सम्पादकोंके पास भेज दिये जाते हैं। अब सहायक सम्पादक जल्दी-जल्दी

कापियाँ (समाचारोंको उस रूपमें तैयार कर देनेका जिसमें वे प्रकाशित किये जायँगे कापी कहते हैं) तैयार करके कम्पोजिङ्ग विभागको भेजना आरम्भ कर देते है ।

पर प्रधान सहायक सम्पादक अथवा समाचार-सम्पादकका काम यहीं समाप्त नहीं हो जाता। वास्तवमें सारे सङ्घटनका मेरुदण्ड वही है। मशीनमैन और सम्पादक, सवाददाता और सहायक सम्पादक सबको जोडनेकी वही एकमात्र शृङ्खला है। पत्रके स्वरूपके निर्माणके सम्बन्धमे प्रायः समस्त तात्कालिक प्रश्नोका निर्णय तत्काल करना आवश्यक होता है और यह कार्य प्रधान सहायक सम्पादक ही करता है। उसके सामने प्रश्न है कि कौनसा सवाद आजके पत्रके संवादस्तम्भोंका प्रमुख पद ग्रहण करे। आजका प्रमुख अथवा पृष्ठ-शीर्षक क्या होना चाहिये, मेक-अप (कौनसा सवाद किस स्तम्भमें छपे और पत्रमे कौन कौनसी वाते—समाचार लेख चित्र-नकशे कहानियाँ आलोचना-कैसे कहाँ और किस ढङ्गसे प्रकाशित की जायँ इसे मेक-अप कहते हैं) कैसा हो, विभिन्न समाचारोंपर कौनसे शीर्षक लगाये जायें, आदि बातें तात्कालिक निर्णयकी अपेक्षा करती हैं और निर्णय प्रदान करनेका भार प्रधान सहायक-सम्पादकका ही होता है। भलेही प्रधान सहायक कुछ न लिखे, एक भी कापी तैयार न करे पर सारा पत्र उसीकी कलामयी प्रवृत्ति, सूझ, समझ और दृष्टिका परिणाम होता है। इन समस्त प्रश्नोंपर विचार करते हुए और उन्हे हल करते हुए तथा सारे मामलोका सुलझाव उपस्थित करते हुए उसे सबसे बडी चिन्ता इस वातकी करनी होती है कि समयसे तमाम आवश्यक कापियाँ पूरी हो जायँ।

अब ये कापियाँ कम्पोज होकर आने लगती है। कम्पोजिङ्गका काम पहले हाथसे होता था पर अब लाइनोटाइपसे यही काम होने लगा है। कम्पोज की गयी कापियोंको मैटर कहते हैं। जब मैटर कम्पोज हो गया तो एक रोलरमे स्याही लगाकर कागजपर उसे छाप लिया जाता है जिसे प्रूफ' कहते है। ये प्रूफ अपने संशोधकोंके सामने आते है जो सुधार कर, भूलचूक ठीक कर देते हैं।

अब छपाईका प्रबन्ध आरम्भ होता है। अधिकतर बडे समाचारपत्रोंमे रोटरी नामकी मशीनें हैं जो एक घण्टेमें २० हजारसे लेकर सवा लाख प्रतियाँतक छाप लेती है। पर जो छोटे-मोटे पत्र हैं उनके यहाँ साधारण मशीनें होती

हैं जहाँ हाथसे ही कम्पोजिटर एक-एक अक्षर कम्पोज करते हैं और कम्पोज किया हुआ मैटर संशोधनके वाद लोहेके एक फर्मेमें कस दिया जाता है। यही फर्मा छापनेकी कलमें फिट कर देते हैं। ऐसी मशीनें साधारणतः एक घण्टेमें हजारसे पाँच हजारतक प्रतियाँ छाप लेती है। पर जिन देशोंमें सवादपत्रोंकी वीस पचीस लाख प्रतियाँ एक संस्करणमें विकती हैं वहाँ रोटरीके विना काम ही नही चलता। फलतः जहाँ रोटरी है वहाँ लाइनोटाइप नामक यन्त्रसे मैटर कम्पोज होता है। कम्पोज होनेके वाद स्टीरियो-पेपर नामक एक प्रकारके कागजपर तमाम मैटरको यन्त्रसे दवाकर उसका साँचा वना लिया जाता है और फिर इस साँचेका स्टीरियो ढाल लेते है। ढलाई धातुपर होती है और इस ढले हुए मैटरके फर्मेको रोटरीमें लगाकर छपाई की जाती है। तात्पर्य यह कि रोटरीमें छापनेके मैटरकी प्रतिदिन ढलाई होती है और प्रतिदिन ढला हुआ मैटर काम हो जानेके वाद गला दिया जाता है। सारा समाचार-पत्र प्रतिदिन नये टाइपसे छपा हुआ नये रूपमें सामने आता है।

यह सारी क्रिया निश्चित समयके भीतर समाप्त हो जानी चाहिये। समाचार-पत्रोके लिए समयका वडा मूल्य होता है। यदि पत्रके व्यवस्थापक लोग समयसे छापकर अपनी डाक न भेज दें अथवा प्रतिद्वन्द्वियोंके सामने समयसे न आ जायँ तो उनकी पूछ करनेवाला कौन रह जायगा? एक डाक छूट जानेका अर्थ यह होगा कि हजारों रुपयेका नुकसान हो गया। विलम्वसे पाठकोंके पास पहुँचा हुआ संवादपत्र रद्दीके सिवा और कुछ महत्त्व नहीं रखता। समयके साथ-साथ पत्र-सम्पादकोंको स्थानसे भी युद्ध करना पडता है। पत्रके स्तम्भ निर्धारित होते हैं। सारे आवश्यक समाचारोंका तथा अन्य लेखों और दूसरी विशेप वातो (फीचर) का समावेश निर्धारित स्थानमें ही हो जाना चाहिये। विज्ञापनोके लिए भी स्थान प्रदान करना है क्योंकि उस विभागसे हुई आयपर ही मुख्यतः संवादपत्र जीवित रहते हैं। फलतः स्थान और समयसे युद्ध करते हुए जव सहायक सम्पादक अपना मेक-अप कर लेता है तो मशीनपर छपाईके लिए फर्मा भेजनेका समय आ जाता है। पर यह न समझिये कि मुद्रणके लिए फर्मेके चले जानेपर सब मामला समाप्त हो जाता है। वहुधा इस व्यवस्थामें गहरा उलट-पलट करना पडता है। जिस

समय सारा मेक अप हो गया हो उस समय यदि जगत्‌की किसी महत्वपूर्ण घटनाका समाचार आ पहुँचता है तो फिर न पूछिये कि हालत क्या होती है।

संवादपत्रोंकी चाह होती है कि ताजासे ताजा समाचार प्रकाशनके लिए प्रस्तुत संस्करणमे छाप दें। यदि प्रेसपर फर्मा तीन वजे दोपहरमे चढ़नेवाला हो, और पौने तीन वजे, मेक-अपके बाद कसकर उसे ठोंककर लिया गया हो, और यदि ठीक उसी समय, जब तीन वजनेमें दस मिनट ही बाकी रह गये हों, कोई महत्त्वपूर्ण समाचार आ जाय तो पत्रकार उसके समावेशका लोभ संवरण नही कर सकता। लोभसंवरण करनेमें अपने प्रतिद्वन्द्वियोंसे पिछड़ जानेका खतरा भी होता है। फलतः उस समयकी हालत देखते ही बनती है। मालूम होता है कि सारे विभागको त्रिदोष-सा कोई भयानक रोग हो गया है। जिसे देखिये वही होश-हवाससे रहित दिखाई पडता है। कोई कापी तैयार करनेमें लगा; कोई समाचारकी भूमिका बनाने लगा; कोई हेडिङ्ग गढने लगा। उधर कम्पोजिङ्ग शुरू हुई, इधर प्रधान सहायकके सिर सबसे बडी आफत आयी। यह काम उस विचारेके सिर पडता है कि वह सारे फर्मे और मेक-अपको तोड़कर इस समाचारको जैसे भी हो स्थान दे। 'छपते-छपते' के स्तम्भमें यदि जगह रही तो ठीक ही है अन्यथा किसी न किसी समाचार या लेखको कहीं न कहींसे उडाना पडेगा। मुहूर्त भरमे निश्चय करना है कि कौनसा मैटर उडाया जाय। उडाते हुए यह भी देखना है कि उसके हटनेसे कहीं ऐसी असम्बद्धता न आ जाय कि अर्थका अनर्थ हो जाय। पर इस उलट-फेरके फलस्वरूप सारे स्टीरियोको पुनः ढालना पड़ता है क्योंकि लाइनोटाइपके यन्त्रमें एक अक्षरका भी परिवर्तन सारे स्टीरियोको बदलनेका कारण होता है। सब काम दस मिनटमें समाप्त करके फर्मेको प्रेसमें भेज देना पडता है।

अब विशालकाय रोटरी गम्भीर हुङ्कार करती हुई चल पड़ती है। प्रतियों-को छापते, काटते, मोडते हुए वह तैयार मालको बाहर फेंकने लगती है। हाकर और पत्रका वितरण करनेवाले सूत्र दरवाजेपर आकर एकत्र होने लगते है। बाहर जानेवाली डाकके गट्ठरके गट्ठर अलग-अलग नियत स्थानपर भेजे जाने लगते हैं। अब सम्पादकोंको अपना सिर उठानेका मौका मिलता है। कठोर परिश्रम और भारी भार उठानेके बाद अब वे राहतकी साँस लेते हैं। इस

अति जटिल प्रकारसे समाचारपत्र निर्मित होता है जो सेवामें उपस्थित होकर आपकी आधुनिक आवश्यकताकी पूर्ति करता है। देशी भाषाके पत्रोंकी कठिनाई कई कारणोंसे कुछ और भी बढ जाती है। अंग्रेजीके पत्रोंको अनुवाद करनेकी कठिनाई और बोझका सामना नहीं करना पडता। तार सब अंग्रेजी भाषामें ही आते हैं। प्रेसके तारोंका साधारण-सा संशोधन करके, वाक्योंका पारस्परिक सम्बन्ध ठीक करके सम्पादक-मण्डली तत्काल कापी तैयार कर देती है। देशी भाषाके पत्रोंका काम इससे नहीं चल सकता। उनको उनका अनुवाद करना पडता है। जहाँ समयका इतना मूल्य हो वहाँ यह विशेष आयास क्या अर्थ रखता होगा इसपर पाठक स्वयं विचार करलें। पर इन समस्त जटिलताओं और कठिनाइयोंके बाद, इतने विशाल प्रबन्ध और व्यापक आयोजनके आधारपर संवादपत्र निर्मित होता है। पत्रोंपर एक ओर जनताके हितोंकी रक्षा और उसके पथप्रदर्शनका नैतिक उत्तरदायित्व लदा हुआ है और दूसरी ओर उसे अपना जीवन-निर्वाह करनेके लिए व्यावसायिक रूप ग्रहण करनेको बाध्य होना पडता है। पत्रोंकी व्यवस्था और निर्माण करनेके लिए लाखों रुपयेकी पूँजी लगानी पड़ती है। दिन-प्रतिदिन हजारों टन अखबारी कागजोंका सफाया किया जाता है। ये कागज अधिक मात्रामें विदेशोंसे आते हैं। मुद्रणके लिए प्रतिदिन हजारों रिल स्याही बहा दी जाती है। लाखों रुपया कल-पुरजोंमें तथा समाचारोंका सङ्कलन करनेमें व्यय करना पड़ता है। कर्मचारियोंके मासिक पुरस्कारमें न जाने कितना धन लगाना होता है। पर यह सब होते हुए भी पत्र अपने पत्रत्वका प्रदर्शन न कर सकते यदि उन लोगोंकी तपस्या और साधना उनकी सहायिका न होती जो प्रकृत्या पत्रकार हैं। जो पत्रकलाकी पूजा करते हैं, धनके लिए नहीं बल्कि कलाके लिए करते हैं, जो इस मार्गके द्वारा जनसेवा करनेके पुनीत आदर्शसे अनुप्राणित हैं, जो जनहितके संरक्षक हैं और जो अन्याय, निर्दलन, शोषण और स्वार्थका विरोध करके स्वतन्त्रता और न्याय तथा मानवताकी आराधनामें अपने समस्त व्यक्तित्वकी आहुति देनेके लिए आगे बढ़ते हैं उन साधकोंकी तपस्या और बुद्धि तथा प्रतिभा और मौलिकताके द्वारा इन पत्रोंका निर्माण होता है जो मानवसमाजके जीवनमें व्यापक रूपसे प्रविष्ट होकर उसके सञ्चालनमें प्रमुख भाग ले रहे हैं।

विभिन्न देशोंके पत्रोंकी वर्तमान स्थिति

समाचारपत्र आधुनिक लोकतन्त्रके सामने उसके सुदृढ़ आधारके रूपमें उपस्थित हैं। लोकतन्त्र जनसत्ता और जनस्वतन्त्रताका पोषक और समर्थक होनेके कारण ही अपना महत्त्व रखता है। समाजके हित, उसकी शक्ति और उसके सङ्घटनकी भित्तिको दृढ़ रखते हुए अधिकसे अधिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान करना उसका लक्ष्य होता है। अपनी इसी विशेषताके कारण वह सभ्य जगत्‌मे अपना महत्त्व रखता है। लोकतन्त्रकी इस व्यवस्थामें समाचारपत्रोंका विशेष स्थान होता है क्योंकि स्वतन्त्र जनताको देश-विदेशकी गतिविधिसे परि-चित करानेके लिए वही एकमात्र साधन है। इसके सिवा जनमत और जन-दृष्टिकोणको प्रकट करनेका भी वह सर्वोत्कृष्ट स्रोत है। लोकतन्त्रका अर्थ यदि जनसमाजकी स्वतन्त्रता है तो बातोंको जानने, उसपर मत प्रकट करने और उसकी आलोचना करनेकी जन-स्वतन्त्रता ही स्वतन्त्रताका मुख्य और व्यावहारिक रूप हो सकता है। फलत· समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताका अर्थ जन-स्वातन्त्र्यके सिवा दूसरा कुछ नहीं है। प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्थामें, जहाँ बहुमत-दल सर्वाधिकार रखता है, प्रेसकी स्वतन्त्रता आवश्यक समझी जाती है क्योंकि बहुमत-दलकी निरङ्कुशता रोकनेके लिए जितने भी शान्तिमय और वैधानिक उपाय हो सकते हैं उनमें पत्रोंका प्रमुख और सजीव स्थान होता है। वे जनमतको प्रकट करते है और अपने प्रभावसे उसका निर्माण करते हैं। शासकवर्ग भी साधारणत. पत्रोंके द्वारा ही यह समझनेमें समर्थ होता है कि उसकी नीति-विशेषके सम्बन्धमें जनताका भाव क्या है। फलतः सभ्य-जगत्‌मे प्रेसकी स्वतन्त्रता नागरिकताका मौलिक अधिकार और मानवताकी स्वाभाविक आवश्यकता समझी जाती रही है। यही कारण है कि किसी देशकी जनताकी स्वतन्त्रता और उस देशकी सरकारकी प्रगतिशीलता और सभ्यताको नापनेके लिए हम वहाके संवादपत्रोंकी स्थितिको अच्छा और अचूक मानदण्ड मान सकते है।

यह सच है कि प्रेसकी यह स्वतन्त्रता सदा उन वर्गोंको खटकती रही है जिनका स्वार्थ जन-स्वातन्त्र्यकी सीमाको सङ्कुचित करनेमें रहा है। इतिहास इसका साक्षी है कि जिस वर्गका स्वार्थ स्थापित व्यवस्थामें स्थिर होता है अथवा जो वर्ग शासन करता रहता है वह लिखने, मत प्रकट करने और टीका करनेकी जन-स्वतन्त्रताको यथासम्भव अधिकाधिक अपहृत करनेके लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ढङ्गसे, देश और जनताके हितोंके नामपर, बड़े-बडे सिद्धान्तोंकी दुहाई देकर तरह-तरहका उपाय सदासे करता रहा है। समाचारपत्रोंने भी सदा इस विघातक प्रयत्नका विरोध किया है और जिन देशोंकी जनता जागरूक रही है वहाँ उसने अपनी स्वतन्त्रताके प्रतीक इन पत्रोंके सङ्घर्षमे उनका साथ दिया है।

जन-स्वतन्त्रताकी उपर्युक्त कल्पनाने पहले-पहल यूरोपमें जन्म ग्रहण किया। मनुष्य-समाजको यूरोपने ही यह भावना प्रदान की, पर आज वहाँके विभिन्न देशोंके पत्रोंकी स्थिति क्या है इसपर एक विहङ्गम दृष्टि डालना अनुचित न होगा। विभिन्न देशोंके पत्रोंकी स्थितिसे सक्षेपमें हम उन देशोंकी राजनीतिक अवस्थाका आभास पानेमें भी समर्थ हो जाते है। यूरोप इन पङ्क्तियोंके लिखनेके समय तक अधिनायकोंके निष्ठुर चरणोंके नीचे पिस रहा है। जिस भूमिमें पहले-पहल लोकतन्त्रका अङ्कुर उत्पन्न हुआ था वहीं आज उसका उन्मूलन किया जा रहा है। फासिस्ट इटली और नाजी जर्मनी अधिनायक व्यवस्थाके परम विकसित और घृणित प्रतीक हैं। बोलशेवी रूसने भी समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताकी उस कल्पनाको उखाड़ फेंका है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। यूरोपके प्रायः सभी देश भयानक नर संहारके बाद हिटलरके सामने धरतीपर मुँहके बल पड़े हुए हैं। लोकतन्त्र केवल ब्रिटेनमें बचा हुआ है। अतलान्तक-पार अमेरिका भी उसी लोकतन्त्रका पोषक है। युद्धकी समाप्ति होनेपर जब कभी पुनः भूमण्डल विनाशकी इस लीलासे मुक्ति पायेगा उस समय जगत्की स्थिति क्या रहेगी नहीं कहा जा सकता। सारा विश्व नाजी बर्बरताकी आगमे जलता रहेगा अथवा मनुष्य अपने नैसर्गिक अधिकारोंका उपभोग करता हुआ जीवन-यापन कर सकेगा इसे बताना भविष्यके हाथोंमें है। सम्प्रति उपर्युक्त देशोंके पत्रोंकी स्थितिपर प्रकाश डालना इन पंक्तियोंमें हमारा लक्ष्य है।

आज जब हम विविध देशोंके पत्रोंकी स्थितिपर दृष्टिपात करते हैं तो यह पाते हैं कि वर्तमान जगत्में एक ऐसी धारा वही है जो पत्रोंकी स्वतन्त्रताको बहा ले जानेमें कुछ उठा रखना नहीं चाहती। अधिनायकोंकी व्यवस्थामें उसका सर्वनाश तो हो ही गया है पर जहाँ अबतक लोकतन्त्र जीवित माना जाता है वहाँ भी कुछ ऐसे उपसर्ग उत्पन्न होते दिखाई दे रहे हैं जिनके कारण पत्रकी स्वतन्त्रताके इच्छुकोंके हृदयमें गहरी आशङ्का और सन्देह उत्पन्न हो गया है। अधिनायकवादी देशोंपर पहले दृष्टिपात कर लीजिये। जर्मनीके समाचारपत्र आज पूरी तरहसे वहाँकी निरङ्कुश नाजी सरकारके हाथोंकी कठपुतली बन गये हैं। नाजी योजनामें उस नाजी दलके नेताओंने जो स्थान उनके लिए नियत कर दिया है वहीं बने रहकर वे उनके सङ्केतपर ही नाचनेमें अपने कर्तव्यकी पूर्ति समझते हैं। एक समय था जब जर्मन जनता समाचारपत्रोंको खूब पढ़ती थी और पत्रोंका वहाँके सार्वजनिक जीवनमें ऊँचा स्थान था। यह स्मरण रखनेकी बात है कि यूरोपमें जर्मनीके लोग सबसे अधिक शिक्षित, ऊँची और तीक्ष्ण बुद्धिवाले, सांस्कृतिक भावना तथा गहरी बौद्धिक जिज्ञासासे ओतप्रोत माने जाते रहे हैं। ऐसे लोगोंमें समाचारपत्रोंका प्रभाव होना स्वाभाविक ही था। पूर्वके पृष्ठोंमें कह चुका हूँ कि इटलीके बाद यूरोपमें सर्वप्रथम समाचारपत्रोंका प्रादुर्भाव जर्मनीमें ही हुआ था। मुद्रण कलाका आविष्कार करके उसने सारे यूरोपमें पत्रोंके प्रकाशनको सम्भव कर दिया। पर सन् १९३३ ईसवीके बाद जब हिटलर शासनारूढ हुए तो नाजी नीतिने जर्मनीमें सांस्कृतिक दृष्टिसे वह कठोर प्रहार किया जिसके फलस्वरूप जर्मनीका प्रेस नष्ट हो गया। जर्मन समाचारपत्रोंकी सजीवता समाप्त हो गयी और पत्रकारोंका जो प्रभाव था वह भी लुप्त होने लगा। नाजी विचारधारा समाचारपत्रोंकी उपयोगिता और सार्थकता केवल इस बातमें समझती है कि वे बिना किसी शर्तके राज्यसत्तापर नाजी दलके अक्षुण्ण नेतृत्वको स्वीकार करें और बिना किसी सङ्कोच या रुकावटके उक्त दलके नेताकी योजनाओं और सिद्धान्तोंके प्रचारमें अपनी सारी शक्ति लगा दें।

जर्मनीके नाजी लेखक हर विलहेल्म वालकर्चने 'प्रेसके कर्त्तव्य' नामक अपनी पुस्तकमें समाचारपत्र और उसके कर्तव्यके सम्बन्धमें नाजी दृष्टिकोणको

स्पष्ट रूपसे रख दिया है। उनका कहना है कि—'जर्मन पत्रोंकी एकमात्र उपयोगिता और उनका एकमात्र कर्तव्य यही है कि वे नेता (हिटलर) के आज्ञानुसार उनकी योजनाओंको कार्यान्वित करनेमें सहायता प्रदान करें। समाचारपत्रोंको इस सिद्धान्तका औचित्य स्वीकार कर लेना चाहिये जिसमे वे जर्मनीके राजनीतिक तथा आर्थिक और सांस्कृतिक जीवनके पुनर्निर्माणमें सहायक हो सकें।' वे आगे कहते हैं कि—'राजनीतिक जीवनमें जो दलवन्दियाँ और मतभेद पहले थे उन सबका निर्मूलन कर दिया गया है। जर्मनीमें व्यक्तिगत उछल कूद समाप्त हो गयी है और जनतामें 'झुण्डजीवन'* (हर्ड-लाइफ) वितानेकी विशेषता उत्पन्न की जा रही है। फलतः समाचारपत्रोंको किसी भी हालतमें ऐसी स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की जा सकती कि वे बिना किसी प्रकारकी रोक-टोकके मनमाना मत व्यक्त करें अथवा नेताकी किसी योजना और नीतिकी टीका-टिप्पणी करें। किसी समयमें पत्रोंको यह स्वतन्त्रता थी पर उससे देशका नाश ही हुआ है। आज नवयुगका उदय हुआ है और नाजी दल राज्यकी सारी शक्तिको अपने हाथमें रखनेके लिए कृतसङ्कल्प है। फलतः पत्रोंको युगकी आवश्यकता समझनी चाहिये और प्रत्येक सम्भव उपायसे सरकारकी सहायतामें अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिये।'

ऊपरके उद्धरणसे ही पाठक समझ जायँगे कि जर्मन पत्रोंकी आज क्या स्थिति होगी। स्वयं हिटलरने पत्रोंके सम्बन्धमें कहा है कि 'नाजी सरकार वास्तवमें जर्मनीमें क्रान्ति करना चाहती है और क्रान्तिकी सफलता तभी सम्भव है जब नये प्रकारकी जनताका निर्माण किया जाय। जनताको नया दृष्टिकोण और नया आदर्श प्रदान करना होगा। पत्रोंका ध्येय यही है कि वे जनताको नयी दीक्षा और शिक्षा प्रदान करनेमें सरकारकी सहायता करें, क्योंकि सामूहिक रूपसे शिक्षा देनेके वे ही उत्तम साधन हैं। डाक्टर गोबेल्स, जो नाजी प्रचारविभागके प्रमुख अधिकारी हैं, बार-बार कहते हैं कि 'जैसे प्रत्येक

---

* पशुओंमें या कुछ आदिम मनुष्य-जातियोंमें, जो झुण्डमें रहती हैं, यह विशेषता पायी जाती है कि जो नेता कहे या करे उसीको आँख मूँदकर सब करें; दूसरी ओर सोचने-समझनेकी जरूरत नहीं।

व्यक्तिके अस्तित्वकी सार्थकता केवल इतनी है कि वह राज्यकी आज्ञाका पालन करता रहे और उसके प्रति अपने कर्तव्यकी पूर्ति करता रहे उसी प्रकार लिखनेका अधिकार उन्हींको है जो शासन-सत्ताके प्रति उत्तरदायी हैं और उसका जो उनपर ऋण है उसे अपना सहयोग प्रदान करके पूरा करते हैं।' इन वक्तव्योंसे स्पष्ट है कि नाजी विचारधारामें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अथवा प्रेसकी स्वतन्त्रताकी कल्पनाको कोई स्थान नहीं है।

वहाँ राज्य एकमात्र सत्य और अक्षुण्ण तथा निरङ्कुश सत्ता है और व्यक्ति तथा समाजका अस्तित्व उससे सापेक्ष है। व्यक्ति और समाजकी उपयोगिता केवल इतनी है कि वह अपने अस्तित्वसे राज्यकी आकांक्षाओंकी पूर्ति करे। वे राज्यके लिए ही हैं और राज्य स्वयमेव अपने लिए स्थित है। यह है हिटलरकी मौलिक कल्पना जिसे पृष्ठभूमि बनाकर आप वहाँके पत्रोंकी स्थितिकी कल्पना कर लें। आज जर्मन पत्र सार्वजनिक मतको व्यक्त करनेके साधन नहीं हैं। राज्यका नेता क्या चाहता है यह बताना उनका काम है। जनता क्या सोचे और क्या करे इस सम्बन्धमें नेता जो चाहता है वही जनवर्गके अन्तस्तलमें बैठा देनेकी चेष्टा करना उनका एकमात्र कर्तव्य है।

प्रेस ऐसी कोई घटना, कोई तर्क, कोई वक्तव्य भी प्रकाशित नहीं कर सकते जिनका प्रभाव अप्रत्यक्ष रूपसे भी जनहृदयमें नेताकी नीतिके प्रति सन्देह उत्पन्न कर देनेका कारण हो सकता है। फलतः कोई भी समाचार या घटना चाहे वह सूर्यके प्रकाशकी भाँति ही सत्य क्यों न हो वहाँके पत्रोंमें सरकारी सेन्सरकी स्वीकृतिके विना प्रकाशित ही नहीं की जा सकती। समाचारपत्र उसपर मत भी वही प्रकट करेगा जो प्रचार-विभाग कहेगा। संवादपत्रोंपर अपना करारा अङ्कुश स्थापित करनेके लिए सन् १९३३ में नवस्थापित नाजी सरकारने पहला काम यह किया कि उसने तत्कालीन समस्त पत्रोंके सम्पादकोंके सामने एक घोषणापत्र उपस्थित किया जिसपर उनका हस्ताक्षर माँगा गया। घोषणा यह थी कि मैं नाजीदलकी नीति और सिद्धान्तोंको स्वीकार करता हूँ और उससे अपनेको आबद्ध रखूँगा। आवश्यक था कि प्रत्येक पत्रकार इस प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करें और जो अपनेको इस प्रकार गुलाम बना देनेको तत्पर न हो उसका पत्र, उसका पेशा, और सम्भवतः उसका मस्तक भी

खतरेमें समझा जाना चाहिये था। फलतः आज जर्मनीमें वे ही पत्र है जो ग्रामोफोनके 'हिज मास्टर्स वायस' के रेकार्डकी तरह है। जो स्वतन्त्र-चेता पत्रकार थे वे या तो जर्मनीसे भागे, या उनका मस्तक धडसे अलग हुआ, अथवा वे कोई दूसरा पेशा ग्रहण करनेको बाध्य हुए, या नजरबन्द कैम्पोमें सड़-गल गये।

जर्मनीकी इस नीतिके कारण वे देश परेशान थे जहाँ प्रेसकी थोडी बहुत स्वतन्त्रता आज भी बाकी बची थी। परेशानी इसलिए नही थी कि किसी पवित्र सिद्धान्तकी हत्या हो रही थी, प्रत्युत इसलिए थी कि उसका विषमय प्रभाव उन देशोकी स्थितिपर पड़ने लगा था। जर्मन पत्र फ्रांस या ब्रिटेनके विरुद्ध यदि कुछ लिखें, प्रचार करें अथवा उन देशोकी जनताको सरकार तथा लोकतन्त्र व्यवस्थाके विरुद्ध उभाड़ें तो उन बातोंको न केवल फ्रांस और ब्रिटेनकी जनता पढ सकती थी बल्कि वे बाते वहाँके पत्रोंमे भी प्रकाशित हो जाया करती थीं। इस प्रकार जर्मन-प्रचार का चक्र तो चलता रहता था, पर दूसरे देशके पत्र या लेखक यदि अधिनायकवादके विरुद्ध कुछ लिखें, जनताके हित तथा उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोका प्रतिपादन और परिपोषण करें तो वे बातें जर्मन पत्रोंमें प्रकाशित हो ही नही सकती थी। इसका जो विघातक परिणाम हो सकता था वह इस महायुद्धमें स्पष्ट दिखाई दे गया है।

आज जर्मनीमे नाजी दलने बौद्धिक स्वाधीनता और विचारकी स्वतन्त्रताको इस सीमातक कुचल डाला है कि कोई भी प्रोफेसर, शिक्षक, अध्यापक, लेखक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक या कलाकार ऐसी कोई भी बात नही कह सकता जो नाजी सिद्धान्त और कल्पनाके विरुद्ध हो। नाजियोंका जाति-विद्वेष तथा उनकी जातिगत महत्ताका सिद्धान्त ऐतिहासिक अनुशीलनके आधारपर अथवा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे कितना भी निराधार क्यो न हो पर किसी इतिहासके विद्वान् या विज्ञानके पण्डितकी यह मजाल नही है कि उसके विरुद्ध एक शब्द भी कह सके या लिख सके। इसके विपरीत उनसे माँग को जायगी कि वे उक्त सिद्धान्तका समर्थन करें और उसके पक्षमे सत्यासत्यकी चिन्ता छोड़कर जो कुछ भी सम्भव हो कह डालें। फलतः आज जर्मनीमे वही सत्य, वही ज्ञान, वही विज्ञान और वही कला, इतिहास तथा साहित्य है जो हिटलर चाहते हैं।

यह स्थिति है उस जर्मनीकी जो किसी समय ज्ञान तथा संस्कृतिकी दृष्टिसे यूरोपका मुकुट था, जहाँ समय-समयपर उत्कृष्ट तथा आदरणीय विचारक और मनीषी उत्पन्न होकर अपने बुद्धिबलसे जगत्को ज्ञान तथा प्रकाश प्रदान करते रहे हैं।

अब इटलीकी ओर चलिये। फासिस्ट इटलीके पत्रोंकी दशा भी जर्मनीसे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। किसी समय जब मुसोलिनीका चरण इटालियन शासनसत्ताके मस्तकपर स्थापित नहीं हुआ था, इटालियन पत्र अपना विशेष स्थान इटलीमें ही नहीं बल्कि यूरोपमें भी रखते थे। इटली ही वह देश है जो समाचारपत्रोंका जनक है पर आज इटलीके पत्रोंका 'सिण्डिकेट' सरकारकी ओरसे बना दिया गया है। पत्रकारोंका सङ्घ भी सरकारने ही बनाया है और कोई भी तबतक पत्रकारीका पेशा ग्रहण नहीं कर सकता जबतक इस सङ्घमें सम्मिलित न हो जाय। इन पत्रकारोंको सङ्घमें सम्मिलित होनेके पूर्व अपनी रजिस्ट्री कराकर अपना नाम दर्ज कराना पड़ता है जिसका अर्थ यह होता है कि रजिस्टर्ड पत्रकार फासिस्ट सिद्धान्तोंका समर्थक है और उसीके प्रचारमें अपनी सारी योग्यता और शक्तिका उपयोग करेगा। सरकारी 'डिक्रियों' के द्वारा असंख्य प्रकारके जटिल नियमोंकी रचना करके पत्रों और पत्रकारोंको ऐसा जकड दिया गया है कि वे रत्तीभर भी सरकारकी आज्ञा और इच्छाके प्रतिकूल नहीं चल सकते। उनका सारा अस्तित्व सरकारके लिए है और सरकारी कर्मचारीकी भाँति ही उन्हे अपना काम करना पडता है।

पत्रोंकी इस स्थितिकी आधारभूमि भी नाजियोंकी भाँति फासिटियोंकी नयी राजनीतिक कल्पना ही है। मुसोलिनीने फासिटीवादकी व्याख्या करते हुए कहा है कि 'फासिस्ट सिद्धान्तकी कल्पनाके शिखरपर हमारी राज्य सम्बन्धी भावना है। राज्य क्या है, उसका तत्व क्या है, उसका कर्तव्य और लक्ष्य क्या है, फासिज्म इसका स्पष्ट उत्तर देता है। उसके लिए राज्यकी सत्ता स्वयं अपनेमें ही पूर्ण और स्वतन्त्र है। व्यक्ति और समूहका अस्तित्व उसीसे आपेक्षिक है। व्यक्ति और समूहकी कल्पना भी राज्यके अधीन स्थित उसके एक अङ्गके रूपमें ही की जा सकती है।'

फलतः इटालियन ईयर-बुक कहती है कि "फासिटीवादने इटालियन पत्रोंके सम्मुख एक उज्ज्वल आदर्श स्थापित कर दिया है। वह आदर्श यह है

कि वे राज्य-सम्बन्धी फासिस्ट कल्पनाके सामने सिर झुकाकर इटालियन नवयुवकोको नवबल तथा नवोत्प्रेरणा प्रदान करें। इटालियन पत्र इसी दिशामें विकसित हो रहे हैं। जहाँ पत्रोके सम्बन्धमें यह आदर्श हो और आदर्श उपस्थित करनेवाला वह दल हो जिसने शासन-सत्तापर अधिकार जमाकर अपनी निरङ्कुश शक्ति स्थापित कर ली हो और जहाँ अपनी आज्ञाका पालन करानेके लिए बलका प्रयोग किया जाता हो और मतभेद व्यक्त करना भी भीषण अपराध हो वहाँके पत्रोंकी स्थितिकी कल्पना पाठक स्वयं कर लें।

जर्मनी और इटलीके बाद रूसकी ओर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि वहाँ भी पत्रोंकी स्वतन्त्रताका वह रूप नही है जो लोकतन्त्रकी कल्पनामें समझा जाता है। श्री ए० जे० कमिंग्स अपनी पुस्तक 'दी प्रेस' में कहते है कि—'सोवियट प्रेसके सम्बन्धमे उस स्वतन्त्रताकी कल्पना नहीं की जा सकती जो लोकतन्त्रात्मक देशोमें अपने विकृत रूपमें भी वर्तमान है। कोई सोवियट पत्रका सम्पादक वहाँकी सरकारकी कडी टीका या आलोचना करनेका साहस नहीं करता। यद्यपि कभी-कभी टीकाएँ होती है पर तबतक उनका प्रकाशन नही हो सकता जबतक सरकारका सेंसरविभाग उसे प्रकाशित करनेकी अनुमति न दे दे। किसी समाचारपत्रकी यह हिम्मत नहीं है कि वह एक शब्द भी सोवियट गुप्तचर विभागके सम्बन्धमें अथवा किसी प्रमुख नागरिक या नेताकी गिरफ्तारीके विषयमें तबतक छाप सके जबतक उसे ऐसा करनेकी आज्ञा ऊपरसे नहीं मिल जाती।

'सरकारका ऐसा कठोर और सुदृढ नियन्त्रण है कि वह जिस समाचारका चाहे प्रकाशन रोक दे। जिन संवादो को सरकार अवाञ्छनीय समझती है अथवा जिनके प्रकाशनसे जनतामे सरकारके प्रति असन्तोषकी भावना उत्पन्न होनेका भय होता है उन्हे सरकार बहुधा प्रकाशित करनेकी अनुमति ही नहीं देती। यदि प्रकाशन होता भी है तो तब होता है जब उसका खतरा मिट जाता है अथवा जब दुनियाके दूसरे पत्रोमें प्रकाशित होकर वे समाचार जनतातक पहुँचने लगते हैं।' रूसमे बोलशेवी पार्टीकी अधिनायक-सत्ता स्थापित है जो निरङ्कुश अधिकारका उपभोग करती है। कम्यूनिज्म वर्गहीन समाजकी स्थापनाको अपना आदर्श समझता है। उसकी कल्पना है कि व्यक्तिका अस्तित्व

समाजके लिए है और व्यक्तिका समस्त व्यक्तित्व समष्टिमें ही लय हो जाना चाहिये। जबतक वर्गहीन समाजकी स्थापना नहीं हो जाती तबतक वह वर्ग-विशेषकी अधिनायक-सत्ताकी स्थापना आवश्यक समझता है। वर्ग-विशेषकी अधिनायकताके लिए आज रूसमें कम्यूनिस्ट पार्टीने अपना अधिनायकत्व स्थापित कर रखा है। इस स्थितिमें पत्रोंकी अप्रतिहत स्वतन्त्रताकी कल्पना वे कर ही कैसे सकते है ? प्रसिद्ध ब्रिटिश पत्रकार और लेखक श्री विकमस्टीड अपनी पुस्तकमें लिखते हैं कि 'यदि हिटलर जातिगत महत्ता और रक्तकी उच्चता तथा पवित्रताके सिद्धान्तका विरोध अपने देशमें सहन नहीं करते, यदि मुसोलिनी राज्यकी अक्षुण्ण सत्ताके सम्बन्धमे विचार करनेकी स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करते तो सोवियट रूस भी निजी सम्पत्ति और व्यक्तिगत स्वत्वके विषयमें स्वतन्त्र मत प्रकट करने अथवा उसके समर्थनकी अनुमति नहीं देता।'

श्री युजिनेलियांस प्रसिद्ध अमेरिकन पत्रकार हैं जो अमेरिकन संवाददाताकी हैसियतमें कई वर्ष रूसमें रह चुके है। उन्होंने रूसकी स्थितिके सम्बन्धमे 'एसाइनमेंट इन यूटोपिया' नामक एक पुस्तक भी लिखी है। उक्त पुस्तकमे रूसके पत्रोंके सम्बन्धमें उन्होंने जो लिखा है वह वहाँकी स्थितिपर अच्छा प्रकाश डालता है। वह लिखते हैं 'सोवियट प्रेसकी स्वामिनी सरकार है जो कठोरतापूर्वक उसका नियन्त्रण करती है। वहाँके पत्र स्पष्टतः सरकारकी रखेली हैं और सरकार अभिमानपूर्वक इस सम्बन्धको स्वीकार करती है। ये पत्र चाहे कम्यूनिस्ट पार्टीके अधीन हों या मजदूर सङ्घोंके अथवा सरकारके, पर सब है अधीन ही क्योंकि उपर्युक्त सभी संस्थाएँ एक ही केन्द्रीभूत शक्ति-सत्ताके ही विभिन्न रूप है। रूसमे आज उस स्थितिकी स्मृति भी लुप्त हो गयी है जब कोई पत्र स्वतन्त्रतापूर्वक सरकारसे अपना मतभेद प्रकट करनेका अधिकार रखता है। प्रत्येक पत्रका प्रत्येक वाक्य सेंसर होनेके बाद ही प्रकाशित हो सकता है। सम्पादकीय अग्रलेख सरकारी विज्ञप्तिके समान होता है। लोकतन्त्रात्मक देशोंमें पत्रकारीका जो नैतिक आदर्श समझा जाता है वह बोलशेविकों द्वारा समूल तिरस्कृत हो चुका है। निष्पक्ष और वास्तविक रूपसे घटनाओंका विवरण देनेका दावा भी वे नही करते। समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताके सम्बन्धमे न कभी यह कहा जाता है कि वे स्वतन्त्र हैं और न कभी उसके

गौरवका ही उल्लेख किया जाता है। कम्यूनिस्ट इन सारी बातोंको पूँजीपति वर्गोंकी धूर्तता समझते हैं। पत्रका प्रमुख कर्त्तव्य समाचार देना नहीं माना जाता ; उसे सोवियट सरकारकी राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्थाओंकी पूर्तिमें सहायक होनेका साधन मात्र माना जाता है।' उपर्युक्त वाक्योंसे रूसी पत्रोंकी स्थितिका पूरा परिचय मिल जाता है।

पर रूसकी टीका करते हुए उसकी एक विशेषताकी उपेक्षा नहीं की जा सकती और उसका उल्लेख कर देना आवश्यक है। कुछ मुख्य बातोंमें जर्मनी और इटलीके पत्रोंसे सोवियट पत्र मौलिक रूपसे भेद रखते हैं। जर्मनीमें जहाँ समाचारपत्रोका सञ्चलन दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा है और जनता यह समझ कर कि समाचारपत्र सरकारके प्रचारके साधनमात्र रह गये हैं, पत्रोंको खरीदना कम करने लगी है वहाँ रूसी पत्रोकी बिक्रीकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आज रूसके प्रमुख पत्रों—'इज़वेस्ता' और 'प्रवदा'—की प्रतियोंकी खपत तेजीसे बढ रही है और युद्धके पूर्व उनका सञ्चलन प्रतिदिन प्रायः बीस-बीस लाख प्रतियोतक पहुँच गया था। दक्षिणी रूस और विशेषकर यूक्रेनमे ९, १० भाषाओमें रूसी पत्र निकलते हैं जिनका प्रतिदिन बढता हुआ सञ्चलन उनकी लोकप्रियताका प्रमाण है। इसका मुख्य कारण कदाचित् यह है कि रूसकी अधिकांश जनसख्या सोवियट सरकारके प्रति भक्ति रखती है और उसे अपनी सरकार समझती है। उसे अपनी सरकारपर और उसकी नेक-नीयती तथा ईमानदारीपर विश्वास है। वह समझती है कि सरकारका सारा प्रयत्न उसके हितके लिए ही हो रहा है। इसके सिवा रूसकी निरक्षर और अपठित जनतामे न केवल साक्षरताका प्रवेश करनेमें बल्कि जिज्ञासाका सर्जन और ज्ञानका नया आलोक प्रदान करनेमें सोवियट सरकार असाधारण रूपसे सफल हुई है। उसे नया दृष्टिकोण, नया जीवन, नया क्षेत्र और एक प्रकारसे नयी संस्कृति भी प्रदान की गयी है।

फलतः अपनी सरकारके विभिन्न कार्योंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेकी उत्कट और तीव्र उत्कण्ठा रूसी जनवर्गमें व्यापक रूपसे फैली दिखाई देती है जिसकी पूर्ति करनेके कारण सरकारद्वारा नियन्त्रित होनेपर भी रूसी पत्र लोक-प्रिय हैं। उनकी यह विशेषता है कि समाचारोंके साथ-साथ वे विभिन्न क्षेत्रोंमें

परिचालित सरकारी नीतिका विवरण प्रदान करते हैं और जनवर्गको उन क्षेत्रोंका ज्ञानदान करते हैं। आज रूसकी नवोत्थित जनताके लिए वे ही पत्र उनके गुरु हैं, सहायक हैं और उसके साहित्यका काम देते हैं। सोवियट सरकार यद्यपि साहित्यके निर्माणके कार्यमें लगी है, दर्शन, इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र और उपन्यासोंके रूपमें तरह-तरहके ग्रन्थोंका निर्माण और प्रकाशन हो रहा है फिर भी वहाँके संवादपत्र साधारण लोगोंके पठन-पाठनके मुख्य साधन बने हुए हैं।

प्रेसकी स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें भी गत छ-सात वर्षोंसे सरकारी रुखमें कुछ परिवर्तन होता दिखाई दे रहा है। सेंसरकी कठोरता यद्यपि अब भी बहुत है तथापि पूर्वकी अपेक्षा उसमे स्पष्ट कमी होती प्रतीत होती है। सरकार स्वयं विभिन्न विभागोंके सम्बन्धमे आलोचना और टीकाटिप्पणीको उत्तेजित करने लगी है यद्यपि छापने न छापनेकी अनुमति वह स्वय देख लेनेके बाद ही देती है। जर्मनी हो या इटली अथवा रूस—इन सभी देशोंमें स्थित विदेशी संवाद-दाताओंद्वारा अपने देशोंको भेजे जानेवाले समाचारोपर वहाँकी सरकार कठोर दृष्टि डालती है। कोई संवाद नहीं है जिसे वह बिना देखे बाहर जाने दे। विरोधी रिपोर्टोंको वहाँका सेंसरविभाग न केवल रोक देता है बल्कि उन्हे भेजनेवाले सवाददाताओंका निर्वासनतक कर देता है। उन देशोंमें जो विदेशी पत्रकार हैं उनपर कठोर निगरानी रखी जाती है। यद्यपि रूस-स्थित विदेशी पत्रकारोके समाचारोके सम्बन्धमे मास्कोके परराष्ट्रविभागका प्रेसविभाग अपेक्षा-कृत कम कठोरतासे काम लेता है और यथासम्भव उन्हे रूसकी टीका-टिप्पणी करनेमें काफी स्वतन्त्रता प्रदान करता है तथापि यह तो स्पष्ट ही है कि सोवियटके पत्र उस दृष्टिसे स्वतन्त्र नही हैं जिस दृष्टिसे प्रेसकी स्वतन्त्रताकी कल्पना की जाती है। पर यूरोपियन भू-प्रदेशपर जहाँ इटली. जर्मनी और रूसके पत्रोंकी यह स्थिति है वहाँ युद्धके पूर्वका फ्रास बिलकुल विपरीत दृश्य सामने उपस्थित करता था। फ्रांसकी जनता उच्चरूपेण शिक्षित, उत्कट रूपसे बुद्धिमान् तथा असाधारण रूपेण प्रगतिशील है। उसकी राजनीतिक भावना कदाचित् सबसे अधिक उदार और व्यापक है। साहित्य, कला और सौन्दर्यके प्रति उसके हृदयमे जो स्थान है और उसकी जो अनुभूति वह करती है वैसी

कदाचित् किसी दूसरे देशको नसीब नहीं है। वहाँके समाचारपत्रोंका प्रभाव अपने देशकी जनतापर न केवल व्यापक था वरन् स्पष्ट रूपसे वास्तविक और गहरा था, तभी तो वहाँके पत्रोंको फ्रांसकी राज्यक्रान्तिमें प्रभावपूर्ण भाग लेनेका श्रेय प्राप्त हुआ है। वहाँके पत्रोंमें जो गम्भीरता, उच्चता और आदर्श-वादिता दिखाई देती थी वह ब्रिटिश पत्रोंमें भी नहीं थी। आजकी कल्पनाके अनुसार वे संवादपत्रोंको केवल मनोरञ्जनका साधन नहीं बनाते थे और न जनताकी हीन तथा सजात प्रवृत्तियोंको उत्तेजित करके अपना मञ्चलन बढ़ाना उचित समझते थे।

युद्धके पूर्वतक फ्रेञ्च समाचारपत्र शायद संसारमें अपेक्षाकृत सबसे अधिक स्वतन्त्र पत्र रहे हैं। उनपर न पूँजीपति व्यवसायियोंका वह प्रभाव जम सका था और न विज्ञापनबाज व्यापारियोंका जो ब्रिटेन और अमेरिकाके पत्रोंपर स्थापित हो गया है। फरासीसी भावना और विचारोंके प्रेमी होते हैं। वे प्रकृत्या काल्पनिक हैं। फलतः उनके पत्रोंमें नवीनता होती थी। राजनीतिक, परराष्ट्र सम्बन्धी तथा गम्भीर राष्ट्रीय प्रश्नोंसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंसे सारा संवाद-पत्र भरा रहता था और उसपर पत्र-सम्पादकोंकी स्पष्ट टीका-टिप्पणी तथा मत प्रकट होता रहता था। पर युद्धमें फ्रांसके पतनके बाद वहाँ क्या स्थिति हो गयी है और आगे चलकर क्या होगी इसे बताना भावी इतिहासकारका काम होगा। वहाँ अनेक ऐसे पत्र निकलते थे जिन्हें 'विचारपत्र' (व्यूज़पेपर) कह सकते हैं। ब्रिटेन और अमेरिका आदि देशोंकी जनता ऐसे पत्रोंकी ग्राहक नहीं है फलतः वहाँ वे चलते ही नहीं और जो चलते भी हैं उनकी ग्राहक-संख्या लोकप्रिय पत्रोंकी तुलनामें बहुत कम होती है। फ्रांसमें उनका अच्छा प्रचार था जो सिद्ध करता है कि पत्रकारीमें केवल विनोद और सनसनीको ठूँसनेका काम फरासीसियोंने नहीं किया।

दैनिक समाचारपत्रोंमें भी आप दार्शनिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा कला आदिके सम्बन्धमें जैसे और जितने अधिक लेख फ्रांसमें पाते उतने कहीं दूसरे स्थानपर न मिलते। पत्रकारके आदर्श और अपनी सांस्कृतिक परम्पराको फ्रेञ्च पत्रकार बड़े यत्नसे सुरक्षित रखता आया था। यद्यपि बड़े बड़े धनीमानी और श्रीसम्पन्न लोग समाचारपत्रोंके मालिक थे, स्वयं हावास एजेन्सी दलित्स

त्रोंकी अधिकारिणी थी पर पत्रके नीति-निर्धारणमें और लेखन तथा विचारकी स्वतन्त्रताकी दृष्टिसे पत्रपर बहुत कुछ सम्पादकोंका ही स्वत्व स्थापित था। वहाँ समाचारपत्र सम्बन्धी कानून भी अधिक उदार थे। मानहानि (डिफेमेशन) सम्बन्धी कानूनको ही ले लीजिये। प्रायः सर्वत्र इस कानूनकी तलवार पत्रोंकी ार्दनपर लटका करती है पर फ्रांसका कानून उस व्यक्तिको जो किसी लेख या संवादसे अपनी बदनामी देखता हो यह कानूनी अधिकार प्रदान करता है कि वह उसी पत्रके स्तम्भोंमें अपनी सफाईके लिए जितना स्थान माँगे उसे दिया जाय। मानहानिके सम्बन्धमें फ्रांस इतनी ही व्यवस्था काफी समझता था।

अक्सर फ्रांसके पत्र इस स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करते भी दिखाई नहीं ते थे। आस्करवाइलका कथन है कि फरासीसी पत्रोंमें व्यक्तिगत जीवन तथा दुश्चरित्रताको मोटे-मोटे अक्षरोंमें प्रकाशित होते आप न देखेंगे। यदि लाकका कोई संवाद छापना है तो इतना ही पर्याप्त समझा जायगा कि अमुक-अमुकका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। बहुधा समाचारपत्रोंमें यह प्रवृत्ति दिखाई ती है कि वे वादी-प्रतिवादीकी व्यभिचार-लीला तथा अदालतमें होनेवाले ारस्परिक आक्षेप और प्रत्याक्षेपको प्रकाशित करते हैं और इस प्रकार अपने कलेवरको भ्रष्टता प्रदान करके भी साधारण जनसमाजकी ओछी कामुकताका पर्श करके पत्र बेचनेके लिए सनसनीदार मामला तैयार करते हैं। फरासीसी समाचारपत्र इस दोषसे बहुत कुछ मुक्त थे।

फरासीसी राजनीतिमें जहाँ बड़ी अव्यवस्था रही है, जनता और पार्लमेण्टका सम्बन्ध जहाँ दूर होता गया है और जहाँ वर्षमें दलबन्दियोंके कारण तीन-तीन ार सरकारें बनती और बिगड़ती रही हैं वहाँ ये पत्र ही एकमात्र दृढता, ाम्भीरता तथा सत्य और जनहितके प्रचारक होकर व्यवस्थाका वातावरण बनानेकी चेष्टा करते रहे है। कुछ लोगोंका कहना है कि यह सब होते हुए भी कुछ फरासीसी पत्रोंपर घूसखोरीका अभियोग लगाया जा सकता है। कहा जाता है कि जापानने जब चीनपर आक्रमण किया था और वह मामला राष्ट्रसङ्घके सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया गया था उस समय जापानियोंने फ्रेञ्च पत्रोंकी पूजा खासी अच्छी रकम देकर की जिसके फलस्वरूप उन्होंने चीनके मामलेमें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका समर्थन किया। सम्भव है इस अभियोगमें

सत्यांश हो, फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि अपेक्षाकृत फरासीसी पत्र-कारोंने पत्रोंकी मर्यादा और आदर्शको बचाये रखनेकी भरपूर चेष्टा की है।

अमेरिकन पत्रकार-कलाकी आजके जगत्मे बड़ी भारी धूम है। वहाँके पत्र भी जगत्में सबसे अधिक स्वतन्त्र माने जाते है। अमेरिकाके विधानमें जो प्रथम संशोधन हुआ है उसीने प्रेसकी पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार की है और पत्रोंको यह अधिकार दिया है कि फूहड और मानहानिकर बातोंको बचाकर वे जो चाहे प्रकाशित करे। सनसनी फैलानेमें और पत्रको मनोरञ्जक बनानेमें अमेरिकन अंग्रेजोसे कई डिगरी आगे बढ गये है। अमेरिकन पत्रकारोंकी यह विशेषता भी माननी होगी कि वे दुनिया भरके अन्य पत्रकारोंकी अपेक्षा कही अधिक साहसी है और अपने काममे खतरा उठानेकी हिम्मत रखते हैं। अमेरिकामे विभिन्न प्रकारकी पच्चीस सहस्र पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं जिनमें दैनिकोंकी संख्या इक्कीस सौसे कुछ अधिक है। दैनिक पत्रोंमे उन्नीस सौसे अधिक पत्र अंग्रेजी भाषामे प्रकाशित होते हैं। इन पत्रोंकी कुल मिलाकर चार करोड वीस लाख प्रतियाँ प्रतिदिन खपती हैं जिनमें डेढ करोडसे अधिक प्रतियाँ प्रातःकाल और ढाई करोड़से अधिक सायंकाल खरीदी जाती हैं। अमेरिकाकी जनसंख्याके हिसाबसे प्रत्येक तीन आदमीपर इन पत्रोंकी एक प्रतिका अनुपात बैठता है। बड़े-बड़े नगरोंके, जैसे न्यूयार्क और शिकागोके दैनिक पत्रोंकी बडी खपत होती है यद्यपि उनमें एक भी पत्र ऐसा नहीं है जो सार्वदेशिक प्रभाव रखता हो। सम्भवतः 'लन्दन टाइम्स' और 'मैञ्चेस्टर गार्जियन' के समान सारे देशपर अपना प्रभाव रखनेवाला एक भी पत्र अमेरिकामें न मिलेगा। 'न्यूयार्क टाइम्स' जगत्का सर्वाङ्गीण पत्र समझा जाता है और उसका प्रभाव भी अमेरिकामें कदाचित् सर्वाधिक है फिर भी उसे वह पद प्राप्त नहीं है जो ब्रिटेनमे 'लन्दन टाइम्स' को मिल गया है। 'न्यूयार्क टाइम्स' की पाँच लाख प्रतियाँ प्रतिदिन बिकती है। उसका 'रविवार संस्करण' पूरे सेरभरका होता है जिसकी आठ लाख प्रतियाँ खप जाती हैं।

अमेरिकाका 'क्रिश्चियन साइन्स मानीटर' जगत्का बड़ा प्रभावशाली दैनिक माना जाता है पर वह लोकप्रिय नहीं है। अमेरिकामें उसकी केवल डेढ लाख प्रतियाँ प्रतिदिन बिकती हैं। यह पत्र अति गम्भीर, सनसनीसे दूर तथा स्वच्छता

और पवित्रताका समर्थक है। इसकी स्थापना 'मेरी बेकर एड्डी' ने की थी और अमेरिकन पत्रोंके तत्कालीन सनसनीदार तथा भ्रष्टताकी सीमातक पहुँचनेवाले मनोरञ्जक स्वरूपसे घबडाकर पत्रकार-कलाको नयी दिशा प्रदान करनेके लक्ष्यको लेकर ही की थी। पर इसी कारण वह लोकप्रिय न हो सका। 'क्रिश्चियन साइन्स मानीटर' विज्ञापनबाजी भी नहीं करता जिसके फलस्वरूप प्रायः दस लाख डालरकी वार्षिक आयसे हाथ धो बैठता है। अमेरिकाके दैनिक पत्रोंकी विज्ञापनसे होनेवाली आय औसतन उपर्युक्त रकमसे कम नही होती।

सचित्र पत्रोंकी वहाँ बडी धूम है और वे लोकप्रियतामे अन्य सभी प्रकारके पत्रोसे बाजी मार ले जाते है। 'न्यूयार्क डेली न्यूज़' अमेरिकाका सबसे प्रसिद्ध सचित्र दैनिक है जिसकी बीस लाख प्रतियाँ प्रतिदिन बिक जाती है। इसके रविवार संस्करणकी तो अडतीस लाख प्रतियाँ खप जाती हैं। 'न्यूयार्क डेली न्यूज़' सम्भवतः अमेरिकाका प्रथम दैनिक सचित्र पत्र है जिसकी स्थापना सन् १९१९ ईसवीमें हुई थी। इनकी सचित्रताका साधारण अर्थ पाठक न समझे। चित्रोके द्वारा सवाद देना और उन्हींके द्वारा अपना मत तक प्रकट कर देना उनकी विशेषता होती है। प्रकाशित होनेवाले चित्र भी सर्वांशमे चित्र नहीं होते, पर तरह-तरहकी घटनाओ और सवादोंके आधारपर ब्लाक बनाये जाते हैं जिनका प्रकाशन किया जाता है। इनके सिवा विज्ञान, साहित्य, कला, अर्थनीति, व्यवसाय, उद्योग आदि विशेष विषयोंके पत्रोकी भी लम्बी श्रृङ्खला वहाँ मौजूद है। अमेरिकाके हबशियोके भी दो पत्र 'पिट्सबर्ग कोरियर' और 'शिकागो डिफेण्डर' प्रकाशित होते है। अमेरिकन पत्रोंपर दृष्टिपात कीजिये तो एक बात स्पष्ट दिखाई देती है। उन सबमे एक प्रकारकी समानता होती है। प्रत्येकका प्राय· एक ही स्तर है, प्राय. सब समान संवाद प्रकाशित करते है, उनके विशेष स्तम्भोकी विशेषता (फीचर) भी प्राय· समान होती है। वहाँ-के साप्ताहिको तथा छोटी नगरियोंसे प्रकाशित होनेवाले स्थानीय पत्रोका भी अमेरिकन पत्रकार-कलामें अपना विशेष स्थान है। ऐसे पत्रोंकी सख्या यद्यपि घट रही है पर अब भी प्रायः सात सौ पत्र प्रकाशित होते हैं।

पर अमेरिकन पत्रकारीके क्षेत्रमे बडा प्रमुख स्थान प्राप्त है ऐसे पत्रोंको जो पत्रिकाओं (मेगज़ीन) का स्वरूप ग्रहण करके प्रकाशित होते है। ग्यारह

हजार चार सौ चौहत्तर 'मेगजीनें' प्रकाशित होती हैं जिनकी बिक्री कुल मिलाकर अठारह करोड साठ लाखके करीब होती है। बीस मेगज़ीनें तो ऐसी है जिनमें-से प्रत्येककी बिक्री दस लाख प्रतियों तक पहुँचती है। 'रीडर्स डाइजेस्ट' की नब्बे लाख प्रतियाँ खपती है। 'लाइफ', 'टाइम', 'न्यूज़ वीक' आदि साप्ताहिक मेगज़ीनें हैं जिनमें पहलेकी ग्राहक-संख्या चालीस लाख, दूसरेकी दस लाख और तीसरेकी साढे पाँच लाख तक पहुँचती है। इनके सिवा विविध विषयोंकी विशेष पत्रिकाएँ सहस्रोंकी संख्यामें प्रकाशित होती हैं। अमेरिकामें पत्र-प्रकाशन-का व्यवसाय करनेवाली कतिपय व्यापारी संस्थाएँ भी हैं जिनकी संख्या एकसठ-से कम नहीं है। इनमे प्रायः सभी ऐसी हैं जो तीन-तीन, चार-चार या पाँच-पाँच पत्रोका प्रकाशन करती हैं। इन्हे अमेरिकामें 'चेन न्यूजपेपर्स ग्रूप' कहते हैं।

पचीसों हजारकी संख्यामें प्रकाशित होनेवाली पत्र-पत्रिकाओंसे सारी अमेरिकन भूमि आकीर्ण है। अमेरिकाकी तीन-तीन समाचार-एजेन्सियाँ, अर्थात् असोशियेटेड प्रेस, युनाइटेड प्रेस तथा इण्टरनेशनल न्यूज़ सर्विस, इन्हें जगत् भरके संवाद प्रदान करती है। कतिपय पत्र ऐसे हैं जिनके आठ-आठ, नौ-नौ संस्करण प्रतिदिन होते हैं। इन समाचार-एजेन्सियोंके सिवा प्रायः सभी बडे पत्रोंके हजारो संवाददाता संसार भरमें फैले हुए हैं जो अपने-अपने पत्रोंकी आवश्यकता-पूर्तिमे लगे हुए हैं। कहते हैं कि किसी भी बड़े अमेरिकन दैनिक-पत्रमे दो हजारसे कम कर्मचारी नहीं हैं और न किसी वैसे दैनिककी स्थापना करनेमे एक करोड सत्तर लाख रुपयेसे कमकी पूंजी आवश्यक होती है। अमेरिकाकी पत्रकला आज इतनी उन्नत हो गयी है कि किसी देशके पत्र वहाँके पत्रोंकी तुलनामे नहीं टिक पाते। उनकी विविधता, नवीनता, मौलिकता और विशेषतामे कहींके पत्र भी प्रतिस्पर्धा नही कर सकते और न उनका मुकाबला ही कर सकते हैं। अमेरिकन पत्रोंके स्तम्भोंमे आप केवल संवाद ही नहीं पायेंगे, स्वास्थ्य, फैशन, सौन्दर्य, संस्कृति, विज्ञान, कला, साहित्य, उद्योग, व्यवसाय, व्यापार, कारीगरी, अर्थशास्त्र राजनीति, पाकशास्त्र, खेलकूद, सङ्गीत, सिनेमा, अभिनय, रेडियो, विवाह, शिशुपालन, कामशास्त्र और कामलीला, पशुपालन, कुत्ते, बिल्ली, आभूषण आदि सभी विषयोंपर विशेषज्ञों द्वारा लिखे

गये लेख और इन विषयोकी आलोचना, प्रत्यालोचना, टीका-टिप्पणी भी आप पायेंगे। अपने स्थानका बहुत बडा अश वे उपर्युक्त तथा उपर्युक्त प्रकारके अन्य विषयोको प्रदान करते हैं। यही कारण है कि अमेरिकामे आज ऐसी साढे तीन सौसे अधिक संस्थाएँ हैं जो अपने ग्राहकोंको उपर्युक्त सभी विषयो-पर विशेषज्ञोंके लेख, तत्सम्बन्धी संवाद, चित्र, कार्टून आदि प्रदान करती हैं। ये संस्थाएँ किसी भी पत्रके लिए अग्रलेखसे लेकर छोटेसे छोटे विषयपर, एक नही अनेक तथा विविध विषयोपर पूरा मसाला प्रदान कर देती हैं। अमेरिकन इन संस्थाओंको 'न्यूजपेपर सिण्डिकेट'के नामसे पुकारते है। स्पष्ट है कि न केवल अमेरिकन पत्रकार-कला उन्नत है बल्कि पत्र-व्यवसाय भी इसी प्रकार उन्नत है। अमेरिकन नवयुवक इस क्षेत्रकी ओर बडे उत्साहसे आकर्षित होते हैं और उनमेंसे कुछ पत्रकार-क्षेत्रमे अपना नाम अमर कर जाते हैं। पत्रकार-कलाकी शिक्षा देनेकी भी जो व्यवस्था अमेरिकामें है वैसी और कहीं नहीं है। आज अमेरिकामे महिला-पत्रकारोंकी संख्या भी दिन-दिन बढ रही है। युद्ध-कालमे तो उन्हें असाधारण उत्तेजन प्राप्त हो गया है। न जाने कितनी महिलाएँ संवाददात्री हैं। वाशिङ्गटन और न्यूयार्कके कई दैनिकोंमें तो महिला सम्पादिकाएँ तथा प्रकाशिकाएँ भी है। अमेरिकन अपने पत्रोंका आदर भी करते हैं और उनकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए सदा सजग रहते हैं।

पर सिद्धान्तकी दृष्टिसे उनकी स्वतन्त्र स्थिति और स्वतन्त्रताको स्वीकार करते हुए भी हम जब पत्रोंके दूसरे पहलूकी ओर दृष्टिपात करते हैं तो विचित्र अवस्था सामने उपस्थित होती है। स्वतन्त्रताके प्रश्नकी दृष्टिसे अमेरिका और ब्रिटेनके पत्रोंकी स्थिति समान है पर ब्रिटिश और अमेरिकन पूँजीवादने पत्रोंकी उत्पत्ति और सञ्चालनको आज विशुद्ध व्यावसायिक रूप प्रदान कर दिया है। पत्रोका व्यवसायीकरण किस प्रकार हुआ है और आज उसका स्वरूप कितना घृणित हो गया है इसपर हम अगले अध्यायमे विचार करेंगे पर यहाँ ब्रिटिश और अमेरिकन पत्रोंकी स्थितिपर विचार करते हुए इतना कहना अलम् होगा कि व्यवसायीकरणकी इस विभीषिकाने न केवल उक्त देशोंके पत्रोंको उनके आदर्श और उच्चपदसे च्युत कर दिया है बल्कि आज उनकी स्वतन्त्रता भी नष्ट कर दी है। इन देशोंके अधिकतर समाचारपत्रोंका प्रकाशन केवल पैसा कमानेकी इच्छासे

उनके पूँजीपति मालिकों द्वारा हो रहा है। जनता चूल्हेमें जाय, उसका हिताहित भाडमें जाय, पत्रोंकी मर्यादा और आदर्श भले ही भ्रष्ट हो जाय इन धन पशुओंकी सारी कामना और प्रयत्नका एकमात्र लक्ष्य यह है कि पत्रोंको रुपया कमानेका एक साधन बनाया जाय। सत्यको दबानेसे और झूठके प्रचारसे यदि यह काम होता हो तो वे उसे ही करेंगे। निराधार समाचारोंके द्वारा भी यदि जनतामें सनसनी पैदा करनेसे पत्रोंकी बिक्री बढ रही हो तो वैसा करनेमें भी सङ्कोच न किया जायगा। यदि साधारण जनता स्वभावतः कामलीलाकी बातें पढनेमें रस लेती है और इन सबको छापकर पत्रोंकी बिक्री बढायी जा सकती है तो उन्हे ही छापा जायगा। इसकी कोई चिन्ता न की जायगी कि जनवर्गके चरित्रपर, उसकी नैतिकतापर तथा व्यापक रूपसे सामाजिक जीवन-पर उसका कैसा विघातक प्रभाव हो सकता है।

पत्रकलाका वह आदर्श जिसके कारण पत्र और पत्रकार समाजमे आदरणीय स्थान प्राप्त कर सकते है, विनष्ट कर दिया जा रहा है। जहाँ पत्रोंका स्थान यह था कि मन्त्रिमण्डलोंको बनाने-बिगाड़नेकी सामर्थ्य उनमें थी, शासक-वर्ग और परोपजीवी किन्तु अधिकारप्राप्त पूँजीपति और सामन्त उनके गर्जनसे थर्राते थे और जनता उन्हे अपना हितैषी, गुरु, मित्र और सहा-यकके रूपमें देखती थी वहाँ आज वे ही पत्र धनलोलुपोंके हाथमे पड़कर उनके लोभ और स्वार्थपूर्तिके साधन ही नही हो रहे हैं अपितु समाजके जीवनपर भी गन्दा प्रभाव डाल रहे हैं। पत्रकलाको व्यवसायका रूप प्रदान कर देनेका परिणाम यह हो गया है कि पूँजीपतियोकी प्रभुता उनपर छा गयी है। आज वे पत्रोकी नीतिका निदर्शन करने लगे है। पैसा कमानेकी लालसाने एक और रोग पैदा कर दिया है। पत्रोको सबसे अधिक आमदनी विज्ञापन छापनेसे होती है पर विज्ञापनोंकी प्राप्तिके लिए भी यह आवश्यक हो गया है, कि पत्रोकी बिक्री जैसे भी हो खूब बढायी जाय। ब्रिटेनकी 'पोलिटिकल और इकनामिक प्लानिङ्ग समिति' ने ब्रिटिश पत्रोकी जॉच-पड़ताल करनेके बाद अपनी रिपोर्टमें लिखा है कि 'एक ऐसे दैनिक पत्रका प्रकाशन करनेके लिए जिसकी बिक्री प्रति-दिन २० लाख प्रतियोतक पहुँचती हो कमसे कम २० लाख पौण्ड (१ पौण्ड बराबर है तेरह रुपये पाँच आनेके) की पूँजी चाहिये।' रिपोर्टमें कहा गया है कि

उत्पन्न माल कुल ३० लाख पौण्डका मान लिया जा सकता है। आमदनीके दो विभाग हैं—विज्ञापनसे और पत्रकी बिक्रीसे। विज्ञापनकी मदसे १८ लाख पौण्ड और बिक्रीसे १६ लाख पौण्डकी आमदनी मानी जाती है।' पाठक विचार करें कि जहाँ पत्रोंके व्यवसायमें लाखों पौण्डसे कमकी बात ही न होती हो वहाँ यदि विज्ञापन देनेवालोंसे ६० प्रतिशत आय हो तो उनका कितना अधिकार जमा हुआ होगा। फलतः जहाँ पूँजी लगानेवाले पूँजीपतियोंने पत्रोंको गुलाम बना रखा है वहाँ विज्ञापनबाजी करनेवाले व्यापारियोंको प्रसन्न करना और उनके इशारेपर चलना पत्रोंके मालिकोंकी नीति हो गयी है।

रिपोर्टमें कहा गया है कि ३ लाख पौण्ड विज्ञापन और बिक्री बढ़ानेके लिऐ कनवेसिङ्ग करनेमें और १ लाख पौण्ड 'पाठकोंके बीमे' का खर्चा होता है तब कहीं उपर्युक्त आमदनी होती है। कनवेसिङ्ग और 'पाठकोंका बीमा' क्या बला है इसपर अगले अध्यायमें प्रकाश डाला जायगा। यहाँ तो इतना ही समझ लीजिये कि पत्रोंकी बिक्री बढ़े बिना विज्ञापन नहीं मिलता, अत. बिक्री बढ़ाना ही एकमात्र लक्ष्य हो गया है। इसके लिए न केवल पाठकोंके मनकी दुर्बलता और हीन प्रवृत्ति तथा लिप्साको तरह-तरहकी बातें छापकर जगाया जाता है बल्कि नये-नये प्रकारसे उन्हें अपना पत्र खरीदनेके लिए प्रलोभन भी दिया जाता है जिसे हम एक प्रकारकी घूस समझ सकते हैं। 'पाठकोंका बीमा' भी घूस देनेका ही आयोजन है। विज्ञापन छपानेवाले व्यापारी उन्हीं पत्रोंमे अपना विज्ञापन छपायेंगे जिनकी बिक्री उनकी समझमें यथेष्ट होगी। आखिर वे गहरी फीस भी तो देते हैं। 'डेली मेल' मुखपृष्ठ पर विज्ञापन छापनेके लिए चौदह सौ पौण्ड लेता है। स्तम्भोमे प्रत्येक इञ्च विज्ञापनके लिए विविध पत्रोंकी विभिन्न दर है। 'डेली एक्सप्रेस' जिसकी बिक्री प्रायः २५ लाख कापियों-तक पहुँचती है, ६ पौण्ड दस शिलिङ्ग प्रति इञ्च वसूल करता है। 'डेलीमेल' और 'डेली हेरल्ड'का रेट ६ पौण्ड प्रति इञ्च है, क्योंकि इनकी बिक्री १५ लाखसे २० लाख तक पहुँचती है। 'टाइम्स'की बिक्री यद्यपि २ लाख प्रतियाँ प्रतिदिनसे अधिक नहीं है फिर भी अपने पद और गौरवके कारण वह ३ पौण्ड प्रति इञ्च लेता है। क्या भारतके पत्रकार और पत्र-व्यवस्थापक कभी इसकी कल्पना भी कर सकते हैं? ७०,७२ रुपये प्रति इञ्चके विज्ञापनकी दरकी बात

हम सोच भी नहीं सकते। पर इंग्लैण्डके पत्रोंकी यह आमदनी है जो पूँजीपतियोंकी जेब भर रही है और उनकी धन-लिप्साको बढ़ा रही है जिसके फलस्वरूप पत्रोंका व्यवसायीकरण हो गया है।

सीधी सी बात है कि आज विज्ञापनबाज व्यापारियों और पूँजीवादी व्यवसायियोंके हाथमें वहाँके संवादपत्र पूरी तरह अपनेको समर्पित कर चुके है। अमेरिकामें वहाँके पत्रोंके मालिक बहुधा अपने पत्रके सम्पादकोंके पास ऐसी व्यापारी कम्पनियोंकी तालिका भेज देते हैं जिनकी शिकायत कभी भी न करनेका आदेश दे दिया जाता है। हुक्म होता है कि इन कम्पनियोंके सम्बन्धमें अगर कभी कुछ प्रकाशित हो तो वह प्रशंसाकी ही बात होनी चाहिये। एक अमेरिकन पत्रके कार्यालयमें ऐसी कम्पनियोंको 'पवित्र गौ' के नामसे पुकारा जाता था। इंग्लैडमें भी ऐसी रीति कुछ क्षेत्रोंमें प्रचलित है, यद्यपि अंग्रेज अपने स्वभावानुसार इस गन्दी नीतिको बड़ी सावधानीके साथ छिपाकर परिचालित करते हैं। परिणाम यह हो रहा है कि पत्रकी नीतिका सञ्चालन पत्रोंके मालिक अपने खरीदार विज्ञापनबाजोंके मनके मुताबिक करनेके लिए बाध्य होते हैं। पूँजीवादी व्यवस्थाके विधाताओंकी प्रमुख प्रवृत्ति यह होती है कि किसी भी प्रकारका परिवर्तन स्थापित वर्त्तमान व्यवस्थामें नहीं होने देना चाहिये। आजके आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक ढाँचेमें उन्हे रत्तीभर भी उलटफेर पसन्द नहीं है क्योंकि इसीमे उनका स्वार्थ निहित है और इसीसे उनके स्वार्थकी पूर्ति होती है। कट्टरपन और अपरिवर्तनके पुजारी इन दकियानूसोंके हाथमें प्रेसके समान वह शस्त्र पहुँच गया है जो जनताको उभाड़ने, जगाने, कर्मनिरत करनेका काम करता रहा है। आज शोषकों, उत्पीड़कों और शासकोंके विरुद्ध जो आवाज उठा सकता था वही उनका गुलाम हो गया है। इंग्लैण्ड और अमेरिकाके बड़े-बड़े व्यवसायी और पूँजीपति ही वहाँके शासक भी हैं फलतः उन्हें अनायास ही इन पत्रोंका समर्थन प्राप्त हो जाता है। भले ही समय-समयपर वे उनकी टीका-टिप्पणी करें पर उस समय जब वर्गसङ्घर्ष तीव्र होता है और जब जनवर्ग कुछ क्षुब्ध दिखाई देता है तो ये सबके सब एक होकर आगत परिवर्तनकी आशङ्कासे अपने वर्गकी सरकारको बचानेका यत्न करते हैं। पुरातन व्यवस्था और पुरातन इंग्लैण्ड तथा पुरातन अमेरिकाकी रक्षा करना इनकी नीति

रहती है। पत्रकार आज महत्त्वहीन पद रखता है। उसका वह स्थान ही नहीं रह गया जो आजसे आधी शताब्दी पूर्व था। फलत. अमेरिका और ब्रिटेनके पत्रोंमें आप न प्राणका स्पन्दन देखेंगे, न क्रान्तिकी लहरीका दर्शन पायेंगे और न उनमें प्रगतिशीलता दिखाई देगी। ऐसा ज्ञात होता है कि उनमे न जीवनकी गति है और न युगकी पुकारकी प्रतिध्वनि।

विलासियोके विलास और दुर्वल मानवकी कामनाओंको उत्तेजन प्रदान करनेवाली बातें भले ही देख लें। भले देख लीजिये जूआ, शतरञ्ज, रेस्, सट्टेबाजी, क्रासवर्ड (शब्द-पहेली) प्रतियोगिता आदिकी भरमार। हत्या, गबन, तलाक, व्यभिचार और डकैतीके समाचारोंका विस्तृत विवरण सनसनीदार मोटे शीर्षकोंमे प्रकाशित हुआ भी देख लीजिये। बडे-बडे लार्डों और लेडियों तथा उनकी बेटियोकी दिनचर्या तथा सुन्दरताका मनोरञ्जक वर्णन भी पढनेको मिलेगा; किसी बडे घरानेके लडके-लडकियोंके प्रणयकी कहानी भी छपी रहेगी, पर किसी गम्भीर प्रश्नकी विवेचना यदि करनी हो और उसकी उपेक्षा यदि न की जा सकती हो तो उसे कोनेमे स्थान दे दिया जायगा।

श्री हेमिल्टन फाइफने ब्रिटिश पत्रोंकी टीका करते हुए अपनी मनोरञ्जक पुस्तक 'प्रेस परेड' में लिखा है कि 'हमारा प्रेस पूँजीपतियोके अधिकारमे है अतः स्वभावतः उसकी सारी चेष्टा धन और पूँजी तथा अधिकारके विरुद्ध किसी प्रकारका खतरा उत्पन्न न होने देनेके लिए ही होती है। पूजीपति पत्र-मालिक अपने मुनाफेके लिए तथा विज्ञापनसे होनेवाली आमदनीके लिए यह आवश्यक समझता है कि ब्रिटिश राष्ट्रको कुछ सोचने या विचारनेका अवसर न दिया जाय। कुछ भी सोचने न दिया जाय और विशेपकर आर्थिक तथा राजनीतिक सङ्घटनमे परिवर्तन करनेकी भावना और विचारको उगनेका भी मौका न दिया जाय, फलत. उसके समाचारपत्र जनवर्गके विचारोंको ओछी बातोंकी ओर मोडे रहनेमें अपनी सारी शक्ति लगा देते है। जब किसी गम्भीर विषयकी ओरसे जनताके मनको मोडे रहना हो तो उसके सामने नये-नये प्रकारकी छोटी किन्तु मनोरञ्जक बातें पेश करना एकमात्र उपाय माना जाता है। सट्टेबाजी, खेल-कूद और घोडोकी दौड तथा विभिन्न प्रकारके जूएका वर्णन छापकर ऐसी उत्सुकता और उत्तेजना प्रदान की जाती है कि जनताका मन उधर ही

लगा रहता है। जीवन-मरणके प्रश्नोंकी ओर, शोपण और उत्पीड़नके प्रश्नोंकी तरफ जहाँतक हो कोई सङ्केत भी होने न पाये।'

फलतः शोपितोंके निर्दलनके विरुद्ध आपको उनमें जलती आगके अङ्गारे नहीं दिखाई देंगे और न जर्जर तथा निकम्मी व्यवस्था और रूढियोके विरुद्ध विद्रोहकी हुङ्कार सुनाई देगी। हमारा दृढ मत है कि इंग्लैण्ड और अमेरिकाका जनवर्ग जो आज क्रान्तिकारी भावोंसे अछूता और स्वयमेव निष्क्रिय दिखाई देता है उसका एक बडा भारी कारण यह भी है कि वहाँके समाचारपत्र, जो जनजीवनमें घुसे रहते हैं, उसकी सारी शक्ति और चेतनापर पानी फेरकर स्थापित व्यवस्थाका गुणगान किया करते है।

इंग्लैण्डमें जब कभी मजदूर दलकी सरकार शासनारूढ़ हुई है तो उसे कुछ ही महीनोंमें या दो एक वर्पमें ही पदत्याग करना पडा है। हम समझते हैं कि इसके अनेक कारणोंमेंसे एक वड़ा कारण यह भी है कि पूँजीवादियों द्वारा नियन्त्रित पत्रोंने उसकी जड़ खोदनेमें और उसे असफल बनानेमें कुछ उठा नहीं रखा। यह ठीक है कि ब्रिटिश मजदूरदलके भी कुछ पत्र हैं; 'डेली वर्कर' ब्रिटिश कम्यूनिस्ट पार्टीका प्रमुख पत्र है जो अपनी मर्यादाको बचाये हुए है और विज्ञापनवाजो या पूँजीपतियोके दुश्चक्रसे मुक्त है; पर मजदूर दल हो या और कोई प्रगतिशील दल उसके दो चार पत्र रहकर ही कितना कर सकते है? व्यापक जनसमूह उन दर्जनो पत्रोंसे प्रभावित होता है जो सुविधासम्पन्न वर्गोंके हाथकी कठपुतली हैं और जालकी तरह फैले हुए हैं। इस प्रकार यद्यपि ब्रिटिश अमेरिकन पत्र स्वतन्त्र माने जाते हैं पर वस्तुतः वे पूँजीपतिवर्गके अधीन है और अप्रत्यक्षरूपसे उसी वर्गकी सरकार और उसी वर्गके हितमें स्थापित व्यवस्थाके समर्थक हैं। आज तो प्रेसकी स्वतन्त्रताका नाम लेकर वे सिद्धान्तके आवरणमें अपना ही हित-साधन कर रहे हैं। यदि किसी समय इंग्लैण्ड या अमेरिकामें प्रगतिशील और क्रान्तिकारी विचारोंकी सरकार पदारूढ हो गयी तो उसके सामने इन पत्रोंकी समस्या वडे विकट रूपमें उपस्थित होगी। क्रान्तिविरोधी और दकियानूस वर्गके हाथोमें उसके स्वार्थके साधक बने हुए पत्रोंको स्वतन्त्रताके नामपर क्या यह अधिकार दिया जाय कि वे वर्गविशेपके हितके लिए उस सरकारके विरुद्ध उसके मार्गमें काँटे बिछायें जो आगे बढना

चाहती है ? शायद ब्रिटिश पूँजीपति जानते हैं कि यह स्थिति किसी समय आ सकती है और शायद इसी कारण वे अबतक प्रेसकी स्वतन्त्रताका नाम ले लेकर चिल्लाते हैं। यदि ऐसा न होता और अधिकतर पत्र विरोधी वर्गोंके हाथमें रहे होते तो कदाचित् ब्रिटेन और अमेरिकाने भी अबतक इटली और जर्मनीका पदानुसरण कर लिया होता।

पत्रोंका व्यवसायीकरण

ब्राइसने अपने महान ग्रन्थ 'आधुनिक प्रजातन्त्र' (माडर्न डिमाक्रेसीज़) में समाचारपत्रोंकी चर्चा करते हुए लिखा है कि 'आजके पत्र वह साधन हो गये हैं जिनके द्वारा राजनीतिमें धनकी महिमाके प्रभावका अनुभव किया जा सकता है'। पिछले अध्यायमें इंग्लैण्ड और अमेरिकाके पत्रोंकी स्थितिपर प्रकाश डालते हुए हमने लिखा है कि वहाँके पत्र सरकारकी ओरसे स्वतन्त्र होते हुए भी पूँजीपतियोंके चङ्गुलमें फँस गये हैं। आज ब्राइसका कहना उपर्युक्त देशोंके पत्रोंके सम्बन्धमें सोलहो आने ठीक उतरता है क्योंकि धनिकवर्ग उनके द्वारा न केवल अपरिमित धन कमा रहा है बल्कि देशके राजनीतिक जीवनका सञ्चा-लन वर्तमान सामाजिक और आर्थिक स्थितिको बनाये रखनेके लक्ष्यसे अपने इच्छानुसार करनेमें समर्थ हो रहा है। पत्र-सञ्चालनको जबसे व्यवसायका रूप दिया गया, जबसे पत्र धन कमानेके साधन बना दिये गये और जबसे उनके सञ्चालनके लिए लाखों रुपयोंकी पूँजीकी आवश्यकता हुई उस समयसे पत्रोंकी वह मर्यादा और आदर्श गिरने लगा जिनके कारण उनका जनजीवनमें मुख्य स्थान था। व्यवसायीकरणकी इस विभीषिकाके कारण पत्रकारीमें पूँजी-पति, मालिक और उसके व्यवस्थापकका स्थान ऊँचा होने लगा पर जो पत्रोंके प्राण होते हैं, जो जनताके हितके लिए उसका सञ्चालन करते हैं, जिनके लिए पत्र-कला पुनीत साधना और महान ध्येयकी पूर्तिका साधन होती है वे पत्रकार उनके अधीन पदपर स्थित किये जाने लगे। इस स्थितिमें पत्रोंकी जो स्थिति हो सकती है और कर्तव्यके पथसे वे जिस प्रकार भ्रष्ट हो सकते हैं उसकी कल्पना सहजमें ही की जा सकती है। 'लन्दन टाइम्स' के एक भूतपूर्व व्यवस्था पक मावर्लीबेलने पत्रोंके आदर्शकी व्याख्या करते हुए कहा है कि 'आधुनिक पत्र-कलाका आदर्श आधुनिक व्यवसायका ही आदर्श है'। व्यवसायीकरणके कारण पत्रोंको यह भ्रष्टता प्रदान कर दी गयी।

हमें पत्रकार होनेके नाते पत्र-सञ्चालनको व्यवसायके नामसे पुकारनेमें भी चिढ मालूम होती है। भारतमें यद्यपि पत्रोंका प्रकाशन लगभग उसी समयसे

हो रहा है जबसे इंग्लैण्ड आदि देशोंमें आरम्भ हुआ फिर भी यहाँ अबतक पत्र-प्रकाशनको वह रूप नहीं मिला है जो इंग्लैण्ड और अमेरिकाके पत्रोंको प्राप्त हो गया है। व्यवसायीकरण और पूँजीवादका अभिशाप अपने निकृष्ट रूपमें हमारे सिर अबतक नहीं घहरा सका है यद्यपि उसकी प्रवृत्ति धीरे-धीरे उदीयमान होती दिखाई दे रही है। भारतीय पत्रकारोंके लिए अब भी समय है कि वे धन-लोलुपोंकी इस कुप्रवृत्तिको फलने-फूलनेके पूर्व आरम्भमें ही रोक दें। जनहितके लिए, अपने पुनीत आदर्श और ध्येयके लिए, न्याय और मानवताके लिए उन्हें यह महान कार्य सम्पन्न करना होगा। आज अनेक प्रश्नोंमें एक बड़ा भारी प्रश्न उनके सामने यह भी है। उन्हें इसे हल करना है, और हल करना पड़ेगा यह जानकर ही हमने उचित समझा कि इस अध्यायमें संक्षिप्तरूपसे इस बातकी चर्चा की जाय कि किस प्रकार पत्र-प्रकाशनका पवित्र कार्य क्रमश. व्यावसायिक पदपर पहुँचा दिया गया और उसका वर्तमान स्वरूप कितना विकृत तथा हानिकारक हो गया है। पत्र, जिसे उज्ज्वल प्रतिभाका स्थान मिलना चाहिये था, धनकी वासना-पूर्तिका साधन बना और साधनसे व्यवसाय हो गया।

पूँजीपतियोंके व्यवसायवादके इस रोगका जन्म प्रथमत इंग्लैण्डमें हुआ। अबसे अर्द्ध-शताब्दी पूर्वतक वहाँके पत्रोंकी स्थिति कुछ दूसरी थी। तबतक पत्रोंका स्वरूप, उनकी छपाई, उनका मेक-अप आदि बहुत सीधा-सादा था और उनका काम राजनीतिक प्रश्नोंकी विवेचना और समीक्षातक ही परिमित था। पत्रोंके पाठकोंकी संख्या भी परिमित थी। जो राजनीति, अर्थनीति अथवा शासन-कार्योंमें लगे हुए थे, जो सुपठित और अध्ययनशील थे वे ही पत्रोंको पढते और तत्कालीन सम्पादकोंकी लेखनीसे निर्गत विविध प्रश्नोंकी पाण्डित्यपूर्ण विवेचना तथा मौलिक सूझसे अपना ज्ञान-भाण्डार बढाते और मार्गका निदर्शन प्राप्त करते। यह ठीक है कि तत्कालीन पत्रोंमें बड़ा भारी दोष यह था कि वे रसहीन, आकर्षणहीन तथा एकाङ्गी थे, जीवनके और किसी पहलूसे उनका सम्बन्ध न था, राजनीति, अर्थनीति या मुद्रा और विनिमय सम्बन्धी नीतिकी विवेचनासे, शेयरोंके भाव और बाजार-दरकी टीका-टिप्पणीसे, पार्लमेण्टमें हुई बहसोंकी लम्बी-लम्बी रिपोर्टोंसे तथा सम्पादकको लिखी गयी बेशुमार

चिट्ठियोंको प्रकाशित करके पत्रका कलेवर भर दिया जाता था ; मनुष्यकी भावुकता, काल्पनिकता अथवा मनोरञ्जनके लिए कोई स्थान न था ; पर समय-ने पलटा खाया और धीरे-धीरे इस स्थितिमें परिवर्तन हुआ।

सन् १८७० ईसवीमें जब ग्लैड्स्टन ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री थे वहाँकी शिक्षा-व्यवस्थामें सुधार हुआ। 'एडुकेशन ऐक्ट' के नामसे एक कानून पार्लमेण्टने बनाया जिसके अनुसार शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी। थोडे ही दिनों बाद इग्लैण्डमें साक्षरोंकी भारी भीड पैदा हो गयी। पारदर्शी दृष्टिवालोंसे यह बात छिपी रही कि पाठकोंकी विशाल मण्डली तैयार हो गयी है जिनके लिए पत्र निकाले जायँ तो उनके ग्राहकोंकी कमी न रहेगी। फिर लोकतन्त्रात्मक शासनपद्धतिके कारण इन नये साक्षरोंको जिनके हाथोंमें वोटका बहुत कुछ अधिकार था, राज-नीतिक शिक्षा देनेकी भी आवश्यकता प्रतीत हुई। पर स्पष्ट था कि ये उस वर्गके न थे जो रसहीन और केवल सिद्धान्तों तथा शास्त्रोंकी चर्चा करनेवाले पत्रोंको पढनेकी सामर्थ्य रखता था। साधारण जनता जीवन सम्बन्धी साधारण बातोंको जानना चाहती थी क्योंकि उसे उसीमें दिलचस्पी हो सकती थी। बडी बातें भी कहनी हों तो सीधे-सादे ढङ्गसे कहना आवश्यक था। फिर उसको अपनी कमाईमेंसे कुछ पैसे प्रतिदिन निकालकर समाचारपत्र खरीदनेमें खर्च करनेको उभाडनेके लिए यह आवश्यक था कि पत्रोंको ऐसा बनाया जाय कि वे न केवल ज्ञान प्रदान करें बल्कि उसके जीवनके सभी अङ्गोंका स्पर्श करें, उसका मनोरञ्जन करें और उसकी दिन-प्रतिदिनकी विविध समस्याओंपर प्रकाश डालें। साथ ही यह भी आवश्यक था कि पत्रोंका मूल्य इतना कम कर दिया जाय कि प्रतिदिन मेहनत-मजदूरी करके अपना परिपालन करनेवाले भी सरलतासे उन्हें खरीद सकें।

फलतः उन्नीसवीं शतीके अन्तिम चरणमें इग्लैण्डमें पत्र-कलामें नवयुगका उदय हुआ। सन् १८८३ ईसवीमें ब्रिटेनके 'पालमाल गजेट' के सम्पादक डब्लू० टी० स्टीड तथा सन् १८८८ में प्रकाशित 'स्टार' पत्रके सम्पादक टी० पी० ओकोनोरने पत्रकारीको नयी दिशाकी ओर मोड़ा। इन पत्रकारोंने अपने पत्रोंमें मनोरञ्जन और आदर्शवादका उत्तम सामञ्जस्य स्थापित किया। वे एक ओर जनताको मनोरञ्जनकी सामग्री प्रदान करते थे, शिष्ट भावोंसे

परिपूर्ण भावुकताको प्रश्रय देते थे, तो दूसरी ओर अपने सम्मुख उत्कृष्ट लक्ष्य भी रखते थे। 'स्टार'ने अपने ध्येयकी व्याख्या करते हुए जो पंक्तियाँ लिखी थीं वे आज भी पत्रकारोंके लिए उसी प्रकार उज्ज्वल आदर्शके रूपमे स्थित हैं जिस प्रकार उस समय थीं। वह कहता है 'धनी, सुखी और सुविधासम्पन्नोंके हिमायतियोंकी कोई आवश्यकता नहीं है पर जो निर्धन, दुर्बल और सताये हुए हैं उन्हें प्रत्येक सहृदय नरनारीकी सहायता, सहयोग और सहानुभूतिकी आवश्यकता होती है। साम्राज्य और उपनिवेश तथा यूरोपकी शक्तियोंमें हमारी धाककी बातें हमारे लिए बिलकुल थोथी और निकम्मी हैं। साधारण और दबी हुई जनता अधिक उन्नत हो, स्वप्रकाश कर सके, उसके भूखे पेटको अधिक रोटी मिल सके, उसे कामकी कमी न हो और उसकी निर्दलित आत्मा स्वाभिमान तथा आनन्द, पवित्रता और मानवताका अनुभव कर सके, हमारे लिए राष्ट्रीय महत्ता और गौरव तथा प्रगतिशीलताके यही अर्थ होते हैं। सुविधा और विशेषाधिकार मानवताके पतनका कारण हुआ है क्योंकि वह मनुष्यको स्वार्थी बना देता है। लार्ड सभा, सम्पत्तिके आधारपर वोटका अधिकार तथा पार्लमेण्टरी जीवनपर धनिकोंका एकाधिपत्य आदि सभी बातें विशेष वर्गोंके अधिकारोंकी द्योतक हैं जिनका उन्मूलन करना हमारा लक्ष्य है'।

आजसे पचास वर्ष पूर्वके पत्रकारका यह आदर्श था। पत्रकारकी लेखनी जनताके जीवनको स्पर्श करनेके लिए चल पडी थी। उसका मनोरञ्जन करना, उसे ज्ञान और बल तथा उत्साह प्रदान करना, उसमें चरित्र और व्यक्तित्वका विकास करना उसका लक्ष्य था। वह शोषण और उत्पीडनके विरुद्ध धर्मयुद्ध छेडनेके लिए आगे बढी थी, फलतः ओजस्विता और स्पन्दनसे गर्भित थी। इसके पहलेके संवादपत्र यदि केवल विचारपत्र थे और उनका स्वरूप शुष्क शास्त्रीय था तो अब वे नये आदर्शको लेकर जनताके सूखे जीवनमें ओज और रस प्रदान करनेके लिए आगे बढे। पर यह स्थिति अधिक दिनों-तक न रह सकी।

पत्रोंके जीवनमें एक और क्रान्ति शीघ्र ही आयी जब कुछ लोगोंने उन्हे मुनाफा कमानेका यन्त्र बना डाला। व्यावसायिक बुद्धि रखनेवाले तीखी सूझके लोगोंसे

यह बात छिपी नहीं रही कि नये साक्षरोंकी वह भीड़ पैदा हो गयी है जिसमें उत्सुकता और जिज्ञासा है और जिसके लिए समाचारपत्रोंके सिवा दूसरा कोई साहित्य नहीं है। उसे ग्राहक बनाकर पत्रोंसे धन कमाया जा सकता है। इस दिशामें सर्वप्रथम कदम उठानेका 'श्रेय अलफ्रेड' हार्म्सवर्थ नामक व्यक्तिको प्राप्त है जो बादमें चलकर लार्ड नार्थक्लिफके नामसे प्रसिद्ध हुआ। अलफ्रेड हार्म्सवर्थ किशोरावस्थासे ही पत्रकार था। उसके पिता बैरिस्टर थे और यह युवक अपने पिताका बडा पुत्र था। सत्रह वर्षकी अवस्थासे ही वह लन्दनमें स्वतंत्र पत्रकारका जीवन यापन कर रहा था और पत्रोंमें लेख वगैरह लिखनेका काम करता था। कुछ दिनों बाद सन् १८९२-९३ ईसवीमें वह कतिपय साप्ताहिक पत्रोंका प्रकाशन करके धन भी कमाने लगा।

पत्रकार होनेके साथ-साथ व्यावसायिक बुद्धिवाले इस नवयुवककी दृष्टिमें यह बात आ गयी कि ऐसे दैनिक पत्रके लिए क्षेत्र तैयार हो गया है जो साधारण जनताकी जिन्दगीके तमाम पहलुओं और प्रश्नोंको लिये-दिये प्रकाशित हो और उसकी कीमत भी इतनी कम हो कि साधारण आदमी भी खरीद सके। नार्थक्लिफने अपनी बुद्धिमे यह कल्पना कर ली कि नये पत्रका स्वरूप कैसा होना चाहिये। समाचारोंका सङ्कलन इस ढङ्गसे किया जाय कि उनमें जीवनके सभी अङ्गोंके सम्बन्धकी चर्चा हो जाय। शीर्षकोंमे इतना अर्थ भरा जाय कि उन्हे देखते ही पाठक न केवल उत्सुक हो जाय बल्कि संक्षेपमें उसके नीचेके सारे समाचारका अर्थ भी समझमे आ जाय। लम्बी लम्बी रिपोर्टें और लेख पढनेका अवकाश काममे व्यस्त दिन-प्रतिदिनकी रोटी कमानेवाले साधारण आदमीको कहाँ मिलता है? फलतः मुख्य बातोंको लेकर समाचारों तथा रिपोर्टों-का सार रोचक ढङ्गमे प्रकाशित किया जाय। पाठकोंकी दिलचस्पी अधिक देर-तक किसी एक मामलेपर नहीं टिक सकती अतः 'मेक-अप' इस ढङ्गसे किया जाय कि एकके बाद दूसरे विषय सामने आते रहे। ऐसी बातों या लेखोंकी भरमार न होनी चाहिये जिन्हें पढने और समझनेमें बुद्धि और मस्तिष्कपर अधिक जोर देना पड़े। समाचार भी अधिकतर ऐसे हों जो जीवनकी साधारण और दूसरी सतहसे सम्बन्ध रखते हों और जो छिछली भावुकता तथा छिछली उत्सुकता उत्पन्न करते हों। व्यक्ति जिस प्रकार प्रायः सब बातोंको

व्यक्तिगत दृष्टिसे देखता है और व्यक्ति-व्यक्तिके जीवनमें दिलचस्पी लेता है उसी प्रकार समाचारपत्र उपर्युक्त दृष्टिको सामने रखकर प्रश्नों और संवादोंको उपस्थित करे। जो बातें विशेष रूपसे सनसनी पैदा करती हों उनका अच्छे ढङ्गसे प्रदर्शन हो। पत्रोंमें जितने अधिक विषयोंका समावेश हो सकता हो किया जाय। छोटी-बडी सभी बातोंके साथ-साथ चित्रादिसे, उन्हें सुशोभित करना आवश्यक समझा जाय।

नार्थक्लिफने संक्षेपमें इसी ढङ्गके दैनिक पत्रकी कल्पना की और सन् १८९६ ईसवीकी चार मईको ब्रिटेनके प्रसिद्ध 'डेली मेल' का प्रकाशन हुआ। केनेडी जोंसने लिखा है कि 'मेल'के प्रकाशनके पूर्व महीनोंतक 'डमी' संस्करण निकाला गया। 'डेली मेल' आधुनिक पत्रोंके स्वरूप और आधुनिक पत्रकलाका जनक समझा जाता है जिसके प्रवर्त्तक नार्थक्लिफ कहे जा सकते हैं। इस कार्यमें नार्थक्लिफके अनुज हेरल्ड हार्म्सवर्थ जो बादमें लार्ड रदरमेयरके नामसे प्रसिद्ध हुए उनके सहायक थे। प्रसिद्ध पत्रकार केनेडी जोंस भी उनके साथी थे। 'डेली मेल'का मूल्य भी आध पेनी रखा गया और तभीसे आध 'पेनी पेपर्स'की शुरूआत हुई। पुराने पत्रकारोंने कभी इस विषयपर विचार ही नहीं किया था कि वे जो कुछ प्रकाशित करते हैं उसके पढनेवाले कितने हैं और परिमित संख्याको छोड़कर औरोंके लिए उसकी कोई उपयोगिता है भी या नहीं। उन्हें इसकी चिन्ता ही न थी कि उनका पत्र पढ़ा जाता है या नहीं। संवाददाताओं और समाचारोंकी एजेंसियोंसे जो मसाला उन्हें मिलता उसे छापकर पत्रका कलेवर भर देते। उनकी एक परम्परा थी, एक ढङ्ग था और एक लकीर थी जिसपर दृढतापूर्वक चले चलना उनका काम था। समाचारोंको समाचार बनाना वे नहीं जानते थे। अब नयी पत्र-कला उदय हुई और उसने वस्तुत यही किया। नये पत्रकी समाचार सम्बन्धी कल्पना विस्तृत थी और उसके स्तम्भोंमें वे तमाम बातें भी आने लगीं जिनकी अबतक उपेक्षा की जाती थी।

लार्ड नार्थक्लिफकी विशेषता यह थी कि उन्होंने सामाजिक जीवनमें हुए परिवर्तन और उसकी नयी माँगका अनुभव किया, फलतः बुद्धिमान् व्यावसायिककी भाँति उस माँगकी पूर्तिके लिए वे अग्रसर हुए। 'डेली मेल' का एक भाग विशेष बातों (फीचर्स) के लिए नियत कर दिया गया। कहानी,

महिला संसार, मनोरञ्जन, हास्य, दुनिया भरकी संक्षिप्त राजनीतिक तथा सामाजिक जीवनकी विशेषताएँ, शिशुपालन, रहस्यपूर्ण घटनाएँ, अपराध, अदालतोंमें चलनेवाले सनसनीदार मामले, गुप्तचरोंके कारनामे, रेस आदिके समाचार छापे जाने लगे। समाचारोंके छापनेका और उपस्थित करनेका ढङ्ग भी दूसरा हो गया। उदाहरणके लिए एक घटनाका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। श्री ए० जी० गार्डिनर नामक लेखक आधुनिक पत्रोंकी शिकायत करते हुए लिखते हैं कि एक नगरमें एक उदार सज्जनने वहाँकी जनताके लिए एक सार्वजनिक भवन बनवाया जिसका उद्घाटन शाही वंशके किसी ड्यूकके करकमलोंसे कराया गया। नवोदित पत्रोंमें उसकी रिपोर्ट छपी। रिपोर्टमें उस बिचारे उदार सज्जनका, जिसने दान देकर भवन-निर्माण कराया था, नाम तक उल्लिखित न था पर उद्घाटनकर्ता शाहीवंशज महानुभावके आने, बैठने, बोलने और बात करनेके ढङ्गका, स्थानकी सजावटका और उपस्थितोंमें कौनसे नरनारी कितने चित्ताकर्षक और मोहक थे आदि बातोंके वर्णनसे स्तम्भ भर दिया गया। उक्त संस्थाका भी उल्लेख चलते खाते ही किया गया।

श्री गार्डिनरकी शिकायत ठीक ही थी और यह संवाददाताकी भूल थी कि दानी सज्जनका नामोल्लेखतक न किया पर उन्होंने यह नहीं समझा कि अब समाचार सम्बन्धी कल्पना ही बदल रही थी। 'डेली मेल' ने समाचारकी कसौटीकी व्याख्या करते हुए कहा कि 'जो बात साधारण लोगोंके लिए मनोरञ्जक और सरस हो वही समाचार है'। इम्पीरियल प्रेस-सम्मेलनमें श्री टायक्लार्कने यही बात इन शब्दोंमें कही कि 'लन्दनके प्रेस अब केवल घटनाओंको हूबहू प्रकाशित कर देना नहीं चाहते और न केवल ब्रिटिश उपनिवेशोंकी जनताकी संख्या और वहाँकी उपजको छापकर सन्तोष करना चाहते हैं। वे मनोरञ्जक समाचार चाहते हैं जो प्रचारका सबसे उत्कृष्ट साधन होता है'। इस प्रकार पुराने पत्र घटनाओंको जहाँ उनके विशुद्ध रूपमें प्रकाशित मात्र कर देना पर्याप्त समझते थे वहाँ अबके पत्रोंकी दृष्टिमें उन्हीं घटनाओंको इस ढङ्गसे उपस्थित करना आवश्यक समझा गया तथा उनके उन अङ्गोंपर जोर देना जरूरी माना गया जो जनताको आकर्षित कर सकें और उसका मनोरञ्जन करनेमें समर्थ हो सकें। यह फर्क था नयी और पुरानी पत्रकलामें। परिणामतः

साक्षर जनताके लिए नये पत्रोंका प्रकाशन एक वरदान हो गया। 'डेली मेल' तत्काल लोकप्रिय हो गया और उसकी बिक्री पहले ही वर्ष दो लाख कापियाँ रोजतक पहुँच गयी। तीन वर्षमें पाँच लाख और पाँच सालमें दस लाख कापियाँ तक बिकने लगी।

देशमें 'डेली मेल' की धूम मच गयी। केनेटी जॉसने लिखा है कि पहले ही दिन मेलकी करीब ३ लाख ९५ हजार प्रतियाँ बिकीं यद्यपि अगले दो महीनोमे औसत बिकी दो लाख प्रतिदिनकी रह गयी थी। एक समय आया जब उसकी पन्द्रह लाख प्रतियाँ प्रतिदिन बिकने लगीं। जिधर देखिये वह छाता हुआ दिखाई देता। नाथक्लिफने अनुभव किया कि किसी भी पदार्थका सबसे बड़ा विज्ञापन यही है कि लोग उसके बारेमें चर्चा करनेको बाध्य किये जायँ। पदार्थ ही नहीं पर व्यक्ति भी सबसे अधिक नाम या कुनाम इसी प्रकार कमाता है। कुछ ऐसी बात कीजिये—भली या बुरी—जिसके कारण लोग चर्चा करनेके लिए बाध्य हों। फिर क्या, आप अखिल भारतीय यशके व्यक्ति हो जायँगे। 'डेली मेल' ने इस तथ्यको समझा और अपनी चर्चा करानेके लिए तरह-तरहकी नीति बरतने लगा। आजकी अखबारी भाषामें जिसे 'स्टट' कहते है 'डेली मेल' ने उसका भी आश्रय लिया—कुछ असाधारण शगूफा छोडना। उसने एक बार यह 'स्टट' शुरू किया कि चक्कीका पीसा आटा खाओ क्योकि मिलके आटेके तत्त्व नष्ट हो गये रहते हैं। उसने इसकी ऐसी धूम मचायी कि कुछ लोगोने नार्थक्लिफको सनकी कहा और कुछने समझा कि वे शायद कुछ चक्कियोका भी व्यापार करते हैं जिसके लिए प्रचार कर रहे है, पर इनमेसे कोई भी बात सत्य न थी। नार्थक्लिफका मतलब केवल इतना था कि लोग 'डेली मेल'की चर्चा करनेको बाध्य हो। इससे बढकर विज्ञापनका दूसरा कोई अन्य प्रकार न था।

नार्थक्लिफकी विज्ञपन सम्बन्धी इस कल्पनाने व्यापारियोंको भी नयी सूझ प्रदान कर दी। पत्रो द्वारा विज्ञापन करानेका ढङ्ग पुराना है पर उस समय विज्ञापनोंका प्रदर्शन इस प्रकार नही किया जाता था कि पत्रोंपर उनका ही रोब छाया दिखाई दे। समाचारों तथा दूसरी आवश्यक बातोंके प्रकाशनसे यदि स्थान बच जाता था तो विज्ञापनके लिए बेच दिया जाता था। पर अब

विज्ञापनवाजोंको नयी तरकीब सूझी। ऐसे पत्रोंमें जिनकी बिक्री धूमसे हो रही हो क्यों न विज्ञापनोंका प्रदर्शन किया जाय ? उन्हें 'स्टंट'का रूप क्यों न प्रदान किया जाय ? सनसनीखेज और आकर्षक शीर्षकोंका आश्रय लेकर उन्हें मनोरञ्जक ढङ्गसे क्यों न प्रकाशित किया जाय? पत्रोंको काफी रुपया देकर स्थान क्यों न खरीदा जाय ? इस कल्पनाके साथ-साथ पत्रोंकी आमदनीका नया जरिया पैदा हो गया। एक ओर पत्रोंकी बिक्री खूब बढ़ी और दूसरी ओर विज्ञापनके लिए स्थान बेचनेसे गहरी आमदनी होने लगी। यहींसे पत्र-मालिकोंने यह देखा कि समाचारपत्रोंका प्रकाशन ऐसा व्यवसाय है जिसके द्वारा गहरा मुनाफा कमाया जा सकता है।

'डेली मेल' की पूँजी उसकी स्थापनाके समय चाहे जितनी भी कम क्यों न रही हो पर उसके प्रकाशनके दस वर्षके अन्दर अर्थात् सन् १९०५ ईसवीमें उसका मूलधन दस लाख पौण्ड कूता गया। नार्थक्लिफने 'असोशियेटेड न्यूज-पेपर लिमिटेड' नामक कम्पनी स्थापित करके 'डेली मेल' को उसके अधीन इसी समय किया था और तब उसकी पूँजी उपर्युक्त रकममें कूती गयी। फिर तो उसके मुनाफेकी रकम बढ़ती ही गयी। सन् १९०६ में इस कम्पनीने अपने साधारण शेयरोंपर ८ प्रतिशत मुनाफा वितरित किया। सन् १९१२ में यह मुनाफा १७ प्रतिशत पहुँचा और सन् १९२० में २० प्रतिशत। सन् १९२२ में तो उसने साधारण शेयरोंके सिवा ढाई लाख पौण्डके बोनस शेयर वितरित किये। इस प्रकार १६ वर्षके अन्दर आरम्भिक साधारण शेयरसे २०७ प्रतिशत मुनाफा कमाया गया। कम्पनीके साढे सात लाख साधारण शेयरोंमें ४ लाख ३१ हजार शेयर अकेले नार्थक्लिफके पास थे। पाठक तनिक कल्पना करें कि नार्थक्लिफने कितना मुनाफा कमाया होगा।

पत्र-सञ्चालनमें कितना व्यवसायवाद घुसा यह दिखानेके लिए एक बात और बता देना अनुचित न होगा। न्यूफाउण्डलैण्डमें ३४ सौ वर्गमील जङ्गल खरीद कर नार्थक्लिफने एक कम्पनी कायम की जिसके द्वारा समाचारपत्रोंके कागजके उत्पादनका काम स्वतन्त्र रूपसे किया जाने लगा। 'ऐंग्लोन्यूफाउण्ड-लैण्ड डेवलपमेण्ट कम्पनी लिमिटेड' दस वर्षोंके अन्दर छः सौ टन समाचारपत्र-का कागज प्रति सप्ताह उत्पन्न करने लगी थी।

पर हार्म्सवर्थ परिवारकी यही एक कम्पनी न थी। गत चालीस वर्षोंके भीतर पत्र-व्यवसायके लिए उसने कतिपय कम्पनियाँ स्थापित कीं और अकल्पित मुनाफा उठाया। उसका 'अमलगमेटेड प्रेस लिमिटेड' सन् १९२१ तक प्राय ७५ साप्ताहिक तथा मासिक पत्रोंका सञ्चालन कर रहा था। सन् १९२२ ईसवीमें जब लार्ड नार्थक्लिफ मरे उस समय इस कम्पनीका मुनाफा ४८ प्रतिशत तक पहुँचा था। नार्थक्लिफकी मृत्युके बाद उनके छोटे भाई लार्ड रादरमेयरने इस कम्पनीको लार्ड केमरोजके हाथोंमें सिपुर्द कर दिया। लार्ड केमरोज दूसरे पत्र-व्यवसायी हैं जो बेरीग्रूपके नामसे सैकड़ों पत्रोंके मालिक हैं। उनके नियन्त्रणमें 'अमलगमेटेड प्रेस कम्पनी' न केवल आज सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओंका सञ्चालन कर रही है बल्कि कागजका निर्माण करनेवाली दो-दो बड़ी कम्पनियोंको भी चला रही है जो अधिकतर लन्दनके पत्रोंको कागज बेचती हैं। लार्ड रादरमेयरकी 'डेली मिरर न्यूजपेपर लिमिटेड' तथा 'पिक्टोरियल न्यूजपेपर कम्पनियाँ' बेशुमार मुनाफा कमा रही हैं। कहते हैं कि इन कम्पनियोंका साधारण हिस्सेदार सन् १९१० ईसवीके बादसे सन् १९३६ ई० तक अपनी पूँजीका साढ़े चार सौ प्रतिशत मुनाफा कमा चुका।

लार्ड नार्थक्लिफके बाद लार्ड रादरमेयरने पुरानी असोशियेटेड न्यूजपेपर लिमिटेड कम्पनीको 'डेलीमेल ट्रस्ट' बना डाला जो बादमें चलकर 'डेली मेल एण्ड जेनरल ट्रस्ट' के नामसे विख्यात हुआ। इस प्रकार हेरल्ड हार्म्सवर्थ (लार्ड रादरमेयर) और सर विलियम बेरी (लार्ड केमरोज) लन्दनके प्रायः समस्त पत्रोंके प्रभु हो गये। इन लोगोंके हाथोंमें कतिपय कम्पनियाँ थीं जो सैकड़ों पत्रोंका सञ्चालन कर रही थीं। सन् १९२७ ईसवी तक बेरीग्रूप सम्मिलित था पर उसके बाद उन दोनोंमें बँटवारा हो गया और एक ग्रूपमेंसे कई ग्रूप पैदा हो गये। बेरीग्रूप, केडबेरी ग्रूप, ओघमूसग्रूप, निवरब्रुक ग्रूप, तथा उधर लार्ड रादरमेयरकी कम्पनियाँ आज लन्दनके प्राय' समस्त पत्रोंकी स्वामिनी हैं जो करोडो रुपयोका मुनाफा कमा रही है और करोड़ोंकी पूँजी लगाकर पत्रोंको व्यवसाय बनाये हुए हैं।

आज 'टाइम्स', 'मैन्चेस्टर गार्जियन', 'ग्लासगो हेरल्ड', 'यार्क शायर पोस्ट' तथा 'आबजर्वर' और रविवारको प्रकाशित होनेवाले चार अन्य पत्रोंको छोड़क

प्रायः सबकी सब पत्र-पत्रिकाएँ किसी न किसी 'ग्रूप'की मिलकियत हैं। यों तो लन्दनका 'टाइम्स' भी सन् १९०८ ईसवीसे प्रायः लार्ड नार्थक्लिफके अधीन हो गया था और सन् १९२२ ईसवीमें तो 'टाइम्स'के प्रमुख हिस्सेदार श्री जान वाल्टरने उसे नार्थक्लिफके हाथ बेच ही दिया था। लार्ड रादरमेयरकी बड़ी भारी आकांक्षा यह थी कि वे 'टाइम्स'की प्रभुता प्राप्त करें। पर सौभाग्यसे उनकी लालसा पूरी न हुई। मरनेके समय अपने वसीयतनामेमें लार्ड नार्थ-क्लिफ यह लिख गये कि मृत्युके बाद श्री वाल्टरको यह मौका पहले दिया जाय कि वे यदि चाहें तो शेयरोंके बाजार-भावके अनुसार रुपया अदा करके 'टाइम्स'-को पुनः ले लें। नार्थक्लिफकी मृत्युके बाद रादरमेयरने बड़ा कुचक्र रचा कि 'टाइम्स' हाथसे न जाने पाये, उन्होंने हिस्सोंका दाम भी बढ़ाया पर सौभाग्यसे मेजर आस्टरकी सहायतासे वाल्टरने १२ लाख पौण्ड अदा करके उसे ले लिया। तबसे 'टाइम्स' एक ट्रस्टके अधीन है जिसके सदस्योंमे इंग्लैण्डके लार्ड चीफजस्टिस और बैङ्क आव इंग्लैण्डके गवर्नर तथा रायल सोसाइटीके अध्यक्ष आदि हैं।

'टाइम्स' पूँजीपतियोंसे अपनी जान बचा सका फलतः आज भी उसके स्तम्भोंपर उसके सम्पादकका अक्षुण्ण अधिकार है। 'मैन्चेस्टर गार्जियन' उचित दावा करता है कि उसके पत्रसे किसी लार्डके नामका सम्बन्ध नहो है अतः आज भी वह अपनी मर्यादा और आदर्शकी रक्षा करनेमें समर्थ है। पर इन थोड़े-से इनेगिने ब्रिटिश पत्रोंको छोड़कर बाकी सब व्यवसाय और धनैषणाकी पूर्तिके साधन हो गये हैं और विभिन्न व्यापारिक गुटोंके हाथके खिलौने हैं। आजसे पचीसों वर्ष पूर्व ब्रिटिश पत्रकार-सङ्घके तत्कालीन अध्यक्ष सर राबर्ट डोनाल्डने यह घोषणा की कि 'समाचारपत्रोंका व्यवसायीकरण हो गया है'। पर तबसे आजकी स्थिति तो और भी अधिक उग्र हो गयी है। यह सच है कि पत्र-सञ्चालनमें कुछ व्यावसायिक मनोवृत्ति सदासे रही है। जो पूँजी लगाते थे वे यह समझकर लगा देते थे कि उनके पत्र शीघ्र स्वावलम्बी हो जायेंगे और यदि सम्भव हुआ तो उनसे उन्हें कुछ मुनाफा भी हो जायगा। पर जहाँ यह सच है वहीं यह भी सच है कि मुनाफा कमाना उनका प्रधान और मुख लक्ष्य कदापि न था। पत्र-सञ्चालक सिद्धान्त या मतके प्रचारके लिए पत्र निकालते

थे और पत्रकारकी योग्यताकी कसौटी यह नहीं थी कि रुपया कमानेमें उसे कितनी सहायता मिलती है प्रत्युत यह थी कि व्यक्ति-विशेष सम्पादक होकर किस सीमातक पत्रको गौरव तथा गम्भीरता प्रदान करेगा, किस सीमातक उसकी विचार-शक्तिपर भरोसा किया जा सकता है और उसकी लेखनीमें कितना बल तथा ओज है।

आजकी पत्रकारीने पत्रकलाकी कल्पनाको अधिक विस्तृत और व्यापक तथा चित्ताकर्षक बनाकर उसे जनताके जीवनके अधिकाधिक सम्पर्कमें लाकर जहाँ बड़ा भारी काम किया है वहीं उसे व्यवसायका माध्यम बनाकर उसकी बड़ी भारी हानि भी की है। आज वे विचार और आदर्श तथा सेवा और साधनाके प्रतीक न होकर धन-लोलुपताके पूरक हो गये हैं। बिक्री बढ़े और जैसे भी हो बढ़े, यही उनका एक मात्र लक्ष्य हो गया है, इसलिए नहीं कि अधिकसे अधिक जनतातक पहुँचकर वे किसी सिद्धान्तका प्रचार करना चाहते हैं अथवा उसे आदर्शोंसे अनुप्राणित करनेके लिए उत्सुक हैं बल्कि इसलिए कि बिक्री बढ़नेसे उनका दुहरा लाभ होता है। बिक्रीसे आमदनी तो होती ही है पर उससे भी अधिक आमदनी विज्ञापनोंसे होती है जो वस्तुतः पत्रोंकी प्रमुख आय हो गयी है। कोई भी विज्ञापनदाता विज्ञापन देनेके पूर्व यह देखना चाहेगा कि वह ऐसे पत्रमें अपना विज्ञापन छपाये जिसकी बिक्री अधिकसे अधिक हो। फलतः पत्रोंके मालिक विज्ञापनवाली आमदनीके लिए जैसे भी हो अपनी बिक्री बढ़ानेके लिए सारी शक्ति लगा देते हैं। आज यह मनोवृत्ति अतिको पहुँचकर समाचारपत्रोंके आदर्शको मटियामेट करने लगी है और भयावनी महामारीके रूपमें उन तमाम पत्रोंका संहार करने लगी है जो अपने पद-गौरव तथा कर्तव्यकी रक्षा करना चाहते है। बिक्री बढ़ानेके लिए पत्रोंमें उचित-अनुचित और अश्लीलता तथा अशिष्टता, व्यक्तिगत जीवनकी भ्रष्टता और लोलुपता तथा दौर्बल्य, सभी मुख्य रूपसे प्रदर्शित किये जाते हैं जिसमे साधारण मनुष्य जो सहज ही मानव स्वभावजन्य तुच्छ प्रवृत्तियोंका शिकार रहता है, उन्हे पढ़नेके लिए उत्सुक हो।

खुली हुई बात है कि लन्दनका 'न्यूज आव दि वर्ल्ड' नामक पत्र संसारमें सबसे अधिक बिक्रीवाला पत्र था जो व्यापक रूपसे न केवल देशमें बल्कि

विदेशमें भी खपता था। उसका सम्पादन जिस सुन्दर ढङ्गसे किया जाता था वह पत्रकलाकी आश्चर्यजनक सफलता मानी जाती थी। पर उसकी बिक्रीका रहस्य यह था कि वह पत्र दुनिया भरकी गन्दगी, अश्लीलता, व्यभिचार और अपराध छापनेमें विशेषज्ञ था। बड़े-बड़े घरानोंकी प्रेमलीला और भोगलिप्सा तथा तलाक और अश्लील कहानियाँ छापकर वह इतना लोकप्रिय हो गया था कि बिक्रीमें जगत्का कोई पत्र उसका सामना नहीं कर सकता था। इधर कुछ वर्षोंसे इस पत्रकी रूपरेखा बदली है पर जमानेतक उसने इसी प्रकारकी नीतिसे बेहद धन कमाया। जो पत्र लोकप्रिय बनना चाहते हैं और बिक्री ही जिनका एक मात्र लक्ष्य होता है वे 'न्यूज आव दि वर्ल्ड' के समान नहीं तो बहुत कुछ सीमातक उपर्युक्त भ्रष्टताको स्थान देनेके लिए बाध्य होते हैं। अपने इस कुकृत्यका औचित्य सिद्ध करनेके लिए वे एक ही तर्क उपस्थित करते हैं और वह यह कि जनता जो चाहती है उसे प्रदान करना हमारा कर्तव्य है। वे नहीं देखते कि अपने इस तर्कसे वे अपने ही पाठकोंका अपमान कर रहे हैं।

उनके कहनेका अर्थ तो यह हो गया कि जनता स्वयं ही भ्रष्ट और अश्लील तथा ओछी है जो सिवा इन बातोंके और कुछ चाहती ही नहीं। श्री स्काट जेम्स-ने अपनी पुस्तक 'प्रेसका प्रभाव' (इनफ्लुएन्स आफ दि प्रेस) में लिखा है कि 'जब पत्रोंने देशकी भारी जनसंख्यापर विजय प्राप्त करनेके लिए कदम बढ़ाया और अपनेको ऊपर लाद देनेका निश्चय किया तो शायद यह मान लिया कि अधिकतर पाठक मूर्ख, अज्ञ और भ्रष्ट हैं'। वे यह भी अनुभव नहीं करते कि जनता क्या चाहे और क्या न चाहे यह सिखाना भी बहुत कुछ पत्रोंका काम रहा है और यह उन्हींका काम है। आज वे अपनेको जनताके लिए नहीं समझते बल्कि जनताको ही अपनी खेती समझते हैं जिसे जैसे भी हो अपनी लक्ष्यकी पूर्तिका साधन बनाना चाहते है।

विज्ञापन प्राप्त करनेके लिए बिक्री बढ़ानेकी प्रतिस्पर्धामें व्यावसायिकताने तरह तरहके अभिनव किन्तु खेदजनक उपाय ढूँढ निकाले हैं। बिक्री जितनी अधिक होगी विज्ञापन उतना ही अधिक मिलेगा और विज्ञापनकी दर भी उतनी ही अधिक ऊँची रखी जा सकेगी। फलतः बिक्री बढ़ानेके लिए गहरी कनवेसिंग की

जाती है और न जाने कितने आदमी इसी कामपर नियुक्त रहते हैं कि घूम-घूम कर लोगोंको अपना पत्र-विशेष खरीदनेके लिए राजी कर सकें। आजकल 'बीमेकी योजना', 'पारितोषिकोंका वितरण' तथा 'पाठकोंको भेंट' देनेकी नयी-नयी योजनाएँ निकाली गयी हैं। रजिस्टर्ड पाठकोंको यदि वे दस वर्ष या पन्द्रह वर्षतक नियमित रूपसे पाठक बने रहें तो पत्रके साथ-साथ बीमेकी एक रकम देनेकी घोषणा की जाती है।

खरीदारोंका आह्वान किया जाता है कि वे बारह या सोलह हफ्तेतक नियमित रूपसे ग्राहक बननेका इकरार कर दें तो उस अवधिके बाद पत्रकी ओरसे मुफ्तमें उपहार भेंट किया जायगा। उपहार प्राप्त करनेके लिए पाठकोंकी प्रतिस्पर्धा करायी जाती है। पत्रोंके साथ विभिन्न संख्याओंसे अङ्कित चिटें लगा दी जाती हैं और निश्चित अवधिके बाद घोषणा की जाती है कि अमुक-अमुक नम्बरकी चिटें जिनके पाससे निकलें उन्हे पत्रकी ओरसे उपहार प्रदान किया जायगा। कपड़ा धोनेकी मशीन, तश्तरियाँ, चायका सेट, ओवरकोट, महिलाओंके उपयोगके लिए वस्त्र, साबुन, इस्तिरी करनेका बिजलीका यन्त्र, मोजे, पतलून आदि तरह-तरहकी वस्तुएँ भेंट की जाती हैं। 'क्रासवर्डकी पहेलियों' को हल करनेवालोंके लिए पारितोषिक देनेका एलान किया जाता है। नाना प्रकारके ऐसे प्रलोभनोंसे ग्राहक बनानेकी चेष्टा की जाती है जिसमें विज्ञापन मिलें और ऊँची दर देकर व्यापारी उन्हे छपायें।

'डेली मिरर' जब प्रकाशित हुआ था तो प्रकाशनके पूर्व उसके सञ्चालकों-ने विज्ञापन और कनवेसिंगमें एक लाख पौण्ड खर्च किया था। विचार कीजिये कि पत्र-व्यवसायमे प्रवेश करनेके पूर्व ही इतनी लम्बी रकम प्रदान करनी पडी, पर प्रकाशनके ३० वर्ष बाद सन् १९२३ में उसने इसकी दुगुनी रकम ग्राहकों-को उपहार बाँटनेमे व्यय कर दी। यह सब इसलिए किया जाता है कि विज्ञापन अधिकसे अधिक उपलब्ध हों। जहाँ इतना खर्च किया जाता हो विज्ञापन प्राप्त करनेके लिए, वहाँ उससे होनेवाली आय कितनी होती होगी इसपर पाठक स्वय विचार कर ले। स्मरण रखियेगा कि पत्रसञ्चालक कम्पनियोंने अगाध लाभ उठाया है और शत प्रतिशत मुनाफा कमाया है जिसका उल्लेख पूर्वके पृष्ठोंमें किया जा चुका है। सन् १९२२ ईसवीमें लन्दनके कुल पत्रोंकी विज्ञापनसे

होनेवाली आय १ करोड ३० लाख पौण्डके करीब थी। केवल 'डेली मेल'की आय उस समय दस लाख पौण्ड प्रतिवर्षके करीब थी। यह स्थिति उस समय थी जब युद्धके बाद पत्रोंने अपने व्यावसायिक रूपको स्पष्ट किया था और विज्ञापन-बाजीका महत्त्व उनके लिए प्रकट ही हो चला था। इसके बादसे यह रकम कहीं अधिक ऊँची पहुँची होगी। अमेरिकाके समस्त दैनिक पत्रोंकी विज्ञापनसे होनेवाली वार्षिक आमदनी पचहत्तर करोड़ रुपये कूती जाती है।

इस प्रकार आज विज्ञापनदाताओंसे होनेवाली आय समचारपत्रोंकी जीवनी-धारा हो गयी है जिसके सहारे और जिसके लिए वे जीते है। पत्र-सञ्चालकोंके दो ग्राहक हैं, पाठक और विज्ञापनदाता। बिक्री बढ़ानेकी चिन्ता भी मुख्यतः विज्ञापन प्राप्त करनेके लिए ही की जाती है। तरह-तरहके प्रलोभन और उत्तेजन प्रदान करके पाठक एकत्र किये जाते है और विज्ञापन-दाताओंको स्थान प्रदान करके गहरी आमदनी की जाती है। स्पष्ट है कि विज्ञापन-दाताओंका स्थान प्रमुख हो गया है। उन्हे नाराज करनेकी हिम्मत पत्र-सञ्चालक नहीं कर सकता। पत्रोंकी सिद्धान्तप्रियता और आदर्शवादिता योंही डावाँडोल हो गयी है उसपर भी वे यदि वाध्य रूपसे किसी राजनीतिक मतमतान्तरोंके समर्थक होनेकी घोषणा करते हैं तो उसका प्रतिपादन वहीं तक करते हैं जहाँ तक विज्ञापनदाताओंका भारी वर्ग नाराजगी जाहिर नहीं करता। हिलेइरे बेल्लोक 'दि फ्री प्रेस' नामक अपनी पुस्तकमें इस स्थितिकी समीक्षा करते हुए लिखते है कि 'जब पत्रके मालिक विज्ञापनदाताओंको अपना स्वामी स्वीकार करनेके लिए बाध्य हुए तब सच्चे समाचार और गम्भीर तथा निष्पक्ष विचारको प्रकाशित करनेकी उनकी स्वतन्त्रता परिसीमित हो गयी। यदि वे चाहे भी तो ऐसा नही कर पाते'। यह स्थिति न केवल दयनीय है बल्कि भयावह भी है। हम मानते हैं कि पत्रोंके जीवनके लिए उनके ग्राहक भी होने चाहिये और विज्ञापनोंकी आय भी। ग्राहकोंके बिना कोई पत्र जीवित नही रह सकता पर जैसा कि प्रसिद्ध पत्रकार ब्लूमफील्डने कहा है 'पत्रोंको अपनी बिक्रीके लिए अपनी उस उपयोगिता और मूल्यपर आश्रित होना चाहिये जो समाचारपत्र होनेके नाते वे समाजकी दृष्टिमे रखते है। आजके पत्र ऐसा नही कर रहे हैं'। आजके पत्र तो अपनी उपयोगिता किसी पूँजीपतिकी जेब भरनेमें समझते हैं,

फिर उसके लिए समाजमें चाहे जितनी भी अश्लीलता और कुरुचि तथा कुप्रवृत्ति क्यों न उत्पन्न करनी पड़े।

आज तो किसी पत्रको जीवित रखना या मार डालना विज्ञापनदाताओंके हाथमें है। अच्छेसे अच्छा पत्र हो यदि विज्ञापनदाता उसे विज्ञापन न दें तो उसका चलना भी असम्भव हो जाय। लार्ड नार्थक्लिफने विज्ञापनोंकी प्राप्तिकी प्रतिस्पर्धामें 'बिक्रीकी सर्टिफिकेट' पेश करनेपर विज्ञापन देनेकी आवाज उठायी। वे स्वयं पत्रकार थे पर कदाचित् उस समय उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि उनकी इस नीतिसे कितना भारी अनर्थ होने जा रहा है। पर आज विज्ञापनदाताका यह साहस है कि प्रत्येक पत्रसे मांग पेश करता है कि वह बताये कि उसके कितने ग्राहक हैं और किस वर्गके लोग ग्राहक हैं। धनकी भूखमें अन्धा हुआ पूँजीवादी पत्रसञ्चालक इस सीमातक पत्रोंकी मर्यादाको नष्ट करनेका कारण बना है। फिर विज्ञापनोंका चाहे वे कितने भी भ्रष्ट और गन्दे क्यों न हों ऐसा प्रमुख रूपसे प्रदर्शन होने लगा है कि पत्रोंके कलेवरको देखकर शिष्ट व्यक्ति लज्जित हो जाता है। साफ मालूम हो जाता है कि विज्ञापनदाता जनताको भ्रान्तिमें डालकर और उसे बहकाकर झूठ-फरेबके द्वारा पैसा कमाना चाहता है फिर भी हम उसके विज्ञापनको प्रकाशित करनेके लिए बाध्य होते हैं। 'महात्माजीका चमत्कार और मालवीयजीका कायाकल्प'के विज्ञापनोंको देखकर किसे कै न आने लगती होगी।

लेखकको स्वयं अपने पत्रकार-जीवनमें इसका अनुभव अनेक बार हुआ। एक बार एक पत्रमें पञ्जाबके किसी व्यापारीका यह विज्ञापन छपा था कि 'दो रुपयेमें सुन्दर टाय घडी जिसे देखकर आप मुग्ध हो जायँगे।' हिन्दी पत्रका एक अभागा पाठक एक दिन कार्यालयमें आया और उसने बच्चोंकी खेलनेवाली एक घडी जो दो-दो पैसेमें बिकती है उसके सामने रख दी। पूछनेपर मालूम हुआ कि उपर्युक्त विज्ञापन पढ़कर उसने यह घडी मँगवायी और ढाई रुपयेकी वी० पी० छुडानेपर यही घडी पायी। उस बेचारेने यह नहीं समझा कि 'टाय' के माने क्या होते हैं। विज्ञापनदाताने तो जानबूझकर हिन्दी पत्रमें 'टाय' शब्दका प्रयोग किया था। न जाने कितने सीधे-सादे पाठक इस प्रकार ठगे जाते हैं और वे पत्र उन ठगोंके सहायक होते हैं जो

विज्ञापन छपाकर पत्रोंको पैसा देते हैं। क्या धूर्तोंकी धूर्त्ततामें सहायक होना किसी भी पत्रके गौरवको नष्ट कर देना नहीं है?

जैसा कि कह चुके हैं हमारा यह मतलब नहीं है कि पत्रोंको विज्ञापन छापना ही न चाहिये। हम जानते हैं कि ऐसा करके जीवन-यापन करना और अपना अस्तित्व बनाये रखना भी अधिकतर पत्रोंके लिए सम्भव न होगा, पर हम यह भी जानते हैं कि पत्रोंके द्वारा केवल धन कमानेकी प्रवृत्तिने यदि जोर न पकड़ा होता तो विज्ञापन छापते हुए भी पत्र अपनेको उनके हाथोंमें समर्पण कर देनेकी घृणित स्थितिसे बच गये होते। पत्रोंको यदि विज्ञापन चाहिये तो विज्ञापकोंको भी पत्रमें स्थान चाहिये। दोनोंकी आवश्यकता उस सामञ्जस्यका सर्जन करनेमें समर्थ होती जो व्यापारियोंके लिए लाभजनक होनेके साथ-साथ पत्रोंकी मर्यादाकी रक्षा करता तथा समाजकी सेवा करनेके उसके आदर्शको अक्षुण्ण छोड़ देता। आज तो ब्रिटिश पत्रकारों और सम्पादकों-को व्यवस्था सम्पादकोंका मुँह जोहना पड़ता है। व्यवस्था-सम्पादकोंकी नयी बला सम्पादकोंके मस्तकपर पत्रको व्यवसाय बनानेके साथ-साथ लाद दी गयी है। विज्ञापनोंके लिए स्थान पहले चाहिये, जहाँ छापनेके लिए पैसा लिया गया है वहीं छापना चाहिये और फिर ऐसी किसी नीति या सिद्धान्तका प्रतिपादन न करना चाहिये जो पूँजीवादी पत्र-सञ्चालक और विज्ञापनदाताको पसन्द नहीं है। इस प्रकार न केवल पत्रकारकी स्थिति अपमानजनक तथा दयनीय हो गयी है बल्कि पत्रोंकी स्वतन्त्रता और आदर्श भी अप्रत्यक्ष रूपमें भ्रष्ट हो गया है।

स्वतन्त्र होनेका दावा करनेवाले ब्रिटिश पत्रोंकी नकेल किस प्रकार विज्ञापन-दाताओंके हाथोंमें पहुँच गयी है इसका अकाट्य प्रमाण उपस्थित कर देना अनुचित न होगा। सन् १९३८ ईस्वीमें ब्रिटिश प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री चेम्बरलेनने म्यूनिखमें हिटलरके सामने घुटने टेक दिये। न्याय, मानवता, स्वतन्त्रता और सबसे बढ़कर ब्रिटेनकी प्रतिष्ठाको धूलमें मिलाकर उन्होंने चेको-स्लोवाकियाकी हलाली करनेके लिए हिटलरको पूरी स्वाधीनता प्रदान कर दी। चेम्बरलेनकी कायरतापर सारा जगत् काँप उठा और स्वार्थ तथा दब्बूपनकी ऐसी मिसाल उपस्थित कर दी गयी जिसके लिए मानवता सदा घृणाके साथ

तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्रीका नाम लेगी। ब्रिटिश पत्र भी राष्ट्रीय सम्मानकी इस हत्यापर क्षुब्ध हो उठे। एक स्वरसे उन्होंने म्यूनिख-समझौतेकी निन्दा आरम्भ की। यह देखकर हिटलरके क्रोधका पारा आसमानपर पहुँच गया। ९ अक्तूबरको उन्होंने भाषण किया और उद्दण्ड शब्दोंमें ब्रिटिश पत्रोंकी ओर सङ्केत करते हुए कहा कि वे अपने देशकी ओर देखें और यदि जर्मनीके मामलोंमें हाथ डालेंगे तो उनके देशके लिए अच्छा न होगा। इस भाषणकी रिपोर्ट सुनकर ब्रिटिश जनता क्षुब्ध हो उठी पर दूसरे दिन ब्रिटिश पत्र देखने ही लायक थे। उसका वर्णन 'टाइम्स'के भूतपूर्व सम्पादक विकम स्टीडके ही शब्दोंमें सुनिये। वे कहते हैं 'ब्रिटिश राष्ट्रके क्षोभका पारावार न था। हिटलर द्वारा किये गये अपमानसे वह क्रुद्ध था पर उसके इस क्रोधका सङ्केतमात्र भी दूसरे दिन प्रकाशित हुए पत्रोंमें दिखाई न दिया। कुछ प्रमुख पत्र तो अपनी पहली गलतीके लिए हिटलरसे दबी जबानमें क्षमायाचनातक करते दिखाई दिये। अपने देशके 'स्वतन्त्र पत्रों'के इस लज्जाजनक व्यवहारका कारण क्या था? इस सम्बन्धमें की गयी जाँच-पडतालसे यह रहस्य खुला कि विज्ञापन प्रदान करनेवाली कुछ बड़ी एजेन्सियोंने, जिनकी आयसे प्रमुख पत्रोंके मालिक मालामाल होते हैं, यह धमकी दे दी कि ये पत्र यदि अन्तर्राष्ट्रीय सङ्कट उत्पन्न करनेकी चेष्टा करेंगे तो उनको विज्ञापन देना बन्द कर दिया जायगा। इस प्रकारकी अशान्ति यदि हो गयी तो उससे व्यापारको गहरा धक्का लगेगा। धमकाये गये पत्रोंकी यह हिम्मत भी नहीं हुई कि वे उन विज्ञापनदाताओंका नाम प्रकाशित करके उनकी पोल खोल देते।'

यह है ब्रिटिशपत्रोंकी पोल। आज म्यूनिखका आत्मसमर्पण इंग्लैण्डको मजा चखाता है और जगत् समराग्निमें भस्म हो रहा है।

डाक्टर मैक्सग्रुनबेक नामक नाजी लेखकने ब्रिटिश पत्रोंकी टीका करते हुए लिखा है कि 'ब्रिटेन और अमेरिका डींग हाँकते हैं कि उनके पत्र पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। यदि स्वतन्त्रताका केवल इतना ही अर्थ है कि वे सरकारी हस्तक्षेपसे मुक्त हैं तो इसे हम स्वीकार कर लेते हैं पर वास्तविक अर्थमें वहाँके पत्र बुरी तरह परतन्त्र हैं और उनकी डींग निराधार है। आज ब्रिटिश-अमेरिकन पत्रोंपर वहाँके पूँजीपतियोंका नियन्त्रण है जो स्वयं विज्ञापनदाताओंसे नियन्त्रित हैं। आज यह

नियन्त्रण राज्यके नियन्त्रणसे कहीं अधिक कठोर और घृणित है। देशकी जनताकी आत्मा पत्रोंमें रहती है पर ये पत्र मुट्ठीभर व्यवसायियों और व्यापारियोंके हाथोंमें हैं जो राष्ट्रकी आत्माको भ्रष्ट करके उसका विनाश कर रहे हैं'। 'टाइम्स'के भूतपूर्व सम्पादक विकमस्टीड नाजी लेखककी इस टीकापर कहते हैं कि 'हमारे पत्रोंकी यह आलोचना ऐसी है जिसे कोई न्यायशील व्यक्ति निराधार कहकर उड़ा नहीं सकता।'

आज लोकतन्त्रात्मक देशोंके पत्रोंकी यह स्थिति है। भारतीय पत्रकारोंका सौभाग्य है कि अनेक कारणोंसे वे इस अभिशापसे बहुत कुछ बचे रहते हैं पर व्यावसायिक उन्नतिके साथ-साथ और साक्षरताके प्रचारकी वृद्धि होनेपर समाचारपत्रोंके पाठकोंकी संख्या बढ़नेपर इस प्रवृत्तिका बढ़ना भी असम्भव न होगा। आज भी उसका अङ्कुर उगता दिखाई दे रहा है। जिन्हें पत्रकार-जीवनका अनुभव है वे जानते हैं कि क्रमशः पत्र-सञ्चालनमें व्यवसायवाद जोर पकड़ने लगा है। ब्रिटेन आदि देशोंके पत्रकार आज अपने देशकी इस स्थितिपर रोते हैं और सतत चेष्टा कर रहे हैं कि इस भयावनी धाराको किसी प्रकार रोका जाय। भारतीय पत्रकारोंके लिए अभी समय है। उन्हें सावधान हो जाना है कि वे व्यवसायवादके सम्मुख अपने गौरव, अपनी मर्यादा और उज्ज्वल आदर्शोंको मरने न दें। पत्रकारी सिनेमा, थियेटर या जलपान-गृहोंके समान व्यवसाय नहीं है। निस्सन्देह उसका भी सञ्चालन व्यावसायिक ढङ्गसे करना होगा पर उसके साथ-साथ उसे जनहितकी उस धरोहरकी रक्षा भी करनी होगी जिसका ट्रस्टी वह सदासे रहा है। दोनोंका सामञ्जस्य स्थापित करना पड़ेगा और यह कार्य धन-लोलुप पूँजीपति नहीं कर सकता। उसका बोझ पत्रकारोंको ही उठाना होगा जो अपने रक्तसे पत्रकलाकी कोमल लतिकाका सिञ्चन करते रहे हैं।

भारतीय पत्रकारीका विकास

भारतने यूरोपसे बहुत सी ऐसी बातें भी पाया है जिनके लिए वह उसका ऋणी रहेगा। इनमें पत्रकला भी एक है जिसका आगमन यूरोपसे ही हुआ। अठारहवीं शताब्दीके अन्तिम चरणके पूर्व भारतमे पत्रकार कलाका नाम-निशान भी नही था। सन् १७५७ में पलासीके युद्धके अनन्तर जब बङ्गालमें ईस्टइण्डिया कम्पनीकी शासनसत्ता भलीभाँति स्थापित हो गयी तो प्रायः उसके दो दशक बाद ही सन् १७८० में कलकत्तेमे पहला समाचारपत्र प्रकाशित हुआ। उक्त पत्रका प्रकाशक, प्रवर्तक और सम्पादक एक अंग्रेज ही था। हम कह सकते हैं कि वह अंग्रेज ही भारतीय पत्रकारीका जनक और उसका पत्र आधुनिक भारतीय पत्रोंका 'आदिपुरुष' रहा है। सन् १७८० ईसवीकी २९ जनवरीको कलकत्तेसे 'बङ्गाल गजेट'के नामसे एक पत्र प्रकाशित हुआ। पत्रका आकार छोटा था, पृष्ठसंख्या केवल दो थी। बारह इञ्च लम्बे और आठ इञ्च चौडे इस पत्रका प्रकाशन 'जेम्स आगस्टस हिकी' नामक एक अंग्रेजके सम्पादकत्वमें हुआ। इसी कारण भारतीय पत्रकारीके इतिहासमे वह पत्र 'हिकी गजेट' के नामसे विख्यात हुआ। हिकीने अपने लक्ष्यकी व्याख्या करते हुए लिखा 'मुझे अपने शरीरको बन्धनमे बाँधनेमे सुख मिल रहा है क्योंकि उसके द्वारा मैं अपनी आत्मा और मनकी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी आशा करता हूँ। मेरे इस साप्ताहिक पत्रके स्तम्भ यद्यपि समस्त राजनीतिक और व्यावसायिक वर्गों और मतमतान्तरों-के लिए खुले रहेगे तथापि वे किसीके भी प्रभाव और दबावसे मुक्त रहेंगे।'

भारतीय पत्रकारीके विकासका सन्तोषजनक, विस्तृत और समीचीन इतिहास अभी नही लिखा गया है। अंग्रेजी भाषामें यद्यपि तद्विषयक दो एक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं पर राष्ट्रभाषा हिन्दीका क्षेत्र उतनेसे भी वञ्चित है। इस अति आवश्यक, स्पृहणीय और प्रशंसनीय प्रयत्नका भार किसी योग्य-व्यक्तिको उठाना बाकी है जो दृढ़ अध्यवसाय और गम्भीर अनुशीलनके बाद

भारतीय पत्रकारीका प्रामाणिक इतिहास हिन्दी-जगत्‌को प्रदान करनेका श्रेय प्राप्त करेगा। यद्यपि ऐसी स्थितिमें अपने देशके पत्रों और पत्रकारीके विकास-पर अधिक प्रकाश डालना सम्भव नहीं है तथापि उक्त विषयसे कुछ कहे बिना यह पुस्तक अधूरी रह जायगी। सम्प्रति जो साधन प्राप्त हैं उनके आधारपर हम कह सकते है कि अठारहवीं शताब्दीके अन्तिम युगमें भारतमें पत्रकारीका प्रजनन उपर्युक्त अंग्रेजके द्वारा हुआ। इस प्रकार एक सौ साठ वर्षसे अधिक हो चुका जब पत्रकारीका कोमलाङ्कुर इस देशकी उर्वर भूमिमें अङ्कुरित हुआ था। इस युगपर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो यह पाते हैं कि उक्त अङ्कुर तबसे उत्तरोत्तर परिपुष्ट और विकसित होता गया है। जब हम यह देखते हैं कि भारतीय पत्रकारी विरोधी और अवाञ्छनीय वातावरणका प्रचण्डाघात सहन करते हुए, न जाने कितनोंका प्रहार और क्रोध तथा शत्रुता-का सामना करते हुए, न जाने कितनी अकथनीय कठिनाइयों और बाधाओंकी उपेक्षा करते हुए अपने जीवनकी रक्षा करनेमें समर्थ हुई है तो हमें उसपर गर्व होता है। जैसा कि पूर्वके पृष्ठोमें कहा जा चुका है, पृथ्वीके प्रायः सभी कोनेमें, जहाँ भी जब पत्रोंने जन्म ग्रहण किया है उन्हें आरम्भसे ही उन वर्गोंका आघात अपने वक्षःस्थलपर ग्रहण करना पडा है जो तत्कालीन शासनसत्ता तथा समाजके सूत्रधार रहे है। पर भारतके पत्रोंपर हुआ आघात अपेक्षाकृत सबसे अधिक उग्र और निष्ठुर रहा है।

विदेशी शासकोंकी निरङ्कुश और पशुबलाश्रित सरकारके चरणोंके नीचे पडे हुए भारतके पत्रोंपर यदि आरम्भसे ही ऐसा दमन हुआ हो जो स्वार्थी शासकोंकी क्रूरताके इतिहासमें बेजोड हो तो उसपर आश्चर्य करनेकी आव-श्यकता नहीं है। पत्र यदि जन-भावका प्रतिनिधित्व करता है, यदि वह जन-स्वातन्त्र्यका प्रतीक होता है तो ऐसी स्वच्छन्द शासन-सत्ताका जो केवल अपने लिए ही जीवित रहती है उसके निर्दलनके लिए सचेष्ट होना अनिवार्य है। उसका अस्तित्व ही जन-समाजके निर्दलनपर आश्रित होता है। यही कारण है कि हम भारतीय पत्रकारीके विकासके इतिहासपर जब दृष्टिपात करते हैं तो जो बात सबसे अधिक और मुख्य रूपसे सामने प्रस्तुत होती है वह यही है कि उसका इतिहास एक ओर जहाँ शासकोंकी दमनप्रियता और निरङ्कुशताका

इतिहास है वहीं दूसरी ओर भारतीय पत्रकारोंके तप, त्याग और उज्ज्वल सङ्घर्षका इतिहास है जिसके द्वारा उन्होंने जनहित और पत्रकारीके आदर्श तथा जन-स्वातन्त्र्यकी रक्षामें जीवनको उत्सर्ग कर देनेके पवित्र पथका निर्माण किया है। साथ ही साथ हमें यह स्वीकार करना पडता है कि इस दिशामें भारतका नयन करनेका श्रेय उन अंग्रेज पत्रकारोंको प्राप्त है जिन्होंने इस देशमें पत्रकारीका सूत्रपात किया। भारतके राष्ट्रीय जीवनके विकासमें कुछ आदरणीय अंग्रेजोंने जो भाग लिया है उसके लिए भारत सदा उनका ऋणी रहेगा, पर उन अंग्रेजोंके ऋणसे तो हम कभी उऋण हो ही नहीं सकते जो वास्तवमें हमारे राष्ट्रीय जीवनके जनक रहे हैं।

भारतके राष्ट्रीय जीवनके इतिहासमें हमारी दृष्टिमें दो घटनाएँ समान रूपसे ऐसी हैं जो अंग्रेजोंद्वारा भारतकी की गयी सहायताकी दृष्टिसे महत्व रखती हैं। पहली घटना तो वह है जब कुछ आदरणीय अंग्रेजोंने पहले पहल पत्रकारीको इस देशमें जन्म प्रदान किया और दूसरी घटना है काङ्ग्रेसकी स्थापना जिसके लिए स्वर्गीय श्री ह्यूमका नाम भारतीय इतिहासमें अमर हो चुका है। इन पंक्तियोंमें हम पहली घटनाका उल्लेख कर रहे हैं और उसीके सम्बन्धमें अध्यायारम्भमें 'हिकी' के नामकी चर्चा की गयी है। फलतः 'हिकी गजेट' भारतीय पत्रकारीके इतिहासमें भारतीय पत्रोंके 'आदिपुरुष'के पदपर प्रतिष्ठित है। हम देखते हैं कि अपने जन्मके साथ-साथ यह पत्र तत्कालीन सरकारकी उस दमनात्मक प्रवृत्तिको भी उत्तेजित करता अवतीर्ण हुआ जिसका सामना आजतक भारतीय पत्र करते जा रहे हैं। वह जमाना था जब वारेन हेस्टिंग्स भारतके गवर्नर-जेनरल थे। तबतक देशमें कोई प्रेस सम्बन्धी कानून भी नहीं बना था। डाक विभागमें भी वह व्यवस्था उत्पन्न नहीं हुई थी जो आज है। उस समय डाक भेजनेके लिए प्रेषकको आजकी भाँति टिकट या कार्डके रूपमें पहले ही फीस अदा कर देनेकी प्रथा न थी। वह फीस अदा होती थी उसके द्वारा जिसके नाम चिट्ठी आदि भेजी जाती थी।

'हिकी गजेट' तत्कालीन गवर्नर-जेनरल वारेन हेस्टिंग्सका कठोर आलोचक था। अपने सम्बन्धमे उक्त पत्रकी निर्भीक आलोचना देखकर वारेन हेस्टिंग्स

क्षुब्ध हो उठे। एक वर्ष भी नहीं बीत पाया था कि उनकी क्रूर दृष्टि उसपर पड़ी। उन्होंने १४ नवम्बर सन् १७८० ईसवी को 'हिकी गजेट' पर पहला प्रहार किया। पत्रको डाकसे भेजनेकी जो सुविधा प्राप्त थी वह गवर्नर-जेनरलकी आज्ञासे छीन ली गयी। कहा जाता है कि वारेन हेस्टिंग्सको यह सन्देह था कि 'हिकी गजेट'के स्तम्भोंमें उनकी जो टीका की जाती है उसके मूल कारण श्री फ्रांसिस हैं। फ्रांसिस गवर्नर-जेनरलकी शासन-परिषदके एक सदस्य थे जो वारेन हेस्टिंग्सके प्रचण्ड विरोधी थे। हेस्टिंग्सका यह सन्देह साधार रहा हो या निराधार पर उसका परिणाम 'हिकी गजेट' को भोगना ही पड़ा। जब डाकसे पत्र भेजनेकी सुविधा छीन ली गयी तो आगस्टस हिकीने अपने स्तम्भोंमें सरकारी नीतिकी और भी तीव्र टीका तथा कठोर आलोचना आरम्भ कर दी। हिकीको अपनी इस निर्भीकताका गहरा मूल्य चुकाना पड़ा। वह पहले व्यक्ति थे जिन्हें पत्रकारके कर्तव्योंकी पूर्ति करते हुए भारतमें प्रतिष्ठित अपने ही देशकी सरकारका कोपभाजन बनकर काराकी यात्रा करनी पड़ी। पत्र-व्यवसायमें भी गहरी हानि उठानेके लिए वे बाध्य हुए।

'हिकी गजेट'के प्रकाशनके बाद बङ्गालमें कतिपय दूसरे पत्र भी प्रकाशित होने लगे। सन् १७८० ईसवीमें ही नवम्बर महीनेसे कलकत्तेमें श्री मेसिङ्क और पीटररीड नामक दो अंग्रेजोंने 'इण्डियन गजेट'के नामसे एक और पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया। उसके चार वर्ष बाद सरकारकी ओरसे 'कलकत्ता गजेट' प्रकाशित होने लगा। सन् १७८४ ईस्वीमें रामस जोंसके प्रयत्नसे 'बङ्गाल जर्नल' प्रकाशित होने लगा। विलियम डुआनी नामक एक अमेरिकन पत्रकार सन् १७९१ ईसवीमें उक्त पत्रके सम्पादक नियुक्त हुए। डुआनीने 'इण्डियन वर्ल्ड' नामक एक और पत्रकी स्थापना भी साथ-साथ की। डुआनीकी स्पष्टवादिता तथा पत्रकार-सुलभ सूझके कारण सरकार उनपर शीघ्र ही क्रुद्ध हो गयी और एक दिन वे अंग्रेजी जलपोतपर बिठाकर इंग्लैण्ड भेज दिये गये। इस निर्वासनसे डुआनीको भारी साम्पत्तिक हानि भी उठानी पड़ी। सन् १७८५ ईसवीमें कलकत्तेसे 'ओरियण्टल मेगजीन' नामक एक मासिक पत्र भी प्रकाशित होने लगा था। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'हिकी गजेट'के प्रकाशनके बाद तत्काल ही कलकत्तेसे ही कतिपय पत्र प्रकाशित होने लगे।

पर पत्रोंका जन्म बङ्गालतक ही परिमित न था। भारतके अन्य प्रान्तोंमें भी हम समकालीन पत्रोंका अस्तित्व पाते हैं। सम्भवतः भारतमें उस युगका आगमन हो गया था जब जनता क्रमश. पत्रोंकी आवश्यकताका अनुभव करने लगी थी। सन् १७८५ ईसवीके १२ अक्तूबरको मद्रासमें रिचार्ड जानस्टन नामक अंग्रेज सज्जनने 'मद्रास कोरियर'के नामसे एक साप्ताहिक पत्रकी स्थापना की। मद्रासका प्रथम समाचारपत्र कदाचित् 'मद्रास कोरियर' ही था। रिचार्ड जानस्टन सरकारी मुद्रक थे। 'मद्रास कोरियर' चार पृष्ठोंका पत्र था जो एक सरकारी कर्मचारीसे सम्बद्ध होनेके कारण सरकारका कृपापात्र आरम्भसे ही बन गया। रिचार्ड जानस्टनको सरकारने इंग्लैण्डसे छापनेकी कल तथा टाइप वगैरह मँगानेकी सुविधा भी प्रदान की। इसके दस वर्ष बाद सन् १७९५ ईसवीमें मद्रासमें 'मद्रास गजेट' भी प्रकाशित होने लगा। पर ये दोनों पत्र सरकारी कृपाके आश्रित थे। इसी समय तीसरा पत्र भी प्रकाशित हुआ। हंफ्रेस नामक एक और अंग्रेजने मद्रासमे ही 'इण्डिया हेरल्ड' नामक पत्रका प्रकाशन आरम्भ किया। उस समय जो पत्र निकलते थे उनके लिए प्रकाशनके पूर्व सरकारसे लाइसेन्स प्राप्त करनेकी आवश्यकता होती थी। हंफ्रेसने जब लाइसेन्सके लिए सरकारसे प्रार्थना की तो वह अस्वीकृत कर दी गयी। हंफ्रेस इतनेसे ही निराश होनेवाले व्यक्ति न थे। उन्होने बिना सरकारी लाइसेन्सके ही 'इण्डिया हेरल्ड' प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया।

अब क्या था। निरङ्कुश शासकोंके क्रोधका वारपार न रहा। वे हिंस्र पशुकी भाँति 'इण्डिया हेरल्ड' पर टूट पडे। सरकारने हफ्रेसपर यह अभियोग लगाया कि उसने पत्रमे सरकारकी नीतिके विरुद्ध तथा इंग्लैण्डके युवराजके सम्बन्धमें आपत्तिजनक बाते प्रकाशित की हैं। इसी अपराधके नामपर मद्रास सरकारने हंफ्रेसके विरुद्ध कडी काररवाई की, उसे गिरफ्तार किया, भारतसे निर्वासित कर दिया और एक जहाजपर बैठाकर इंग्लैण्डके लिए रवाना कर दिया।

उधर बम्बईमें भी पत्रोंका प्रकाशन आरम्भ हुआ। सन् १७८९ ईसवीमे 'बाम्बे हेरल्ड' नामक एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। उसके एक वर्ष बाद एक अग्रेजने 'बाम्बे केरियर' की स्थापना की। आगे चलकर यह 'बाम्बे केरियर' ही 'टाइम्स आव इण्डिया' के रूपमे अवतीर्ण हुआ जो आजतक प्रकाशित

होता है और भारतके अधगोरे पत्रोंमें प्रमुख स्थान रखता है। दो वर्ष बाद बम्बईसे 'बाम्बे गजेट' नामक एक और पत्र भी प्रकाशित होने लगा। भारतीय पत्रकारीके विकासके इतिहासपर दृष्टिपात करते हुए हम यह पाते हैं कि अठारहवीं शतीके अन्तिम चरणसे इस देशके तीन प्रान्तों, अर्थात् बङ्गाल, मद्रास और बम्बईमें अंग्रेजी भाषामें साप्ताहिक और मासिक पत्र निकलने लगे थे। अबतक दैनिकोंका युग नहीं आया था और न भारतीय भाषाओंमें कोई पत्र प्रकाशित होता था। यही नहीं प्रत्युत अबतक भारतीय देखरेखमें, भारतीयके सम्पादकत्वमें भी पत्र प्रकाशित नहीं हुए थे। जो प्रकाशन हो रहा था उसका श्रेय अंग्रेज पत्रकारोंको ही है जिन्होंने भारतको पत्रकारी प्रदान करते हुए स्वयं अपनी सरकारकी निष्ठुरताका आघात सहन किया और उसके लिए कष्ट उठानेको बाध्य हुए। अठारहवीं शताब्दीकी समाप्ति होते होते, अर्थात् सन् १७९९ ईसवी तक उपर्युक्त पत्रोंके सिवा बङ्गाल, मद्रास और बम्बईसे कतिपय अन्य पत्र भी प्रकाशित होने लगे थे। बङ्गाल हरकारू, मार्निङ्गपोस्ट, कलकत्ता केरियर, टेलिग्राफ, ओरियण्टल स्टार, इण्डिया गजेट, एशियाटिक मिरर आदि पत्र प्रकाशित हो रहे थे।

सन् १७८० ईसवीसे लेकर सन् १७९९ ईसवीके बीच सरकारकी ओरसे थोडेसे अंग्रेज पत्रकारों और पत्रोंपर जो आघात होता रहा है उसकी चर्चा की जा चुकी है। मार्केकी बात यह है कि जैसे-जैसे पत्रोंकी संख्या बढ़ती गयी और पत्रकारीका विकास होता गया वैसे-वैसे सरकारी दमनकी मात्रा और उग्रता भी बढ़ती गयी। अठारहवीं शतीके समाप्त होते होते सरकारके लिए पत्रोंको अब और अधिक दिनोंके लिए स्वतन्त्र छोड देना सम्भव न रहा। हम यह देखते हैं कि सन् १७९९ ईसवीमें भारतके तत्कालीन वाइसराय लार्ड वेलेजलीने भारतसे प्रकाशित होनेवाले पत्रोंका गला घोंट देनेके लिए अपना नग्न रूप प्रकट कर दिया। यही वर्ष था जब पत्रोंकी स्वतन्त्रताका अपहरण करनेके लिए सरकारकी घृणित कुप्रवृत्तिने कानूनका रूप ग्रहण किया। विभिन्न प्रान्तोंमें वहाँके गवर्नर अपने प्रान्तीय पत्रोंपर वर्षों पूर्व खड्गहस्त हो ही चुके थे। मद्रासमें पत्रोंके दमनकी चेष्टा आरम्भसे ही अपेक्षाकृत तीव्र थी। वहाँ सन् १७९५ ईसवीमें ही पत्रोंके कठोर 'सेन्सर' की आज्ञा जारी हो चुकी थी।

'मद्रास गजेट' को यह आदेश दिया गया था कि प्रकाशनके पूर्व वह अपने पत्रके उन समस्त स्तम्भोंका 'सेन्सर' करा लिया करे जो प्रकाशित होनेवाले हों। धीरे-धीरे यह आदेश केवल 'मद्रास गजेट' तक ही परिमित न रहा। सारे प्रान्तके समस्त पत्रोंको यह आम हुक्म दे दिया गया था कि पत्रके प्रकाशनके पूर्व अपना 'सेन्सर' करा लेना आवश्यक है। पर अवतक केन्द्रीय सरकार अपनी सारी रियासतके लिए कोई विधान नहीं वना सकी थी।

१७९९ ईसवीमें एक विधान बनाया गया जिसके निर्माणका श्रेय लार्ड वेलेजलीको प्राप्त हुआ। वेलेजली भारतके वाइसराय नियुक्त होकर आये। भारतमें उनका पदार्पण १७९८ ईसवीमें हुआ। उस समय दक्षिण भारतमें अंग्रेजोका युद्ध टीपू सुलतानसे चल रहा था। वेलेजलीको आये एक वर्ष भी पूरा न हुआ कि कलकत्तेके पत्रोंका नियन्त्रण करनेके लिए प्रेस सम्बन्धी पहला कानून बना डाला गया। इस कानूनके अनुसार :—

(१) पत्रके मुद्रकके लिए पत्रके अन्तमें अपना नाम प्रकाशित करना अनिवार्य कर दिया गया।

(२) पत्रके सम्पादक और स्वामीके लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वह अपने वासस्थानका पूरा पता सरकारके सेक्रेटरीको लिखकर बता दे।

(३) यह आदेश दे दिया गया कि रविवारको किसी पत्रका प्रकाशन न किया जाय।

(४) जबतक सरकारी सेक्रेटरी अथवा उसके द्वारा नियुक्त कोई अधिकारी प्रकाशनके पूर्व पत्रका निरीक्षण न कर ले तबतक किसी भी पत्रको प्रकाशित करनेकी मनाही कर दी गयी।

स्मरण रखनेकी बात है कि अवतक जो पत्र प्रकाशित हुए थे वे अंग्रेजी भाषाके ही थे जिनके संस्थापक और सम्पादक भी अंग्रेज ही थे। ऐसी स्थितिमें अंग्रेज सम्पादकोंको आवश्यकता पड़नेपर भारतसे निर्वासित करके इंग्लैण्ड भेज देना पर्याप्त दण्ड समझा जाता था जिसकी व्यवस्था उक्त कानूनमें कर दी गयी। इस कानूनमें यह व्याख्या भी कर दी गयी कि सरकार किन बातोंका प्रकाशित किया जाना आपत्तिजनक समझती है। ईस्टइण्डिया कम्पनी द्वारा वसूल

किये जानेवाले कर अथवा सरकारी कर्ज सम्बन्धी विषयोपर टीकाटिप्पणी करना, सेनाके आगमन अथवा सैनिक और जलसैनिक, किसी प्रकारकी तैयारी-के सम्बन्धमे किसी प्रकारका मत प्रकट करना, किसी जहाजके आगमन अथवा उसके नष्ट हो जानेकी सूचना प्रकाशित करना, सरकारके किसी कर्मचारीके चाहे वह फौजी, मुल्की, व्यावसायिक अथवा कुछ ही क्यों न हो, आचरणके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी टीका करना, किसी व्यक्तिके प्रति अपमानजनक बाते छापना, किसी देशी राजासे कम्पनी सरकारके सन्धि-विग्रहके सम्बन्धमे कोई सूचना प्रकाशित करना, कम्पनी सरकारकी प्रजामें भय उत्पन्न करनेवाली वातें अथवा ऐसी वातें जिनसे शत्रुको कुछ सूचना मिल सकती हो प्रकाशित करना तथा अन्ततः यूरोपके किसी पत्रमे प्रकाशित ऐसी वातोंको उद्धृत करना जो सरकारके प्रभाव और उसकी साखको इस देशमें ठेस पहुँचानेवाली हों छापना सरकारकी दृष्टिमें आपत्तिजनक माना जायगा।

लार्ड वेलेजली द्वारा निर्मित इस कानूनका अर्थ क्या था यह वतानेकी आवश्यकता नहीं है। स्पष्ट है कि भारतीय पत्रोंकी स्वतन्त्रतापर आघात करनेके लिए तथा उनके कार्य-क्षेत्रको अति सङ्कुचित कर देनेके लक्ष्यका साधन करना ही इस कानूनका उद्देश्य था। विशेषता यह है कि इस कानूनका निर्माण किया भारतके उन विदेशी शासकोंने जिनके अपने देशमें प्रेसको अक्षुण्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गयी थी। जिस ब्रिटिश जनता और जिन ब्रिटिश पत्रोंने अपने त्याग और कष्टसहनके वलपर लिखने और मत प्रकट करने तथा टीका-टिप्पणी करनेकी स्वतन्त्रताको जनाधिकारका मूलाधार स्वीकार करके उसकी प्राप्तिकी चेष्टा की थी उसी ब्रिटेनकी ईस्टइण्डिया कम्पनीकी भारत-स्थित सरकार भारतीय पत्रोंका गला घोंट रही थी। याद रखने-की वात है कि ब्रिटेनके पत्रोंने उपर्युक्त घटनाके प्रायः एक शताब्दी पूर्व अर्थात् १६९५ ईसवीमे ही अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी और पार्लमेण्टने कानूनन उस स्वतन्त्रताको स्वीकार कर लिया था। आज सौ वर्ष वाद भारतके अंग्रेज शासक अपनी सारी परम्पराको भूलकर, अपने उज्ज्वल इतिहास और धवल सुनामको नगण्य तथा कलुषित करके जन-स्वातन्त्र्यका मूलोच्छेद करनेमें दत्तचित्त थे।

उपर्युक्त कानून यद्यपि बना कलकतिया पत्रोंके नियन्त्रणके लिए पर, क्रमशः बम्बई और मद्रासमें भी वह लागू कर दिया गया। सरकारका सेंसर विभाग बडी उग्रताके साथ पत्रोंका अङ्गच्छेद करता रहा। मजाल नहीं थी कि कोई पत्र प्रकाशित होनेके पूर्व सेंसर अफसरका दर्शन न कर आये। लगातार अठारह वर्षोंतक इस कानूनकी तलवार भारतीय पत्रोंकी ग्रीवापर झूलती रही। यदाकदा खनखनाकर टूट भी पडती। पत्रोंकी स्वतन्त्रताका अपहरण करके सरकारने न केवल नैसर्गिक तथा सभ्य-समाज-सम्मत जनाधिकारपर प्रहार किया था अपितु जनसाधारणमें पत्रोंके द्वारा होनेवाले ज्ञान-प्रसार तथा बौद्धिक विकासका मार्ग भी अवरुद्ध किया। वेलेजलीसे लेकर मिण्टोके शासनकालकी समाप्तितक भारतीय पत्रोंकी यही स्थिति रही। जब लार्ड हेस्टिंग्सने भारतकी गवर्नर जेनरलीका सूत्र अपने हाथमें लिया तो १८१८ ईसवीमें स्थितिमें कुछ परिवर्तन हुआ। उन्होंने उपर्युक्त कानूनमें कुछ सुधार किया जिसके फलस्वरूप उसकी कठोरतामें भी कमी हुई। लार्ड हेस्टिंग्सने प्रकाशनके पूर्व सेंसर करनेकी प्रथा समाप्त की और पत्रोंको रविवारको भी प्रकाशित होनेकी स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। १९ अगस्तको हेस्टिंग्सकी सरकारने यह निश्चय किया कि सेंसर करनेकी प्रथा तो समाप्त की जाती है किन्तु उसके स्थानपर नीचे लिखे साधारण नियम बना दिये जाते हैं जिनकी सहायतासे सम्पादकवर्ग यह भली-भाँति समझ जाय कि कौनसी बातें ऐसी हैं जिन्हे प्रकाशित न करना ही उचित होगा और इस प्रकार इस देशमें स्थापित सरकारकी प्रतिष्ठाको ठेस पहुँचानेके अपराधसे बचा जा सकेगा।

जो नियम बनाये गये उनमें कहा गया कि पत्रोंमें नीचे लिखी बातें प्रकाशित न की जायँ। (१) कोर्ट आव डाइरेक्टर्स अथवा ब्रिटिश सरकारके किसी उस विभागके, जिसका सम्बन्ध भारत सरकारसे हो किसी निर्णय अथवा काररवाईको प्रकाशित न किया जाय और न कौंसिलके सदस्यो, सुप्रीमकोर्टके जजों तथा कलकत्तेके बडे पादरीके किसी सार्वजनिक कार्यपर अपमानजनक उद्गार प्रकट किये जायँ। (२) भारतकी प्रजामें आतङ्क अथवा सन्देह उत्पन्न करनेवाली अथवा किसी वर्गके धार्मिक विश्वासों और उसकी भावनाओंपर आघात पहुँचानेवाली किसी बातका प्रकाशन न किया जाय। (३) किसी व्यक्तिके

विरुद्ध अपमानजनक बातें न छापी जायँ और न विदेशी पत्रोंमें प्रकाशित किसी ऐसे लेख या लेखांशका उद्धरण उपस्थित किया जाय जो भारतमें स्थापित ब्रिटिश सरकारके पद और शक्तिको कमजोर करनेवाली हो। इस प्रकार हेस्टिंग्सकी सरकारने वेलेजली द्वारा प्रवर्तित दमनात्मक प्रेस-कानूनकी कठोरता कुछ कम करके कुण्ठित हुई भारतीय पत्रकारीको कुछ पनपनेका मौका प्रदान किया। पत्रकारीके इतिहासकी दृष्टिसे सन् १८१८ ईसवी इसी कारण अपना विशेष स्थान रखता है।

सरकारकी ओरसे थोड़ीसी ढील मिलनेका जो प्रभाव भारतीय पत्रोंपर पड़ना अनिवार्य था वह स्पष्ट पड़ा दिखाई देता है। पत्रोंका पथावरोध यत्किञ्चित् ही कम हुआ था कि इसी वर्ष न केवल भारतीय धन, प्रबन्ध और अवधानमें भारतीय पत्र निकलने लगे अपितु भारतीय भाषाओंमें भी पहले-पहल उनका सूत्रपात इसी समय हुआ। इसी कारण सन् १८१८ ईसवी भारतीय पत्रकारीके इतिहासमें स्मरणीय रहेगा। राजा राममोहन रायके नामसे कौन भारतीय परिचित न होगा। शताब्दियोंकी दासता, रूढ़िपूजा, दौर्बल्य तथा कायरतासे विताड़ित उन्नीसवीं शतीकी भारतीयताका यह सौभाग्य था कि राममोहनराय सी विभूति इस भूमि पर आविर्भूत हुई। सन् १८१८ में भारतकी पत्रकारीने सौभाग्यसे राजाके समान भव्य व्यक्तित्वका नेतृत्व प्राप्त किया। उनकी उत्प्रेरणा, उनका समर्थन और उनका निर्भीक नेतृत्व प्राप्त करके उसने नयी दिशाकी ओर पग बढ़ाया। राजा साहबकी उद्बोधिनी प्रतिभाने वस्तुतः उसमें प्राण-सञ्चार कर दिया। उनकी आत्मीय सभाके दो सदस्य और उनके मित्र श्री हरचन्द्र राय और श्री गङ्गाकिशोर भट्टाचार्यके सहयोगसे भारतीय भाषामें प्रथम भारतीय पत्र 'बङ्गाल गजेट' इसी वर्ष प्रकाशित हुआ। 'बङ्गाल गजेट' बँगला भाषाका प्रथम साप्ताहिक पत्र था जो भारतीय देखरेखमें प्रकाशित हुआ। इसी समय भारतमें ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाली मिशनरी संस्थाओंके पत्र भी प्रकाशित हुए। शिवरामपुरके ईसाई धर्म-प्रचारकोंकी एक संस्थाकी ओरसे बँगलामें 'दिग्दर्शन' नामका मासिक पत्र और 'समाचारदर्पण' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। इन्हीं ईसाइयोंने 'फ्रेण्ड आव इण्डिया' नामक अंग्रेजी भाषाका पत्र भी प्रकाशित किया।

'वङ्गाल गजेट' उस कालका प्रगतिशील पत्र था। शीघ्र ही उसने अच्छी लोकप्रियता भी प्राप्त की। ईसाइयोंके पत्रोंका प्रथम उद्देश्य यद्यपि अपने धर्मका प्रचार करना ही था तथापि जनताका समर्थन प्राप्त करनेके लिए तथा उसके जीवनसे प्रवेश करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर उन्होंने भी अपने पत्रोंमे भारतीय समाचारों और समस्याओंका समावेश किया। पर तत्कालीन पत्रकारीके क्षेत्रमे श्री जेम्स सिल्क बकिङ्घमके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होनेवाले 'कलकत्ता जर्नल'को प्रमुख स्थान प्रदान करना होगा। अग्रेजी भाषामें प्रकाशित होनेवाले इस पत्रने अपने सुयोग्य, आदर्शवादी तथा निर्भीक सम्पादकके सम्पादकत्वमें भारतकी पत्रकारीको नयी धारा प्रदान की। प्रसिद्ध है कि उस युगमे भी जब निरङ्कुशताका बोलबाला था 'कलकत्ता जर्नल'ने जिस स्वतन्त्रता, जन-हितप्रियता तथा निष्पक्ष और निर्भय टीकाटिप्पणीको स्थान दिया उसे देखकर भारत और इंग्लैडके कट्टरपन्थियोका आसन डोल उठा। 'कलकत्ता जर्नल' सरकारकी भी खरी आलोचना करता था। प्रगतिशील तथा मानवतासम्मत विचारों और नीतिके समर्थक इस पत्रने अन्य पत्रोंके सम्मुख आदर्शकी प्रतिष्ठा की। अपने कष्टों और शिकायतोको प्रकट करनेकी सुविधा जनताको अबतक किसी पत्रमें प्राप्त न थी। 'कलकत्ता जर्नल'ने अपने स्तम्भोको इसके लिए भी खोल दिया। स्थानीय तथा वैयक्तिक शिकायतोंके सम्बन्धमें पत्र लिखकर अपने भावोंको प्रकट करने तथा अधिकारियोका ध्यान उन बातोकी ओर आकर्षित करनेका मौका सर्वसाधारणको इस पत्रके द्वारा प्राप्त हुआ।

हम कह सकते हैं कि 'कलकत्ता जर्नल' भारतका पहला पत्र था जिसने इस देशमे प्रगतिशील तथा उदार नीति-सम्पन्न पत्रकारीको जन्म प्रदान किया और तत्-मतावलम्बी पत्रोका विकास होनेपर उनका नेतृत्व ग्रहण किया। इस पत्रकी स्पष्टवादिता और स्वतन्त्रतासे लार्ड हेस्टिंग्सकी शासनपरिषदके कुछ दकियानूस तथा कट्टर साम्राज्यवादी सदस्य तो इतने बौखला उठे थे कि उन्होने गवर्नर-जेनरलको पत्रोकी रोकथामके लिए पुराने सेंसरके नियमोको पुन. जारी कर देनेके लिए दबाना आरम्भ किया। लार्ड हेस्टिंग्स इस बातके लिए प्रशंसाके पात्र हैं कि प्रतिगामियोंके प्रभावसे वे अपनेको मुक्त रख सके। उनकी हजार चेष्टाओंकी

उपेक्षा करके भी हेस्टिंग्सने पुराने गलाघोटू कानूनोंको पुनरुज्जीवित करना अस्वीकार कर दिया। फलतः 'कलकत्ता जर्नल'के बढते हुए प्रभावसे कट्टरपन्थी गुट ऐसा त्रस्त हुआ कि सन् १८२१ मे उसके विरोधमें 'जानबुल' नामक अपना पत्र प्रकाशित किया। पर यह पत्र अधिक सफलता न प्राप्त कर सका क्योकि आरम्भसे ही उसकी नीति सरकारी पक्षका समर्थन करनेकी ही थी। स्वाभाविक था कि वह सन्देहात्मक दृष्टिसे देखा जाता। फलतः उसका प्रभाव भी स्थापित न हो सका। कहा जाता है कि श्री जेम्ससिल्क बकिङ्घमको भीतर-भीतर राजा राममोहनका समर्थन और उनकी सहायता प्राप्त थी। इसी समयसे धीरे-धीरे प्रजापक्षका समर्थन करनेवाले पत्रोका प्रभाव देशके जीवनपर स्थापित होता गया। राजा राममोहनके प्रयत्नसे सन् १८२० ईसवीमें 'संवादकुमुदिनी' नामक एक और बँगला साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित होने लगी। उसके एक वर्ष बाद उन्होने 'ब्राह्मनिकल मेगजीन' नामक पत्र भी प्रकाशित करना आरम्भ किया। यह पत्र बँगला और अंग्रेजी दोनो भाषाओमे प्रकाशित होता रहा। इसी समय राजा साहबने अखिलभारतीय पत्र प्रकाशित करनेकी चेष्टा भी की। उस समय सार्वदेशिक प्रचलित भाषा फारसी थी। बॅगला अथवा अंग्रेजीका क्षेत्र परिसीमित था अतः 'मिरातुल-अखबार'के नामसे उन्हीकी प्रेरणासे फारसी साप्ताहिक भी प्रकाशित होने लगा। कहा जाता है कि उस युगमें 'मिरातुल-अखबार'का असाधारण प्रभाव स्थापित हो गया था।

राजा राममोहनने अङ्कुरित होती हुई पत्रकारीके विकासको जो दिशा प्रदान की उसका व्यापक प्रभाव देशके जीवनपर पडना अनिवार्य था। जनाधिकार तथा जनहितका प्रतिनिधित्व निर्भयतापूर्वक करनेका आदर्श स्थापित करके उन्होने पत्रोको देशमें नयी चेतना उत्पन्न करनेका साधन बनाया। पत्रोके इस नये स्वरूपने स्पष्टतः उनमे दो पक्ष उत्पन्न कर दिये। एक वर्ग तो उन पत्रोका हो गया जो प्रगतिशील विचारोके समर्थक, उदारनीतिके प्रवर्तक तथा जनहितके पक्षपाती थे; दूसरा वर्ग उन पत्रोका हो गया जो रूढियो और अन्धपरम्पराओके समर्थक, कट्टरताके प्रवर्तक तथा शासको और स्थापित शासन सत्ताके पक्षपाती हो गये। पत्रोंका यह वर्गीकरण आजतक स्पष्ट है। प्रगतिशील पत्रोंके विकासने जनजीवनमे चेतनाकी लहरी लहरा दी। सन्

१८१८ ईसवीमें जहाँ एक ओर जन-जाग्रतिके प्रतीकस्वरूप हम भारतीय पत्रोंका विकास होते देखते हैं वहीं यह भी देखते हैं कि 'विदेशी सरकार उन्हे कुचल देनेके लिए बद्धपरिकर होती है। न्यायालयमें विना मुकदमा चलाये और बिना अपराध सिद्ध हुए किसी व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका अपहरण करके उसे अनिश्चित कालतक जेलमें बन्द कर रखनेका कानून पहले-पहल इसी वर्ष बना। सन् १८१८ के रेगुलेशन ३ को कौन भारतीय भूलेगा जिसका प्रयोग सवा सौ वर्ष बाद आज भी किया जाता है? महात्मा गान्धी प्रभृति हमारे नेता इस पापपूर्ण कानूनके शिकार हो चुके हैं। पर सरकारकी दमन-प्रवृत्तिकी परिसीमा यहीं समाप्त नहीं होती। प्रगतिशील पत्रोंके विकासको भी सशङ्क दृष्टिसे देखा गया। जैसा कि कहा जा चुका है गवर्नर-जेनरलकी शासन-परिषदके कुछ कट्टर-पन्थी सदस्योंने उपर्युक्त प्रकारके पत्रोंको कुचल देनेके लिए सेंसर सम्बन्धी पुराने कानूनको जारी कर देनेकी माँग पेश कर दी। कम्पनीके कोर्ट आव डाइरेक्टर्सके सदस्य भी इसके पक्षपाती थे। वाइसराय और शासन परिषदके सदस्योंमें जान आदम इसके सबसे बड़े समर्थक थे।

पर जबतक हेस्टिंग्स गवर्नर-जेनरल थे तबतक यह प्रयत्न सफल न हो सका। सन् १८२३ ईसवीमे लार्ड हेस्टिंग्सने अवकाश ग्रहण किया। उनके जानेके बाद जान आदम ही भारतके स्थानापन्न गवर्नर-जेनरल नियुक्त हुए। आदमने अवसर पाते ही अपने मनवाली कर डालनेका निश्चय किया। इस दिशामें पहला प्रहार उन्होंने 'कलकत्ता जर्नल' और उसके सम्पादक श्री जेम्स सिल्क बकिङ्घमपर किया। आदमकी आज्ञासे बकिङ्घम गिरफ्तार किये और तत्काल भारतसे निर्वासित करके इङ्गलैण्ड भेज दिये गये। पर इतनेसे ही उन्हे सन्तोष नहीं हुआ। अब वह समय आगया था जब कतिपय भारतीय पत्र भारतीय सम्पादकोंके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रहे थे। अंग्रेज पत्रकारोको तो निर्वासित कर देनेसे काम चल जा सकता था पर भारतीयोंके नियन्त्रण और दमनके लिए कुछ और व्यवस्था करना आवश्यक हो गया। फलतः ४ अप्रैल सन् १८२३ को आदम साहबने समाचारपत्र तथा प्रेस सम्बन्धी नये कानून जारी किये। ये नये कानून वेलेजलीकी पुरानी व्यवस्थासे भी कहीं अधिक कठोर थे। उनमें कहा गया था कि :—

(१) कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियोंका समूह बिना सरकारकी स्वीकृतिके फोर्ट विलियमकी आबादीके क्षेत्रमें इस प्रकारका कोई समाचारपत्र, पत्रिका, पुस्तिका, विज्ञप्ति अथवा पुस्तक प्रकाशित न करेगा जिसमें किसी भाषासे भी सरकारकी नीति या कार्यपद्धतिके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी सूचनाका समाचार दिया गया हो अथवा टीका-टिप्पणी की गयी हो।

(२) प्रत्येक व्यक्ति जो सरकारसे लाइसेन्सकी प्राप्तिके लिए प्रार्थनापत्र पेश करे, एक हलफनामा भी दाखिल करे जिसमें प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्र, पत्रिका या पुस्तिकाके मुद्रक अथवा प्रकाशकका नाम तथा पूरा पता दिया गया हो। प्रेसके मालिकका नाम देना भी जरूरी है। यदि मालिकोंकी संख्या दोसे अधिक हो तो उनमेंसे जो सबसे बडे हिस्सेदार हों और जो बङ्गालमें रहते हो उनका नाम मय पूरे पतेके दाखिल किया जाय। यह भी आवश्यक है कि जिस भवनमें समाचारपत्र या अन्य तत्सम प्रकाशन होता हो उसका विस्तृत विवरण और स्वरूप अङ्कित कर दिया जाय।

(३) बिना लाइसेन्स लिये यदि कोई समाचारपत्र प्रकाशित किया जायगा तो प्रकाशकको चार सौ रुपये जुर्माने अथवा चार महीने कैदका दण्ड दिया जायगा।

इसके साथ-साथ यह आज्ञा भी जारी की गयी कि छापाखानेके लिए भी लाइसेन्स लेनेकी आवश्यकता है। बिना लाइसेन्सके छापाखाना खोलनेवालेको छः महीनेका कारावास तथा सौ रुपयेतक जुर्मानेकी सजा दी जा सकेगी। सरकारको यह भी अधिकार होगा कि ऐसे छापाखानोंको जब्त कर ले। जिन पत्रोंका प्रकाशन रोक दिया गया हो उन्हे वितरित करानेवालेको एक हजार रुपयेतक जुर्माने अथवा दो महीने कारावासका दण्ड दिया जा सकेगा।

भारतीय पत्रोंकी स्वतन्त्रतापर विदेशी सरकारकी ओरसे यह प्रचण्ड और निष्ठुर आघात था। जिस ब्रिटेनमें ब्रिटिश जनताकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सत्रहवीं शतीमे घोषित कर दी गयी थी, जहाँके पत्रोकी स्वतन्त्रता भी उसी समय स्वीकार कर ली गयी थी वहाँके भारत-स्थित शासकोंने भारतीय पत्रोंकी स्वतन्त्रताकी हत्या कर डाली। सौभाग्यसे उस समय राजा राममोहनके समान तेजस्वी व्यक्ति जीवित था। भारतीय पत्रोंकी ओरसे उक्त बर्बर-विधानका प्रतिरोध

करनेके लिए वे अग्रसर हुए। सुप्रीम कोर्टमें उन्होंने इस कानूनके विरुद्ध अपील की। राजा साहबने जो मन्तव्य सुप्रीम कोर्टके सामने उपस्थित किया उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर देना उचित होगा। उसमें कहा गया था कि 'सम्राटके विस्तृत साम्राज्यमें फैली हुई उनकी प्रजा अपने कष्टोंको उनतक पहुँचानेके अधिकारसे वञ्चित की जा रही है। इस कानूनका परिणाम यह होगा कि सरकार अपने कर्मचारियों द्वारा की गयी गलतियों, भूलों तथा अन्यायोंसे परिचित नहीं हो सकेगी क्योंकि इन बातोंका प्रकाशन भविष्यमें असम्भव हो जायगा। प्रत्येक भला शासक जो मनुष्य-स्वभावकी दुर्बलताओंसे परिचित है और जो प्रभुओंके भी प्रभु की सत्तामें आस्था रखता है यह स्वीकार करेगा कि किसी विस्तृत और महान साम्राज्यकी व्यवस्था करनेका अधिकार प्राप्त करके उसने महान उत्तरदायित्व उठाया है जिसका निर्वाह करनेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको ऐसा अवसर प्रदान करना आवश्यक है जिसमें वह अपने कष्टोंको अपने शासकोंके सम्मुख तत्काल उपस्थित कर सके। इस लक्ष्यकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय यह है कि संवादपत्रोंको अकुण्ठित स्वतन्त्रता प्रदान की जाय'।

सुप्रीमकोर्टने राजा राममोहनकी अपील अस्वीकृत कर दी। ईस्टइण्डिया कम्पनीके विधाताओंने खुल्लमखुल्ला जान आदमकी इस नीतिका समर्थन किया। आदम स्थानापन्न वाइसराय थे अतः जब लार्ड एम्हर्स्ट गवर्नर-जेनरल नियुक्त हुए तो उन्होंने भी आदमकी नीतिसे सहमति प्रकट की। राजा राममोहन इससे भी निराश न हुए। उन्होंने सम्राटकी सेवामें प्रार्थनापत्र भेजकर इस कानूनका प्रतिवाद किया जिसमें नम्रतापूर्वक यह निवेदन किया कि आजकी अपेक्षा कहीं अधिक निरङ्कुश स्वच्छन्द मुगल शासकोंके शासन-कालमें भी भारतीय प्रजा अधिक सुरक्षित थी क्योंकि अधिकारियों द्वारा अधिकारके सम्भव दुरुपयोगका नियन्त्रण करनेके लिए उचित व्यवस्थाकी स्थापनामें वे सफल हुए थे। प्रिवी-कौंसिलने इस अपीलको भी यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि किसी स्वतन्त्र देशके समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रता आवश्यक हो सकती है पर भारतकी असाधारण स्थिति तथा हमारे शासनके वर्तमान स्वरूपसे वहाँके पत्रोंका स्वतन्त्रताका सिद्धान्त सङ्गत नहीं है। पाठक देखें कि ब्रिटिश न्यायका यह नमूना रहा है। ब्रिटेनकी जनता मनुष्य थी पर भारतमें बसनेवाले मानो

मानव नहीं हैं क्योंकि जो सिद्धान्त और व्यवस्था वहाँ सङ्गत है वही भारतमें असङ्गत है।

नये प्रेस-कानूनका प्रथम शिकार राजा राममोहनका फारसी भाषाका समाचारपत्र 'मिरातुल अखबार' हुआ। उनके समान तेजस्वी व्यक्तिके लिए उक्त कानून द्वारा उद्भूत अपमानजनक परिस्थितियोमे समाचारपत्र प्रकाशित करना असम्भव होगया। फलतः ४ अप्रैल सन् १८२३ को उन्होंने पत्रका अन्तिम संस्करण प्रकाशित करते हुए उसके स्तम्भोमें यह घोषणा की कि 'जो परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है उसमें पत्रका प्रकाशन रोक देना ही एकमात्र मार्ग रह गया है। जो नियम बने है उनके अनुसार किसी यूरोपियन सज्जनके लिए जिनकी पहुँच सरकारके चीफ सेक्रेटरी तक सरलताके साथ हो जाती है सरकारसे लाइसेन्स लेकर पत्र निकाल देना आसान है पर भारतके किसी निवासीके लिए जो सरकारी भवनकी देहरी लाँघनेमें भी समर्थ नहीं हो पाता, पत्र-प्रकाशनके लिए सरकारकी आज्ञा प्राप्त करना दुस्तर कार्य हो गया है। फिर खुली अदालतमें हलफनामा दाखिल करना भी कम अपमानजनक नहीं है। लाइसेंसके छिन जानेका खतरा भी सदा सिरपर झूला करता है। ऐसी दशामें पत्रका प्रकाशन रोक देना ही उचित है।'

दूसरा शिकार 'कलकत्ता जर्नल' हुआ जिसके प्रथम सम्पादक श्री जेम्स बकिङ्घम पहले निर्वासित किये जा चुके थे। अब उसके सम्पादक श्री सैण्डी आरनाट थे। उनपर सरकारकी कठोर दृष्टि पडी। वे गिरफ्तार किये गये, उनका निर्वासन हुआ और 'कलकत्ता जर्नल' नष्ट कर दिया गया। प्रायः छः वर्षों-तक भारतीय पत्रोका क्रूर कण्ठावरोधन निरङ्कुश और अबाध गतिसे चल रहा था। लार्ड हेस्टिंग्सकी उदारताने प्रगतिशील पत्रकारीके लिए जिस वाता-वरणका सर्जन किया था वह नष्ट हो चुका था और दमन तथा परतन्त्रताकी घृणित शृङ्खला भारतीय पत्रोको कठोरतापूर्वक कसती जा रही थी। पर सौभाग्यसे यह स्थिति अधिक दिनोंतक न रही। लार्ड एम्हर्स्टने गवर्नर-जेनरलीका सूत्र रखा और लार्ड विलियम बेण्टिङ्कने शासन-भार उठाया तो परि-स्थितिमे पुनः परिवर्तन हुआ। बेण्टिङ्क उदार और प्रगतिशील विचारके व्यक्ति थे। भारतमें ब्रिटिश राजके इतिहासमे वे अपनी उदारताके लिए प्रसिद्ध है।

उन्होंने उक्त पद ग्रहण करते ही यह घोषणा की कि वे पत्रोंकी स्वतन्त्रताको सुशासनकी स्थापनाके लिए सहायक समझते हैं। उनके इस भावने एक बार पुनः असमयमें मसल दी गयी भारतीय पत्रकारीकी कोमल लतिकाका सिञ्चन किया। प्रगतिशील विचारोंको उभड़नेका अवसर पुनः मिला। राजा राममोहन पुनः आगे बढ़े और एक बार भारतीय पत्रोंका नेतृत्व पुनः ग्रहण किया।

सन् १८२९ में उन्होंने अंग्रेजी भाषामें 'बङ्गाल हेरल्ड' नामक साप्ताहिक पत्रकी स्थापना की जो एक अंग्रेज पत्रकारके सम्पादनमें प्रकाशित होने लगा। इसी समय श्री नीलरतन हालदारके सम्पादकत्वमें 'बङ्गदूत' भी प्रकाशित होने लगा। इस पत्रका प्रकाशन बँगला, हिन्दी और फारसी लिपियोंमें होता था। श्री नीलरतन राजा राममोहनके मित्र तथा अनुयायी थे। सौभाग्यसे इस समय राजा साहबको कुछ और सहायक तथा मित्र मिल गये जिनका उल्लेख कर देना आवश्यक है। कुमार द्वारिकानाथ टैगोर तथा कुमार प्रसन्नकुमार टैगोर उस प्रसिद्ध टैगोर-परिवारके सदस्य थे जिसमें आगे चलकर स्वर्गीय रवि बाबूका अवतार हुआ। द्वारिकानाथ रवि बाबूके पितामह थे। इसी धनी और सम्पन्न परिवारने तत्कालीन पत्रकारीकी सेवा अपने धनसे की। टैगोरका कुल अपनी प्रगतिशीलता, उदारता तथा व्यापक दृष्टिकोणके कारण सदा प्रसिद्ध रहा है। श्री द्वारिकानाथ और श्री प्रसन्नकुमारपर राजा राममोहनका गहरा प्रभाव था।

उनकी प्रेरणासे श्री द्वारिकानाथने बङ्गालके कतिपय गोरे पत्रोंको खरीद लिया। 'बङ्गाल हरकारू' पहले उनके हाथ आया। कुछ वर्षों बाद कट्टर तथा साम्राज्यवादी यूरोपियनोंका सुप्रसिद्ध 'जानबुल' भी बिका जिसे द्वारिकानाथने खरीद लिया। इस 'जानबुल'ने नये स्वामियों और प्रबन्धकोंके हाथमें पड़कर अपना नाम और रूप परिवर्तित किया जो 'इङ्गलिशमैन'के नामसे प्रकाशित होने लगा। 'इङ्गलिशमैन' अपने आरम्भिक युगमें प्रगतिशील संवादपत्रके रूपमें विख्यात था। श्री प्रसन्नकुमारने 'रिफार्मर' नामक पत्रका प्रकाशन आरम्भ किया जो आगे चलकर देशका प्रमुख तथा आदरणीय पत्र हो गया।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि बेण्टिङ्कके पदारोहण करनेके दो ही तीन वर्षोंके भीतर भारतीय पत्रकारीका क्षेत्र विस्तृत होने लगा। देशमें उत्पन्न चेतना सामाजिक सुधार तथा रूढ़ियोंके उन्मूलनकी ओर उन्मुख होने

लगी थी। बेण्टिङ्कका ही काल था जो सती-प्रथाकी समाप्तिके लिए प्रसिद्ध है। उस समयतक ऐसे सुधारकोंका वर्ग उदीयमान हो चुका था जो उक्त प्रथाका विरोध करनेके लिए अग्रसर होनेका साहस प्रकट कर रहे थे। स्वयं राजा राम-मोहन उस आन्दोलनके नेता थे। तत्कालीन प्रगतिशील भारतीय पत्रोंके स्तम्भमें उसके लिए जोरदार सङ्घर्ष चल रहा था। प्रगतिशील विचारोंका विरोध करने-वाले रूढ़िपूजकोंका वर्ग भी चुप न था। वह भी उसी प्रकार सक्रिय था। कट्टरपन्थियोंके पत्र भी प्रकाशित हो रहे थे जो किसी प्रकारके सामाजिक सुधार-के विरोधी थे। 'समाचारचन्द्रिका' नामक पत्र ऐसे गुटोंका मुख पत्र था। पर प्रगतिके पथका विरोध करनेमें प्रतिगामी अधिक दिनोंतक सफल नहीं होते। भारतकी नव-चेतनाका समय धीरे-धीरे आ रहा था जिसका स्पष्ट सङ्केत देनेवाले प्रगतिशील पत्र उसके अग्रदूत थे। फलतः भारतके उद्‌बुद्ध शिक्षित वर्गकी माँग अबाध गतिसे तीव्र होती गयी जिसके फलस्वरूप बेण्टिङ्ककी सरकारने सती प्रथा-की समाप्ति कानूनन कर दी। प्रगतिशील पत्रोंकी यह प्रथम विजय थी।

इस सफलताने पत्रकारीको और विशेषकर प्रगतिशील पत्रकारीको विकसित होनेमें और अधिक उत्प्रेरणा तथा सहायता प्रदान की। सन् १८३१ ईसवीमें श्री ईश्वरचन्द्र गुप्तका 'सवादप्रभाकर' प्रकाशित हुआ। समय पाकर यह पत्र बड़ा प्रसिद्ध हुआ और श्री द्वारिकानाथ तथा उनके बाद श्री देवेन्द्रनाथ टैगोरकी सहायता और उनका समर्थन पाकर सन् १८३६ मे दैनिकमें परिव-र्तित हो गया। यही बङ्गालका बँगला भाषामें प्रथम दैनिक पत्र था। हिन्दी भाषाका प्रथम समाचारपत्र 'उदन्तमार्तण्ड' भी बङ्गालमें ही सन् १८२६ ईसवी-में प्रकाशित हुआ। फारसी भाषाके 'मिरातुल अखबार'का उल्लेख पूर्वके पृष्ठोंमें किया ही जा चुका है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बङ्गालको ही हिन्दी, बँगला तथा फारसीके प्रथम पत्रोंको प्रकाशित करनेका श्रेय प्राप्त है। पर पत्रोंके विकासकी गति बङ्गालतक ही परिमित न थी। सन् १८२० ईसवीमें बम्बईमें कतिपय गुजराती भाषाके समाचारपत्र प्रकाशित होने लगे थे। 'मुम्बई वर्तमान', 'जामेजमशेद' आदि कतिपय पत्र प्रकाशित हो रहे थे। इसी समय वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक पत्रोंका उदय भी हुआ। बङ्गालकी 'एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना सन् १७८४ ईसवीमें सर विलियम जोन्सने की थी। ऐतिहासिक अनुशीलनका

महत्त्वपूर्ण कार्य इस संस्थाद्वारा होता था पर अवतक उसका अपना कोई पत्र प्रकाशित नही होता था। सन् १८३२ ईसवीसे श्री जेम्सप्रिंसेपके सम्पादकत्व-मे 'जर्नल आव दि रायल सोसाइटी आव वङ्गाल' का प्रकाशन होने लगा। उधर मद्रासमे भी 'एशियाटिक सोसाइटी' की शाखा-संस्था—'मद्रास लिटरेरी सोसाइटी'—का 'जर्नल आव लिटरेचर एण्ड साइन्स' प्रकाशित होने लगा। सन् १८४३ ईसवीमे महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोरकी 'तत्वबोधिनी पत्रिका' भी प्रकाशित होने लगी जो प्रथम पत्रिका थी जिसमे भारतीय भाषा और लिपिमे वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक लेख प्रकाशित होने लगे थे।

सन् १८३५ ईसवीमे लार्ड वेण्टिङ्कने अवकाश ग्रहण किया। उनकी उदार नीतिने भारतीय पत्रकार-कलाको और भारतीय पत्रोको विकसित होनेका अवसर प्रदान किया था पर अब उनके पदत्यागका अवसर देखकर भारतीय पत्रकारोंमें भविष्य सम्बन्धी आशङ्का उदय हुई। आदम द्वारा बनाया गया कानून अब भी विधान-पुस्तकपर स्थित था। यह वेण्टिङ्कका सौजन्य, साहस और उनकी उदारता थी कि वह अप्रयुक्त स्थितिमें पडा रहा, पर भविष्यमे भी उसका प्रयोग न होगा यह कौन कह सकता था। फलत. इसके पूर्व कि वेण्टिङ्क अपना पद-भार पृथक् करे, देशके प्रमुख नेताओं और पत्रकारोंने विस्तृत प्रार्थनापत्र पेश किया जिसमे यह माँग की गयी कि आदम द्वारा रचित कानूनोका विलोप करके उनके स्थानपर नवीन किन्तु अधिक उदार नियमोंकी रचना की जाय। यह प्रार्थनापत्र व्यर्थ नही गया। यद्यपि वेण्टिङ्क उन कानूनोकी समाप्ति करनेके पूर्व ही गवर्नर-जेनरलीसे पृथक् होनेके लिए वाध्य हुए थे तथापि जानेके पूर्व वे यह स्वीकार करते गये कि 'प्रेस सम्बन्धी कानून असन्तोषजनक है जिसकी ओर गवर्नर-जेनरलका ध्यान आकर्षित हो चुका है। उन्हे विश्वास है कि निकट भविष्यमें ऐसे कानूनोकी रचना हो सकेगी जो एक ओर जहाँ पत्रोंको यह अधिकार प्रदान करेंगे कि वे सरकारी नीतिकी उचित टीका-टिप्पणी कर सकें वही दूसरी ओर यह व्यवस्था भी करेंगे कि सरकारके प्रति विद्रोहके भाव न फैलाये जा सकें और न किसी व्यक्तिका अपमान किसी पत्रके द्वारा किया जा सके'।

वेण्टिङ्कके पदत्यागके बाद सर चार्ल्स मेटकाफ भारतके गवर्नर जेनरल हुए। सौभाग्यसे मेटकाफने तत्काल ही इस प्रश्नकी ओर ध्यान दिया। उन्होंने

मेकालेसे यह अनुरोध किया कि वे प्रेसके सम्बन्धमें नये कानूनका मसविदा तैयार करें। मेटकाफने यह आधार भी स्थिर किया कि विचारोंको प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्तिको मिलनी चाहिये और इसी सिद्धान्तके आधार-पर नये कानूनोंकी रचनाका अनुरोध किया। फलतः ३ अगस्त सन् १८३५ ई०को नया कानून बनकर स्वीकृत हुआ जिसने आदम द्वारा रचित नियमोंको समाप्त करके उनका स्थान ग्रहण किया और सारे देशमें लागू किया गया। मेटकाफ और मेकाले द्वारा बनाया गया कानून उदार था। भारतीय पत्रोंने राहतकी साँस ली, जनताने गवर्नर-जेनरलके प्रति कृतज्ञता प्रकट की; पर स्वयं मेटकाफके लिए इसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। 'कोर्ट आव डाइरेक्टर्स' उनकी इस नीतिसे क्षुब्ध हो उठा। उसे यह कब सहन हो सकता था कि पददलित भार-तीयताके प्रति उदार नीति व्यवहृत की जाय। उसने स्पष्ट शब्दोंमें मेटकाफकी निन्दा की, उन्हे गवर्नर-जेनरलीसे हटाकर पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त ऐसे छोटेसे प्रान्तका गवर्नर बनाकर भेज दिया और दो ही वर्षके अन्दर बाध्य किया कि वे भारत छोड़कर इंग्लैण्ड वापस चले जायँ।

यद्यपि सर चार्ल्स मेटकाफको अपनी प्रगतिशीलता और उदार-हृदयताका महान मूल्य चुकाना पड़ा पर भारतीय पत्रकारीके लिए वे मार्ग अवश्य प्रशस्त कर गये। सन् १८३९ ईसवीमें केवल कलकत्तेमें २६ यूरोपियन पत्र प्रकाशित होते थे जिनमें ९ दैनिक थे। इनके सिवा ९ भारतीय पत्र प्रकाशित होते थे। बम्बईमें दस गोरे तथा चार भारतीय और मद्रासमे नौ गोरे पत्र प्रकाशित हो रहे थे। इन तीनों प्रमुख नगरियोंके अलावा लुधियाना, दिल्ली, आगरा, शिवरामपुर, मोलमीन आदि स्थानोंमें भी पत्र प्रकाशित होने लगे थे। सर सैयद अहमदके अग्रज श्री मुहम्मद खाँ द्वारा स्थापित 'सैयदुल-अखबार' नामक उर्दूका समाचारपत्र सन् १८३७ ईसवीमें दिल्लीसे प्रकाशित होने लगा था। उर्दू भाषाका यह प्रथम पत्र था। इसके बाद कतिपय उर्दू पत्र दिल्लीसे प्रकाशित हुए।

स्पष्ट है कि सन् १८५७के पूर्व जब भारतीय स्वतन्त्रताके युद्धका सूत्र-पात हुआ था इस देशके कतिपय प्रान्तोंमें न केवल अंग्रेजी भाषामें प्रत्युत

हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, बँगला आदि भाषाओंके कतिपय पत्र प्रकाशित होने लगे थे। सन् १८५७के युगका व्यापक प्रभाव इन पत्रोंपर पड़ा। लार्ड केनिङ्ग इस समय भारतके गवर्नर-जेनरल थे। देशमें समस्त गोरे पत्रोंने उनकी कड़ी निन्दा की और विद्रोहको न दबा सकनेकी सारी जिम्मेदारी उनके सिर मढ़ दी। वे सक्षोभ प्रतिशोधकी माँग करते रहे। दूसरी ओर भारतीय पत्र खुल्लमखुल्ला भारतीय जनवर्गके अन्ध तथा निष्ठुर निर्दलनका विरोध करने लगे। इस समय भारतीय और गोरे पत्रोंका जो विरोध स्पष्ट हुआ वह आज तक स्पष्ट बना हुआ है। श्री हरीशश्चन्द्र मुखर्जी और श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागरके दो पत्र 'हिन्दूपेट्रियट' और 'सोमप्रकाश' इसी समय प्रकाशित हुए थे जो जनपक्षके प्रबल समर्थक थे।

जो स्थिति उस समय देशमें व्याप्त थी उसमें स्वाभाविक था कि दोनों पक्षोंमें प्रबल उत्तेजना उत्पन्न हो जाती। लार्ड केनिङ्गने इस उत्तेजनाका प्रतिरोध और नियन्त्रण करनेके लिए प्रेस सम्बन्धी नये कानूनोंका निर्माण किया। ये नये कानून वस्तुतः आदम द्वारा रचित पुराने नियमोंके प्रतिरूप थे, पर केनिङ्गने इन कानूनोको सारे भारतमें लागू करते हुए यह घोषणा की थी कि इनके जीवनकी अवधि केवल एक वर्षकी है। विद्रोहका शमन होते ही भारतके शासनका सारा प्रबन्ध ईस्टइण्डिया कम्पनीके हाथोंसे हस्तान्तरित होकर ब्रिटिश सरकारके हाथोंमें पहुँचा। केनिङ्ग द्वारा बनाया गया कानून एक वर्षके बाद समाप्त हो गया। तबसे लेकर सन् १८६७ तक मेटकाफ मार्ले कानून ही परिचालित रहा जब उक्त वर्षमें दूसरा विस्तृत विधान निर्मित हुआ जिसमे मेटकाफ-मार्ले कानूनके सिवा प्रेस, समाचारपत्र तथा ब्रिटिश भारतमे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोके सम्बन्धमें तथा उनकी रजिस्टरी करानेके लिए व्यवस्था की गयी। यह कानून अबतक जीवित है। १८५७ से १८६७ के बीच अर्थात् दस वर्षोंमें कतिपय प्रसिद्ध पत्रोका उदय हुआ जिनका प्रकाशन आज तक हो रहा है। बम्बईसे प्रकाशित होनेवाले 'टाइम्स आव इण्डिया'का जन्म सन् १८६१ ईसवीमे हुआ। 'पायोनियर'की स्थापना सन् १८६५ ईसवीमें हुई। उस समय उसका प्रकाशन प्रयागसे होता था। कलकत्तेके प्रसिद्ध 'स्टेट्समैन'का जन्म सन् १८७५ ईसवीमें हुआ।

भारतीय पत्रकारीका विकास

'अमृतबाजार पत्रिका' का उदय सन् १८
जिलेके एक छोटेसे गाँवमें हुआ। 'पत्रिका' की उ
इतिहासका उज्ज्वल अध्याय है। जैसोरके एक स
वसन्तकुमार, हेमन्तकुमार, शिशिरकुमार नाम
जनक रहे हैं। घोषबन्धु ब्रह्मसमाजी थे।
राष्ट्रीय जीवनमे चेतनाकी नयी लहरी उत्पन्न होने
नैतिक अधःपातका प्रजनन करती है। भार
विद्रोहके बाद वह युग उपस्थित हो गया था ज
किन्तु सांस्कृतिक महाविनाशका कारण होने जा
हुई, सहमी हुई, अज्ञानके अन्धकारसे आच्छन्न
साक्षर वर्ग पराधीनतासे प्रेम करने लगा था।
भारतीयताका संहार कर रही थी। ऐसे समय
अधोमुख विनिपातको रोकनेमें बहुत कुछ स
जहाँ रूढि-पूजा, अन्धविश्वास और विघातक त
का विरोधी था वहाँ दूसरी ओर व्यापक दृष्टिको
भारतीयताका परिपोषक था।

बङ्गालमे ब्रह्मसमाजका व्यापक प्रभाव था अ
प्रभावित होते वे प्रगतिशील विचारोके पूजक हो
युवकोंमें थे। शिशिरकुमार और हेमन्तकुमार वि
अपने गाँवमें ही रहते थे। वसन्तकुमारके हृदय
हुआ। फलतः तीन सौ रुपये देकर उन्होंने अपने
कि वे जाएँ और सम्भव हो तो छोटा-मोटा प्रेस

अब हेमन्त और शिशिरने नौकरी छोड दी। उनके सबसे छोटे भाई मोतीलाल भी युवक हो चले थे। तीनों भाइयोंने मिलकर 'अमृत-प्रवाहिनी'के स्थानपर बँगलामे 'अमृतबाजार पत्रिका'के नामसे साप्ताहिक समाचारपत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया। 'पत्रिका'के प्रवर्तकोंके अध्यवसाय, दृढ सङ्कल्प और कठोर तपकी कहानी आदर्शवादी, देश-भक्त भारतीय पत्रकारोंका आख्यान है जिसपर किसी भी देशका पत्रकार-वर्ग उचित गर्व कर सकता है। पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि शिशिर बाबू न केवल सम्पादक, कम्पोजीटर, यन्त्रचालक थे अपितु स्याही और कागजका अभाव देखकर उन्होंने उनका निर्माण करना भी सीख लिया। आवश्यकता पडनेपर अपने पत्रके लिए कागज और स्याही भी वे बनाया करते।

'पत्रिका'की निर्भीक नीतिने आरम्भसे ही उसे सरकारका कोपभाजन बना दिया। उसके प्रकाशनके दो वर्ष भी नहीं बीते थे कि उसपर एक भारतीय महिलापर अंग्रेज डिपटी-मजिस्ट्रेटद्वारा किये गये बलात्कारका समाचार छापनेके कारण मुकदमा चलाया गया जिसमें मुद्रक तथा समाचार-लेखकको कारावासका दण्ड दिया गया। सन् १८७१ ईसवीमें ग्राम्य जीवनका परित्याग करके 'पत्रिका' कलकत्तेसे प्रकाशित होने लगी। उस समय उसका स्वरूप 'द्विसाप्ताहिक' तथा 'द्विभाषी' (अंग्रेजी और बँगला) हो गया। सन् १८७८ ईसवीमें 'पत्रिका' पूर्णत. अंग्रेजी भाषामें प्रकाशित होने लगी। सन् १८९१ ईसवीमें वह साप्ताहिकसे दैनिक हो गयी।

सन् १८६७ से १८७७ के बीच भारतीय पत्रोंका विस्तार और अधिक बढा। दस वर्षोंमें पत्रिका ही नही प्रत्युत कतिपय प्रतिष्ठित प्रगतिशील तथा लोकप्रिय भारतीय पत्रोंका उदय हुआ। बङ्गालकी पत्रकारीमें तो विशेष रूपसे प्राण-सञ्चार हुआ दिखाई देता है। बङ्गालमें पहले पहल १८७० ईसवीमे एक पैसेवाले पत्रोंका प्रकाशन आरम्भ हुआ। श्री केशवचन्द्रसेनका 'सुलभ समाचार' एक पैसेका पत्र था जिसने गरीब भारतीय जनवर्ग तक पहुँचनेकी चेष्टा की। उस युगमें भी इस पत्रकी बिक्री असाधारण रूपसे बढी और उसकी ग्राहक-संख्या चार-पाँच हजार तक पहुँच गयी। 'भारत श्रमजीवी' इसी प्रकारका दूसरा पत्र प्रकाशित हुआ जो एक पैसेमे बिका करता था। कहते है कि यह

पत्र इतना लोकप्रिय था कि कुछ ही दिनोंमें उसकी ग्राहक-संख्या बढ़कर पन्द्रह हजार तक पहुँच गयी। बँगला भाषाके इस साप्ताहिक पत्रकी स्थापना शशिपद बन्दोपाध्यायने की थी जो केशवचन्द्रसेनके मित्र तथा अनुयायी थे।

इसी समयसे हम बङ्गालमें साहित्यिक पत्रोंका विकास होना भी पाते हैं। बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्यायका 'बङ्गदर्शन' सन् १८७२ ईसवींमें प्रकाशित होने लगा। उसके कुछ ही समय बाद द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरकी 'भारती' तथा 'आर्यदर्शन', जोगेन्द्रनाथ विद्याभूषणका बान्धव', रविबाबूकी 'साधना' आदि पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं, जिन्होंने बँगला-साहित्यकी प्रगति तथा निर्माण और विस्तारका पथ प्रशस्त किया। भारतीय पत्रकारीके इतिहासका यह युग कदाचित् सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसी समय हम भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित होनेवाले पत्रोंकी संख्या असाधारण रूपसे बढ़ती हुई पाते है। बङ्गाल ही नहीं प्रत्युत कतिपय अन्य प्रान्तोंमें भी वे अङ्कुरित और विकसित हुए।

सन् १८७६ ईसवींमें जब लार्ड लिटन भारतके वाइसराय होकर आये, उस समय बम्बई प्रान्तमें मराठी, गुजराती, हिन्दी और फारसी भाषाओंमें प्रायः ६२ पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं। पञ्जाब, अवध तथा मध्यप्रदेशमें साठ, बङ्गालमें पचास, मद्रासमें उन्नीस पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी, फारसी, उर्दू, बँगला, तामिल, तेलगू, मलयालम आदि भाषाओंमें प्रकाशित हो रही थी। पञ्जाबके 'सिविल और मिलिटरी गजेट' तथा लाहौरके प्रसिद्ध पत्र 'ट्रिब्यून' की स्थापना भी इसी समय हुई थी। 'ट्रिब्यून' की प्रतिष्ठा भारतीय पत्रोंमें उसके आरम्भिक कालसे ही रही है जो आज तक वैसी ही बनी हुई है। भारतीय भाषाओंमें पत्रोंके प्रकाशनका विस्तार तत्कालीन भारतीय जन-जाग्रतिके विकासपर प्रकाश डालता है। सन् १८५७ का विद्रोह यद्यपि असफल हो चुका था और भारतीय जनवर्गका निरङ्कुश दमन करनेमें विदेशी साम्राज्य-वादियोंने अपनी घृणित पशुताका चरम रूप प्रदर्शित कर दिया था तथापि विद्रोहोत्तर भारत धीरे-धीरे जागरणके पथपर अग्रसर हो रहा था। हमारे इस पुरातन राष्ट्रके हृदयमें कोई ऐसा सजीव तत्त्व अवश्य वर्तमान है जो उसे

भयावनी विपत्तियों तथा प्राणघातक वातावरणसे सदा पार ले जाता रहा है। हमारे इतिहासकी इस विशेषताको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता जिसका प्रदर्शन इस युगमें भी हो रहा था।

दलित और पराजित भारत पुन. उठने लगा था यह असन्दिग्ध है। क्या इसका प्रबल प्रमाण भारतीय भाषाके पत्रोंके विकासमें ही नही मिलता? हम देखते हैं कि ये पत्र जिन्हें 'वर्नाक्युलर प्रेस' कहा जाता है आरम्भमे ही राष्ट्रवादी तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके समर्थक रहे हैं। अपनी इस परम्पराका निर्वाह वे आज तक करते रहे है। असहाय और वितादित जनवर्ग तक पहुँचकर उसके उद्‌बोधनके पुनीत, महान तथा निर्भीक कार्यका बोझ उठानेमें वे कभी नही चूके। यही कारण है कि भारतको पराधीन बनाकर रखनेवालोंने सदा उन्हे सशङ्क दृष्टिसे देखा है और उन पत्रोंने भी सदा उनसे लोहा लिया है। इसके सिवा एक बात और है जिसके कारण भारतकी विदेशी सरकारकी नीति सदा भारतीय भाषाके पत्रोंके दमनकी रही है। उसे कभी यह इष्ट न था कि व्यापक जनसमाज जाग्रत् हो। शिक्षा और ज्ञानके प्रसारको भी इसी कारण रोका जाता रहा है। अनिवार्य शिक्षाकी योजनाको मुख्यत' इसी कारण कभी सरकारने पनपने नही दिया। भारतीय भाषाके पत्र जनसमाजमें प्रविष्ट हो जाते और नयी चेतना तथा भावनाको प्रवाहित करनेमें अवश्य सफल होते, शिक्षा, साक्षरता और ज्ञानके प्रसारमें सहायक होते अत. उनका दलन करना आरम्भसे लेकर आजतक आवश्यक समझा जाता रहा है।

जिस युगकी बात हम कर रहे हैं उस समय भी इसी मनोवृत्तिका आभास पाते हैं। लार्ड लिटनली वाइसरायल्टीका जमाना था जब भारतीय भाषाके पत्रोंकी उपर्युक्त संख्यावृद्धि, उनकी लोकप्रियता तथा जनजीवनमे उनके प्रभावको देखकर सरकार सशङ्क हो उठी। यह आवश्यक हो गया कि उनके पथका अवरोधन किया जाय। लार्ड लिटनने भारतीय भाषाके पत्रोकी स्वतन्त्रताका हनन कर देनेके लिए नये कानूनकी रचनाका निश्चय किया। फलतः सन् १८७८ ईसवीकी १४ मार्चको 'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट' की घोषणा की गयी। इस कानूनके अनुसार सरकारको यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वह देशी भाषाके किसी पत्रके सम्पादक, प्रकाशक या मुद्रकको यह आदेश दे कि वह सरकारसे

यह इकरारनामा कर दे कि अपने पत्रमें कभी कोई ऐसी बात प्रकाशित न करेगा जो जन-हृदयमें सरकारके प्रति घृणा या द्रोहके भावको सर्जन कर सकती हो। यदि कोई प्रकाशक, मुद्रक या सम्पादक इस इकरारनामेकी शर्तोंको भङ्ग करेगा तो पहली बार उसे चेतावनी दे दी जायगी। दूसरी बार पुनः वही अपराध करनेपर उसके प्रेस आदिकी जब्ती कर लेनेमें सरकार स्वतन्त्र होगी। सरकारने यह घोषणा भी कर दी कि जो पत्र इस कानूनके खतरेसे बचना चाहें वे पत्रमें प्रकाशित होनेके पूर्व समस्त स्तम्भोंके प्रूफका सेंसर करा ले सकते हैं जिसकी व्यवस्था सरकारकी ओरसे कर दी जायगी।

पाठक देखें कि भारतके देशी भाषाके पत्रोंके कण्ठोच्छेदनके लिए कैसी अचूक व्यवस्था कर दी गयी। यह आवश्यक हो गया कि इस कानूनका प्रचण्ड विरोध किया जाय। भारतीय पत्रोंमें इसके विरुद्ध गहरा क्षोभ प्रकट किया गया, और धीरे-धीरे यह आन्दोलन बढता गया। इस क्षोभकी प्रतिक्रिया लन्दन तकमे हुई जब पार्लमेण्टकी साधारण सभामें तत्कालीन ब्रिटिश उदारदलके नेता ग्लैडस्टनने उक्त कानूनकी समाप्ति कर देनेका प्रस्ताव उपस्थित किया। यद्यपि ग्लैडस्टनका प्रस्ताव साधारण सभामें गिर गया फिर भी जो आन्दोलन हुआ था वह बिलकुल निरर्थक नहीं गया। इतना प्रभाव तो हुआ ही कि एक वर्षके अन्दर ही कानूनका वह अंश निकाल दिया गया जिसमें प्रकाशनके पूर्वही प्रकाशनीय स्तम्भोंका सेंसर करनेकी व्यवस्था की गयी थी। यह सब होते हुए भी देशी भाषाके कतिपय पत्र इसके शिकार हुए जिनमें कलकत्तेका 'सोम-प्रकाश' मुख्य था। 'सोमप्रकाश' पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा पण्डित द्वारकानाथ विद्याभूषणका बँगला साप्ताहिक पत्र था जो अपने समयके सर्वोत्कृष्ट, प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली पत्रोंमें अग्रणी था। इसी कानूनके कारण 'अमृतबाजार पत्रिका' ने अपना कायाकल्प कर डाला। अबतक 'पत्रिका' बँगला भाषाका द्विसाप्ताहिक पत्र था। बङ्गालके तत्कालीन गवर्नर सर आशली इडेन शिशिर बाबूसे असन्तुष्ट हो गये थे। कहा जाता है कि आशली इडेनने पहले शिशिरबाबूको मिलानेकी चेष्टा की थी और उन्हें प्रलोभन दिया था कि 'पत्रिका' सरकारकी टीका-टिप्पणी छोड़कर यदि उसका समर्थन करे तो सरकार उसे आर्थिक सहायता देनेके लिए तैयार है। शिशिरबाबूने गवर्नरको इस

घृणित प्रस्तावके लिए मुँहतोड उत्तर देते हुए कहा कि 'क्या आपकी यह इच्छा है कि देशभरमे एक भी ईमानदार पत्रकार न रह जाय ?'

इस घटनाके कुछ ही समय बाद उक्त कानूनकी रचना हुई। बङ्गालके गवर्नरने सबसे आगे बढ़कर सोत्साह उसका स्वागत किया। शिशिरबाबूकी धारणा थी कि बङ्गालमें उक्त कानूनको लागू करनेमें जो शीघ्रता प्रदर्शित की गयी है उसका मुख्य कारण 'पत्रिका' है जिससे गवर्नर बुरी तरह रुष्ट हैं। शिशिर-बाबूने इसका उत्तर भी असाधारण ढङ्गसे दिया। १४ मार्चको उक्त कानून घोषित किया गया और उसके एक सप्ताह बाद अर्थात् २१ मार्चको पत्रिकाका जो अङ्क प्रकाशित हुआ वह विशुद्ध अंग्रेजी भाषामें हुआ। रातोरात पत्रिका देशीभाषाके साप्ताहिकसे अंग्रेजी भाषाका साप्ताहिक हो गयी।

'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट' का विरोध लगातार तबतक होता रहा जबतक वह विधानके क्षेत्रसे बहिर्गत नहीं कर दिया गया। लार्ड लिटन जबतक वाइसराय थे तबतक तो वह कानून जीवित रहा पर उनके जानेके बाद भारतके शासनका सूत्र लार्ड रिपनके हाथोंमें आया। लार्ड रिपनका शासनकाल उनकी उदारता और भारतीयोंके प्रति सहानुभूतिके लिए प्रसिद्ध है। उन्हींके शासनकालमे अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा (इण्डियन नेशनल कांग्रेस) की स्थापना हुई जो तबसे आजतक भारतका नयन कर रही है। लार्ड रिपनने ही भारतीयोंको स्थानीय म्यूनिसिपल और लोकल बोर्डोंकी व्यवस्थामे भाग लेनेका आरम्भिक अधिकार प्रदान किया था। हम कह सकते है कि विद्रोहोत्तर भारतमे लार्ड रिपनका शासनकाल भारतके राष्ट्रीय और सामाजिक जीवनमें होनेवाले युगान्तरका सूचक था। कांग्रेसकी स्थापना जिस नयी धाराका स्रोत हुई वह आजतक इस देशके जीवनका आलोडन कर रही है।

लार्ड रिपन ऐसे उदारचेता व्यक्तिने तत्काल ही यह अनुभव कर लिया कि 'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट' के समान दमनात्मक कानून भारत और ब्रिटेनके पारस्परिक सम्बन्धको सदा विषाक्त करता रहेगा। फलतः उन्होने उसकी समाप्ति कर देनेका निश्चय किया और एतदर्थ ७ दिसम्बर सन् १८८१ ईसवीको यह घोषणा की कि 'सरकारकी दृष्टिमे 'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट'की अब कोई आवश्यकता नही रही।'

इस प्रकार 'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट' का विलोप हुआ। उन तीन वर्षोंके अन्दर कुछ प्रमुख भारतीय पत्रोंका जन्म भी हुआ। मद्रासमे प्रसिद्ध 'हिन्दू' की स्थापना सन् १८७८ ईसवीमें हुई। अबतक मद्रासमें 'दि नेटिव पब्लिक ओपिनियन' तथा 'दि मद्रासी' नामक दो ही पत्र ऐसे थे जो भारतीय थे और विशुद्ध भारतीय नियन्त्रण तथा स्वामित्वमें प्रकाशित हो रहे थे। 'हिन्दू' ने प्रकाशित होकर उनकी संख्या तीन कर दी। आरम्भमें वह साप्ताहिक ही प्रकाशित होता था। 'हिन्दू' की प्रतिष्ठा क्रमशः बढती गयी। सन् १८८३ में वह अपना साप्ताहिक कलेवर परिवर्तित करके सप्ताहमे तीन बार प्रकाशित होने लगा, और १८८९ ईसवीका आरम्भ होते-होते वह दैनिक हो गया। वङ्गालमें तो पत्रकारी तीव्र गतिसे विकसित हो रही थी। सन् १८७९ ईसवीमें स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बन्दोपाध्यायके सम्पादकत्वमे 'बङ्गाली' का साप्ताहिक स्वरूप प्रकट हुआ। वङ्गालमें अबतक 'इण्डियन मिरर' को छोड़कर सभी संवादपत्र साप्ताहिक ही प्रकाशित हो रहे थे। सुरेन्द्रबाबूका 'बङ्गाली' अपनी राष्ट्रीयता और निर्भीक नीतिके कारण शीघ्र भारतीय पत्रोंमें अग्रणी हो गया। सरकार भी उसके बढ़ते हुए प्रभावसे क्षुब्ध हो उठी। सन् १८८३ ईसवीमें 'बङ्गाली' में कलकत्ता हाईकोर्टके किसी फैसलेपर कुछ टीका प्रकाशित हुई। उसीको लेकर सुरेन्द्रबाबूपर अदालतका अपमान करनेके अपराधमे मुकदमा चलाया गया और उन्हें दो महीने कारावासका दण्ड दिया गया। सुरेन्द्रबाबूने इस दण्डको यह कहते हुए स्वीकार किया कि 'मैं इसे अपने लिए गौरवकी वस्तु समझता हूँ क्योंकि सार्वजनिक कर्तव्यका पालन करते हुए जेल जानेका सौभाग्य प्राप्त करनेवालोंमें अपने युगका मैं प्रथम भारतीय हूँ।'

सुरेन्द्रबाबूकी तेजस्विता और देशभक्तिने साधारणतः सारे देशके और विशेषकर वङ्गालके पत्रकार-वर्गमे प्राणसञ्चार कर दिया। पत्रकारोंके सम्मुख नये आदर्शकी स्थापना हुई, देशकी सेवाका नया पथ सामने प्रस्तुत हुआ। उन्नीसवीं शतीके अन्तिम युगमे वङ्गालमें कतिपय नये पत्रोंका उदय हुआ। बेंगला 'वङ्गवासी' और 'सञ्जीवनी' नामक दो साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुए जो सस्ते मूल्यवाले पत्रोंकी श्रेणीमें होनेके कारण व्यापक रूपसे लोकप्रिय थे। सन् १८९१ ईसवीमें पत्रकारीके क्षेत्रमें स्वर्गीय रामानन्द चटर्जीका उदय भी हुआ

जो 'दासी', 'प्रदीप', 'प्रवासी' और 'माडर्नरिव्यू' के प्रवर्तनका कारण हुआ। अन्ततः वही 'विशाल भारत'के जनक भी हुए। इसी युगमें पत्रिका दैनिक हुई। नरेन्द्र-नाथ सेनका 'इण्डियन मिरर' दैनिक हो ही चुका था। सुरेन्द्रबाबूके 'बङ्गाली' ने भी दैनिकका बाना पहना। उधर पूनामें लोकमान्यके 'केसरी'की दहाडमे ब्रिटिश सिंहासन थर्रा रहा था। बम्बईमे 'इण्डियन सोशल रिफार्मर' का प्रकाशन होने लगा। सन् १८९४ ईसवीमें 'बिहार टाइम्स' का प्रकाशन पटनेसे श्री सच्चिदानन्द सिंहके प्रयत्नसे होने लगा। इस युगके पत्रोंमें हम जागरूकता तथा जन-पक्षके उग्र समर्थनकी स्पष्ट प्रवृत्ति पाते हैं। अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी स्थापना हो चुकी थी जिसके फलस्वरूप भारतीय पत्रकारोंको सजीव उत्तेजन प्राप्त हो गया था।

इसका प्रमाण हम तत्कालीन पत्रोंमें उठे कतिपय आन्दोलनोंमें पाते है। 'अमृतबाजार पत्रिका' ने इसी समय कतिपय देशी राजाओंकी रक्षाके लिए सरकारके विरुद्ध लेखनी उठायी। महाराज मल्हारराव गायकवाड, महारानी रीवाँ, बेगम भोपाल आदिके मामलोंको उठाकर तथा उनके पक्षका समर्थन करके 'पत्रिका' ने ख्याति प्राप्त की। इसी समय काश्मीर-नरेश महाराज प्रतापसिंहका मामला उठा। भारत सरकार गिलगिट प्रदेशपर अपना अधिकार स्थापित करना चाहती थी और महाराज प्रतापसिंहके काश्मीरके राजसिंहासन-पर रहते यह सम्भव नहीं दिखाई देता था। फलतः किसी प्रकार सरकार उन्हे राज्यच्युत करनेपर तुली हुई थी जिसके लिए षड्यन्त्र रचे जा रहे थे। 'पत्रिका' ने बड़ी निर्भीकतासे इसका भण्डाफोड़ किया जिसमे सरकारको झुकना पडा। यद्यपि सरकार रुष्ट हुई पर स्पष्टतः 'पत्रिका' के विरुद्ध कोई कारवाई करना सम्भव नहीं था। सन् १८८९ ईसवीमें इस आशयका एक कानून बना-कर वह शान्त हो गयी कि 'किसी समाचारपत्रको यह अधिकार नहीं है कि वह सरकारकी गुप्त सूचनाओं अथवा कागजोंके आधारपर कोई सवाद प्रकाशित कर दे।'

सन् १८९१ ईसवीमें 'सहवास-सम्मति-वय' का कानून बनाया गया। इस कानूनके विरुद्ध अधिकतर पत्रोमें घोर आन्दोलन हुआ। पर सबसे महान् आन्दोलन तो हुआ सन् १८९६ ईसवीमें जब बम्बईमे भयानक अकाल व्याप्त

हो गया था। अकालका पदानुसरण करते हुए प्रलयङ्कर प्लेगका प्रचण्ड प्रकोप जन-जीवनका नाश करने लगा। इस महामारीसे जनतामें भयानक आतङ्क छा गया। सरकारने बीमारीको रोकनेके लिए जिन उपायोंका आश्रय लिया उनसे बीमारी तो न रुकी पर विपत्तिकी मारी जनतामें और अधिक त्रास छा गया। तत्कालीन पत्रोंने इसका घोर प्रतिवाद आरम्भ किया। सरकारको यह विरोध सह्य न हुआ। सरकारकी नीतिसे जनतामें भी ऐसा क्षोभ फैला कि सरकारके प्लेग-कमिश्नरकी हत्यातक होगयी। अब सरकार क्रुद्ध सर्पकी भाँति प्रति-रोधियों और विरोधियोंपर टूट पड़ी। उन पत्रोंका जोरदार दमन आरम्भ हुआ जो सरकारी नीतिके आलोचक थे। लोकमान्य तिलक स्वयं सरकारके क्रोधके शिकार हुए। 'केसरी'मे लिखे गये एक लेखके कारण उनपर मुकदमा चलाया गया और डेढ वर्ष कारावासका दण्ड प्रदान किया गया। ये तमाम घटनाएँ इस बातकी द्योतक थीं कि एक ओर जहाँ भारतीय पत्रोंपर सरकारी प्रहार दिन-दिन बढता और उग्र होता जा रहा था वहीं दूसरी ओर हमारे पत्र जन-हित तथा मातृभूमिकी सेवाके पुनीत पथपर दृढ सङ्कल्प तथा अदम्य उत्साहके साथ उत्तरोत्तर बढते चले जा रहे थे।

इस प्रकार उन्नीसवीं शती, कालकेअनन्त पटपर अपना स्मृति-चिह्न छोड़कर समाप्त हुई। बीसवी शतीके सूत्रपातके साथ-साथ भारतीय पत्रकारी भी अधिक सजीव, सक्रिय तथा जाग्रत् होकर अवतीर्ण हुई। इस समय बङ्गालमें 'पत्रिका' तथा 'बङ्गाली' और मद्रासमे 'हिन्दू' दैनिक रूपमें प्रकाशित हो रहे थे। बम्बईमें ऐसे दैनिकके प्रकाशनका समय अभी नहीं आया था। यह श्रेय स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहताको प्राप्त होनेवाला था जिन्होंने सन् १९१३ ईसवीमें 'बाम्बे क्रानिकल'की स्थापना की। श्री बी० जी० हार्निमन आरम्भमे इसके सम्पादक नियुक्त हुए।

बीसवीं शतीके आरम्भिक कालकी कुछ घटनाओंमें जिन्होंने भारतीय पत्र-कारीको उत्तेजन प्रदान किया, बङ्गभङ्ग सर्वाधिक प्रमुख घटना है। लार्ड कर्जनने बङ्गकी शस्यश्यामला भूमिको विभक्त करके भारतीय राष्ट्रके हृदयपर वह आघात किया जिसे सहन करना उसके लिए असम्भव हो गया। बङ्गभङ्ग सन् १९०५ मे हुआ। इस घटनाने सारे देशमें जैसे आग लगा दी। बङ्गभङ्गके

जो 'दासी', 'प्रदीप', 'प्रवासी' और 'माडर्नरिव्यू' के प्रवर्तनका कारण हुआ। अन्ततः वही 'विशाल भारत'के जनक भी हुए। इसी युगमें पत्रिका दैनिक हुई। नरेन्द्रनाथ सेनका 'इण्डियन मिरर' दैनिक हो ही चुका था। सुरेन्द्रबाबूके 'बङ्गाली' ने भी दैनिकका बाना पहना। उधर पूनामें लोकमान्यके 'केसरी'की दहाड़से ब्रिटिश सिंहासन थर्रा रहा था। बम्बईसे 'इण्डियन सोशल रिफार्मर' का प्रकाशन होने लगा। सन् १८९४ ईसवीमें 'बिहार टाइम्स' का प्रकाशन पटनेसे श्री सच्चिदानन्द सिंहके प्रयत्नसे होने लगा। इस युगके पत्रोंमें हम जागरूकता तथा जन-पक्षके उग्र समर्थनकी स्पष्ट प्रवृत्ति पाते हैं। अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी स्थापना हो चुकी थी जिसके फलस्वरूप भारतीय पत्रकारीको सजीव उत्तेजन प्राप्त हो गया था।

इसका प्रमाण हम तत्कालीन पत्रोंमें उठे कतिपय आन्दोलनोंमें पाते हैं। 'अमृतबाजार पत्रिका' ने इसी समय कतिपय देशी राजाओंकी रक्षाके लिए सरकारके विरुद्ध लेखनी उठायी। महाराज मल्हारराव गायकवाड, महारानी रीवाँ, बेगम भोपाल आदिके मामलोंको उठाकर तथा उनके पक्षका समर्थन करके 'पत्रिका' ने ख्याति प्राप्त की। इसी समय काश्मीर-नरेश महाराज प्रतापसिंहका मामला उठा। भारत सरकार गिलगिट प्रदेशपर अपना अधिकार स्थापित करना चाहती थी और महाराज प्रतापसिंहके काश्मीरके राजसिंहासनपर रहते यह सम्भव नहीं दिखाई देता था। फलतः किसी प्रकार सरकार उन्हे राज्यच्युत करनेपर तुली हुई थी जिसके लिए षड्यन्त्र रचे जा रहे थे। 'पत्रिका' ने बड़ी निर्भीकतासे इसका भण्डाफोड़ किया जिसमे सरकारको झुकना पड़ा। यद्यपि सरकार रुष्ट हुई पर स्पष्टतः 'पत्रिका' के विरुद्ध कोई काररवाई करना सम्भव नहीं था। सन् १८८९ ईसवीमें इस आशयका एक कानून बनाकर वह शान्त हो गयी कि 'किसी समाचारपत्रको यह अधिकार नहीं है कि वह सरकारकी गुप्त सूचनाओं अथवा कागजोंके आधारपर कोई संवाद प्रकाशित कर दे।'

सन् १८९१ ईसवीमे 'सहवास-सम्मति-वय' का कानून बनाया गया। इस कानूनके विरुद्ध अधिकतर पत्रोंमें घोर आन्दोलन हुआ। पर सबसे महान् आन्दोलन तो हुआ सन् १८९६ ईसवीमें जब बम्बईमे भयानक अकाल व्याप्त

हो गया था। अकालका पदानुसरण करते हुए प्रलयङ्कर प्लेगका प्रचण्ड प्रकोप जन-जीवनका नाश करने लगा। इस महामारीसे जनतामें भयानक आतङ्क छा गया। सरकारने बीमारीको रोकनेके लिए जिन उपायोंका आश्रय लिया उनसे बीमारी तो न रुकी पर विपत्तिकी मारी जनतामें और अधिक त्रास छा गया। तत्कालीन पत्रोंने इसका घोर प्रतिवाद आरम्भ किया। सरकारको यह विरोध सह्य न हुआ। सरकारकी नीतिसे जनतामे भी ऐसा क्षोभ फैला कि सरकारके प्लेग-कमिश्नरकी हत्यातक होगयी। अब सरकार क्रुद्ध सर्पकी भाँति प्रति-रोधियो और विरोधियोंपर टूट पडी। उन पत्रोंका जोरदार दमन आरम्भ हुआ जो सरकारी नीतिके आलोचक थे। लोकमान्य तिलक स्वयं सरकारके क्रोधके शिकार हुए। 'केसरी'में लिखे गये एक लेखके कारण उनपर मुकदमा चलाया गया और डेढ वर्ष कारावासका दण्ड प्रदान किया गया। ये तमाम घटनाएँ इस बातकी द्योतक थी कि एक ओर जहाँ भारतीय पत्रोंपर सरकारी प्रहार दिन-दिन बढता और उग्र होता जा रहा था वही दूसरी ओर हमारे पत्र जन-हित तथा मातृभूमिकी सेवाके पुनीत पथपर दृढ सङ्कल्प तथा अदम्य उत्साहके साथ उत्तरोत्तर बढते चले जा रहे थे।

इस प्रकार उन्नीसवीं शती, कालके अनन्त पटपर अपना स्मृति-चिह्न छोड़कर समाप्त हुई। बीसवी शतीके सूत्रपातके साथ-साथ भारतीय पत्रकारी भी अधिक सजीव, सक्रिय तथा जाग्रत् होकर अवतीर्ण हुई। इस समय बङ्गालमें 'पत्रिका' तथा 'बङ्गाली' और मद्रासमे 'हिन्दू' दैनिक रूपमें प्रकाशित हो रहे थे। बम्बईमें ऐसे दैनिकके प्रकाशनका समय अभी नही आया था। यह श्रेय स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहताको प्राप्त होनेवाला था जिन्होने सन् १९१३ ईसवीमे 'बाम्बे क्रानिकल'की स्थापना की। श्री बी० जी० हार्निमन आरम्भमे इसके सम्पादक नियुक्त हुए।

बीसवी शतीके आरम्भिक कालकी कुछ घटनाओंमें जिन्होंने भारतीय पत्र-कारीको उत्तेजन प्रदान किया, बङ्गभङ्ग सर्वाधिक प्रमुख घटना है। लार्ड कर्जनने बङ्गकी शस्यश्यामला भूमिको विभक्त करके भारतीय राष्ट्रके हृदयपर वह आघात किया जिसे सहन करना उसके लिए असम्भव हो गया। बङ्गभङ्ग सन् १९०५ मे हुआ। इस घटनाने सारे देशमें जैसे आग लगा दी। बङ्गभङ्गके

विरुद्ध सारे देशमे प्रचण्ड प्रतिरोध जाग्रत् हुआ जिसने महान जनान्दोलनका रूप धारण किया। तत्कालीन पत्रोंमे राष्ट्रीय जीवनकी इस धाराका प्रतिबिम्बित होना अनिवार्य था। पत्र यदि जनजीवनके दर्पण नहीं हैं तो कुछ नहीं हैं। उन्होंने न केवल देशके हृदयकी प्रतिच्छाया उपस्थित की प्रत्युत उसके भावोंके स्वयं प्रतीक बन गये। बङ्गालके पत्रोंमे 'पत्रिका' और 'बङ्गाली' ने तो इस आन्दोलनका नयन किया। उनके कार्यालय तत्कालीन देशभक्त कर्मठोंके मिलन-स्थल हो गये थे। जन-भाव तथा जनचेतनासे एकात्मता स्थापित करनेवाले पत्रोंका सामाजिक जीवनमे आदरणीय स्थान हो जाना निश्चित था और उनके प्रभावकी वृद्धि भी अनिवार्य थी। तत्कालीन इतिहासपर हम दृष्टिपात करते हैं तो यह पाते हैं कि जनता भी पत्रोंकी ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रही थी और सवाद जाननेकी उसकी उत्सुकता क्रमशः बढती ही चली जा रही थी। सम्भवतः यही कारण था कि सन् १९०५ में 'असोशियेटेड प्रेस' का सङ्घटन हो सका। 'असोशियेटेड प्रेस' की स्थापना और सङ्घटनका उल्लेख करते हुए पूर्वके पृष्ठोंमें उसका अति सक्षिप्त वृत्तान्त दिया जा चुका है जिसकी पुनरावृत्ति करनेकी आवश्यकता यहाँ नहीं। केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि समाचार सङ्कलन और वितरण करनेका प्रथम सङ्घटित तथा आधुनिक प्रयास इस देशमें उक्त संस्थाकी स्थापनाके बादसे ही आरम्भ हुआ। इसके संस्थापकोंमें स्वर्गीय श्री के० सी० राय भी थे जिन्हे हम भारतीय पत्रकारो तथा संवाद-सङ्कलकोंमें आदरणीय स्थान देनेके लिए बाध्य है।

इस प्रकार हमारे देशकी पत्रकारी उत्तरोत्तर विकसित होती जा रही थी जब सन् १९०९ ईसवीमें मार्ले मिण्टो सुधार भारतको प्राप्त हुए। भारतीय राजनीतिपर इन सुधारोका व्यापक प्रभाव हुआ। सुधार ऐसे समय हुए थे जब बङ्गभङ्ग सम्बन्धी सरकारकी नीतिके कारण सारा राष्ट्र क्षुब्ध हो चुका था। राष्ट्रीय जाग्रतिका निरङ्कुश दमन करनेकी चेष्टा करके सरकारने उस क्षोभमें घृतका ही प्रक्षेपन किया था। भारतमें ब्रिटिश शासनके इतिहासपर जब हम दृष्टिपात करते है तो एक बात स्पष्ट रूपसे पाते है। उसकी नीति सदा दुरङ्गी रही है—एक ओर दमन और दूसरी ओर आप्यायन। जब जब जनवर्ग जाग्रत् हुआ है तबतब ब्रिटिश सिंहने उसे अपने बलका भान करानेमे कुछ उठा नहीं

रखा पर एक बार जनजाग्रतिको कुचल देनेके बाद सुधारोंके नामपर अधिकार-के थोड़ेसे टुकड़ोंको फेंककर वह गत दुःखद तथा क्षोभकारक स्मृतियों तथा क्षतोंको मिटानेकी चेष्टा करती है। मार्ले-मिण्टो सुधार दमनके बाद उसकी आप्यायनकी नीतिका ही प्रतिफल था। इसका जो परिणाम सरकारके लिए इष्ट है वह प्रकट भी होता है। सुधारोंके आते ही भारतीय राजनीतिक वर्गमें दो दल उत्पन्न हो गये। गरम और नरम दल यद्यपि पहलेसे थे क्योंकि उनका मूल मनुष्यकी नैसर्गिक मनोवृत्तिमें होता है तथापि इन दोनोंका स्पष्ट विभाग और विलगाव एक प्रकारसे इसी युगकी घटना है। लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र-पाल, लाला लाजपतराय आदि गरम दलके नेता हो गये और दूसरी ओर गोखले, फिरोजशाह मेहता आदि दिखाई देने लगे। नरम दलके नेताओंका ही प्रयत्न था जिसके फलस्वरूप सन् १९०९ मे प्रयागमें 'लीडर' की स्थापना हुई।

सुधारोंके कारण देशमें राष्ट्रीय जाग्रतिको भी कुछ सहायता ही मिली। पत्रोंपर उस जाग्रतिकी और राष्ट्रके जीवनपर पत्रोंकी परस्पर क्रिया-प्रति-क्रिया हुई जिसके फलस्वरूप दोनोंकी सजीवता प्रकट हुई। सरकारके लिए देशके जीवनकी इस गतिको सहन करना असम्भव हुआ फलतः जिस प्रकार उसने जनान्दोलनका दमन किया उसी प्रकार पत्रोंके दमनके लिए भी विशेष उपचार किये। सन् १९१० ईसवीमें उस प्रेस ऐक्टकी रचना की गयी जिसके द्वारा किसी छापाखानेके मुद्रकसे पाँच हजार रुपये तककी जमानत माँगी जा सकती थी। जमानत माँगनेके लिए आधार यह था कि किसी छापाखानेमें यदि कोई पत्र प्रकाशित होता हो और उस पत्रमें सरकारके प्रति जनतामें घृणा या द्वेष फैलानेवाली कोई बात प्रकाशित हो तो सरकार उस छापाखानेके मुद्रकसे उक्त रकम तक जमानतके रूपमें माँग सकती है। मार्ले-मिण्टो सुधारोंके अनुसार जो व्यवस्थापक सभा बनी थी उसमें विचारार्थ यह कानून उपस्थित किया गया था। स्वर्गीय गोखले सदृश भारतीय नेताका समर्थन भी उसे प्राप्त हो गया था। परिणाम यह हुआ कि सदाके लिए भारतीय पत्रोंके गलेपर कानूनरूपी यह भयावना खड्ग लटका दिया गया। सन् १९१२ ईसवीमें पहले-पहल 'अमृत-बाजार पत्रिका' के गलेपर वह वज्रकी भाँति गिरा जब उससे आसामके सिलहट जिलेके एक डिविजनल कमिश्नरकी किसी रिपोर्टपर टीका करनेके

कारण पाँच हजार रुपएकी जमानत माँगी गयी। इस कानूनने समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रतापर करारा आघात किया। उनकी सजीवताको नष्ट करनेमें वह बड़ी सीमातक सफल हुआ। सरकारने निस्सङ्कोच भावसे कतिपय पत्रोंके विरुद्ध उसका प्रयोग भी किया। पर इतनेसे ही वह सन्तुष्ट न हुई। 'अदालतका अपमान करने'के नामपर अबतक न जाने कितने समाचारपत्रोंका गला घोंटा जा चुका है। जिस समयकी बात हम कर रहे हैं उस समय देशके कतिपय पत्र उसके शिकार हुए। यद्यपि सन् १९२२ ईसवीमें तत्कालीन केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाने 'प्रेस ऐक्ट' की समाप्ति कर दी थी तथापि भारतीय पत्रोंकी जाग्रति तथा उनके बढ़ते हुए प्रभावको रोकनेमें सरकारने अपनी सारी शक्ति लगा दी।

गत महायुद्धके छिड़नेपर तो पत्रोंकी सीमा अत्यन्त सङ्कुचित कर दी गयी। उनका विस्तृत कार्यक्षेत्र और उनकी स्वतन्त्रता दोनोंका अवरोधन किया गया। युद्धकालमें यह स्थिति तो स्वतन्त्र देशोंमे भी उत्पन्न कर दी जाती है फिर भारतके समान परतन्त्र देशकी तो बात क्या कही जाय। पर युद्धकी समाप्ति होते ही एक बार पुनः राष्ट्रीय जीवनमें गहरी हलचल उत्पन्न हुई। युद्धके बाद एक ओर माण्टेग्यू-चेम्सफोर्डकी चर्चा चलायी गयी और दूसरी ओर रौलट-बिल सदृश दमनात्मक विधानकी रचनाकी चेष्टा की गयी। युद्धकालमें ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और शासकोंने भारतीय स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें न जाने कितनी घोषणाएँ की थीं। बार-बार भारतीयोंके हृदयमें यह विश्वास उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया गया था कि युद्धोत्तर विश्वव्यवस्थामे भारत स्वतन्त्र स्थान प्राप्त करेगा, उसे आदरणीय पद मिलेगा और आत्मनिर्णयका अधिकार होगा। पर ये सारी घोषणाएँ विशुद्ध प्रवञ्चनामात्र थीं। युद्धकी समाप्ति होनेपर उन लोगोंका, जिनके हाथोमें जगत्के भविष्यका सूत्र था, रुख तत्काल ही बदल गया। भारतको भी निर्लज्जतापूर्वक अँगूठा दिखा दिया गया। जो सामने आया वह रौलट बिल था और माण्टेग्यू-चेम्सफोर्डके सुधारोंके रूपमें सड़ी गली व्यवस्था थी। भारतीय नेताओंकी आँखें खुल गयी। उन्होने ब्रिटेनकी साम्राज्यवादिनी नीतिका नग्नरूप देखा। एक बार जनजीवनमें गहरा क्षोभ उत्पन्न हुआ। भारतीय राजनीतिमे महात्मा गान्धीके रूपमे नयी शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ।

रौलट बिलके विरुद्ध उन्होंने सत्याग्रहका प्रस्ताव किया जिसके फलस्वरूप पञ्जाबमें ब्रिटिश पशुताने खुलकर खेलनेका अवसर पाया। निरीह और निरस्त्र जनतापर जलियाँवाला बागमें गोलियोंकी बौछारका होना, अमृतसरकी गलियोंमें सम्भ्रान्त व्यक्तियोंका पेटके बल रेंगाया जाना और खुली सड़कोंपर सार्वजनिक रूपसे लोगोंका कोड़ोंसे पीटा जाना एक ओर जहाँ भारतकी असहाय और पतित स्थितिका द्योतक था वहीं ब्रिटिश बर्बरता, निरङ्कुशता और दम्भका नग्न प्रदर्शन था।

स्वाभाविक था कि भारतके समान पुरातन राष्ट्र इस घटनासे आमूल विकम्पित हो उठे। उसकी आत्मा हिल उठी। तत्कालीन पत्र देशकी इस जीवन-धारासे प्रभावित हुए। उन्होंने जन-क्षोभको दृढताके साथ प्रतिबिम्बित करना आरम्भ किया। इधर राजनीतिक क्षेत्रमें महात्मा गान्धीके प्रवेशने राष्ट्रीय प्रवाहको नयी दिशा प्रदान कर दी। असहयोग और सत्याग्रहकी योजनाके रूपमें भारतकी विद्रोही आत्मा सजीव रूपमें प्रकट हुई। राष्ट्रीय आत्मसम्मान, अन्यायका प्रतिरोध, निर्भय होकर समस्त पशुशक्तिको ललकारनेकी वीर-भावना गान्धीके रूपमें मूर्तिमान हुई। फलतः तत्कालीन भारतके जीवनाम्बुधिमें जिन उत्ताल तरङ्गोंका हिलोर हुआ उन्होंने भारतके पत्रोंको प्लावित कर दिया। उसी समयसे भारतके, विशेषकर देशी भाषाके पत्रोंने भारतीय विद्रोहका नेतृत्व ग्रहण किया। स्वयं गान्धीजीने इस क्षेत्रमें नया आदर्श स्थापित किया और जिस प्रकार राजनीतिक जीवनमें महती शक्तिके रूपमें उन्होंने प्रवेश किया उसी प्रकार पत्रकारीके क्षेत्रमें भी अवतीर्ण हुए। उनके 'यङ्ग इण्डिया' और 'नवजीवन' ऐसे दो पत्र थे जो देशके करोड़ों नरनारियोंको अपने सङ्केत-पर नचानेकी शक्ति रखते थे। 'यङ्ग इण्डिया' में प्रकाशित हुए तीन लेखोंके लिए गान्धीजीको ६ वर्ष कारावासका दण्ड भी मिला। इसी समय दिल्लीमें 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (सन् १९२३ ईसवी) तथा प्रयागमें स्वर्गीय पण्डित मोतीलालजीके 'इण्डिपेण्डेण्ट' की स्थापना हुई। 'इण्डिपेण्डेण्ट' पर तो जब सरकारने आघात किया और उसका प्रकाशन रोक दिया गया तो इस घटनाने सत्याग्रहका रूप ग्रहण किया; महीनों तक हाथसे लिखकर, साइक्लो-स्टाइलपर छापकर 'इण्डिपेण्डेण्ट' प्रकाशित किया गया और खुलेआम उसकी

बिक्री की गयी। 'इण्डिपेण्डेण्ट' की उन प्रतियोंका प्रकाशन, खरीद, बिक्री सभी तो अपराध घोषित कर दिये गये। उन्हें बेचनेवाले स्वयसेवक गिरफ्तार किये जाते और पुलिस प्रतियोंको छीनकर जब्त कर लेती थी।

भारतीय पत्रों और पत्रकारोंका जीवन तो आरम्भसे ही तप और उत्सर्ग तथा कष्टसहनका जीवन रहा है। पर इस युगसे लेकर आज तक उन्होंने राष्ट्रकी भावनाके साथ एकात्मता स्थापित करके उपर्युक्त पथको दृढताके साथ अपनाया है। गत पचीस वर्षोंमें महात्मा गान्धीके उज्ज्वल तथा पुनीत नेतृत्वमें भारतीय राष्ट्रने अपनी अपहृत स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेके लिए, खोयी हुई आत्माका पुनः साक्षात्कार करनेके लिए सतत प्रयत्न किया है। इस बीच कतिपय महान् आन्दोलनोंका प्रवर्तन हुआ है। भारतीय पत्रोंने सदा न केवल राष्ट्रका साथ दिया है अपितु उसका नयन करनेका श्रेय प्राप्त किया है। यही कारण है कि सरकारका क्रूर प्रहार उनपर होता रहा है। सन् १९३० और १९३२में देशमें जो व्यापक आन्दोलन हुए उनमें भारतीय पत्रोंका गौरवपूर्ण स्थान रहा है। यही कारण है कि अपने तूणीरमें भारतीय पत्रोंका वध करनेमें समर्थ अनेक भीषण शरोंको रखते हुए भी सन् १९३० में प्रेस आर्डिनेन्सकी रचना तत्कालीन वाइसराय लार्ड अरविनने की। बादमें इस आर्डिनेन्सको 'प्रेस इमरजेन्सी ऐक्ट'के नामसे स्थायी कानूनका रूप दे दिया गया। इसके अनुसार किसी भी पत्रको यह आदेश दिया जा सकता था कि वह पाँच सौसे लेकर दो हजार रुपयेतक जमानतके रूपमें जमा कर दे। जमानतकी रकमके जब्त होनेपर दूसरी बार एक हजारसे लेकर दस हजारतक जमानतके रूपमें माँगा जा सकता है। इसकी जब्तीके बाद सरकारको यह अधिकार होगा कि वह चाहे तो प्रेसको ही जब्त कर ले। इस आर्डिनेन्सके द्वारा भारत सरकारने पत्रोंकी पूरी हत्या ही कर डालनेकी चेष्टा की। उसके बनते ही सन् १९३१, १९३२ ईसवीमें कतिपय राष्ट्रवादी पत्र उसके शिकार हुए। उसकी धाराओंकी व्यापकताको देखकर कोई पत्र अपनेको सुरक्षित समझ ही नहीं सकता था। देशमे प्रचण्ड सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था। पत्र या तो राष्ट्रीय जीवनमें उठे उस तूफानसे अपनेको अलग रखते, उसका समाचार प्रकाशित करने और उसका समर्थन करनेसे दूर रहते अथवा पत्रोंका प्रकाशन ही रोक देते। देशके

देशके अधिकतर राष्ट्रवादी पत्रोंने राष्ट्रीय धारासे अलग रहनेमें अपने कर्तव्यकी अवहेलना देखी। उन्होंने देखा कि इस प्रकार जीवित रहना ही निरर्थक है। आवश्यकताके समय राष्ट्रके पार्श्वमें यदि पत्र खड़े होने न पायें तो अपना जीवन बनाये रखना ही व्यर्थ है। फलतः सारे देशमें एकके बाद दूसरे पत्र बन्द किये जाने लगे। देखते-देखते अधिकतर राष्ट्रीय पत्रोंने अपना प्रकाशन रोक दिया।

इस प्रकार भारतके राष्ट्रीय पत्रोंने पत्रकारीके आदर्श, पत्रकारोंके गौरव तथा राष्ट्रके मान और उसकी मर्यादाकी रक्षामें अपने जीवनकी बाजी लगा दी। इसी समय 'यूनाइटेड प्रेस आव इण्डिया' नामक राष्ट्रीय संवाद-एजेन्सीकी स्थापना भी की गयी।

गत दस वर्षोंकी घटनाओंके सम्बन्धमें अधिक कहनेकी आवश्यकता हम नहीं समझते। वे प्रकाशकी भाँति स्पष्ट हैं। सन् १९३५ के भारत-शासन-विधानके अनुसार देशके सभी प्रान्तोंमें लोकप्रिय सरकारोंकी स्थापना हुई। अधिकतर प्रान्तोंमें तो कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल भी बने। कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलोंके शासनकालमें समाचारपत्रोंको पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। ब्रिटिश-शासनके प्रायः पौने दो शताब्दीके इतिहासमें यह पहला अवसर था जब पत्रोंने राहतकी साँस ली। उन्हें स्वतन्त्र वातावरणमें जीवन-यापन करनेका अवसर मिला। यह सच है कि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंके शासनकी अवधि केवल ढाई वर्ष ही रही फिर भी पत्रोंने स्वतन्त्रताका हलका सा स्वाद पा ही लिया। खेद-की बात है कि देशके दुर्भाग्यसे कुछ साम्प्रदायिक पत्रोंने प्राप्त स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करके राष्ट्रीय जीवनको अकल्पित क्षति पहुँचायी, फिर भी पत्रोंकी स्वतन्त्रताके आदर्शकी रक्षा लोकप्रिय कांग्रेसी सरकारोंने की। पर यह स्थिति अधिक दिनोंतक न रह सकी। वर्तमान महायुद्ध सन् १९३९ ईसवीमें ही छिड़ गया जिसके फलस्वरूप कांग्रेसी सरकारोंको पदत्याग करना पड़ा। उनके पद-त्यागके साथ-साथ पत्रोंकी स्वतन्त्रता भी नष्ट हो गयी। युद्धके नामपर उक्त स्वतन्त्रतापहरणका औचित्य भी सिद्ध किया जाने लगा। फिर तो हमारे पत्रोंकी जो दुर्दशा की गयी उसका वर्णन करना कठिन है। अगले अध्यायमें, जिसमें पत्रोंकी वर्तमान स्थितिकी विवेचना की गयी है, उसपर संक्षेपमें प्रकाश डालने-की चेष्टा की जायगी।

अबतक भारतीय पत्रकारीके विकासके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है उसे न हम इतिहास कह सकते हैं और न पाठक उसे इतिहास समझें। पूर्वके पृष्ठोंमें कहा जा चुका है कि भारतीय पत्रकारिताका विस्तृत और प्रामाणिक इतिहास अभी लिखना बाकी है। सम्प्रति यहाँ केवल संक्षिप्त सी चर्चा की गयी है जिसका आधार उन विद्वानोंके छिटफुट लेख हैं जिन्होंने इस विषयकी कुछ खोज की है। हमने अबतक जो लिखा है वह भारतीय पत्र-कारीके साधारण स्वरूपके सम्बन्धमें लिखा है। यह आवश्यक ज्ञात होता है कि हिन्दी पत्रकारीके विकासके सम्बन्धमें कुछ पंक्तियाँ विशेष रूपसे लिखी जायँ। सन् १८२६ ईसवीमें हिन्दीके प्रथम पत्रका जन्म कलकत्तेमें हुआ। कलकत्तेको न केवल प्रथम हिन्दी पत्रको जन्म देनेका प्रत्युत उसे ही हिन्दी-की प्रथम गद्य-पुस्तकको भी प्रकाशित करनेका श्रेय प्राप्त है। पण्डित लल्लूलाल-जीका 'प्रेमसागर' वह प्रथम गद्य-पुस्तक थी जो कलकत्तेमें प्रकाशित हुई और जिसे पाठ्य पुस्तक बनाकर तत्कालीन अंग्रेज सिविलियनोंको हिन्दी भाषाकी शिक्षा दी जाती थी। कलकत्तेमें ही सर्वप्रथम 'हिन्दी' अदालतकी भाषा स्वीकार की गयी। यह घटना सन् १८३४ ईसवीकी है। फलत कलकत्तेमें ही हम हिन्दीके प्रथम पत्रको प्रकाशित हुआ पाते हैं। कुछ वर्ष पहलेतक यह माना जाता रहा है कि हिन्दीका प्रथम पत्र 'बनारस गजट' था जो काशीसे सन् १८५४ ईसवीमें प्रकाशित होता था। इसके संस्थापक काशीके प्रतिष्ठित नागरिक राजा शिवप्रसाद थे। पर आजकी खोजोंने हिन्दी पत्रके जन्मकी तिथि कई दशक और पहले सिद्ध कर दी है। 'उदन्त मार्त्तण्ड' नामक हिन्दी साप्ताहिक सन् १८२६ ईसवीमें कलकत्तेसे प्रकाशित हुआ जिसके संस्थापक और सम्पादक श्री युगलकिशोर शुक्ल नामक सज्जन थे।

शुक्लजी कानपुर-निवासी थे जो कलकत्तेकी सदर दीवानी अदालतमें अदा-लतकी काररवाईके वाचक (प्रोसीडिंग रीडर) थे। उन्होंने ३० मई १८२६ ईसवीको कलकत्तेके कोलूटोलाके ३७ नं० अमरतल्लासे 'उदन्त मार्त्तण्ड' को प्रकाशित करके हिन्दी पत्रके प्रथम पत्रकार होनेका पद प्राप्त किया। 'उदन्त मार्त्तण्ड' आठ पृष्ठोंका पत्र था जिसका मासिक मूल्य दो रुपया था। इस प्रथम हिन्दी पत्रमें सरकारी कर्मचारियोंकी नियुक्ति, तबादले, सरकारी विज्ञप्तियाँ,

वाजार-दर, देश-विदेशके प्राप्त समाचार आदि छपते थे। अबतक सम्पादकीय लेखों और टिप्पणियोंकी परम्परा आरम्भ नहीं हुई थी। इस पत्रकी भाषा 'मध्य प्रदेशीय भाषा' अर्थात् खड़ी बोली थी। यह पत्र प्राय. डेढ वर्षतक जीवित रहनेके वाद समाप्त हो गया। 'विश्वमित्र' के 'रजत-जयन्ती विशेषाङ्क' में प्रकाशित एक लेखमे श्री रामाशीष सिंह लिखते हैं कि 'उदन्त मार्त्तण्ड' के प्रथम और तृतीय अङ्क वङ्ग साहित्य-परिषदमें सुरक्षित हैं। आरम्भके तीन अङ्कोको छोडकर पूरी फाइल कलकत्तेके शोभावाजारके राजा राधाकान्तदेवकी लाइब्रेरीमें सुरक्षित रखे हैं।"

ऐसा ज्ञात होता है कि श्री युगलकिशोरजी प्रकृत्या पत्रकार थे। 'उदन्त मार्त्तण्ड' के वाद उन्होने पुनः दूसरे पत्रके प्रकाशनकी चेष्टा की और 'सामदन्त मार्त्तण्ड' के नामसे उसे प्रकाशित भी किया पर इसका कोई अङ्क अबतक उपलब्ध नही हुआ है। इसके वाद तीसरा हिन्दी पत्र 'वङ्गदूत' के नामसे कलकत्तेसे ही प्रकाशित हुआ जिसके संस्थापक राजा राममोहनराय थे। पूर्वके पृष्ठोंमें इस पत्रका उल्लेख किया जा चुका है पर यह कहना ठीक न होगा कि 'वङ्गदूत' विशुद्ध हिन्दी पत्र था। यह त्रैभाषिक पत्र था जो बँगला, फारसी और हिन्दी तीनो भाषाओंमे प्रकाशित होता था। इसके अनन्तर कितने पत्र कहाँ-कहाँसे कब निकले इसकी प्रामाणिक खोज अबतक नहीं हो सकी है। राजा शिवप्रसादके 'वनारस गजट' का पता अवश्य मिलता है जो 'उदन्त मार्त्तण्ड' के प्रायः २८ वर्ष वाद वनारससे प्रकाशित हुआ। सन् १८७१ ईसवीमें अल्मोड़ेसे भी 'अल्मोड़ा अखवार' का प्रकाशन हुआ। सन् १८७२ मे कलकत्तेसे मासिक रूपमें 'दीप्तिप्रकाश' का प्रकाश फैला जिसके सम्पादक श्री कार्त्तिकप्रसाद खत्री थे। इसी समय हम देशके विभिन्न स्थानोंसे कतिपय पत्रोंको प्रकाशित हुआ पाते हैं। कलकत्तेसे 'विहारवन्धु', दिल्लीसे 'सदादर्श', सन् १८७३ ईसवीमें काशीसे 'काशी पत्रिका', अलीगढ़से 'भारतवन्धु', लाहौरसे 'मित्रविलास', प्रयागसे पंडित वालकृष्ण भट्टका मासिक 'हिन्दी प्रदीप', शाहजहाँपुरसे 'आर्य दर्पण' आदि प्रकाशित हुए।

सन् १८७८ ईसवीमें पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र और पंडित छोटूलाल मिश्रके प्रयत्नसे 'भारतमित्र' प्रकाशित हुआ। यह आरम्भमें पाक्षिक रूपमें निकला।

इसके सम्पादक पण्डित छोटूलाल मिश्र और व्यवस्थापक पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र बने। इसके एक वर्ष बाद 'सार-सुधानिधि' और प्रायः एक दशक बाद प्रसिद्ध 'उचित वक्ता' ने कलकत्तेमें जन्म ग्रहण किया जो तत्कालीन काश्मीर-नरेश महाराज प्रतापसिंहके मामलेमें सक्रिय भाग लेनेके कारण 'पत्रिका' की भाँति प्रसिद्ध हो गया था। ऐसा पता भी चलता है कि इसी समय कई पत्र राजपूतानेसे भी निकलने लगे थे। उदयपुरका 'सज्जन-कीर्ति' पत्र तत्कालीन महाराजा सज्जनसिंहके नामपर प्रकाशित हो रहा था। जोधपुरसे 'मारवाड़ गजट', अजमेरसे 'राजस्थान समाचार' राजपूतानेसे प्रकाशित होनेवाले पत्र थे। मिर्जापुरसे भी 'नागरी-नीरद' और 'आनन्दकादम्बिनी' चौधरी बदरीनारायण द्वारा प्रकाशित होती थी। इसी समय कानपुरसे पण्डित प्रताप-नारायणमिश्रका 'ब्राह्मण' नामक पत्र प्रकाशित हो रहा था। बम्बईसे प्रकाशित होनेवाला 'श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार' भी इन पत्रोंका ही समकालीन है जो अवतक जीवित है। जिन पत्रोंका उल्लेख किया जा चुका है उनके सिवा 'भारतेन्दु', 'पीयूष-प्रवाह', 'दिनकरप्रकाश', 'धर्मदिवाकर', 'मित्र' आदि मासिकपत्र तथा 'चम्पारन चन्द्रिका' 'मित्रविलास', 'देशबन्धु', 'शुभचिन्तक', 'प्रयाग-समाचार', आदि साप्ताहिक पत्र निकल रहे थे।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें कलकत्तेके 'बङ्गवासी प्रेस' से 'हिन्दी-बङ्गवासी' का प्रकाशन होने लगा था। इस प्रकार उन्नीसवीं शतीके आरम्भिक युगसे ही आरम्भ होकर हिन्दी पत्रोंने धीरे-धीरे अपना विकास किया। आरम्भमें प्रकाशित हुए पत्र अर्थात् 'उदन्त मार्त्तण्ड', 'बङ्गदूत' आदि टाइपके प्रेसोंमें छपकर प्रकाशित होते थे। यह सच है कि उन्नीसवीं शतीके मध्यमें काशीसे प्रकाशित होनेवाला 'बनारस अखबार' यद्यपि लिथो प्रेसमें छपता था तथापि कलकत्तेमे बहुत पहले ही नागरी टाइपके प्रेस स्थापित हो चुके थे। कहा जाता है कि विलियम केरी नामक एक विद्वान् पादरीने संस्कृत पुस्तकें मुद्रित करनेके लिए पहले पहल नागरी टाइपोको ढलवाया था। फलतः हम १८०६ ईसवीमें ही कलकत्तेमें श्री बाबूराम द्वारा स्थापित 'संस्कृत प्रेस' का अस्तित्व पाते हैं। श्री बाबूरामका यह प्रेस खिदिरपुरमें था। श्री बाबूराम ब्राह्मण थे जो मिर्जापुरके रहनेवाले थे। आप ही प्रथम भारतीय थे जिन्होंने प्रेसकी स्थापना की थी।

स्पष्ट है कि 'उदन्त मार्त्तण्ड' के प्रकाशनके समयतक इसी कारण टाइपके प्रेस प्रचलित हो गये थे जिनमें उक्त पत्रोंका प्रकाशन होता था।

'उदन्त मार्त्तण्ड' से लेकर 'हिन्दी बङ्गवासी' तक जैसे-जैसे पत्र विकसित होते गये, जैसे-जैसे हिन्दी भाषा भी विकसित और परिमार्जित होती गयी, वैसे-वैसे पत्रकार-कला भी उन्नत होती गयी। यह सच है कि 'भारतमित्र' के प्रथम प्रकाशन, अर्थात् १८७८ ईसवीतक हिन्दी भाषा उपेक्षित रही। उन दिनों हिन्दी पत्रोंको पढ़नेवाले भी नहीं मिलते थे। पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तत्कालीन स्थितिका वर्णन करते हुए लिखते हैं कि 'जब 'भारतमित्र' प्रकाशित हुआ था उस समय उसके प्रतिष्ठाता जब कलकत्तेके हिन्दी भाषा-भाषियोंसे ग्राहक बननेको कहते तो वहाँके देशवासी व्यापारी उत्तर देते कि चन्दा आप भले ही ले जायँ पर हमारे यहाँ पढनेवाला कोई नहीं है। इसपर दुर्गाप्रसादजी पत्र पढकर कई ग्राहकोंको सुना भी आया करते थे'। यह स्थिति थी हिन्दी भाषाके पत्रोंकी उस समय जब उन्नीसवीं सदी अपने वयसके तीन पन समाप्त करके चौथेमें पदार्पण कर चुकी थी। पत्रोका आकार भी अबतक छोटा होता था, ग्राहक कम होते थे और जो होते थे उन्हे मूल्य चुकाना भी बुरी तरह अखरता था। 'हिन्दी बङ्गवासी' जब प्रकाशित हुआ तब पहले-पहल स्थितिमें परिवर्तन होनेकी सूचना मिलने लगी थी। 'हिन्दी बङ्गवासी अपने पूर्ववर्ती पत्रोंकी अपेक्षा बड़े आकारमें प्रकाशित होता था और अपेक्षाकृत सबसे अधिक लोकप्रिय भी था। उसकी ग्राहक-संख्या भी अपने समयके प्रायः सभी पत्रोकी अपेक्षा कहीं अधिक थी।

कांग्रेसकी स्थापनाके कारण जो राजनीतिक चेतना देशमें उत्पन्न हो रही थी उसीने सम्भवतः भारतीय पत्रों तथा उनके महत्वकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया था। हिन्दी भाषा-भाषी जनसमुदाय भी धीरे-धीरे उक्त धारासे प्रभावित होने लगा था। पर यह सब होते हुए भी उस समयतक हिन्दी पत्रकारीका क्षेत्र अति सङ्कुचित और पत्रकार-कला शैशवावस्थामे ही थी। पत्रोंमें जो समाचार प्रकाशित होते थे वे अंग्रेजी पत्रोंसे सङ्कलित होते थे। अंग्रेजीके सिवा अधिकतर संवाद बँगला पत्रोकी जूठन होते थे। समाचार भी अधिकतर साधारण होते थे कहीं आग लग गयी, कहीं चोरी हो गयी, कहीं किसी

अफसरका तबादला हो गया। प्रकाशित होनेवाले लेखादि भी कहीं भाषासे, कहीं साहित्यसे, कहीं विधवा-विवाहसे, कहीं सनातनधर्म और आर्यसमाजके झगड़ों-से ही सम्बन्धित होते थे। बहुधा वैयक्तिक टीका-टिप्पणी भी होती थी। किसी क्षेत्रके किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिपर उसके विरोधी अथवा मतभेद रखनेवालेके व्यङ्गात्मक लेख निकला करते थे। हाँ, इतना स्वीकार अवश्य करना होगा कि उस समयकी भाषा और लेखकी शैली उत्तरोत्तर विकासको प्राप्त हो रही थी।

इस प्रकार हिन्दी पत्रकारी धीरे-धीरे उन्नत हो रही थी। देशी भाषाके पत्रोंमे बँगला पत्रकार-कला काफी समुन्नत हो चली थी जिसकी तुलनामें हिन्दी पत्र नही टिक सकते थे। कदाचित् आज भी हिन्दी पत्र वर्तमान बँगला पत्रकार-कलाका मुकाबला नही कर सकते। पर यह सब होते हुए भी हिन्दी पत्रोंका विकास होता जा रहा था। तत्कालीन पत्र-सम्पादकोंमें आदर्शवादिता, सेवाभाव तथा अपने देश, अपनी भाषा और अपनी संस्कृतिके प्रति प्रगाढ अनुराग था। पत्रकार कलाकी आराधनामें उन्होने एकनिष्ठ भावसे जीवन अर्पण कर दिया था। फलतः उनके तपके बलपर पत्रकार-कलाका उन्नत्यभिमुख होना अनिवार्य था।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी तो समाप्त हुई। बीसवीं शतीके आरम्भमें कतिपय हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंने जन्म ग्रहण किया। यह बङ्ग-भङ्गसे उद्भूत जागरणका युग था। फलस्वरूप कतिपय जाग्रत् और तेजस्वी पत्रोंका जन्म हुआ जिन्होंने पत्रकार-कलाके क्षेत्रमें अपना स्थान बना लिया। प्रयागसे पूज्यपाद मालवीयजीने सन् १९०० ईसवीमें 'अभ्युदय' प्रकाशित किया। कुछ समय बाद नागपुरसे 'हिन्दी केसरी'का प्रकाशन होने लगा। लोकमान्यके मराठी 'केसरी'के लेखोंका हिन्दी-अनुवाद छापना 'हिन्दी केसरी' का उसी प्रकार लक्ष्य था जैसे 'हिन्दी नवजीवन'में गान्धीजीके 'यङ्गइण्डिया'के लेखोंका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित होता था। 'हिन्दी केसरी' जब नागपुरसे प्रकाशित होता था तो उसकी बड़ी धाक थी। 'हिन्दी बङ्गवासी' और 'हिन्दी केसरी' ऐसे दो पत्र थे जिनका हिन्दी-में प्रकाशित पत्रोंमे सबसे अधिक प्रचार था। अब न 'हिन्दी बङ्गवासी' जीवित है और न 'हिन्दी केसरी'। नागपुरसे जब 'हिन्दी केसरी'का प्रकाशन बन्द हुआ तो काशीसे कुछ वर्षोंतक श्री गङ्गाप्रसाद गुप्त उसका प्रकाशन करते रहे पर धीरे-धीरे वह क्षीण होता गया और बहुत दिन हुए जब पूर्णत. विलुप्त हो गया।

'अभ्युदय' के बाद तो हिन्दीमें साप्ताहिकोंने वह परम्परा और वह आदर्श उपस्थित किया जिसपर किसी भी भाषाभाषी-समुदायको गर्व हो सकता है। स्वर्गीय गणेशशङ्करजीका 'प्रताप', श्री माखनलालजीका 'कर्मवीर', श्री सुन्दरलालजीका 'भविष्य', गोरखपुरके श्रीदशरथप्रसाद द्विवेदीका 'स्वदेश' आदि साप्ताहिकोंने सन् १९१८–१९ ईसवीमें हिन्दी भाषाभाषी क्षेत्रमें जो धूम मचायी उसपर हिन्दी पत्रकारी उचित गर्व कर सकती है। गत पचीस वर्षोंमें हिन्दीके साप्ताहिकोंने जो उन्नति की है, जिस प्रकार उन्होंने अपना स्तर ऊँचा किया है और देशने राजनीतिक सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्रमें जो विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है वह सब आँखोंके सामनेकी घटना है जिसके सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

अबतक हिन्दी पत्रोंके विकासके सम्बन्धमें हमने जो लिखा है उसमें दैनिक पत्रकी चर्चा नहीं की। हिन्दीके दैनिकका इतिहास अधिक पुराना नहीं है। पाठक देख चुके होंगे कि प्रथम हिन्दी समाचारपत्रका जन्म आजसे सवा सौ वर्ष पूर्व हो चुका था पर हिन्दीमें दैनिककी परम्परा वास्तवमें तीस-बत्तीस वर्षसे अधिक पुरानी नहीं है। यह परम्परा आरम्भ होती है सन् १९११ ईसवीके नवम्बरसे जब कलकत्तेसे दिल्ली दरबारके अवसरपर 'भारतमित्र' दैनिक रूपमें प्रकाशित होने लगा। यद्यपि यह पत्र सन् १९१२ ईसवीकी जनवरीमें बन्द हो गया था तथापि दो ही महीने बाद उसका पुनः प्रकाशन आरम्भ हुआ और तबसे वह बराबर २२ वर्षोंतक प्रकाशित होता रहा। 'भारतमित्र'के दैनिक प्रकाशनके बाद धीरे-धीरे देशके विभिन्न भागोंसे हिन्दी भाषाके कतिपय दैनिक प्रकाशित होने लगे। इसी कारण हमने लिखा है कि दैनिक पत्रोंकी परम्परा, उनकी एक शृङ्खला 'भारतमित्र'के दैनिक प्रकाशनके बाद आरम्भ होती है। पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि हिन्दी भाषाका प्रथम दैनिक होनेका पद 'भारतमित्र'को प्राप्त है अथवा सन् १९१२ ईसवीके पूर्व कोई दैनिक प्रकाशित ही नहीं हुआ था। हिन्दीका प्रथम दैनिक पत्र आजसे प्रायः ९० वर्ष पूर्व कलकत्तेसे प्रकाशित हो चुका था। 'समाचार सुधावर्षण' नामक द्विभाषिक दैनिक पत्र सन् १८५४ ईसवीमें कलकत्तेके बड़ाबाजार नामक मुहल्लेसे श्री श्यामसुन्दरसेनके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होता था। यह पत्र

हिन्दी और बँगला दोनोंमें प्रकाशित होता था। इसका प्रथम अङ्क उक्त सन्के जूनमें प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इसके जीवनकी अवधि अत्यन्त ही अल्प थी पर हिन्दी पत्रोंके इतिहासमें प्रथम दैनिक होनेका श्रेय अवश्य प्राप्त कर गया। कहते हैं कि इसके फुटकर अङ्क वङ्गसाहित्य-परिषद, कलकत्ता, इम्पीरियल लाइब्रेरी तथा ब्रिटिश म्यूजियममे सुरक्षित रखे हैं।

हिन्दीका दूसरा दैनिक पत्र सन् १८८५ ईसवीमे कानपुरसे प्रकाशित हुआ। इस पत्रका नाम 'भारतोदय' था। जबतक 'समाचार-सुधावर्षक'का पता नहीं चला था तबतक यही समझा जाता था कि हिन्दीका प्रथम दैनिक कानपुरका यह 'भारतोदय' ही था। इसके सस्थापक श्री सीतारामजी थे। यह पत्र सालभरसे अधिक नही चल सका। तीसरा दैनिक 'हिन्दोस्थान' था जिसे प्रकाशित करनेवाले कालाकाँकरके प्रसिद्ध तथा प्रगतिशील राजा रामपालसिह थे। राजा साहब इस पत्रको हिन्दी और अंग्रेजीमें पहले इंग्लैण्डसे प्रकाशित करते रहे। भारत लौटनेपर उन्होंने हिन्दी दैनिकके रूपमें उसका प्रकाशन आरम्भ किया। पूज्यपाद मालवीयजी महाराज कुछ समयतक इसके सम्पादक थे। पुराने कतिपय प्रसिद्ध पत्रकारोंकी सेवा इसे प्राप्त हुई थी। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती, श्री बालमुकुन्द गुप्त आदि इसमें काम कर चुके थे। राजा साहबकी मृत्युके बाद उनके उत्तराधिकारियोंने 'सम्राट' नामक दैनिक पत्र श्री बालकृष्ण भट्टके सम्पादकत्वमें प्रकाशित किया जो दो वर्षोंतक चलनेके बाद अस्त हो गया। इस प्रकार बीसवी शतीके आरम्भतक हिन्दी दैनिकके प्रकाशनके कतिपय प्रयास किये गये पर हम यह देखते हैं कि उनमें कुछ अधिक सफलता नहीं मिली। राजा रामपालसिंहका 'हिन्दोस्थान' अपेक्षाकृत सबसे अधिक समयतक टिका पर इसका कारण उनके समान श्रीसम्पन्न, प्रगतिशील व्यक्तिकी सहायता तथा वरदान था। सम्भवतः अभी वह युग नहीं आया था जब जन-समाज दैनिक पत्रको ग्रहण कर सकता।

सन् १८९७ ईसवीमें 'भारतमित्र', जिसका प्रकाशन १८७८ ईसवीसे ही आरम्भ हो गया था, दैनिक हुआ पर कुछ महीनोंमें ही उसकी समाप्ति हो गयी। दूसरी बार सन् १८९८ ईसवीकी जनवरीमें दैनिक हुआ और सालभर

चलता रहा पर पुनः बन्द हो गया। यह भी इसी बातका प्रमाण है कि दैनिकके युगका प्रवर्तन अबतक नहीं हुआ था। वह युग आरम्भ होता है उस समयसे जब तीसरी बार 'भारतमित्र' का प्रकाशन दिल्ली दरबारके अवसरपर होने लगा। उसके बादसे धीरे-धीरे दैनिकोंका उदय होने लगा। युद्धारम्भ होनेके बाद तो कलकत्ता समाचार, विश्वमित्र, वेङ्कटेश्वर समाचार, स्वतन्त्र आदि दैनिक रूपमें प्रकाशित होने लगे। इसके अनन्तर काशीसे 'दैनिक आज' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। फलतः ऐतिहासिक दृष्टिसे हम 'भारतमित्र' को ही हिन्दीके दैनिकोंकी परम्परा स्थापित करनेवाला मान सकते हैं। गत. महायुद्ध तथा उसके बाद भारतके राष्ट्रीय जीवनमें जिस प्रकार गति-लहरी उत्पन्न हो चली थी और जिस प्रकार सार्वजनिक जागृति तथा प्रवृत्तिका विकास होने लगा था उसी प्रकार हमारे हिन्दी दैनिकोंका विकास भी होता गया। समाचारपत्र अन्ततः सामाजिक जीवनके रजत-पट हैं जिनपर उसके छाया-चित्र भलीभाँति प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। पर उनका क्षेत्र यहीं समाप्त नहीं होता। वे समाजके प्रतिनिधि, उसके सेवक, उसके पथ-प्रदर्शक और उसके हितरक्षक भी होते हैं। फलतः पत्रोंका विकास तभी सम्भव होता है जब सामाजिक चेतना विकसित हो। समाजकी सजीवता और स्पन्दनसे पत्र भी सजीव और स्पन्दित हो उठते है। पर जहाँ समाजकी प्रतिक्रियासे पत्र प्रभावित होते हैं वही पत्र अपनी क्रियासे समाजको सजीव करनेकी चेष्टा करते है। ये दोनो परस्पर अन्योन्यभावसे सम्बद्ध हैं, एक दूसरेपर आश्रित है और 'परस्परं भावयन्तः' की पद्धतिसे ही जीवनयापन करते हैं।

हमारे देशके हिन्दी भाषाभाषी क्षेत्रमें, व्यापक जनसमाजमें, गत महासमरकी घटनाओंने जिस जीवनका सर्जन किया वह दैनिक पत्रोंके विकासके लिए अनुकूल आधार हो गया। जनताकी जाग्रतिसे उद्भूत जिज्ञासाका आप्यायन करनेके लिए दैनिकोका प्रकाशन आवश्यक हो गया। यही कारण है कि उनका उदय हुआ और उनकी संख्या बढने लगी। केवल संख्या ही नहीं बढी अपितु विकासकी ओर उनके अभियानमें एकके बाद दूसरे स्तर भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगे। 'भारतमित्र'से दैनिकोंकी जिस परम्पराका आविर्भाव हुआ उसे दैनिकत्वकी नयी कल्पना और प्रवृत्तिसे ओतप्रोत किया श्री मूलचन्द्र अग्रवालके

'विश्वमित्र' ने जो सन् १९१६ ईसवीसे प्रकाशित होने लगा। विश्वमित्र'के पूर्ववर्ती दैनिकोंका दैनिकत्व इतना ही था कि वे सप्ताहमे छः दिन प्रकाशित होते रहते थे पर उनमें दैनिककी वह मौलिकता, वह नवीनता, वह आकर्षण, वह स्पन्दन कहाँ था जिसकी कल्पना लेकर लार्ड नार्थक्लिफने इंग्लैण्डमें 'डेली-मेल'की स्थापना की थी। अबतक हमारे दैनिकोंका काम केवल इतना था कि अंग्रेजी भाषाके दैनिकोंमें प्रकाशित हुए संवादोंका अनुवाद करके अपने कलेवरको भर दे। पुराने, उच्छिष्ट और सड़े हुए समाचारोंको लेकर, अंग्रेजी पत्रोंके चिल्लूमे पानी पीकर हमारे दैनिक जीवित रहते थे। आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें न कोई अपनी दृष्टि होती थी और न किसी लक्ष्यसे उत्प्रेरित हो करके अपना प्रकाशन करते थे। यह स्थिति तब बदली जब 'विश्वमित्र'का प्रकाशन श्री मूलचन्द्र अग्रवालके प्रयाससे होने लगा। इस पत्रने सन् १९१६ ईसवीमें जन्म ग्रहण किया। श्री मूलचन्द्रजीने इस पत्रको वास्तविक अर्थमें दैनिक बनाया और उसे अंग्रेजी पत्रोंके परावलम्बनसे मुक्त किया। उन्होंने स्वतन्त्र रूपसे तारोंको लेना आरम्भ किया, पत्रमें नवीनता और मौलिकता भरी, वाणिज्य तथा सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नोंपर स्वतन्त्र रूपसे लेखादि प्रकाशित करना आरम्भ किया। विश्वमित्र' की विविधता और स्वतन्त्रता वास्तवमे हिन्दी दैनिकोंके क्रमिक विकासके नये स्तरकी द्योतक थी।

कुछ वर्षों बाद जब काशीसे पण्डित बाबूराव विष्णुपराड़करके सम्पादकत्वमें स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्तने दैनिक 'आज'का प्रकाशन किया तो उसने हिन्दी दैनिकोंके सम्मुख नया आदर्श स्थापित कर दिया। शिवप्रसादजीकी कल्पना यही थी कि हिन्दीमें ऐसा दैनिक प्रकाशित हो जो अंग्रेजी अथवा अन्य किसी भी भाषामे प्रकाशित होनेवाले किसी भी उच्चकोटिके दैनिकके समकक्ष हो। पराड़करजी ऐसे प्रौढ, गम्भीर तथा आदर्शवादी सम्पादकके नेतृत्वमे दैनिक 'आज ने प्रकाशित होकर उस कल्पनाकी नींव डाली। 'आज' ने भाषा, भाव और शैली, विचार, विवेचना तथा विविधता, मौलिकता, नवीनता तथा गम्भीरता, आदर्शवादिता, जनसेवा तथा निर्भीकताकी दृष्टिसे दैनिक पत्रोंके सामने नये धरातलकी सृष्टि कर दी। 'आज'के बादसे न जाने कितने दैनिकोंका प्रकाशन धीरे-धीरे

होता गया। सम्प्रति देशके विभिन्न भागोंमें अनेक साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रोंका प्रकाशन होने लगा है।

गत सवासौ वर्षोंमें भारतीय पत्रकार-कलाने लम्बी यात्रा पूरी की है। उसकी इस यात्राकी संक्षिप्त रूपरेखा उपस्थित करनेकी चेष्टा की गयी है। अपने इस अभिगमनमें उसे न जाने कितनी कठिनाइयों, प्रहारों तथा सङ्कटोंका सामना करना पडा है। प्रतिकूल परिस्थितियाँ, जिनकी जटिलताको भारतमें आसीन विदेशी सत्ताने और भी अधिक उग्र कर दिया है, उसका पथावरोधन करती रही है। परन्तु यह सब होते हुए भी वह मन्थर किन्तु स्थिर गतिसे आगे बढ़ती गयी है। आज देशमें पत्र-पत्रिकाओंकी संख्या भी काफी बढ़ चुकी है। 'टाइम्स आव इण्डिया'के एडेलफ मायर्सने लिखा है कि 'आज इस देशमें विभिन्न प्रान्तीय भाषाओंमे तथा अंग्रेजीमे - कुल मिलाकर—दो हजारसे अधिक दैनिक और साप्ताहिक पत्र निकलते है। इनके सिवा तीन सहस्रसे अधिक पाक्षिक, मासिक अथवा त्रैमासिक पत्रिकाएँ भी निकलती है जो विभिन्न क्षेत्रों और भाषाओंके साहित्य तथा ज्ञानको बढा रही है'। श्रीमती वार्नसने 'भारतीय पत्रकार-कलाका इतिहास' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इस पुस्तकमें उन्होंने भारतमें प्रकाशित होनेवाले पत्रोंकी संख्या बहुत कम लिखी है। आप लिखती हैं कि 'भारतमे अंग्रेजी भाषाके दैनिक पत्र बत्तीस, देशी भाषाओंके दैनिक पचहत्तर, तथा दोनों भाषाओंके साप्ताहिकोकी संख्या कुल एक सौ तीस है'। हम नहीं कह सकते कि उपर्युक्त दोनों विद्वानोंमे किसकी संख्या सही है पर इतना तो स्पष्ट है कि देशके विभिन्न कोनोसे पत्रोंका प्रकाशन हो रहा है जो जन जीवनका, राष्ट्रकी सामजिक और राजनीतिक धाराका नयन, भाषा, साहित्य और ज्ञानकी अभिवृद्धि तथा समाजका मनोरञ्जन कर रहे हैं। पर इसका अर्थ यह नही है कि हमारी पत्रकार-कला सर्वाङ्गीण तथा समुन्नत हो गयी है। हम जानते हैं कि आधुनिक जगत्‌में आज इस कलाने जिस स्तरको प्राप्त किया है उससे हम कहीं अधिक नीचे हैं। हिन्दी भाषाकी पत्रकारी इंग्लेण्ड, अमेरिकाके पत्रोंकी तुलना तो क्या करेगी वह इसी देशके अन्य देशी भाषाओंके पत्रो तथा उनकी पत्रकार-कलाका मुकाबला भी नहीं कर सकती। बँगला तथा गुजराती और मराठीके पत्र हमसे कहीं अधिक उन्नतावस्थाको पहुँच चुके हैं।

परन्तु इससे निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारा भविष्य उज्ज्वल है क्योंकि हमारे पत्रकारोंमें तप, उत्सर्ग तथा आदर्शवादिताकी कमी नहीं है। जिस गतिसे हमने अबतक यात्रा की है उसे तीव्र करनेकी आवश्यकतामात्र है। कोई कारण नहीं है कि भारतीय राष्ट्र और भारतीय राष्ट्र-भाषाके नैष्ठिक आराधक उस वाञ्छनीय तीव्रताका सर्जन न कर सकें। हम विश्वास करते हैं कि यदि हमारे पत्रकार दृढ सङ्कल्प और कठोर अध्यवसायका आश्रय लेकर अपने पथपर अग्रसर होंगे तो इष्ट तीव्रताका आविर्भाव स्वयमेव हो जायगा।

———

भारतीय पत्रोंकी वर्तमान स्थिति

किसी देशके पत्रोंकी स्थिति देखकर वहाँकी सरकारके स्वरूपको भलीभाँति समझ लिया जा सकता है। लोकतन्त्र और स्वतन्त्रताकी डींग हाँकनेवाले ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और पत्रकार नाजी जर्मनी और फासिस्ट इटलीकी बर्बरताको सिद्ध करनेके लिए अनेक प्रमाणोंमें सबसे बड़ा प्रमाण उन देशोंके पत्रोंकी स्थितिका उल्लेख करके उपस्थित करते हैं जिनकी स्वतन्त्रताका अपहरण सरकारकी ओरसे कर लिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक जर्मनीकी राजनीतिक विचारधारामें पत्रोंकी स्वतन्त्रताके लिए रत्तीभर भी स्थान नहीं है। लोकतन्त्रने उसके सम्बन्धमें जो कल्पना की है उसका सर्वथा अभाव नाजी दृष्टिकोणमें दिखाई देता है। जर्मन या इटालियन समाचारपत्र आज सार्वजनिक मतका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। राज्यका प्रधान शासक अपने देशकी जनताको जो कल्पना, भावना और आदेश प्रदान करना चाहता है उसे प्रकाशित करना और उसके सम्मुख सिर झुकानेकी शिक्षा देनेका एकमात्र कार्य उन देशोंके पत्रोंके लिए रह गया है। इतना ही नहीं वल्कि समाचारपत्रोंका यह अधिकार भी नहीं रह गया कि वे घटनाओंको उनके प्रकृत रूपमें प्रकाशित कर सकें। जर्मनीके शासक जानते हैं कि सच्ची घटनाओंको प्रकाशित करके जनताको उससे मनमाना अर्थ निकालनेके लिए स्वतन्त्र छोड़ देना उनके लिए भयावह हो सकता है। अतः घटनाएँ भी वही प्रकाशित होंगी जिन्हे प्रकाशित करनेकी अनुमति सरकारसे मिलती है तथा वे प्रकाशित भी उस रूपमें की जायँगी जो शासकोंको पसन्द हो। इस नीतिकी जितनी निन्दा स्वतन्त्रताप्रेमी मानवसमाज द्वारा की जाय कम है। यह मानवताके अबतकके विकास तथा उसके प्रकृत अधिकारोंका निष्ठुर निर्दलन है जिसे स्वीकार कर लेना न्याय और स्वतन्त्रता तथा प्रगतिके प्रति भयावह अपराध करना है।

स्वतन्त्रताका दावा करनेवाला और अपनेको लोकतन्त्रका सुदृढ गढ समझनेवाला ब्रिटेन इसकी निन्दा करे यह उचित ही है। पर जब हम अपने देशकी

ओर दृष्टिपात करते हैं तो अद्भुत स्थिति दिखाई देती है। जिस कुकर्मको करनेके कारण जर्मन नाजी सभ्यता, स्वतन्त्रता और मानवताके शत्रु समझे जाते हैं वही पाप भारतकी ब्रिटिश सरकार जिस निर्लज्जता और बेहयाईके साथ इस देशके वक्ष स्थलपर सम्पादन कर रही है उसे देखकर कौन चकित न हो जायगा? और भी अधिक आश्चर्य यह देखकर होता है कि लोकतन्त्र और स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोंका नाम ले लेकर चिल्लानेवाले ही उस कुत्सित नीतिका सञ्चालन करते हैं जिसके विरोधी होनेका दम भरा जाता है। समझमें नहीं आता कि ब्रिटिश भूमिमें अथवा पश्चिमी गोलार्धमें स्वतन्त्रताका जो अर्थ है क्या वह पूर्वी गोलार्धमें स्थित इस देशकी भूमिमें कुछ भिन्न हो गया है? यदि नहीं, तो पूछा जा सकता है कि जिस जघन्य उद्दण्डताके लिए हिटलर और मुसोलिनी अपराधी माने जाते हैं वही लीला भारतमें चरितार्थ करनेवाली तथोक्त स्वतन्त्रता प्रेमी ब्रिटिश सरकार किस प्रकार सभ्य और लोकतन्त्र तथा मानवताकी प्रचारिणी मानी जा सकती है? आज भारतके पत्रोंपर दृष्टिपात कीजिये तो आप देखेंगे कि जो यहाँ हो रहा है उसकी मिसाल जगत्‌के किसी सभ्य देशमें न मिलेगी और यदि जर्मनी या इटलीमें मिलेगी भी तो यहाँकी हालत किसी भी प्रकार वहाँकी दशासे अच्छी नहीं है।

हम पत्रकारोंके हृदयसे पूछिये कि हमारे पत्रोंकी क्या दशा है? पूर्वके पृष्ठोंमें बताया जा चुका है कि इस देशमें समाचारपत्र गत डेढ़ दो शताब्दीसे निकल रहे हैं। कलकत्तेमें गोरे तथा अंग्रेजी पत्र सन् १७८० ईसवीसे ही निकलने लगे थे। सन् १८१८ ईसवीसे देशी भाषाके पत्र भी निकलने लगे। जैसा कि पूर्वमें लिख चुके हैं। आज इस देशमें देशी, विदेशी भाषाओंमें हजारों पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। इन पत्र-पत्रिकाओंके सामने समस्याएँ अनेक हैं—देशमें साक्षरताकी कमीके कारण पाठकोंका अभाव है, व्यापार-व्यवसायकी कमी देशी भाषाके पत्रोंके लिए विशेष रूपसे विज्ञापनोंकी कमीके साथ पूंजीका भी अभाव है क्योंकि जिनके पास धन है वे उसे धनोत्पादनके काममें लगाते हैं और पत्रोंका निर्माण तथा प्रकाशन अभीतक इस देशमें धनोत्पादनका अच्छा और खासा व्यवसाय नहीं बन पाया है। जनताकी गरीबी सबसे बड़ी समस्या है जो प्रतिदिन चार पैसे भी खर्च करके पत्र पढ़नेकी क्षमता प्रदान नहीं

करती। गमनागमनके साधनोंका ऐसा भीषण अभाव है कि दूर-दूरके गाँवोंतक पत्रोंका पहुँचना भी सम्भव नहीं होता। भारत कृषिप्रधान देश है जहाँकी अस्सी प्रतिशत जनता गाँवोमें रहती है जो अधिकतर निरक्षर तो है ही पर वहाँके साक्षर भी यातायातके साधनोंके अभावके कारण और पैसोंकी कमीसे समाचार-पत्रोकी दुनियासे अलग हो गये है। आज भी भारतके ज्यादातर गाँवोंमे सप्ताहमें दो वारसे अधिक डाक शायद ही कही जाती होगी। साधारणतः एक ही बार चिट्ठियोंका थैला लिये हुए मीलोंकी मञ्जिल मारता हुआ डाकिया पहुँच पाता है।

इस देशमे पत्रकारी इन अनेक कठिनाइयोका सामना करते हुए भी चल रही है, पर जो इस महान कर्ममें लगे हुए हैं वे जानते हैं कि जीवन-यापन तथा अस्तित्व बनाये रखना भी कितना कठिन हो रहा है। यही कारण है कि इस दिशामें योग्य व्यक्तियोका बहुधा अभाव दिखाई देता है। आज भारतके पत्रकारके लिए न धन है, न सुख है, न सरल मार्ग है और न जीवनोपायका अच्छा और निश्चित साधन है। आज भारतका पत्रकार वही हो सकता है जो गरीबी और दरिद्रताको अपनाना चाहता हो, जो त्याग और अपरिग्रहके महान पथका पथिक बननेका कलेजा रखता हो जो राष्ट्रकी सेवाके पुनीत आदर्शसे प्रभावित होकर अपनी कामना तथा जीवनकी सारी आशाका इस महान यज्ञमे होम कर देनेके लिए बद्धपरिकर हो। स्पष्ट है कि इस पथके पथिक सदा और सर्वत्र थोडे ही होते है। जो योग्य हैं और पैसा कमाना चाहते हैं वे अधिक अर्थकर पेशेके लिए यत्नशील होते हैं और जो देशकी भयावनी वेकारीके शिकार होकर कामकी खोजमें भटककर आ भी जाते हैं वे इस कठिन और तपस्वी जीवनमें तवतक रो रोकर पड़े रहते है जवतक कोई दूसरा उपाय सामने नही आजाता। भला ऐसे लोगोंसे पत्रकार-कला कव और कैसे पुष्ट और समुन्नत हो सकती है?

देशी भाषाके पत्रोंके लिए तो 'रोज कुआँ खोदना और पानी पीना'वाली कहावत चरितार्थ होती है। उनके पास पूँजी नहीं कि पत्रको सुचारु रूपसे सुव्यवस्थित और सुन्दर बना सकें। समाचारकी एजेन्सियोंसे मिलनेवाले अंग्रेजी भाषामें आयेंगे जिनका अनुवाद करनेका बोझ उन्हें उठाना पड़ता

जिससे अंङ्ग्रेजी पत्रकार बच जाता है। इस विशेष आयास और कठिनाईके कारण बहुधा देशी भाषाके पत्र अंङ्ग्रेजी पत्रोंकी प्रतिस्पर्धा ताजासे ताजा खबरोंके छापनेमे नहीं कर पाते। उन्हे बाध्य होकर अक्सर कुछ न कुछ पीछे रह जाना पडता है। इसके सिवा गुलाम भारतकी गुलामीने देशका चरित्र भी नष्ट कर दिया है। जो अङ्ग्रेजी जानते हैं उनमेंसे अधिकतर देशी भाषाके पत्रोंको पढना अपनी शान और अपनी शिक्षाका अपमान करना समझते हैं। अपनी मातृ-भाषाकी घृणित उपेक्षा करनेका जघन्य पाप जितना आधुनिक भारतीय करता है उतना कदाचित् इस धरित्रीके किसी दूसरे भागका निवासी न करता होगा। हमें यह कहते लज्जा भी नहीं आती कि हम हिन्दी नहीं जानते। बंगला तथा गुजराती और मराठी भाषाभाषी फिर भी हिन्दी भाषाभाषियोंकी अपेक्षा अपनी मातृभाषाका अधिक सम्मान करते हैं।

कितना भी अंङ्ग्रेजी पढा बङ्गाली क्यों न हो वह किसी न किसी बँगला पत्र या पत्रिकाका ग्राहक अवश्य होगा। पर हम हिन्दी भाषाभाषियोंका दुर्भाग्य हमे इस दिशामें भी नहीं छोड़ता। अंगरेजी जाननेवाले हिन्दी पत्रोंको प्रायः नहीं पढ़ेंगे और पूछनेपर यह कह देनेमें सङ्कोच न करगे कि हिन्दी पत्रोंका स्तर (स्टैण्डर्ड) बहुत नीचा है। इन भलेमानसोंसे कौन पूछे कि जिस हिन्दीभाषाने आपके ऐसे सुपुत्रो को पाया है उसके पत्र अपना स्तर ऊँचा कर ही कैसे सकते हैं ? जिसे पढे-लिखे लोग खरीदेंगे नहीं, जो निरक्षरोंके किसी कामका नहीं, गरीब साक्षर जिसे खरीदनेमें असमर्थ हों उसकी दशाकी कल्पना कर लेना क्या कठिन है ? संक्षेपमें कहें तो कह सकते है कि ऐसा पदार्थ जिसका कोई ग्राहक ही न हो, जीवनमरणके सङ्घर्षमें ही मिटता रहता है वह विचारा 'स्टैण्डर्ड' कायम करे कहाँसे ? जिनकी उपेक्षासे उनमे यह त्रुटि है वे ही उसे दोष देकर समझते हैं कि उन्होंने पतेकी बात कही और ऐसा अकाट्य तर्क उपस्थित कर दिया कि उसका उत्तर यदि अक्षपाद गौतम-सा तर्कशास्त्रविशारद भी आ जाय तो नहीं दे सकता।

पत्रोंकी यह स्थिति तो है ही और ये तमाम समस्याएँ विकटतम रूपमें उसके सामने मौजूद ही रहती हैं, पर इन सबसे भीषण समस्या तो वह है जो

इस देशमें स्थापित विदेशी सरकारके रूपमें हमारे मस्तकपर शताब्दियोंसे जमकर बैठी हुई है। आज इस समस्याकी जटिलताके सामने और सब बातें पीछे पड जाती हैं। जब हम ब्रिटिश पत्रोंके इतिहासपर दृष्टि डालते हैं तो सचमुच यह देखकर आश्चर्यमें पड जाते हैं कि जिस देशके पत्रोंने शताब्दियोंतक सङ्घर्ष करके अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा की है उसी देशके लोग भारतीय पत्रोंका गला इस निर्दयताके साथ रेतनेमें कैसे समर्थ हो रहे हैं। चार्ल्स प्रथम और क्रामवेल तथा चार्ल्स द्वितीय और जेम्स द्वितीयके राज्यकालमें ब्रिटिश पत्रोंने अपनी स्वतन्त्रताके लिए निरन्तर युद्ध किया और अन्ततः सन् १६९५ ईसवीमें पार्लमेण्ट द्वारा वह स्वतन्त्रता स्वीकार की गयी। मेकालेने अपने देशके पत्रोंकी स्वतन्त्रताकी कहानीका वर्णन मनोरञ्जक ढङ्गसे किया है। वे बताते हैं कि किस प्रकार ब्रिटिश पत्रोंको दबानेकी चेष्टा क्रामवेलने की थी। उसके अनन्तर चार्ल्स द्वितीयने जब पुनः ब्रिटेनके राजसिंहासनपर आरोहण किया तो उन्होंने सन् १६८० ईसवीमें सरकारी आज्ञाके बिना तत्कालीन उन परचों और पुस्तिकाओंके प्रकाशनपर रुकावट लगा दी जो संवादोंकी सूचना देनेके लिए छपा करती थीं। तत्कालीन ब्रिटिश चीफ जस्टिस स्कागसने रूलिंग देते हुए यह मत प्रकट किया कि राजाज्ञाके बिना किसी भी समाचारको छापना, चाहे वह सच हो या झूठ, कानूनकी दृष्टिमें अपराध है और स्पष्टतः अवैध है।

पर ब्रिटिश जनताने अपने पत्रोंको स्वतन्त्र करनेका यत्न नहीं छोड़ा। मेकाले लिखते हैं कि 'जिस समय ब्रिटेनकी महारानी मेरी द्वितीयकी अन्त्येष्टिका आयोजन हो रहा था उस समय ब्रिटिश पार्लमेण्टकी साधारण सभाके सामने एक प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित था जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। इस घटनाकी ओर उस समय लोगोंने अधिक ध्यान नहीं दिया; परन्तु घटना ऐसी थी कि यद्यपि उसने कोई उत्तेजना पैदा नहीं की और उसकी चर्चा करना पार्लमेण्टकी घटनाओंके ऐतिहासिक भूलतक गये तथापि उसने जगत्‌की स्वतन्त्रता और मानव सभ्यताके विकास-पथको सम्भवतः इतिहासमें घटी किसी भी दूसरी घटनासे अधिक प्रशस्त किया। घटना यह थी कि सन् १६९५ ईसवीमें साधारण सभामें एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि राजद्रोहात्मक तथा सरकार-विरोधी बातोंको प्रकाशित करनेवाले पत्रोंको नियन्त्रित करनेके लिए

जो कानून अबतक चला आ रहा है उसे जारी रखा जाय। प्रस्तावपर जब वोट लिया गया तो बहुमतसे वह अस्वीकृत हो गया और तबसे इंग्लैण्डमें पत्रोंकी स्वतन्त्रता कानूनन स्वीकार कर ली गयी। यह सच है कि इसके बाद भी शासकवर्ग यदाकदा इस स्वतन्त्रतापर आघात करनेकी चेष्टा करता रहा। जार्ज प्रथमके समयमें इसके लिए विशेष रूपसे यत्न किया गया पर कभी सफलता न मिली।

ब्रिटेनकी जनता और पत्रोंने कठिन परिस्थितियोंका सामना करते हुए भी अपनी इस विभूतिकी रक्षा की। आजतक वे पत्र सरकारी हस्तक्षेपसे मुक्त हैं और युद्धकालमें आवश्यक नियन्त्रणोंको स्वीकार करनेके सिवा उस स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिए पूरी तरह सचेष्ट रहते हैं। ब्रिटिश पत्रकार दावा करते हैं कि मत प्रकट करनेकी उनकी इस स्वतन्त्रताने ही सारे यूरोपके दृष्टिकोणको, सामाजिक और राजनीतिक जीवनको प्रभावित किया है। उनका दावा है कि फ्रान्सकी राज्य-क्रान्तिको उत्प्रेरणा प्रदान करनेवाले जिन भावोंने आगे चलकर सारे जगत्‌को आमूल आलोडित कर दिया और जिन्होंने विश्वके इतिहासकी धाराको भी एक विशेष दिशाकी ओर मोड दिया है उन भावोंका प्रजनन, प्रवर्तन और प्रसार आरम्भमें ब्रिटेनसे ही हुआ और प्रेसकी स्वतन्त्रताके कारण ही उसके लिए ऐसा करना सम्भव हुआ।

हम एक ओर अंग्रेजोंके इस दावेको देखते हैं और दूसरी ओर अपने देशको देखते है। इंग्लैण्डमें जहाँ आरम्भसे लिखने और मत प्रकट करनेकी स्वतन्त्रताके लिए युद्ध किया गया वहाँ इस देशमें आरम्भसे ही इस स्वतन्त्रताका क्रूर अपहरण और निर्दलन किया जाता रहा है। भारतीय पत्रोंपर दमनके जो प्रहार होते रहे हैं वे ब्रिटेनके उज्ज्वल नामपर सदा काले धब्बेके समान लगे रहेंगे। भारतीय दण्डविधानकी धाराओंकी लम्बी भुजाएँ कब भारतीय पत्रोंके गलेपर पहुँचनेसे बाज आयी है? राजद्रोह, जनताको भडकाना, मानहानि और अदालतका अपमान करनेके नामपर सदासे ही तो उन्हे कुचलनेका प्रयत्न किया गया है। ये धाराएँ स्वयं ही विस्तृत हैं, उसपर अदालतोंने इनका अर्थ करते हुए उन्हे अनन्त व्यापकता प्रदान कर दी है। सरकारकी सीधी-सादी टीका-

टिप्पणी भी राजद्रोहके क्षेत्रमें आ सकती है। लेखनीसे निकला हुआ प्रत्येक शब्द राजद्रोह हो जा सकता है। ऐसे देशमें, जो पराधीनताके उत्पीड़क पाशसे आबद्ध है, जहाँकी सरकार निरङ्कुश, स्वेच्छाचारी तथा अनुत्तरदायी है, जिस सरकार और जनताके बीचकी खाई अत्यन्त विस्तृत है, जिसका हित न केवल जनहितसे भिन्न है प्रत्युत अधिकतर स्थितियोंमें उससे सर्वथा विरोधी है उसके सम्बन्धमें यदि जनताके स्वत्वके परिपोषक राष्ट्रवादी तथा देशकी स्वतन्त्रताके प्रेमी पत्र कुछ लिखेंगे तो वह विरोधात्मक टीकाके सिवा दूसरा क्या लिखेंगे? स्पष्ट है कि भारतके पत्र, विशेषकर देशी भाषाओंके पत्र प्रायः राष्ट्रवादी रहे हैं। हिन्दी भाषाके पत्र तो प्रायः पूर्ण रूपसे राष्ट्रवादी तथा देशकी स्वतन्त्रताके पक्षके समर्थक कहे जा सकते हैं। अंग्रेजी भाषामें भी जो पत्र भारतीय हैं उनमे अधिकतर राष्ट्रवादी हैं। यदि वे जनहितके लिए मन्द स्वर भी उठाते हैं तो वह सरकार तथा शासकवर्गके विरुद्ध ही होगा। इस स्थितिमें व्यापक अर्थ और व्याख्या रखनेवाली दण्डविधानकी राजद्रोहवाली धारा उन्हे एक झटकेमें उखाड़ फेंकनेमें समर्थ होती रही है।

जनताको भड़काना इंग्लैण्डमें भी अपराध है पर वहाँ किसी व्यक्ति या समाचारपत्रको भड़कानेके जुर्ममे तबतक सजा नहीं दी जा सकती जबतक यह सिद्ध न कर दिया जाय कि अमुक पत्र या अमुक व्यक्तिके भड़कानेके फलस्वरूप अमुक व्यक्ति या समूहने भड़ककर अपराध कर डाला या अपराध करनेकी चेष्टा की। इस देशमें चाहे कोई भड़के या न भड़के सरकार पत्रोंकी बातसे यदि भड़क उठती है तो उन्हे दण्ड देनेके लिए उसके अस्त्रागारमें भयानक अस्त्र भरे पड़े हैं। कानूनकी भट्टीमें पत्रोंको भूनकर राख बना देना बायें हाथका काम होता है। 'अदालतके अपमान'के मामलोंमें तो न जाने कितने पत्र फाँसे जाते रहते हैं। अबतक यह स्पष्ट ही नहीं हो सका है कि किसी अदालती मामलेके सम्बन्धमें किस प्रकारकी टीका-टिप्पणी अपराधजनक है और किस प्रकारकी नहीं है। सिद्धान्ततः किसी जज या मजिस्ट्रेटपर पक्षपातका दोषारोपण करना अथवा उसकी निष्पक्षतामें सन्देह करना अथवा न्यायालयमें विचाराधीन मामलोंपर टीका-टिप्पणी कर देना अदालतका अपमान करना माना जा सकता है।

पर व्यवहारत: 'अपमान' करनेके अपराधमें किसी पत्रको फाँसना न फाँसना किसी जज या मजिस्ट्रेटकी अपनी कल्पनापर निर्भर हो गया है। किसी मामलेमें किसी विचारपति या मजिस्ट्रेटके किसी कार्य या ढङ्गकी टीका यदि कर दी जाय और उक्त विचारपति या मजिस्ट्रेट अपने विरुद्ध हुई आलोचनासे क्षुब्ध हो अथवा अपने प्रति अनुचित आक्षेप समझे तो 'अदालतके अपमान' का जुर्म लगाकर मामला चला दे सकता है। फिर वह मामला भी उसीकी अदालतमें चलाया जाता है। आज इस पद्धतिके कारण सार्वजनिक हितसे गहरा सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्न 'न्याय'के विषयमें किसी भी प्रकारकी उचित टीका-टिप्पणी भी करना भयावह हो गया है। तमाशा यह है कि ऐसे मामलोंमें इस सीधे सर्वसम्मत कानूनी सिद्धान्तकी भी उपेक्षा की जाती है कि किसी जजको अपने मामलेका विचारपति नहीं होना चाहिये। इस प्रकार पत्रोंको जालमें फाँसनेके लिए अनेक फन्दे सदासे रहे हैं पर यहाँकी सरकारको उतनेसे भी कभी सन्तोष नहीं हुआ। 'प्रेस एक्ट' किसी न किसी रूपमें सदासे शासकवर्गके तूणीरका वह अमोघ शर रहा है जो भारतीय पत्रोंके वक्ष:स्थलको चीरता रहा है।

जब कभी देशमे राष्ट्रीय आन्दोलनका सूत्रपात हुआ है उस समय ये तमाम कानून भी काफी नहीं समझे गये और 'आर्डिनेन्सों'के रूपमें असाधारण अधिकार लेकर शासकवर्ग प्रचण्ड निरङ्कुशता और स्वेच्छाचारिताका परिचय देता रहा है। सन् १९३० और १९३२ मे हुए कांग्रेस-आन्दोलनोंके समय अनेक काले कानून 'प्रेस आर्डिनेन्स' के नामसे प्रचलित थे जिनके प्रहारसे अनेक पत्र धराशायी हुए हैं। गत दो शताब्दियोसे पत्रों और लिखने तथा मत प्रकट करनेकी स्वतन्त्रतापर ब्रिटिश सरकार मौके बे-मौके कैसे प्रहार करती रही है और कब कौनसे पत्र उसके शिकार हुए इसका विस्तारसे वर्णन किया जाय तो स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार हो जायगा। भारतीय पत्रोके दमनकी दु:खद कहानी लम्बी है जो वास्तवमे भारतमें ब्रिटिश राजकी भयावनी विभीषिकाके प्रकृत रूपकी द्योतिका और प्रकाशिका है। इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है कि जब कभी भारतमें अंग्रेजोंकी सत्ताका वास्तविक और सच्चा इतिहास लिखा जायगा उस समय न केवल इतिहासकार बल्कि सभ्य मानवता ब्रिटिश कारनामोंपर घृणा प्रकट करेगी।

जब साधारण अवस्थाओंमें यह हालत रही है और सरकारकी सञ्चालित नीति यही रही है तो फिर असाधारण परिस्थितियोंमें उसने कैसा विकराल रूप ग्रहण किया होगा? यूरोपके धरातलपर युद्धका डङ्का बजा और उसकी प्रतिध्वनि भारतीय अन्तरिक्षमें हुई। फिर क्या था? उसके बादसे भारतीय पत्रोंकी जो दुर्दशा की गयी है उसका वर्णन करनेमें भी लज्जाका अनुभव होता है।

पत्रकार होनेके नाते अपने अपमान और निर्दलनके कारण हमारे हृदय जल गये हैं। वर्तमान महायुद्धके आरम्भ होनेके बाद ही भारतके मस्तकपर बैठी हुई ब्रिटिश सरकारने इस देशकी जनताके विरुद्ध मानो लड़ाई छेड़ देना आवश्यक समझा। भारत-रक्षा-कानूनके नामसे पददलित और विताडित भारतीय जनताकी रही-सही स्वतन्त्रता छीन लेनेकी कुचेष्टा की गयी। ऐसा मालूम हुआ मानो भारतको जापान और जर्मनीसे कोई खतरा नहीं है पर स्वयं भारतीयोंसे ही बडी भारी आशङ्का है। फलतः भारतकी रक्षाके लिए भारतीयोंको ही भारतरक्षा कानूनकी चक्कीमें पीस डालनेका आयोजन हुआ। सार्वजनिक जीवनके अङ्गप्रत्यङ्गको कानूनी फन्देमें फाँसनेके लिए जो अनेक असाधारण कानून बने उनमें समाचारपत्र भी कठोरताके साथ जकड़ दिये गये। हम जानते है कि युद्धकालमें पत्रोंको नियन्त्रित करना सब देशोंके लिए आवश्यक हुआ करता है। गत महायुद्धके समय स्वयं ब्रिटेनकी सरकारने अपने देशके पत्रोंकी स्वतन्त्रता बहुत सीमातक छीन ली थी। सरकारी सेंसर विभागकी आज्ञाके बिना युद्ध सम्बन्धी तथा सेना सम्बन्धी समाचारोंको प्रकाशित करनेकी पूरी मनाही कर दी गयी थी। युद्धके आरम्भिक कालमें तो युद्ध सम्बन्धी-नीतिपर सम्पादकीय मत भी सेंसरकी जाँच-पड़तालके पूर्व प्रकट नहीं किये जा सकते थे। ब्रिटिश सरकारने लन्दनमें अपना सूचना-विभाग स्थापित किया और उसीसे मिले संवादोंको पत्र प्रकाशित कर पाते। 'ब्रिटिश डिफेन्स आव रीलम एक्ट' (ब्रिटिश राजरक्षा कानून) के अनुसार मन्त्रिमण्डलकी बैठकोंके विवरण तथा निर्णय भी तबतक प्रकाशित न हो पाते जबतक इंग्लैण्डकी सरकार उन्हें प्रकाशित करनेकी आज्ञा न दे देती। गत महायुद्धकी अपेक्षा इस बार पत्रोंपर रुकावटें कम हैं, फिर भी काफी नियन्त्रण स्थापित कर लिया गया है।

इस प्रकारके नियन्त्रणोंकी आवश्यकता और औचित्य दो कारणोंसे सिद्ध किया जाता है। पत्रोंमें कहीं कोई ऐसी बात प्रकाशित न हो जाय जिससे शत्रुको उन बातोंकी सूचना मिल जाय जो उसके लिए लाभकारी हों ; दूसरा कारण यह है कि ऐसी बातोंके प्रकाशनको रोकना आवश्यक है जिनसे देशकी जनतामें भय, आतङ्क, नैतिक अध पात या दौर्बल्यका प्रसार होनेकी सम्भावना हो। सरकारके विरुद्ध असन्तोष या विद्रोहकी बातें भी न फैलने पायें। यह स्वीकार करना होगा कि युद्धलिप्त राष्ट्रोंके लिए उपर्युक्त कारणोंसे पत्रोंपर एक सीमातक नियन्त्रण स्थापित करना आवश्यक होता है पर स्मरण रखनेकी बात है कि अमेरिका या इंग्लैण्डकी सरकार जनताकी सरकार है और उसीके सामने उत्तरदायी है। जन-प्रतिनिधियों द्वारा सञ्चालित सरकारोंके द्वारा अधिकारोंके दुरुपयोगकी सम्भावना बहुत कम रहती है। वहाँ जनता और सरकारका हित बहुत सीमातक एक होता है। सरकार यदि जनतासे माँग करती है कि वह अपनी स्वतन्त्रताको व्यापक जनहितकी रक्षाके लिए परिसीमित करे अथवा सरकारके हाथोंमे समर्पण कर दे तो जनता भी स्वेच्छासे अपनी तथा अपनी सरकारकी रक्षाके लिए अपने अधिकारोंका समर्पण करनेमें सन्तोषका अनुभव करती है। राष्ट्रीय जीवनमें ऐसा अवसर आता है जब एक सीमातक अधिकारोंके समर्पणमें ही जनता कर्तव्यकी पूर्ति देखती है क्योंकि उसी समर्पणमें उसके अधिकारोंकी रक्षा होती है। इन असाधारण अवस्थाओंमें बनाये गये नियम भी असाधारण स्थितिमे ही प्रयुक्त होते हैं। यही कारण है कि ब्रिटिश पत्रोंने एक सीमातक सरकारी नियन्त्रण स्वीकार किया है और सरकारने भी उतनी ही रुकावटें लगायी हैं जितनी देशको, जनताको तथा उसको स्वतन्त्रताको सामने खड़ी युद्धकी विपत्तिसे बचानेके लिए आवश्यक प्रतीत हुई हैं।

पर भारतमे स्थिति दूसरी रही है। यहाँकी सरकार विदेशी, उसका हित हमारे हितका विरोधी और उसकी शासन-प्रणाली पूर्णतः अनुत्तरदायी तथा स्वच्छन्द। वह शासन करती है अपने हितके लिए और भारतीय हितका निर्दलन करके भी अपना हित-सम्पादन करती है। उसकी नीयतमे भारतको विश्वास नहीं, नीतिपर नियन्त्रण नहीं। युद्धकी आगमें झोंकते हुए भी भारतीय मतको जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं समझी गयी और भारतीय साधनोका इस

प्रकार दोहन किया गया जैसे वह लावारिस माल हो। असाधारण कानूनोंका प्रयोग युद्धके समय रुकावट लगानेके सिद्धान्तके आवरणमें भारतीय आकांक्षाओं को कुचलनेमें ही किया गया। आजतक भारतके किसी समाचारपत्रपर इसलिए मुकदमा नहीं चला और न उससे इसलिए जमानत माँगी गयी कि उसने शत्रुको लाभ पहुँचानेवाली किसी सूचनाको छाप दिया अथवा देशमें कायरता और अनैतिकताका प्रचार किया। जिन पत्रोंका मस्तक कुचला गया वे वही थे जो राष्ट्रवादी थे और यह कहनेका अपराध कर रहे थे कि जगत्की स्वतन्त्रताके लिए लडनेवाला ब्रिटेन भारतको स्वतन्त्रता प्रदान करके न केवल अपनी नेकनीयतीका सबूत दे बल्कि भारतकी चिरमित्रता और कृतज्ञताका पात्र बनकर जगत्की स्वाधीनताके इस महायज्ञमें भारतको अपनी उन्मुक्त आहुति छोडनेका अवसर प्रदान करे।

यही इस बातका सबूत है कि भारतकी विदेशी सरकारने प्रेसकी स्वतन्त्रताका अपहरण इसलिए ही नहीं किया कि युद्धकालमे वैसा करना आवश्यक था बल्कि विशेष रूपसे इसलिए भी किया कि राष्ट्रवादके कण्ठसे मन्द स्वर-लहरीका निर्गत होना भी असम्भव कर दिया जाय। भारतकी नौकरशाही दमन-कलामे कदाचित् दुनियामें अपना सानी नहीं रखती। राष्ट्रीयताको कुचलनेमें उसने युद्धका बहाना लेकर दमनके ऐसे-ऐसे अभिनव उपाय निकाले कि उसके उर्वर मस्तिष्कपर आश्चर्य प्रकट किये बिना नहीं रहा जा सकता। सन् १९४२ के ९ अगस्तको जिस राष्ट्रीय आन्दोलनका सूत्रपात हुआ उसके समाचारोको छापने न छापनेके सम्बन्धमे अजीब-अजीब हुक्मनामे सम्पादकोंके पास पहुँचते थे।

शीर्षक कैसा दिया जाय, क्या दिया जाय, टाइपों और लाइनोंकी कितनी मोटाई और लम्बाई हो, स्तम्भके कितने भागमें और कितने वाक्योंमें समाचार-विशेष छापा जाय और फिर क्या छपे और क्या न छपे यह सब 'प्रेस सलाहकार' के सेंसर विभागके अधीन कर दिया गया। एक पत्र-सम्पादकको यहाँतक आज्ञा दी गयी कि वह अपने नगरमें पुलिस द्वारा चलायी गयी गोलीका समाचार भी न छापे। एक सम्पादकको यह आदेश मिला कि समाचारोंपर लगाये जानेवाले शीर्षकोंको जिला मजिस्ट्रेटसे स्वीकृत करानेके बाद छापा जाय।

कुछ प्रकारके समाचारोंका प्रकाशन तो सर्वथा रोक दिया गया। जेलमें बन्द राजबन्दियोंके सम्बन्धमें, गिरफ्तारियों तथा सजाओंसे सम्बद्ध समाचारोंका प्रकाशन तक नियन्त्रित कर दिया गया। पत्र-सम्पादकोंके लिए बहुत दिनोंतक यह आवश्यक था कि अपने तैयार पत्रकी दो-दो प्रतियाँ लेजाकर सेंसर अफसरसे पहले स्वीकृत करा लें तब बाहर निकलने दें।

'प्रेस सलाहकारों'के नामसे ऐसा विभाग खोला गया जिसका काम पत्रोंकी गलतियोंको मानो अनुवीक्षण यन्त्र लेकर ढूँढ़ना हो गया। कब मौका मिले और किसीका शिकार किया जाय। फिर इन सलाहकारोंकी योग्यता ऐसी कि वे पत्रकार-कला किस चिड़ियाको कहते हैं यह भी नहीं जानते। गत युद्धके समय 'सलाहकारों'की इस बलासे भारतके पत्र त्रस्त नहीं हुए थे पर इस बार तो उन्होंने पत्रकारोंकी नींद हराम कर रखी है। अनावश्यक हस्तक्षेप कर, शिकायत कर तथा बेसिर-पैरके आदेश निकाल-निकालकर वे पत्रकारोंका अपमान करते हैं और उनके कठिन कार्यको कठोरतम बना देते हैं। सम्पादकोंको सम्पादन-कलाकी शिक्षा देने तथा उन्हें मार्ग सुझानेके लिए ऐसे लोग हिम्मत और हिमाकत करते हैं जिन्हें इस कार्य और इस कलाका रत्तीभर भी ज्ञान नहीं है। पद और अधिकारका ऐसा दुरुपयोग क्या कहीं भी होता है? श्री पापेन जोसेफके शब्दोंमें 'पत्रकलाके ज्ञानसे विहीन लोग वैसे ही सलाहकार बना दिये गये जैसे पशुओंका डाक्टर आँखका आपरेशन करनेके लिए नियुक्त कर दिया गया हो'। सरकारने अपने प्रचारके लिए किसी भी सम्भव उपायको नहीं छोड़ा।

वाइसराय और गवर्नर जहाँ भी मौका हो भाषण करके भारतकी राष्ट्रीय महासभाके विरुद्ध विष उगलते रहे। पत्र-सम्पादक-सम्मेलनके अध्यक्ष तथा मद्रासके प्रसिद्ध पत्र 'हिन्दू'के ख्यातनामा सम्पादक श्री श्रीनिवासनके शब्दोंमे कह सकते हैं कि सरकारी सूचना तथा प्रचार-विभागने परचों, पुस्तिकाओं और रेडियो द्वारा भारतके आदरणीय नेताओंके विरुद्ध दूसरे देशोंमें मनमाना गलत तथा अपमानकर प्रचार किया, पर भारतीय पत्रोंका मुँह इस प्रकार बन्द कर दिया गया कि वे चूँ भी नहीं कर सकते थे। और तो और अमेरिका आदि देशोंके पत्र तथा पत्रकारोंकी टीका-टिप्पणी

यदि वह भारत सम्बन्धी ब्रिटेनकी नीतिके विरुद्ध हो तो भारतमें आनेसे रोक दी गयी। अभी हालमें लुईफिशर सरीखे प्रगतिशील और प्रसिद्ध पत्रकारके भाषणों तथा लेखोंका प्रकाशन रोक दिया गया क्योंकि वे भारत सम्बन्धी ब्रिटिश नीतिके कठोर और निर्भय आलोचक हैं। प्रश्न किया जा सकता है कि ब्रिटेनकी इस नीतिमें और हिटलरकी उस नीतिमें क्या भेद है जिसके अनुसार जर्मनीमें ब्रिटेन आदिके पत्रों द्वारा हिटलरकी की गयी टीकाका प्रकाशन रोक दिया गया है? क्या ब्रिटिश और अमेरिकन पत्रकार, जो अपने देशकी स्वतन्त्रतापर गर्व करते हैं, ब्रिटिश सरकारकी इस दुर्नीतिको ब्रिटेनकी परम्परा, इतिहास तथा संस्कारके अनुकूल माननेको तैयार होंगे? क्या वे यह साहस रखते हैं कि उनकी सरकार स्वतन्त्रताका ढोंग रचती हुई भी ब्रिटिश जातिके मस्तकपर अपने कारनामोंसे जो लोग कलङ्कका टीका लगा रही है उसके विरुद्ध आवाज उठायें?

हम भारतीय पत्रकारोंका हृदय तो विदीर्ण हो चुका है। हम तो जानते हैं कि गत दो शताब्दियोंसे भारतकी विदेशी सरकारने हमारी स्वतन्त्रताको स्वीकार करना तो दूर रहा हमारे अस्तित्वको भी मिटा देनेकी चेष्टामें कुछ उठा नहीं रखा। हमारी अपनी अनेक समस्याएँ हैं जिनसे हम उत्पीडित हैं पर पत्रोंकी स्वतन्त्रतापर शासकोंकी ओरसे सदा होनेवाला आघात उन सब समस्याओंसे बड़ी और प्रमुख समस्या है। हम तो देखते हैं और अनुभव करते हैं कि अपनी परतन्त्रताकी इस विभीषिकासे छुट्टी यदि पा सकें तो दूसरे और प्रश्नोंको हल करनेमें विलम्ब न लगेगा। इस युद्धकालमें भी अनेक प्रश्न हमें यों ही त्रस्त करते रहे हैं। कागजके अभावके कारण न जाने कितने पत्रोंकी जीवन-यात्रा समाप्त हो गयी। भारत यों ही व्यापार और व्यवसायमें पिछड़ा हुआ देश है पर जो थोड़ा-बहुत व्यापार आदि है उसीके विज्ञापनसे हम अपना काम चलाते रहे हैं। आज अधिकतर उद्योग-धन्धे युद्ध सम्बन्धी कार्योंमें लगा दिये गये हैं। विज्ञापनोंके अभावका अनुभव संवादपत्र करने लगे हैं। हमारा कलेवर छोटा हो गया, समाचारोंके लिए स्थान कम हो गया, कागजका अभाव होने लगा, विज्ञापनोंकी कमी हो गयी, पत्रोंका दाम बढ़ाना पड़ा, अधिकतर पत्र-मालिकोंने खर्चमें कमी करनेकी नीयतसे यह बहाना करके कि पत्रोंका आकार

छोटा हो जानेके कारण काम कम हो गया है सम्पादकीय विभागमें काम करने-वाले अनेक पत्रकारोंको बेकार बना डाला। ये प्रश्न तो हमें परेशान करते ही रहे हैं उसपर सरकारकी नीति और उसके कठोर दमनका दण्ड-प्रहार हमारा मस्तक ही विचूर्ण करनेमें समर्थ हुआ दिखाई देता है। इस विपत्तिके सामने और सब बातें गौण हो जाती हैं।

फलतः भारतीय पत्रोंकी जो स्थिति ब्रिटेन द्वारा शासित भारतमें रही है उसमें उसके सम्मुख सबसे बड़ी समस्या पत्रोंके स्वतन्त्रतापहरणकी ही है। हमारे लिए यह प्रश्न व्यावहारिक ही नहीं अपितु सैद्धान्तिक भी है। हम पत्रोंकी स्वतन्त्रताको अपने उज्ज्वल आदर्शके रूपमें देखते हैं। भारतीय पत्रोंके सामने महान ध्येय है जिसके साधनके लिए पत्रोंकी स्वतन्त्रता अनिवार्य और जबर्दस्त शर्त है। यहाँके पत्र बडे बडे पूँजीपतियोंकी पूँजीसे स्थापित कम्पनियोंके धन कमानेके निमित्त मात्र नहीं हैं और न वे अपनी उपयोगिता केवल इस बातमें समझते हैं कि कम्पनियोंके हिस्सेदारोंको प्रतिवर्ष मुनाफेके रूपमें गहरी रकमें 'डिविडेण्ड' घोषित करके बाँटी जायँ। यदि यह प्रवृत्ति अङ्कुरित होने लगी है तो भारतके पत्रकार उसे आरम्भिक स्थितिमें ही मसल देनेके लिए यत्नशील होंगे यह हमारा विश्वास है। कारण यह है कि इस देशके पत्र भारतीयताकी उस महती कल्पनासे अभिभूत हैं जो आधुनिक भारतीय राष्ट्रको आलोडित कर रही है। भारतको यह अनुभव होने लगा है कि उसका अतीत उज्ज्वल रहा है जिसने मानवताके विकासमें वह सहायता प्रदान की थी जिसके लिए मानव समाज सदा उसका ऋणी रहेगा। उसे आज यह अनुभव भी होने लगा है कि भूमण्डलकी उत्पीडित मनुष्यताको अधिक सुखकर, श्रेयस्कर और सुन्दरतर पथकी ओर अग्रसर किये बिना मानवजाति अपने अस्तित्वकी रक्षा नहीं कर सकती। आजकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाको जिन जड पत्रोंपर स्थापित करके वर्ग-विशेष समस्त जगत्का दोहन कर रहा है उसका उन्मूलन अनिवार्य है और प्रगतिकी प्राकृतिक उद्दाम धारा उसे जड़मूलसे उखाडकर फेंके बिना शान्त न होगी। जीवनके प्रति नये दृष्टिकोण और नये आदर्शोंकी भित्तिपर भावी विश्वव्यवस्थाकी स्थापना एक दिन करनी होगी इसमें सन्देह नहीं।

भारतीयता यह अनुभव करने लगी है कि उस नवनिर्माणकी महती प्रक्रियामें उसको गौरवपूर्ण भाग लेना है क्योंकि मनुष्यताको जिन आदर्शोंकी आवश्यकता है उसे प्रदान करनेमें भारत भी किसीसे पीछे न रहेगा। इस कल्पनाको लिये-दिये भारतीय राष्ट्र खड़ा होने लगा है और भारतीय पत्र उसके प्रतिनिधि होनेके कारण इस जाग्रतिके नेता तथा उद्घोषक हैं। उन्हें अच्छी तरह अपने कर्तव्यका बोध होने लगा है और वे समझने लगे हैं कि पतन, पराधीनता, पददलन और प्रतारण तथा पाखण्डकी वर्तमान घृणित शृङ्खलाको तोड़नेके लिए भारतीय राष्ट्रमें आवश्यक चरित्रबल तथा ओजका विकास उन्हें ही करना है। वे जानते हैं कि इसके पहले कि भारत मानवताकी सेवाके योग्य हो सके इस देशमें ऐसे समाजकी रचना करनी है जिसमें मनुष्यका दोहन मनुष्यके द्वारा न हो सके और न मनुष्य मनुष्यका उत्पीडन करनेमें समर्थ हो। व्यक्तिके विकासके लिए समाजमें उसे पूरी स्वतन्त्रता मिले और समाजकी सेवा तथा रक्षाके लिए व्यक्ति अपनेको उसमें लय कर देनेसे भी बाज न आये। व्यक्ति और समष्टिके इस सामञ्जस्यपर जिस राज्य-व्यवस्थाकी इमारत खड़ी की जायगी वह हीगेलकी 'इतिहासका दर्शन' नामक प्रसिद्ध पुस्तककी कल्पनाके अनुसार स्वयं अक्षुण्ण और स्वतन्त्र सत्तावाली न होगी बल्कि उसका अस्तित्व व्यक्ति और समाजसे सापेक्ष होगा। यह अपने लिए जीवित न रहेगी पर व्यक्ति और समाजके लिए उसका अस्तित्व होगा। संक्षेपमें भारत सच्चे लोकतन्त्रकी स्थापनाको अपना ध्येय समझता है।

भारतके समाचारपत्र इस ध्येयकी पूर्तिके लिए यदि जीवित नहीं हैं तो उनका अस्तित्व मिट जाय यही वाञ्छनीय है। पर हमारा विश्वास है कि वे इसी पथके पथिक हैं। लोकतन्त्रकी विशेषता यह है कि वह जनमतके स्वतन्त्र प्रस्फुटीकरणको उचित स्थान देता है। इसीपर उसका अस्तित्व निर्भर करता है क्योंकि इसीकी रक्षाके लिए उसका जन्म हुआ है। यदि भारतीय पत्र लोकतन्त्रके पुजारी और पोषक हैं तो उनके लिए अनिवार्य है कि वे ऐसी तमाम कुचेष्टाओं और प्रयत्नोंका विरोध करें जो इस पथको कुण्ठित करनेके लिए हो रहे हों फिर वे प्रयत्न चाहे पूँजीपतियोंके वर्गविशेषकी ओरसे हों या विदेशी सरकारके एजेण्टोंकी ओरसे। जनताके हित और उसकी स्वतन्त्रताके विरुद्ध

जो कोई भी शक्ति या वर्ग अपने पद या अधिकारका दुरुपयोग करेगा उसकी पोल खोलना और विरोध करना उनका कर्तव्य है। पत्रोंका कर्तव्य ही है कि वे आवाज उठायें। मौनावलम्बन करना उनके लिए जघन्य अपराधके समान है क्योकि उसमें उनके कर्तव्यकी निन्दनीय अवहेलना दिखाई देती है। समाचारपत्र जनताके सेवक है। वे न अपने मालिकोंके प्रति उत्तरदायी हैं और न किसी सरकार या अधिकारीके प्रति सिर झुकानेको बाध्य है। वे यदि जवाबदेह हैं तो जनताके सम्मुख हैं और उसके हितके रक्षक होनेके नाते यदि कभी अपने काममें गफलत करें तो उन्हे उसके सामने जवाब देना होगा। कभी-कभी जैसे कुछ करना अपराध होता है वैसे ही कभी-कभी कुछ न करना भी अपराध हो जाता है। जनाधिकार, जनहित और जनस्वत्वके लिए जब कभी खतरा या सङ्कट उपस्थित हो उस समय यदि पत्र मौन रह जायँ अथवा भय, प्रलोभन या किसी कारणसे उसकी उपेक्षा कर जायँ तो यह उनके लिए अक्षम्य अपराधकी बात होगी।

फलतः सिद्धान्तकी दृष्टिसे और आदर्शकी दृष्टिसे भी इस देशके पत्रोंको अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके प्रश्नको हल करना होगा और निरन्तर युद्धशील होकर अगम्य कठिनाइयोंका सामना करते हुए भी उसकी रक्षा करनी होगी। इसीमें उनके आदर्श और उनके कर्तव्यकी रक्षा है। हम अपनी त्रुटियों, कमियों और दुर्बलताओंको भी जानते हैं, अपनी अयोग्यतासे भी परिचित है। उन्हे दूर करनेके लिए हमे सतत यत्नशील रहना है पर उसके साथ-साथ उपर्युक्त गम्भीर समस्याको निपटानेके लिए भी जूझते जाना है। यह दोहरा सङ्घर्ष है। दो-दो मोरचोंपर लडाई ठाननेका कठिन कार्य आज भारतीय पत्रों और पत्रकारोंके सम्मुख है। पर इसमें विजयी होनेका दृढ़ सङ्कल्प लेकर हमें आगे बढ़ना है क्योंकि इस विजयमें ही हमारा, हमारे देश और राष्ट्रका भविष्य निहित है।

भारतीय पत्र और पत्रकारोंके गुण-दोष

भारतके पत्रोंमें आदर्शवादिताकी कमी नहीं है इस बातको कोई भी निष्पक्ष आलोचक स्वीकार कर लेगा। पर पत्रोंका सञ्चालन कोरे आदर्शवादसे नहीं हो सकता। हम जानते हैं कि पाठक इस वाक्यको पढ़कर भ्रममें पड़ जायँगे। वे कहेंगे कि पूर्वके पृष्ठोंमें जहाँ आदर्शकी ही महिमा गायी गयी है वहाँ अब यह कहना कि कोरे आदर्शवादसे काम नहीं चल सकता क्या परस्पर असङ्गत और विरोधी बात नहीं है? हम स्वीकार करते हैं कि उपर्युक्त बातोंमें विरोध दिखाई देता है और उस विरोधको प्रकट कर देनेके लिए ही हमने उपर्युक्त बात लिखी है। पत्रकारी और समाचारपत्रोंकी तो समस्या ही इसी विरोधमें है और आज यदि हम पत्रकारीको जटिल तथा कठिन कलाके रूपमें उद्घोषित करते हैं तो उसका कारण भी यही विरोध है। हम यह भी समझते हैं कि पत्रकारका जीवन यदि महान माना जाता है, यदि समाजमें उसका आदरणीय स्थान तथा प्रभावशाली पद समझा जाता है, तो उसका आधार भी यही है कि उसे उस विकट कार्यकी कडीको जोडे रखना पडता है जिसमें एक नहीं अनेक परस्पर विरोधी तत्त्व मिलकर उसका निर्माण किये हुए रहते हैं। पत्रकारका जीवन उसकी आदर्शवादिता और व्यावहारिकताके सम्मिश्रणसे ही बनता है। उसे अपने जीवनमें बार-बार अनुभव करना पडता है कि पत्रोंका प्राण यदि आदर्शवादिता है तो उस प्राणको स्थायित्व प्रदान करनेके लिए उसे सङ्घर्षमें उतरना पडता है जिसमें जगत्की परिस्थितियोंके घात-प्रतिघातके अनुकूल व्यावहारिक मार्ग भी पकड़ना पड़ता है। कल्पना, भावना और आदर्शवाद तथा स्थूल भौतिक जगत्की व्यावहारिक स्थितिमें बहुधा स्पष्ट पृथक्ता दिखाई देती है, विरोधका आभास मिलता है, पर इस पृथक्ता और विरोधमें सामञ्जस्य स्थापित किये बिना जीवन बनाये रखना असम्भव हो जाता है।

पत्रोंके व्यवसायीकरणके दोषका उल्लेख पूर्वके पृष्ठोंमें किया जा चुका है और उससे जो अनर्थ हो रहे हैं उनकी ओर भी सङ्केत कर दिया गया है। व्यवसायीकरणकी इस प्रवृत्ति और कुचेष्टाका नियन्त्रण करना होगा अथवा पत्र

अपने महान और पुनीत स्थानसे भ्रष्ट होकर समाजके लिए भयावह बने बिना बाकी न रहेंगे। पत्रकार जानता है कि उसे इस दिशामें सदा सतर्क और सचेष्ट रहना है पर साथ ही साथ वह यह भी जानता है कि आधुनिक वैज्ञानिक युगमें पत्रोंके उत्पादनके लिए महान् यन्त्रोंपर निर्भर करना पड़ता है जिसके लिए खासी पूँजीकी अनिवार्य आवश्यकता होती है। जहाँ पूँजीका समावेश हुआ वहाँ मुनाफेकी प्रवृत्ति जागी और उसके जागते ही व्यवसायवाद सिरपर आ धमका। बताइये कि इस दोषका और पारस्परिक विरोधका शमन कैसे किया जाय ?

दूसरे प्रश्न भी ले लीजिये। विज्ञापनबाजीका जो भयावना परिणाम हो रहा है उसकी ओर भी ध्यान आकर्षित किया जा चुका है। विज्ञापन प्राप्त करनेकी प्रतिस्पर्धामें सफलता तभी होती है जब पाठकोंकी संख्या काफी हो। पाठकोंकी सख्या-वृद्धिके लिए पत्रके आदर्शको भूलकर न केवल मनोरञ्जन, सनसनी तथा जीवनकी क्षुद्र लालसाओंको उत्तेजन प्रदान करनेवाली बातोंसे पत्रके स्तम्भ भरे जाने लगे बल्कि पाठकोंको तरह-तरहका प्रलोभन देकर ग्राहक बननेके लिए फुसलाया भी जाने लगा। जनताका पथप्रदर्शन करना तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंकी गुत्थी सुलझाना तो पीछे छूट गया, उसके स्थानपर बिलकुल उसके विपरीत अपनी कुचालसे वे ही पत्र जनताको पतन तथा भ्रष्टताकी ओर ले जानेके कारण बनने लगे। प्रलोभन और प्रवृत्ति-उत्तेजन राष्ट्रके चरित्रके विनाशका साधक होनेके अलावा और क्या होगा ?

विज्ञापनदाताओंका प्रभाव पत्रोंपर इस सीमातक स्थापित होने लगा है कि वे उसकी नीतिके सञ्चालनपर भी अप्रत्यक्ष रूपसे असर डालने लगे हैं। इस स्थितिकी तीव्र आलोचना और निन्दा हम-कर चुके हैं। पत्रकारोंको अपने रक्तसे अभिषिञ्चित पत्रकारकलाकी कोमल लतिकाको इस भयावने विषसे बचानेके लिए यत्न करना पड़ेगा, पर जहाँ यह यत्न करना है वहीं आजका पत्र-कार भलीभाँति जानता है कि विज्ञापनसे होनेवाली आय पत्रके जीवनकी रक्त-धारा है जिसके सूखकर पथरा जानेपर उसकी मृत्यु भी अवश्य हो जायगी। विचार कीजिये और कल्पना कीजिये पत्रकारकी कठिनाईकी कि वह किस प्रकार अपने आदर्श और वस्तुस्थितिमे सामञ्जस्य स्थापित करे।

इसी प्रकारके एक और प्रश्नको ले लीजिये। पत्रोंके पाठक ही उसके ग्राहक होते हैं। किसी व्यवसाय और व्यापारका मोटा और सीधा सरल नियम है कि जो वस्तु ग्राहकको प्रिय तथा रुचिकर हो वही बाजारमें लायी जाय। तभी उसकी खपत होगी और विक्रेता तथा उत्पादक लाभ उठा सकेंगे। समाचारपत्रोंके अधिकतर पाठक साधारण श्रेणीके लोग होते हैं। हम देखते हैं और अनुभव हमें बताता है कि साधारण मनुष्य जीवनकी साधारण तथा विशेषकर छोटी बातोंमें जितना रस लेता है उतना ऊँची कल्पना और सिद्धान्तकी बातोंमें नहीं लेता। मानव प्रकृति भी कदाचित् उन बातोंको सुनने और जाननेमे स्वाद पाती है जिन्हे आप ओछी कहते है। अदालतमे चलनेवाले किसी व्यभिचारके मामले, किसी अभिनेत्रीका किसी लार्डके पुत्रसे प्रणय, किसी धनपतिकी पुत्रवधूका किसी सैनिक अथवा टेनिसके अच्छे खिलाड़ीके साथ निकल भागना, किसी साहसपूर्ण डकैती अथवा जासूसोंकी जासूसीकी कहानियाँ पढनेमे उसे जो मजा आयेगा वह पार्लमेण्टमें हुए वाद-विवादकी लम्बी रिपोर्टमें न मिलेगा। पेरिसकी राजनीतिसे उसे उतनी दिलचस्पी न होगी जितनी वहाके 'रात्रिगृहों' (नाइटक्लब्स) मे होनेवाली भोगलीलाके वर्णनमें होगी। स्पष्ट है कि बहुतसे पत्र जो गम्भीरता और अपनी मर्यादाकी रक्षा करना चाहते हैं अपनेको इन गन्दगियोसे मुक्त रखते है। पर इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि उनके पाठकोकी संख्या वैसे पत्रोंसे कहीं कम होती है जो उपर्युक्त प्रकारके उपादानोंको अपने पत्रमें उपस्थित कर देते हैं।

लन्दनके 'टाइम्स'की ग्राहक-संख्या आज भी दो चार लाखतक ही परिमित है जब 'न्यूज आव दि वर्ल्ड' या दूसरे तथोक्त लोकप्रिय पत्र तीस तीस लाख प्रतियाँतक बेच लेते हैं। भले ही आप 'टाइम्स' की तारीफ कर लें, उसके आदर्शवादकी प्रशंसा कर लें और लन्दनके सार्वजनिक जीवनमें उसके प्रभावको भी स्वीकार कर लें पर प्रशंसा और प्रभावसे तो किसीका पेट नहीं भर सकता ; उसके लिए तो रोटी ही चाहिये। इस स्थितिमे अब पत्रकार क्या करे ? पाठकोके बिना पत्र चल नहीं सकता और आदर्शवादके बिना पत्रका न चलना ही अच्छा है। उसे पाठक भी चाहिये और आदर्शवाद भी, पर दोनोको एक साथ ही पाये कैसे ? एकको अपनाये तो दूसरेका परित्याग करे ?

स्वतन्त्रताका प्रश्न भी इस विरोधसे मुक्त नहीं है। पत्रोंको स्वतन्त्रता चाहिये और इस स्वतन्त्रताकी प्राप्ति तथा रक्षामें ही मानवताकी रक्षा है यह जानकर ही पत्रकार उसकी आराधनामें अपने सारे जीवनको एकनिष्ठ साधककी भाँति उत्सर्ग कर देता है। पर स्वतन्त्रताका दुरुपयोग भी हो सकता है। जिसके हाथमें लेखनी हो और जो अपने लेखनको बेचनेका व्यवसाय भी करता हो वह यदि स्वतन्त्र कर दिया जाय तो क्या धन कमानेकी लोलुपतामें बहक जाना सम्भव नहीं है? यदि घीका व्यापारी अपने मालमें गन्दे तथा विदेशी तत्त्व मिलाकर उसे पुष्ट करता है तो दण्डका भागी होता है, पर यदि पत्रका व्यवसाय करनेवाले धनोपार्जनके उत्साहमें अन्धे होकर जनताकी रुचि और लालसाको भ्रष्ट तथा गन्दा करनेकी चेष्टा करें तो उनका नियन्त्रण न होना चाहिये? यदि ऐसा नियन्त्रण वाञ्छनीय तथा आवश्यक हो तो फिर क्या इस अधिकारका दुरुपयोग वह शासकवर्ग नहीं कर सकता जिसके विरुद्ध पत्र सदा ही युद्ध ठाने रहते हैं? यदि इस दुरुपयोगकी सम्भावना है तो फिर कैसे एक ओर पत्रोंकी स्वतन्त्रता स्थापित की जाय और दूसरी ओर उस स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करनेवालोंका नियन्त्रण किया जाय? दोनोंका विरोध इतना स्पष्ट है कि अधिक व्याख्याकी आवश्यकता नहीं।

इन तमाम प्रश्नोंको हमने यह दिखानेके लिए उपस्थित किया है कि पत्र और पत्रकारका जीवन विचित्र प्रकारके विरोधी तानों-बानोंसे बना हुआ है। पत्रकार अपने जीवनमें अनुभव करता है कि पत्रकारी यदि एक ओर उसके लिए पेशा है तो दूसरी ओर आदर्शकी उत्कट साधना भी है। वह कलाकार है तो व्यवसायी भी है। वह कारीगर है तो प्रबन्धक भी है। विभिन्न स्थितियोंमें उसे आवश्यकतानुसार उपर्युक्त विभिन्न हैसियतोंमें काम करना आवश्यक होता है और यदा-कदा एक साथ ही सब पदोंके कर्तव्यकी पूर्ति भी करनी पडती है। कल्पना कीजिये कि ऐसे व्यक्तिको, जिसे जीवनमें बिलकुल विपरीत अभिनय करना पड़ता हो और कभी-कभी एक साथ ही करना पडता हो, कितनी कठिनाई उठानी पड़ती होगी। पर जो पत्रकार है और जिसे पत्रकार होना है उसे इसके लिए तत्पर रहना ही होगा। पत्रकार ऐतिहासिक होनेके नाते दिन-प्रतिदिनकी घटनाओं और समाचारोंको सङ्कलित करेगा और

व्यवसायी होनेके नाते उन समाचारोंको बेचेगा। जनताका पथप्रदर्शक होनेकी हैसियतमें घटनाओंपर मत व्यक्त करेगा और अपने पाठकोंको वस्तुस्थितिके अनुकूल आचरण करनेका मार्ग दिखायेगा। पत्रकारको यह प्रतिक्षण स्मरण रखना होता है कि उपर्युक्त कार्य उत्तरदायित्वपूर्ण है, जनताको सत्य और केवल सत्य संवाद देना है तथा विशुद्ध जनहितकी दृष्टिसे अपना मत प्रकट करना है। इस कार्यमें उसके लिए न प्रलोभन बाधक होना चाहिये, न किसीका स्वार्थ, न किसीका भय। वह सत्यका पुजारी है और उस मार्गमें जो भी बाधक हो उसका सामना करनेके लिए बाध्य होगा फिर बाधा देनेवाला कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो। इस हैसियतमें पत्रकारका पेशा उसके लिए तपस्याकी भाँति पुनीत हो जाता है।

पर जब उसका पत्र छपकर तैयार हो जाता है तब उसे बेचनेका काम भी करना होता है अन्यथा सारी कला और साधना निरर्थक हो जायगी। फलतः उसे बाजारमें विक्रेताकी भाँति आना होता है। विक्रेताके लिए आवश्यक होता है कि अपना पदार्थ ऐसा बनाकर ले आये जिसे ग्राहक पसन्द करे और जो ग्राहकको आकृष्ट करे। पाठक यदि पत्रोंका ग्राहक है तो उसे आकृष्ट करनेके लिए पत्रको आकर्षक बनाना होगा, उसमें मत व्यक्त करते हुए भी इस बातका ध्यान रखना होगा कि कोई ऐसी बात न कही जाय जिससे पाठक बिलकुल रुष्ट हो जाय और यदि कुछ कहना आवश्यक ही हो तो इस ढङ्गसे कहा जाय कि पाठकोंको अप्रिय न लगे। यहाँ पत्रकारको व्यवसाय-दृष्टि भी रखनी पडती है और रखनी पडेगी, अपने पत्रको आकर्षक बनाना होगा और प्रतिद्वन्द्वियोंकी प्रतिद्वन्द्वितामें टिकनेके लिए प्रत्येक दिशामे उनसे अच्छा बननेकी चेष्टा करनी होगी। इसी कारण हमने आरम्भमे लिखा है कि कोरे आदर्शवादसे काम नही चल सकता और हमे विश्वास है कि पाठक पत्रकार-जीवनकी जटिलता देखकर समझ गये होंगे कि हमारा आशय क्या रहा है। भारतके पत्रोंपर जब हम दृष्टिपात करते है तो हमें यह देखकर परम सन्तोष और गौरवका अनुभव होता है कि उनसे और चाहे जो त्रुटि हो पर आदर्शकी आराधना और अपने पदकी मर्यादामें वे दुनियाके किसी देशके पत्रोंसे कम नही है।

हमारे पत्र गरीब हैं, अधिकतर अर्थके अभावसे सिसक-सिसककर जीवित रहते हैं, सरकारी कोप तथा कानूनके प्रचण्ड प्रहारका भय सदा हत्यारेके खड्गकी भाँति उनकी गरदनपर झूला करता है। देशी भाषाके पत्रोंकी स्थिति देखकर तो हृदय रो उठता है। उनकी उपेक्षा सब करते हैं। सरकार तो उन्हें कुचलनेके फिराकमें रहा ही करती है पर उसके सिवा देशका शिक्षितवर्ग भी जिसे अंग्रेजीसे प्रेम है, उसकी उपेक्षा करता है। खेद तो तब होता है जब राष्ट्रवादी नेतातक उसकी उपेक्षा करते हैं। यदि उन्हें वक्तव्य प्रकाशित कराना है तो अंग्रेजी पत्रोंके संवाददाताओंकी खोज की जायगी। व्यवस्थापक सभाओंमें जहाँ कांग्रेस दलका बहुमत रहा है वहाँ भी हिन्दी पत्रके संवाददाताओंकी उपेक्षा होती रही है। न उन्हें वह सम्मान प्रदान किया जाता था जो अंग्रेजीके सवाददाताओंको प्राप्त था और न उनके साथ सहयोग करनेकी आवश्यकता ही समझी जाती थी। हमें अनुभव है कि हिन्दी पत्रके संवाददाता यदि कभी साहस करके मन्त्रियोंके विशाल भवनोंतक पहुँचते थे और उनसे प्रश्नोत्तर करना चाहते थे तो यह सूखा उत्तर दे दिया जाता था कि आज समय नहीं है, पर उसी समय 'स्टेट्समैन' ऐसे पत्रके संवाददाताको मन्त्री महोदय कमरेसे निकलकर बरामदेतक पहुँचानेके लिए आते देखे जाते थे।

पर सारी उपेक्षा, अनादर और निर्धनता तथा कठिनाइयोंके विरुद्ध युद्ध करते हुए भी अपने पथपर चलते रहनेवाले पत्र सम्भवतः इसी देशमें मिलेंगे। उनकी बहुतसी कठिनाइयाँ सहज ही दूर हो जा सकती हैं यदि वे थोडासा पथभ्रष्ट होकर अपने आदर्शकी उपेक्षा करदें। ऐसे धनिकोंकी कमी नहीं है जो अपना प्रचार करानेके लिए, अपना स्वार्थ-साधन करनेके लिए पत्रोंको आर्थिक सहायता देनेके लिए तैयार रहते हैं। ऐसे व्यापारियोंकी कमी भी नहीं है जिनके मालको बाजारमें निकालनेके लिए पत्र यदि उनकी अनावश्यक चर्चा अपने स्तम्भोंमें करना आरम्भ करदें तो वे उनकी आर्थिक कठिनाईको दूर करनेके लिए तैयार हैं। सरकारी नोटिसों, विज्ञापनों और अदालतके सम्मनोंसे पत्रोंको खासी आमदनी होती है पर इनसे लाभ वही उठा सकता है जो सरकारका कृपापात्र हो। राष्ट्रीय पत्रोंकी तो तालिका सरकारने बना दी है जिसकी सूचना तमाम अदालतोंको दे दी गयी है। यह तालिका 'ब्लैकलिस्ट'

(काली सूची) के नामसे कुविख्यात है। 'काली सूची'में उल्लिखित पत्रोंको अदालती या सरकारी सम्मन और नोटिसें तथा विज्ञापन प्रकाशनके लिए देना मना था। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंने इस काली सूचीको समाप्त किया था पर अब वह पुनः चालू होगयी है। हाँ, जो पत्र चाटुकारिताकी नीतिमें विश्वास करते हैं, जो राष्ट्रीय आकांक्षाका प्रतिनिधित्व करना अस्वीकार करते तथा जो महाप्रभु सरकारी अफसरोंके सङ्केतके अनुसार नाचना पसन्द करते हैं वे उससे लाभ उठाते हैं। स्पष्ट है कि अपने पथसे विचलित होकर हमारे पत्र अपनी कठिनाइयोंको दूर कर सकते थे पर भारतके पत्रकार साभिमान कह सकते हैं कि कुछ अपवादोंको छोड़कर अधिकतर प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली पत्रोंने, चाहे वे अंग्रेजी भाषाके हो या देशी भाषाओंके, अपने आदर्शकी रक्षा करना ही उचित समझा है, फिर भले ही इसमें उन्हें मिट जानेके खतरेका ही सामना क्यों न करना पड़ता रहा हो।

ब्रिटिश और अमेरिकन पत्रोंमें विज्ञापनदाताओंके प्रभावकी वृद्धि और विज्ञापनोंके प्रदर्शनपर वहाँके विचारशील पत्रकार आशङ्कित होरहे है ; कुछ विज्ञापनोंकी अश्लीलता और भ्रष्टतासे पत्रोंको आदर्शभ्रष्ट होते देख रहे हैं। हेमिल्टन फाइफ कहते है कि 'ब्रिटिश पत्रोंमे प्रतियोगिताके कारण एक दूसरेकी हर बातमें नकल करनेकी ऐसी प्रवृत्ति पैदा होगयी है कि इसमें न उन्हे लज्जा मालूम होती है और न अपने आत्मसम्मानका हनन होता दिखाई देता है। जहाँ ब्रिटेनके लखपती समाचारपत्रोंकी यह स्थिति है वहाँ भारतके पत्र अपनी मर्यादाकी रक्षाके लिए आगत धनको ठुकरानेमें भी सङ्कोच नहीं करते। अभी हालमें उन्होंने अपनी आदर्शवादिताका परिचय दिया है। सन् १९४२ की जुलाईमें बम्बईमें हुए सम्पादक-सम्मेलनने यह निश्चय किया है कि पत्रोंके गौरवकी रक्षाके लिए और सार्वजनिक जीवनकी नैतिकताको ध्यानमें रखकर भ्रष्ट और गन्दे विज्ञापन छापना बन्द कर दिया जाय और विज्ञापनोंमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धी अश्लील चित्र आदि प्रकाशित न किये जायँ। विज्ञापनोंकी भाषा भी बदलकर शिष्ट तथा अनुत्तेजक बना दी जाया करे। जहाँ ब्रिटिश और अमेरिकन पत्र विज्ञापनोंसे होनेवाली आयके लिए अपनेको उनके हाथ बेचते जारहे हैं वहाँ अपेक्षाकृत भारतके गरीब पत्रोंकी यह तेजस्विता और आदर्श-

प्रियता उनके लिए प्रकाशका काम करेगी। भारतीय पत्र आज भी विज्ञापन-दाताओंको उसी स्थानमें रखना चाहते हैं जहाँ रखना उचित है और उनके अहितकर प्रभाव तथा शक्तिकी सत्ता जमने देनेके लिए तैयार नहीं हैं। तात्पर्य यह कि जहाँतक पत्रोंके महान कर्तव्य और उज्ज्वल आदर्श तथा उत्कृष्ट गौरव और मर्यादाका प्रश्न है हम कह सकते हैं कि भारतीय पत्र किसी देशके पत्रोंसे कम नहीं हैं।

पर जहाँ हमारी यह विशेषता है वहाँ हममें भारी त्रुटियाँ भी हैं जिनकी उपेक्षा करना प्रमाद और मोहग्रस्तताका परिचय देना होगा। आत्मविश्लेषणसे बढकर उन्नति और विकासका दूसरा उपाय नहीं है। अहङ्कारमें पडकर अपने विकृतांशकी उपेक्षा करना पतनका कारण होता है। फलतः भारतके पत्रकारोंको, जिनपर पत्र-सञ्चालनका उत्तरदायित्व मुख्यरूपसे पडता है, इस ओर तीव्र दृष्टि डालनी होगी। यह अनिवार्य रूपसे आवश्यक है। जैसा कि पूर्वके पृष्ठोंमें लिखा गया है, पत्रकार केवल आदर्शवादी और काल्पनिक ही नहीं है प्रत्युत उसे व्यावहारिक और व्यावसायिक भी बनना पडता है। उसका काम ही ऐसा है, जीवन ही इस प्रकारका है कि उसमें दोनों अंश हैं और दोनोंके उचित सामञ्जस्य तथा समन्वयमें ही उसकी और उसके पत्रकी सफलता है। हमारी और हमारे पत्रोंकी त्रुटि यह है कि हम दूसरे अंशकी गहरी उपेक्षा करते हैं। अपने पत्रको कैसे आकर्षक बनावें, कैसे उसे अधिकसे अधिक पाठकोंको आकृष्ट करनेकी योग्यता प्रदान करें और कैसे पत्रमें उन सब गुणोंका समावेश करें जो उसे सर्वाङ्गीणता प्रदान करते हैं, इन बातोंकी ओर हमारे पत्रकार अधिक ध्यान ही नही देते और न उनपर विचार करनेकी उनकी वृत्ति ही दिखाई देती है। समाचारपत्रोंका मुख्य काम क्या है और किस उपयोगके लिए पाठक उन्हे खरीदता है ?—प्रत्येक पत्रकारको इस प्रश्नका उत्तर स्वयं देना चाहिये क्योंकि उसीपर उसकी कला और उसका पेशा निर्भर करता है। मोटे तौरसे कहा जा सकता है कि जनता पत्रोंसे समाचारकी आकाङ्क्षा करती है, पर समाचारकी परिभाषा क्या है इसपर किसी पहले अध्यायमे विचार कर चुके हैं। यह कह देना तो सरल है कि जनता समाचार चाहती है पर यह बताना कठिन है कि समाचार कहते किसे हैं। फिर भी समाचारपत्र निकलते हैं और

स्पष्ट है कि उन्हीं समाचारपत्रोंको जनता पसन्द करेगी जो इस प्रकार सर्वाङ्गीण हों। फिर पत्रोंके पाठक अधिकतर साधारण श्रेणीके होते हैं। उनके लिए यह सम्भव नहीं है कि नीरस तथा दार्शनिक ढङ्गसे लिखे गये विवरणोंको पढ़ें अथवा समझ सकें। चलती, सजीव और रोचक भाषा तथा ढङ्गमें समाचारोंका प्रकाशन हो। कार्यमें व्यस्त और रोटी कमानेके लिए अपने कारखानेकी ओर दौड़े जाते हुए अथवा दूकानोंपर बैठकर ग्राहकोंसे बातें करते हुए दूकानदारके पास इतना समय नहीं है कि किसी विषयके लम्बे-लम्बे विवरण पढ़े। फलत सक्षेपमें पर प्रभावकर ढङ्गसे समाचारोंका विवरण होना चाहिये। उसमें इतनी भी बुद्धि या धैर्य नहीं हो सकता कि वह कोने-कोनेको ढूँढे और तब अपनी रुचिके अनुकूल समाचार निकालकर पढ़े। अतएव आकर्षक ढङ्गसे शीर्षकोंको लगाना चाहिये और समाचारोंकी छँटाई कर उनके महत्त्व तथा उनकी गुरुताके हिसाबसे उन्हें क्रमपूर्वक इस प्रकार सजाना चाहिये कि दृष्टि डालते ही पाठक रुचिके अनुसार अपना संवाद न केवल पा जाय बल्कि अर्थगर्भ शीर्षकोंसे उसका आशय भी समझ जाय। यदि शीर्षक स्तम्भोंके वर्णनको और आगे भी पढ़नेकी उत्सुकता उत्पन्न करनेमें सफल हो तो समझ लीजिये कि शीर्षक लगानेवालेकी कला सफल और सार्थक हुई।

अब समाचारोंकी ताजगी भी अपना महत्त्व रखती है। हफ्ते भर पुराने समाचार पढ़नेके लिए पाठक आपका पत्र नहीं खरीदता। उसे तो आजकी और अभीकी घटनाएँ चाहिये, फिर वे चाहे उसके गाँवमें घटी हों या सात समुद्र पार न्यूयार्क या पेरिसमें। बड़ी-बड़ी घटनाओ तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंपर, विशेषकर जो जटिल और उलझी हुई समस्याएँ हैं उनपर पाठक अपने पत्रका मत भी जानना चाहता है क्योंकि उसीके आधारपर बहुत कुछ उसका मत और आचरण अवलम्बित रहता है। पर पत्रोंकी राय और व्याख्या उसे उसी प्रकार शीघ्र और सामयिक चाहिये जिस प्रकार वह संवाद चाहता है। किसी प्रश्नकी विवेचना करनेके लिए सम्पादक एक सप्ताह बाद लेखनी उठाता है अथवा जिस समय कोई विशेष धारा राष्ट्रीय जीवनमें बह रही उससे अलग होकर वह कोई बेसुरा राग अलापता रहे तो पाठक ऐसे पत्रसे झुँझला उठेगा। देशमें हो रही हो राजनीतिक उलट-पलट और आप

विधवा-विवाहकी उपयुक्तता और समर्थनमें अग्रलेख लिखते रहें तो कुछ समय बाद आपके पत्रको कोई कौड़ीके मोल भी न पूछेगा।

पत्रकार एक बात और स्मरण रखे। पत्रोंके जीवनके लिए सञ्जीवनी बूटी है उसका आकर्षक और रोचक होना। जो पत्र शुष्क, नीरस तथा भोंड़े स्वरूप-का परिचय देंगे उनके लिए अधिक दिनोंतक स्थान नहीं रह सकता। आक-र्षण पत्रको सजाकर प्रदान किया जा सकता है। यदि आप तुर्कीके भूकम्पका समाचार छाप रहे हों और भूकम्पग्रस्त स्थानका नकशा दे दें, अथवा उडन-किलों द्वारा किसी नगरपर हुई बमवर्षाका समाचार छापते हुए किसी उडन-किलेका चित्र छाप दें तो पत्रकी रोचकता बढ़ जायगी। तात्पर्य यह कि पत्रकी सफलता बहुत कुछ उसकी रोचकता और आकर्षक रूपपर निर्भर रहती है। इसके लिए एक और बात जरूरी है। पत्रमें कुछ न कुछ नवीनता और मौलि-कता चाहिये। आपके संवादोंमें और आपके प्रदर्शित मत तथा विचारोंमें समान रूपसे कुछ न कुछ मौलिकता होनी चाहिये। समाचार देनेवाली ऐजें-सियोंका संवाद सभी पत्र छाप देते हैं। फिर आपका ही पत्र कोई क्यों खरीदे? इसका उत्तर देना होगा अन्य पत्रोंसे कुछ विशेषता और नवीनता प्रदर्शित करके। अपने संवाददाताओंकी सूझ, बुद्धि और साहस तथा कल्पनाको उत्ते-जित करना होगा और उनपर नवीनताके लिए निर्भर रहना होगा। नयी बातको लेकर जो पत्र सबसे पहले अपने बाजारमें उतरनेका श्रेय प्राप्त करेगा उसकी धूम मचना अनिवार्य है। यूरोपमें तो यह प्रवृत्ति इतनी अतिमात्राको पहुँच गयी है कि कुछ लोग उसे रोग समझने लगे हैं। नवीन होनेकी प्रति-स्पर्धामें पत्र कल्पित बातोंको भी उत्तेजनापूर्ण ढङ्गसे इस प्रकार प्रकाशित कर देते हैं कि पाठक उन्हें सत्य मान बैठता है। इसे पत्रकारोंकी भाषामें 'स्टण्ट' कहते हैं।

'स्टण्ट और सनसनीबाजी' (निराधार बातोंको सनसनीदार ढङ्गसे छापने) को हम पत्रकारोंके लिए हानिकर तथा पत्रोंके उत्तरदायित्वपूर्ण पदके लिए विघातक समझते हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उससे सचेत और सावधान होनेकी प्रवृत्तिको भी अतितक पहुँचा दिया जाय। यह सत-र्कता जब अतिको पहुँच जाती है तो कल्पित गम्भीरताके नामपर सत्य और

साधारण किन्तु सनसनीदार बातों और घटनाओंका प्रकाशन भी ऐसे शुष्क और नीरस तथा अनाकर्षक ढङ्गसे किया जाने लगता है कि उसका सारा महत्त्व नष्ट हो जाता है। किसी पत्रकी सफलताके लिए इन तमाम बातोंकी जिनका उल्लेख किया गया है, आवश्यकता होती है। विचारपूर्वक देखें तो हम यह पावेंगे कि भारतीय पत्रोंमें शायद एक भी ऐसा न निकलेगा जिसमें इन बातोंपर समुचित ध्यान दिया जाता हो। इस त्रुटिका उत्तरदायित्व है उन पत्रकारोंपर जो न कभी इन प्रश्नोंपर विचार करते हैं और न इधर ध्यान देनेकी अधिक आवश्यकता समझते हैं। आवश्यक होता है कि पत्रकार निरन्तर और प्रतिक्षण सतर्क रहे और 'अति' से बचे। वह इतना सचेत और सतर्क रहे कि पत्रकी सफलताके लिए जो बातें आवश्यक हैं उनकी उपेक्षा उसके आदर्शवादके कारण न हो सके और न आदर्शकी उपेक्षा लौकिकता तथा व्यावहारिकताके कारण होने पावे। दोनोंका परस्पर उचित सम्बन्ध स्थापित करना और पत्रके जीवनमें उनका समावेश करके दोनोंको यथास्थान स्थित करना ही पत्रकारकी कुशलता और सफलताका द्योतक होता है।

आज हमारे देशके पत्रोंमे सम्पादन-कलाका गहरा अभाव है। उनमें न पत्र-को रोचक बनानेकी चेष्टा दिखाई देती है न मौलिकताका दर्शन होता है और न अपने पत्रको दुनियाके उन्नत पत्रोंकी श्रेणीमें ले जानेका प्रयत्न दिखाई देता है। समाचार-चेतनातत्त्वका अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है और पुरानी अङ्कित रेखापर आँख मूँदे चले चलनेमें ही वे अपनी सार्थकता समझते हैं। हमारे पत्रकार आदर्शवादी होते हुए भी अपने पत्रोंको सफल नहीं बना सकते इसका मुख्य कारण यही है कि वे भूल जाते हैं कि उन्हें अपने पत्रको पाठकोंके लिए तैयार करना है जो वास्तवमें उसके ग्राहक हैं। इसी कारण साधारण मानवके मस्तिष्क और उसकी प्रवृत्तिकी जानकारी पत्रकारके लिए अत्यन्त आवश्यक है। पत्रकारसे अधिक मानव मस्तिष्क और मनके साथ किसे सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है? एक दो नहीं बल्कि हजारों और लाखों व्यक्तियोंके साथ एक-बारगी उसे पेश आना है। इस भारी भीड़को उसे अपने साथ ले चलना है। यह तभी हो सकता है जब उसकी रुचि, प्रवृत्ति, आवश्यकता और मानसिक तरङ्गको हम समझ सकें।

क्षण-क्षण मनुष्यकी प्रवृत्ति और रुचिमें परिस्थितियोंके प्रवाहके कारण परिवर्तन हुआ करता है। पत्रकारको जन-जीवनमें होनेवाले इस अमूर्त और अदृश्य परिवर्तनकी प्रक्रियापर भी नजर रखनी चाहिये। पाठकोंकी वृत्ति बदल गयी और आप पुरानी लकीर पीटते जा रहे हैं तो आपको पूछेगा कौन? कहा जाता है कि ब्रिटिश पत्रोंमें चित्रोंके प्रकाशनका प्रारम्भ मनोरञ्जक कारणसे आरम्भ हुआ। स्त्रियोंमें यह प्रवृत्ति दिखाई दी कि वे पत्रोंके उन संस्करणोंको बड़े चावसे खरीदती थीं जिनमें कभी-कभी चित्र आदि छप जाया करते थे। फिर यह भी अनुभव किया गया कि वे उन चित्रोंको काटकर बड़े यत्नसे रखती थीं। समझदार पत्रकारोंने भाँप लिया कि स्त्रियोंमें पत्रके ग्राहकोंकी नयी सेना मिल सकती है यदि उसमें चित्र प्रकाशित किये जायँ। फलतः चित्र छापे जाने लगे और महिला ग्राहकोंकी संख्या सचमुच बढ़ने लगी। इस एक सूझने पत्रोंके ग्राहकोंकी संख्या लाखोंमें बढ़ा दी। पर पत्रोंको इतना ही लाभ नहीं हुआ। विज्ञापनदाताओंने देखा कि पाउडर और स्नो, अधर और नाखून रँगनेके रंग तथा घरके सामान और बच्चोंके लिए पुष्टिकर भोज्य पदार्थोंकी खरीद स्त्रियाँ ही कर सकती हैं अतः जिन पत्रोंमें चित्र छपते हों और महिला-पाठिका-ओंकी अधिक संख्या जिन्हें उपलब्ध हों उन्हे विज्ञापन दिया जाय। इस प्रकार एक छोटेसे आयोजनने दुहरी आय प्रदान कर दी।

भारतके पत्रो और पत्रकारोंमें वह चपलता, सतर्कता और सूझ नहीं दिखाई देती जो इस दिशामें सफलता प्रदान करनेकी आवश्यक शर्त है। पत्रोंके स्वरूपको देखिये। एकके बाद दूसरे पत्रोंपर दृष्टिपात कीजिये। सबके सब एक ही ढङ्ग, एक ही रूप-रङ्ग तथा कुछ मिलते-जुलते आकार-प्रकार लिये दिखाई देंगे। अरोचक शीर्षकोंसे मढे हुए, बहुधा पुराने समाचार लेकर ऐसी मनहूस शकल बनाये हमारे पत्र सामने आते हैं जैसे कोई उजड़ा हुआ उद्यान हो। आजसे चौथाई शताब्दी पूर्व जो ढङ्ग उन्होंने पकड़ा उसीपर डटे हुए हैं। हिन्दी पत्रोंकी स्थिति तो और भी दयनीय है। अधिकतर पत्र समाचार पुर्जे सिर्योंसे संवाद ले नहीं पाते फलतः अंग्रेजी पत्रोंकी पुरानी और सड़ी हुई खबरोंका अनुवाद छाप देते हैं। अनुवाद भी कभी-कभी ऐसा होता है कि लज्जासे मस्तक झुक जाता है। 'आल इण्डिया लान टेनिस टूर्नामेंट' का अनुवाद एक

पत्रने क्या किया यह देखिये। उसने मोटे शीर्षकमें छापा 'अखिल भारतीय घासिया गेंदबल्ला मुठभेड'। यह है हमारी पत्रकारीका एक नमूना। जो एजेंसियोंके सवाद लेते भी हैं वे केवल उन्हींपर निर्भर रहते हैं। फलत· समाचारोंमें न कोई मौलिकता होती है और न नवीनता। दफ्तरोंमें काम करनेवाला पत्रकार वास्तवमें पत्रकार नहीं क्लर्क मालूम होता है। मक्षिका-स्थाने मक्षिका स्थापित कर देना और ६ घण्टे पीसकर किसी प्रकार घर भागना ही उसका लक्ष्य होता है। जीवन और जगत्‌की धारासे वह इतना अपरिचित होता है कि बहुधा देखकर आश्चर्य होता है। एक बार एक हिन्दी पत्रके किसी सहायक सम्पादकने 'टैङ्क वारफेयर' का अनुवाद 'तालाब युद्ध' कर दिया। बिचारेको पत्रकी दुनियाका भी थोडा-सा ज्ञान होता तो ऐसी भूल न करता।'सी वारफेयर' (समुद्री युद्ध) की तुकमें उसकी समझमें 'टैङ्क वारफेयर' का यही अर्थ आया।

समाचारके सम्बन्धमें तो हमारे पत्रोंके अधिकतर सम्पादकोंको जैसे कुछ मालूम ही नहीं होता। पत्रकारमें तो प्रकृत्या एक प्रकारकी समाचार-चेतना होनी चाहिये। किसी घटनाको देखते ही या सुनते ही उसके अन्त करणमें समाचारत्वका आलोक विद्युत्-वल्बकी भाँति जल उठना चाहिये और हृद्-मन्दिरमें अद्भुत स्पन्दन और गुदगुदी पैदा हो जानी चाहिये। पत्रकारको समझ लेना चाहिये कि किसी घटनाका प्राण क्या है और किस प्रकार उसे चित्रित करना अच्छा होगा। अपने अनुभवसे हम कह सकते हैं कि इसका बेतरह अभाव अपने पत्रकारोंमें हम पाते हैं। लन्दन टाइम्स'के प्रसिद्ध सम्पादक श्री डेलानके सम्बन्धमें एक प्रसिद्ध कहानी है। एक दिन सायङ्काल डेलान अपने क्लबमें बैठे हुए थे। वहाँ एक डाक्टर भी आये। दैवात् दोनोंमें इधर-उधरकी बातचीत होने लगी। बातचीतके इसी सिलसिलेमें डाक्टरके मुखसे यह बात निकल गयी कि 'मैं अभी लार्ड नार्थब्रुकके यहाँसे आ रहा हूँ। उनके एक प्रश्नके उत्तरमें मैंने जवाब देते हुए उनसे कहा है कि गरम देशोंका जलवायु दुर्बल स्वास्थ्यवाली युवतियोंके लिए लाभकारी होता है।' बातचीत योंही समाप्त हो गयी। दूसरे दिन 'टाइम्स' मे यह समाचार प्रकाशित दिखाई दिया कि लार्ड नार्थब्रुक लार्ड मेयोके उत्तराधिकारी होकर भारतके वाइसराय-पदपर नियुक्त किये गये हैं।

समाचार क्या था कि सब स्तब्ध रह गये। स्वयं नार्थब्रुकने कहा कि 'टाइम्स'-ने यह समाचार कैसे पाया यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण बात है। सिवा ग्लैडस्टनके और मेरे अबतक किसीसे इस सम्बन्धमें कोई बात भी नहीं हुई। बिचारे लार्ड क्या जानते थे कि जहाँ यमराज भी नहीं पहुँचता वहाँ पत्रकारकी कल्पना और चेतना प्रवेश कर जाती है। बिचारा डाक्टर क्या जानता था कि उसकी सीधी बातसे पत्रकारकी सूझ एक कहानी गढ कर खड़ा कर दे सकती है। आज कहाँ है हमारे पत्रोंके पत्रकारोंमें यह चेतना? यह सच है कि ऐसी चेतना माताके दूधके साथ ही साथ कदाचित् प्राप्त होती है पर आज हम ऐसे लोगोंको पत्रकार होते पाते हैं जिन्हें निर्वाहके लिए जब कोई उपाय नहीं सुझाई देता तो किसी पत्रमें सहायक सम्पादक होकर तीस रुपये मासिकमें तारोंका अण्टसण्ट अनुवाद करके अपनेको पत्रकार समझने लगते हैं। यही कारण है कि पत्रोंका न कोई स्तर है और न उनमें वह बल तथा मोहकता दिखाई देती है जो होनी चाहिये। कहाँ है हमारे यहाँ वैसे पत्रकार जो खतरा उठाकर भी घटनाओंका प्रत्यक्ष दर्शन करनेके लिए तैयार रहते हैं? कितने पत्रकार हैं हमारे यहाँ जो युद्धस्थलमें बरसती हुई आगके अङ्गारोंके बीचसे समाचार झपट लाते हैं? कहाँ हैं वे पत्रकार जो जागते सवाद ढूँढते हैं और सोते उन्हींका स्वप्न देखते हैं? हमारे पत्र भले ही निकलनेका सन्तोष प्राप्त कर लें पर वे पत्रकार द्वारा निर्मित पत्रकलाकी सजीव प्रतिमा नहीं हैं और न पत्रके स्तरपर ही पहुँचे दिखाई देते हैं। अमेरिकाके उन वीर पत्रकारोंपर दृष्टिपात कीजिये जो अपने देशकी समाचार-एजेंसियोंके अथवा प्रमुख पत्रोंके संवाददाता बनकर विश्वके विभिन्न भागोंमें होनेवाले युद्धके मोरचोंपर डटे हुए हैं। युद्धकालमें इन पत्रकारोंका कार्य न केवल कठिन बल्कि खतरनाक भी हुआ करता है। ये अमेरिकन पत्रकार युद्ध सम्बन्धी समाचारोंका सङ्कलन करनेके लिए अमेरिकन सेनाके साथ-साथ रहते हैं तथा बहुधा सैनिकों और जल-सैनिकोंके साथ स्वयं अपने प्राण तक गँवा बैठते हैं। अपना काम करते हुए और सफलतापूर्वक उसे पूरा करनेके लिए वे विशालकाय बाम्बरोंमें शत्रुके सैनिक अड्डोंपर उड़ते हैं, महासमुद्रोंके वक्षःस्थलपर रण-पोतोंमें आसीन 'टारपीडो'की टक्कर खाकर जल-समाधि ग्रहण करते हैं अथवा मरुस्थलमें भयावने युद्धोंमें गोलियोंकी बौछारसे

शरीर छलनी कराकर अस्पतालोंमें पड़े दिखाई देते हैं। वे बहुधा शत्रुके हाथ पड़कर बन्दी हो जाते हैं और वर्षों कठिन कारावासका क्लेश सहन करते हैं। अमेरिकन सैनिक विभाग इन पत्रकारोंको यद्यपि सैनिक अफसरके पद और अधिकार प्रदान करता है पर वस्तुतः वे अपने पत्र अथवा अपनी समाचार-एजेंसीके ही कर्मचारी होते हैं और उसीकी आज्ञाके अनुसार काम करते हैं। युद्ध-विभाग भी उनकी इस स्थितिको स्वीकार करता है। अमेरिकामें ऐसे सवाददाता भी कम नहीं हैं जो युद्धस्थलमें अपने देशके सैनिकोंके कन्धेसे कन्धा भिडाकर युद्ध भी करते हैं और सवाद तथा युद्धका विवरण भी लिखते और भेजते हैं। कहाँ हैं आज हमारे यहाँ ऐसे पत्रकार जो जीवन और जगत्की इस उथल-पुथलके सजग दर्शक तथा सफल चित्रकार होनेका साहस करते हों?

पत्रोंके सञ्चालक भले ही कह दें कि इन सब कामोंके लिए रुपयेकी आवश्यकता है और रुपया है कहाँ? सच बात है कि रुपयेकी कमी बहुत बडी बाधा है पर रुचि और समझका भी अभाव स्पष्ट है। जहाँ रुपया है वहाँ भी तो यह दिखाई नहीं देता। इसके सिवा जितना भी रुपया है उसीमें बहुत कुछ किया जा सकता है। यह भी समझ रखनेकी बात है कि धनकी प्राप्ति भी तभी होगी जब पत्र अपनी विशेषताओं और गुणोंसे परिपूर्ण होगे। तभी उनकी खपत होगी और ग्राहकोंकी सख्या बढ़ेगी। धनके अभावसे यदि पत्र गुणहीन रहेंगे तो गुणाभावके कारण धनकी कमी भी बनी रहेगी। इस दुश्चक्रसे पत्रोंको निकलना ही होगा और इसका उपाय यही है कि सञ्चालक और पत्रकार जो भी साधन उपलब्ध हैं उन्हींको लेकर इस ओर भी कदम बढावें। यदि इच्छा होती है तो उपाय निकल ही आता है। अल्पारम्भ भी क्षेमकर होता है और फिर क्रमशः उधर गति हो जाती है। आज तो केवल धनका ही नहीं बल्कि इच्छाका भी अभाव दिखाई देता है। इच्छा हो तो पत्रोंके बहुतसे दोष और उनकी बहुत-सी त्रुटियाँ बिना अधिक आयासके थोडी सतर्कतासे ही दूर की जा सकती है। उदाहरणार्थ हम कुछ बातोंका उल्लेख कर सकते हैं।

(१) पत्रोंमें मुख्य बात समाचारकी होती है। बासी खबरोंके लिए स्थान न रहे और यथासम्भव ताजासे ताजा खबर रोचक ढङ्गसे प्रकाशित की जाय। हमारे पत्र, विशेषरूपसे देशी भाषाके पत्र इस सम्बन्धमे अधिक सतर्क नहीं रहते।

(२) केवल समाचार-एजेन्सियोंपर निर्भर न रहा जाय। उनसे मिले संवाद सर्वत्र समानरूपसे छपते है। अपने पत्रमे कुछ विशेषता होनी चाहिये। संवादोंमे नवीनता हो, इसके लिए अच्छे संवाददाताओंकी नियुक्ति हो और उनके समाचारोंका प्रदर्शन किया जाय। ध्यान रहे कि उनका संवाद भी यथासम्भव ताजा हो। २४ घण्टेसे अधिक पुराने समाचारके लिए दैनिक पत्रमें साधारणतः स्थान न होना चाहिये।

(३) पत्रकारमें, चाहे सम्पादक हो अथवा संवाददाता, समाचार-चेतना होनी चाहिये। यद्यपि यह प्रतिभा बहुत सीमातक नैसर्गिक होती है तथापि जो पत्रकारीके पेशेमें है उनमें यदि यह गुण न हो तो अभ्यासके द्वारा उसे जाग्रत करे; न कर सकें तो कृपाकर जीवनोपायका दूसरा मार्ग खोजे। एक पत्रके संवाददाताने अपने नगरमें भयानक आग लगनेका समाचार सुना, स्वयं जाकर घटना देखी पर उसने उसका विवरण लिखकर न दिया। सम्पादकने जब दूसरे दिन पत्रमें समाचार न देखा तो संवाददातासे पूछा। उसने उत्तरमे कहा कि 'संवाद देना व्यर्थ समझा क्योंकि उस दृश्यको देखनेके लिए तो सारा नगर वहाँ उपस्थित ही था।' जिनकी ऐसी बुद्धि हो उनसे पत्रोंका पीछा जितनी जल्दी छुडाया जाय उतना ही अच्छा है।

(४) संवाददाताओंकी नियुक्तिको हमारे पत्र व्यर्थ समझते है। हिन्दीके पत्र तो उसे बिलकुल बेकार और निरर्थक अपव्ययके सिवा कुछ मानते ही नहीं। जिन्हे संवाददाता बनाते भी है उनके साथ ऐसा व्यवहार करते है मानो बडा एहसान कर रहे हों। फलतः वे पत्र निष्प्राण दिखाई देते हैं। उचित और योग्य संवाददाताओंकी नियुक्ति की जाय। देशमें कुछ स्थान संवादके केन्द्र होते हैं, वहाँ तो विशेषरूपसे उनकी नियुक्ति नितान्त आवश्यक है ही।

(५) समाचारोंका चुनाव करना विशेष योग्यताकी अपेक्षा करता है। संवादोंकी तो भीड रहती है और स्तम्भोंका स्थान होता है निर्धारित तथा परिसीमित। अब कौनसे संवाद देने चाहिये और किन्हे रद्द कर देना चाहिये, इस कार्यमे विशेष कुशलता, कल्पना तथा अपनी समाचार-बुद्धिका प्रयोग करना चाहिये। एक ही विषयके ढेरके ढेर संवाद छापना दूसरे विषयों

तथा जीवनके अन्य क्षेत्रोंकी उपेक्षा करना भारतीय पत्रोंकी खास कमजोरी है। स्मरण रखना चाहिये कि पत्रके पाठकोंमें हर तरहके लोग होते हैं फलतः पत्रकी विशेषता यह होनी चाहिये कि सभी प्रकारके लोगोंकी आवश्यकता और रुचिकी पूर्ति कर सके।

(६) पत्रोंका 'मेक-अप' भी एक कला है। इसकी ओर भी हम बहुत कम ध्यान देते हैं। मेक-अपमें कई बातोंका विचार जरूरी है। पत्र देखनेमें सुन्दर लगे, समाचारोंका वितरण इस ढङ्गसे हो कि पाठकको अपनी पसन्दकी खबरों-को खोजनेमें कठिनाई न हो और दृष्टि पडते ही वह समझ जाय कि आजका सबसे महत्त्वपूर्ण समाचार क्या है। यथासम्भव प्रमुख पृष्ठपर सब प्रमुख समाचारोंका सङ्केत हो जाय तो अच्छा है। मेक-अपमें गजबकी भूलें भी हो जाती हैं। हमें स्मरण है कि एक हिन्दी पत्रमें युक्तप्रान्तके एक कांग्रेसी नेताका चित्र छाप दिया गया और उसके नीचे लिख दिया गया कि 'मिस्रके प्रधान मन्त्री नहस पाशा'। अकसर एक मैटरका शीर्षक दूसरे सवादके सिरपर बैठ जाता है। हिन्दी पत्रोंमे तो बहुधा यह घटना घटा करती है। शीर्षक था एक समाचारमें 'शुभ विवाह' और समाचार था 'कल सायंकाल अपने निवास-स्थान-पर अमुककी मृत्यु हो गयी', और मृत्युवाला शीर्षक 'विवाह' के संवादके मस्तकपर जा चिपका। थोडी सावधानीसे ऐसी भूलोंका सर्वथा परिहार नहीं तो बहुत कुछ रोक-थाम तो की ही जा सकती है।

(७) साधारण रूपसे पत्रको रोचक बनाया जाय। चित्र, नकशे, शीर्षक, व्यङ्ग-चित्र, सजीव और ताजा घटनाएँ, सुन्दर मेक-अप, घटनाओंके विवरणकी आकर्षक और सरस भाषा, विविध विषयोंके समाचार, अदालतके मामले, पुलिसके मामले, विनोद, कभी-कभी विचित्र घटनाओं, संवादो तथा देश-विदेशके लोगोंके रहन-सहन सम्बन्धी बातोंका छोटी-छोटी टिप्पणियोंके रूपमें प्रकाशन, विशेष विषयोंपर सुन्दर संक्षिप्त तथा सरल ढङ्गसे लिखे गये लेख, कहानियाँ, कविता, पुस्तकों, चित्रपटों, सङ्गीत, नृत्य, नाटक, आदिकी आलोच-नाएँ, खेल-कूद सम्बन्धी रिपोर्टे, सम्पादकके नाम आयी हुई चिट्ठियाँ, बाजार-के भाव, व्यापार और व्यवसायकी विवेचना, वैज्ञानिक जगत्की बातें, महिला-संसार, शिशुपालन, स्वास्थ्य, व्यायाम, देशीराज्य, आदि अनेक बातोंसे

सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंके समावेशका सम्मिलित परिणाम ही पत्रकी रोचकताके रूपमें मूर्त्तिमान होता है। इसे ही पत्रकारी भाषामें 'फीचर्स' कहते हैं। हमारे पत्रोमें इनका दयनीय अभाव है जो उनकी उपयोगिताको कम कर रहा है।

(८) प्रूफके संशोधनकी कमीका हाल न पूछिये। ऐसी भद्दी और भ्रष्ट भूलें रह जाती हैं कि पत्रोंको देखते ही उत्क्लेद होने लगता है। हम जानते हैं कि इस कार्यको बडी उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जाता है और इसका समुचित प्रबन्ध भी नहीं किया जाता।

(९) सम्पादकीय लेखोंमें सामयिकता होनी चाहिये। जिन प्रश्नोंपर जनता आज ही मतकी अपेक्षा करती हो उसपर दस दिन बाद लेखनी उठाना किस कामका? विचार कीजिये कि हमारे पत्रोंमें यह दोष कितने व्यापक रूपसे फैला हुआ है।

(१०) पत्रकारोंमें सूझकी भी कमी दिखाई देती है। वे कभी आगे बढ़कर, हिम्मतके साथ, न वर्तमान घटनाओके आधारपर भविष्यकी गतिविधिकी कल्पना करते हैं और न आँखें खोलकर जगत्की विभिन्न धाराओके प्रवाहको देखना चाहते हैं। हमारी पत्रकारीकी कल्पना अबतक यही है कि जो संवाद तारसे आवे छाप दो और लेख, टिप्पणी किसी प्रकार लिखकर काम पूरा करो। पत्रकारके हृदयमें जो विकलता, जो बेचैनी और संवादको जहाँसे भी मिले वहाँसे निकालकर जल्दीसे जल्दी प्रकाशित करनेका जो उन्माद होना चाहिये वह हममे नहीं होता। पत्रकारोकी यह निष्प्राणता पत्रको भी निर्जीव बनाये रहती है।

(११) हममे योग्यताका अभाव है। न अध्ययन है, न उसका शौक है और न सामूहिक जीवनकी धाराकी अनुभूति है। पत्रकारकी आँखें यदि खुली न रहे, यदि उसके कान एक नहीं अनेक न हों, यदि अनेक विषयोंमें उसका चञ्चु-प्रवेश न रहे और यदि उसे जगत्मे होनेवाली विभिन्न क्षेत्रोंकी उथल-पुथल और सङ्घर्षका पता न रहे तो वह समस्त विश्वका शुद्ध चित्रण शब्दों और वाक्यो द्वारा अपने पत्रमें कैसे करेगा? पर्देके पीछेसे, राजनीतिज्ञके मस्तिष्कसे, मन्त्रिमण्डलोंकी फाइलसे, महात्माओंकी समाधिसे और आदर्शवादियोंकी

कल्पनासे बलात् अमूर्त और गुह्य समाचारोंको छीन लाना और उन्हें मूर्त रूप प्रदान करना होता है। यह तभी सम्भव है जब निरन्तर गतिशील जगत्के साथ आप भी चलते रहें और प्रतिक्षण होनेवाले परिवर्तनपर नजर रखते रहें। इसीमें पत्रकारकी योग्यता है, पर विचार कीजिये कि हममें उसका कितना अभाव है!

(१२) हमारे देशके पत्रोंमें कल्पनाका भी अभाव है। यदि उनमें कल्पना हो तो वे उपयुक्त अवसरपर आन्दोलनोंका सर्जन और नेतृत्व कर सकते हैं, सामाजिक जीवनकी अनेक बुराइयोंपर आघात करनेके लिए अग्रसर हो सकते हैं, साधारण लोगोंके और विशेषकर देशके निर्दलित और शोषित वर्गोंके जीवनके दिन प्रतिदिनके सद्रूपोंमें रस ले सकते हैं। पत्रकार अपनी कल्पना, पारदर्शिता और सूझके द्वारा ही जनवर्गकी मनःस्थिति, उसकी आवश्यकताओं और उसके जीवनकी धाराका आभास प्राप्त करता है। वह जान लेता है कि कब किस प्रश्नको लेकर एक तहलका मचा दिया जा सकता है। इसी प्रकार अपनी लेखनीके द्वारा जनसमाजके मानस-सरमें गहरा हिलोर उत्पन्न कर देनेमें समर्थ हो सकता है। कल्पनाशील और साहसी पत्रकार ही अपने पत्रको ऐसा सजीव बना सकता है कि उसकी धूम मच जाय।

हमने उन थोड़ी सी बातोंकी चर्चा सङ्केत रूपमें कर दी है जिनका समावेश करके भारतीय पत्रोंका धरातल ऊँचा उठाया जा सकता है, जो अधिक उपयोगी बनाये जा सकते हैं और जो इस देशके असंख्य दलित प्राणोंको नवज्योति और नवजीवन प्रदान कर सकते हैं। हम जानते हैं कि अभी बहुतसी त्रुटियोंकी ओर और भी ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है पर हम उस प्रयासमें संलग्न होना नहीं चाहते। हमारा विश्वास है कि सङ्केतमात्रसे हमारे पत्रकार और पत्र-सञ्चालक भलीभाँति समझ गये होंगे कि हमें किस दिशाकी ओर प्रयत्नशील होना चाहिये। इस अध्यायमें पत्रकार-जीवनकी उलझनोंकी चर्चा की गयी है और अपने देशके पत्रोंके गुण-दोषोंकी संक्षिप्त समीक्षा। इसके पूर्व कि इन पंक्तियोंको समाप्त किया जाय हम अपने पत्रकार बन्धुओंका ध्यान पुनः उनके महान् उत्तरदायित्व और विकट कर्तव्य-पथकी ओर आकृष्ट कर देना चाहते हैं। आज इस देशके पत्रोंके तथा पत्रकारोंके आदर्शकी रक्षा करते हुए उन्हें उनके स्तरको न केवल ऊँचा उठाना है बल्कि उन्हें सर्वाङ्गीण भी बनाना है।

इस कार्यको पूरा करनेका भारी बोझ सिवा पत्रकारोंके और कोई उठा नहीं सकता। उन्हें ही इस प्रयत्नमें अपना होम करना होगा। यह सच है कि उनके सामने समस्याओंकी ऐसी भीड उपस्थित है और उनके शिकञ्जोमें उनका जीवन इस प्रकार फँसा हुआ है कि उन्हे साँस भी लेनेका अवकाश नहीं मिलता। ये समस्याएँ उन्हे आदर्शकी पूजा करनेका अवसर भी प्रदान करना नहीं चाहतीं। पत्रकारोंके जीवनकी आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयाँ किस प्रकार उन्हें पङ्गु बना रही हैं इसपर हम आगे विचार करेंगे पर सम्प्रति यदि इसे छोड़ भी दें तो हम जानते है कि भारतकी स्थिति उन्हे आदर्शवादकी आराधनामे अग्रसर होने देना नही चाहती। फिर भी हम जानते है कि जो जीवन आदर्शसे अनुप्राणित नहीं है वह जीवन नही पत्थर है। आदर्श वस्तुतः उन प्राण-तत्त्वोंके समान है जो यद्यपि अमूर्त है, जिन्हे आप देख नही सकते, जिनका स्पर्श नही कर सकते फिर भी जिनके अभावमे निर्जीवताका अनुभव अवश्य करते है।

भारतीय पत्रकार और विशेषतः देशी भाषाके पत्रोंके पत्रकार आज शोषण और दासताकी घृणित प्रणालीके शिकार होकर जीवन-यापन कर रहे है। बहुधा पेटकी ज्वाला और जीवनको बनाये रखनेके लिए अनिवार्य साधनोंकी आवश्यकता उन्हे धनी और सम्पन्न वर्गके हाथकी कठपुतली बननेको बाध्य करती है। पत्रकार-जीवनमें प्रवेश करनेके पूर्व हमें स्वर्गीय श्री चिन्तामणिके पास जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनसे जब हमने यह निवेदन किया कि हमारी इच्छा पत्रकार होनेकी है तो वे इस प्रकार चौंक पडे मानो कोई नव-युवक आत्मघात करने जा रहा हो। हमारी बात पूरी भी न हो पायी थी कि वे बोल उठे 'तुम अपना सर्वनाश करोगे। तुम्हे मालूम नहीं है कि पत्रकारके जीवनकी स्थिति क्या है। थोडी आय, भयानक परिश्रम, कामका भारी बोझ, घृणित रूपसे अकिञ्चन पुरस्कार, सुख और उन्नतिका कोई मौका नही पर विनाशका सारा उपकरण प्रस्तुत ! पत्रकार होना सदाके लिए दरिद्रताका आलिङ्गन कर लेना है'। संक्षेपमें भारतीय पत्रकारोंके जीवनका यही सजीव चित्र है। हमें एक नही अनेक मोरचोंपर युद्ध ठानना है। हमें अपने जीवनकी ओर ध्यान देना है। यह देखना है कि पत्रकार उचित पुरस्कार पाता है और

उसका पुरस्कार उसे समयसे मिलता है। उसके लिए विश्रामकी व्यवस्था हो, अवकाशका प्रबन्ध हो, अपने पदपर स्थायित्व हो, वृद्धावस्थाके लिए प्राविडेण्ट फण्ड अथवा इसी प्रकारके समुचित प्रबन्ध हों।

पर उसका युद्ध यहीं समाप्त नहीं होता। उसे न केवल अपने अफसरोंको प्रसन्न करना पड़ता है बल्कि उनका भी ध्यान रखना होता है जिन्हें वह जानता भी नहीं है और ऐसे लोगोंकी प्रसन्नताके लिए भी चेष्टा करनी होती है जिनकी कोई हैसियत या वकत नहीं है। ऐसे लोग पत्र-सञ्चालन करनेवाली कम्पनीके हिस्सेदार होकर अथवा विज्ञापनदाता बनकर यह आशा करते हैं कि पत्रकार उनकी पूजा देवताकी भाँति करेगा और उनके सम्मुख नतमस्तक होगा। उससे आशा की जाती है कि वह उन लोगोंको तुष्ट करनेके लिए अपनी आत्माका हनन करेगा जिनका पत्रकारीसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। यह स्थिति है जिसमे आजके पत्रकारको शोषक पूँजीपतियोंके चङ्गुलमे पत्रकारीके उज्ज्वल आदर्श और पेशेकी रक्षा करनेके लिए गहरा सङ्ग्राम करना है और यह देखना है कि वह कुछ थोडेसे पैसोंका गुलाम होकर अपने पदकी मर्यादाका नाश न करने पावे। पत्रकारका आदर्शसे प्रभावित जीवन समाजके लिए ईप्सित वरदानके तुल्य है पर आदर्शहीन पत्रकार भयानक अभिशापसे कम नहीं है। फलतः हमारे लिए एकमात्र कर्तव्य हो जाता है कि हम अचल निष्ठा और दृढ़ सङ्कल्प तथा अटूट श्रद्धाके साथ पत्रकारके आदर्शकी रक्षा करें जिसके फलस्वरूप समाज और मानवताकी, न्याय और सत्यकी, स्वतन्त्रता और प्रगतिकी सेवा सम्भव हो सके।

स्मरण रखियेगा और वर्तमान तथा भावी पत्रकार अच्छी तरह समझ लें कि आजके भारतमे भारतीय पत्रकारके लिए उसका पेशा केवल पेशा ही नहीं है बल्कि एक उज्ज्वल ध्येयके लिए उत्सर्ग और साधनाका कठोर किन्तु पवित्र पथ भी है। पत्रकारीको जो अपनाना चाहते है उन्हे आज इसी दृष्टिसे अपनाना होगा। भारतीय पत्रकारका पथ पैसा कमानेका मार्ग नहीं अपितु उस वीर और तेजस्वी योद्धाका सङ्घर्ष-स्थल है जो किसी महान् लक्ष्यकी सेवामे अपने सर्वस्वकी बाजी लगानेके लिए आगे बढ़ता है। उसे विशाल भारतीय राष्ट्रकी वर्तमान पतितावस्थाकी जड़ खोदनेके लिए उस महती क्रान्तिका अग्रदूत भी

बनना है जो राष्ट्रीय जीवनके प्रत्येक अङ्गमें नवबल, नवजीवन तथा नये ओजका सञ्चार करेगी। अपने आदर्शोंके लिए आधुनिक पत्रकारको जीना है और उन्हींके लिए मरना है। उसका यही बलिदान उसकी भावी सन्तति और उत्तराधिकारियोंके लिए प्रकाण्ड प्रकाश पुञ्जके रूपमें मूर्त्तिमान् होगा जो न केवल उनका पथ-प्रदर्शन करेगा बल्कि उन्हे स्फूर्ति भी प्रदान करेगा।

पत्रकार कैसे बने--कुछ आवश्यक परामर्श

भारतमें समाचारपत्रोंके विकासके लिए विस्तृत और उर्वर क्षेत्र मौजूद है। चालीस करोड नरनारियोंसे आकीर्ण इस विशाल भूप्रदेशमें विदेशी सत्ताने निरक्षरता और अज्ञानका विस्तार कर रखा है, पर स्पष्ट है कि यह स्थिति अधिक दिनोंतक चलनेवाली नहीं है। हमारा देश उस स्थानपर पहुँच चुका है जहाँ उसे अब और अधिक समयतक पराधीनताकी कड़ियोंमें जकडे रखना किसीके लिए भी सम्भव न होगा। फलतः भारतकी जनता अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने जा रही है। एक बार जहाँ हम स्वतन्त्र हुए कि स्वाधीन भारतीय राष्ट्रकी जन-तन्त्रात्मक सरकारका पहला कर्तव्य देशकी जनताको साक्षर बनाना होगा। स्मरण कीजिये कि दो-ढाई सालके लिए ही देशके अनेक प्रान्तोंमें कांग्रेसी सरकारें कायम हुई थीं। उनके हाथ-पैर निर्मुक्त न थे और न देशको स्वतन्त्रता ही मिली थी फिर भी परिमित अधिकार और साधनोंसे सम्पन्न जन-सरकारोंने साक्षरताका प्रसार करनेके लिए यथासम्भव वह प्रयास किया जो गत डेढ शताब्दीके इतिहासमें कभी नहीं हुआ था। शिक्षा और साक्षरतापर ही भारतकी उन्नति निर्भर होगी। निश्चित है कि पढे लिखे नर-नारियोंकी संख्या बढते ही समाचारपत्रोंके लिए व्यापक क्षेत्रका मार्ग खुल जायगा। पूर्वके पृष्ठोंमें कहा जा चुका है कि 'एजुकेशन ऐक्ट' के बनते ही इंग्लैण्डमें समाचारपत्रोंका कायापलट हो गया और उस देशमें जिसकी जनसंख्या भारतकी आबादीके अष्टमांशसे अधिक नहीं है पत्रोंके खरीदार डेढ करोडसे कम नहीं है और पाठक तो उससे कहीं ज्यादा होंगे। यह समझा जाता है कि ब्रिटेनके प्रौढ़ वयके लोगोंमें सत्तर प्रतिशत व्यक्ति समाचारपत्रोंके पाठक अवश्य हैं।

फिर वह देश जिसकी जनसंख्या चालीस करोड हो जब साक्षर हो जायगा तो पत्रों, ग्राहकों और पाठकोंकी कितनी बड़ी सेना उपस्थित होगी इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। फलतः हमारे राष्ट्रीय जीवनमें पत्रोंके लिए

अधिकाधिक स्थान होता जायगा। देशी भाषाके पत्रोंका भविष्य तो निस्सन्देह रूपसे उज्ज्वल है। भावी युग उनका है और वह मुहूर्त निकट है जब उनकी माँग अकल्पित रूपसे बढ जायगी। उस समय उनके प्रति वह उपेक्षा और तिरस्कारका भाव रखनेकी सामर्थ्य किसीमे न होगी जो आज अत्यधिक मात्रामें दिखाई देता है। उनकी आजकी दयनीय स्थिति, अर्थाभाव तथा तरह-तरहकी अन्य कठिनाइयाँ भी लुप्त होगी। हमारा दृढ मत है कि भारतीय नवयुवकोंके लिए निकट भविष्यमें पत्रकारीके रूपमें वह विस्तृत क्षेत्र उपस्थित होने जा रहा है जिसमें उनके लिए न केवल जीवनोपायके नवीन साधन प्रस्तुत होगे वरन् देश और राष्ट्रकी सेवा करनेका अभूतपूर्व अवसर भी उपलब्ध होगा। आज भी उन युवकोंके लिए जिनके हृदयमे आदर्श-पूजाकी भावना प्रतिष्ठित है, जो देश और समाजकी सेवा करनेके भावसे ओतप्रोत है पत्रकारी उत्कृष्ट और उत्तम मार्ग है जिसके द्वारा वे सन्तोष-लाभ कर सकते हैं। भारतीय राष्ट्र-शरीरको आबद्ध करनेवाली परतन्त्रताकी शृङ्खलासे मुक्त करनेकी भावनासे भावित युवक पत्रके द्वारा उस क्रान्तिधाराके प्रवाहका पथ प्रशस्त कर सकते है, जो निर्जीव रूढियों, जर्जर अवस्थाओं और दकियानूसी अन्धविश्वासोका उन्मूलन कर देशके सर्वतोमुख विकासकी क्रियाको गति प्रदान करेगी।

देशसेवाके इस उज्ज्वल पथका पथिक होनेकी इच्छा रखनेवाले योग्य नवयुवकोकी आवश्यकता भारतीय पत्रकारीको उसी प्रकार है जिस प्रकार युवक इस क्षेत्रमें प्रवेश करनेकी अकांक्षा रखता है। यद्यपि इस दिशामें आज क्षोभ और कष्ट, अर्थाभाव और त्याग, सततदारिद्र्य और अनवरत अध्यवसायके सिवा कुछ नहीं है फिर भी हमारा अनुभव बताता है कि युवक इधर आकृष्ट होते है। वे पत्रकारीका पेशा अपनाना चाहते हैं, सम्पादकों और व्यवस्थापकोके दरवाजे खटखटाते है और किसी प्रकार प्रवेश पानेकी चेष्टा करते हैं। यह सच है कि सब पत्रकारका आदर्श लेकर ही नहीं आते, अधिकतर बेकारीकी मारसे नौकरीकी खोजमे इधर भी झाँकने आते हैं, कुछ पत्रकार और पत्रकारीके नाम और पदके गौरवसे आकृष्ट होकर आते हैं और कुछ लिखने तथा अपने व्यक्तित्वकी अभिव्यक्ति करनेकी स्वाभाविक इच्छाकी

पूर्तिके लिए आकृष्ट होते हैं। थोडे ऐसे भी हैं जो पत्रकार-जीवन अपनाकर मानवताकी सेवामें अपनेको उत्सर्ग करनेकी भावना लेकर आते हैं। पर कोई चाहे जिस भावसे आये यह कला लोगोंको आकृष्ट अवश्य करती है।

लन्दनके 'डेली एक्सप्रेस'के भूतपूर्व सम्पादक श्री आर० डी० ब्लूमफील्डने पत्रकार-कलाके आकर्षक और मोहक स्वरूपकी चर्चा करते हुए लिखा है कि 'एडिसनके समान जगत्प्रसिद्ध व्यक्ति भी उसके आकर्षणसे अभिभूत था और वृद्धावस्थामें इस बातपर खेद प्रकट कर रहा था कि उसने जीवनमें पत्रकारी क्यों न अपनायी। एडिसन कहा करते थे कि मेरी पत्रकार होनेकी चिर इच्छा पूर्ण होनेसे रह ही गयी। पत्रकार-कलासे अधिक मनोरञ्जक, अधिक विमोहक, अधिक रसमयी तथा अधिक सर्वतोमुखी कोई दूसरी बात मुझे नहीं दिखाई देती। एक स्थानपर बैठकर प्रतिदिन सहस्रों नरनारियोंतक पहुँचना, उनसे अपने मनकी बात कहना, उन्हें सलाह देना, वे क्या करें और क्या न करें इस सम्बन्धमें परामर्श देना, उनका शिक्षण और मनोरञ्जन करना तथा आवश्यक हो तो उन्हें चिढा भी देना कैसा आश्चर्यजनक होता होगा यह सोचकर ही मैं स्पन्दित हो उठता हूँ।' वास्तवमें पत्रकारीका कैसा नशा होता है इसका पता उन्हींको होगा जो उसका स्वाद ले चुके हैं। जिन्होंने इस मदिराका पान नहीं किया है वे दूरसे उसकी गन्धमात्रसे आकृष्ट होकर दौड पडते हैं और जिन्होंने स्वाद पा लिया है वे तो ऐसे डूब जाते हैं कि अलग होना ही नहीं चाहते।

यही कारण है कि इस जटिल और कठिन जीवनको भी, जिसमें श्रम, अशान्ति, खतरा और खेद सतत साथी रहते हैं, अपनानेके लिए अग्रसर होनेवालोंकी संख्या दिन-दिन बढती ही जाती है। पर इसीलिए यह आवश्यक है कि पत्रकारीके लिए आवश्यक गुणों और तत्वोंकी चर्चा की जाय जिससे आनेवाले न केवल सावधान होकर आयें प्रत्युत जो आ जायँ वे इन पृष्ठोंसे सहायता भी प्राप्त कर सकें। गत पृष्ठोंमें पत्रकार जीवनकी विषमता और उत्तरदायित्वकी थोडीसी चर्चा की जा चुकी है। बर्नर्डशा जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति जिसकी लेखनी ही उसके जीवनकी धारा है पत्रकारीके सम्बन्धमें लिखता है कि 'दैनिक पत्रोंके कार्यालय कार्यालय नहीं, जेल हैं जहाँ बैठा

हुआ चतुर सम्पादक भी जगत्से काटकर अलग कर दिया जाता है। सभा और सोसाइटी, भोज और नृत्य सभीसे दूर रहकर उसे अपने काममें जुटे रहना पड़ता है। आवश्यक है कि प्रत्येक दैनिक पत्रके एक नहीं तीन तीन सम्पादक हों जो एक दिन काम करें और दो दिन विश्राम।'

सचमुच पत्रकारके लिए कहाँ विश्राम कहाँ विनोद, कहाँ अवकाश और कहाँ स्वच्छन्दता! प्रतिक्षण परिवर्तित होनेवाले जगत्की गतिको जिसे प्रतिबिम्बित करना हो उसे भला शान्त बैठनेका अवसर मिल ही कैसे सकता है? दिनके चौबीसों घण्टे उसे काम है और काममें ही जीना है तथा उसीमें मरना है। रोटरीके हुङ्कारमें उसका सङ्गीत है और मुद्रणकी स्याहीमें ही गन्ध है जिसे पाकर वह मस्त हो जाता है। वह सदा जाग्रत् है और सदा सचेष्ट है और यही उसका पेशा है। उसपर उत्तरदायित्वका बोझ है, कर्तव्योंका भार है, कामकी भारी गठरी सिरपर लदी हुई है फिर भी अधिकार कुछ नहीं है। स्पष्ट है कि ऐसे कठिन पेशेमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंकी हड्डियाँ और हृदय साधारण न होना चाहिये। उनमें कुछ विशेषता होनी चाहिये, मन और शरीरमें कुछ खास योग्यता होनी चाहिये। तभी वह इस पेशेमें सफल हो सकता है और पेशेको भी उससे लाभ पहुँच सकता है।

वास्तवमें पत्रकारके जीवनके सम्बन्धमें लोगोंके हृदयमें व्यापक रूपसे भ्रम छाया हुआ रहता है। सिवा स्वयं पत्रकारके जो क्षण क्षण अपनी कठिनाइयोंको भोगा करता है बाकी सब यही समझते हैं कि उसके जीवनकी तन्त्रीमें वह स्पन्दन रहता है जिसमें पत्रकार विभोर रहा करता है। लोग यह भी समझते हैं कि जीवनकी सन्ध्यामें उसके पास धन, ऐश्वर्य और सुखके सारे साधन एकत्र मिलते हैं। वास्तविक बात क्या है, और पत्रकारको कितनी निराशा, कितनी उपेक्षा और कितनी कठिनतासे पार होना पड़ता है इसका पता तो उसीको होगा जो इस धारामें पड़ चुका है। हम इन वाक्योंके द्वारा पत्रकारीके क्षेत्रमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंको न निराश करना चाहते हैं और न उनका दिल तोड़नेका इरादा करते हैं पर इसके साथ ही यह अवश्य समझते हैं कि आनेवाले प्रवेश करनेके पूर्व वास्तविकताको समझ लें। कभी-कभी निष्ठुर होनेमें ही दया होती है और यदि आरम्भमें ही किसीको

वास्तविकताका ज्ञान अप्रिय होते हुए भी करा दिया जाय तो आगे चलकर उससे लाभ ही होता है। आज पत्रकारकी व्याख्या भी गलत प्रकारसे होने लगी है। जिनका पत्रकारीसे कोई सम्बन्ध नहीं है वे भी अपनेको पत्रकारोंमें शरीक करने लगे हैं। उन पत्र सञ्चालकों तथा उनके व्यवस्थापकोंमें यह प्रयत्न और मनोवृत्ति विशेष रूपसे दिखाई देती है जिन्होंने अपने पैसेसे किसी पत्रको प्रकाशित करनेका व्यवसाय किया है। वे पत्रकारकी व्याख्या करते हुए उसके क्षेत्रको अति व्यापक कर देते हैं और कहते हैं कि जो कोई भी पत्रके निर्माण और प्रकाशनमें सहायक है वह पत्रकार हो सकता है। कदाचित् इस व्याख्याके अनुसार वे ही क्यों बल्कि कम्पोजिटर, मशीनका मिस्तरी, दफ्तरका क्लर्क और चपरासी सभी पत्रकार मान लिये जा सकते हैं। पत्रकारोंके सङ्घटन और उनकी संस्थाओंमें भी वे घुसनेकी चेष्टा करते हैं और अपनी स्वीकृति पत्रकारों-के रूपमें कराना चाहते हैं। हम समझते हैं कि इस मनोवृत्तिका विरोध होना चाहिये। पत्रकारी यदि कला है तो कोई केवल धनके कारण पत्रकार नहीं हो सकता। कलाकारोंकी कृतिको धनके द्वारा खरीदना और बेचना पूँजीवादियों-के व्यवसायका तरीका रहा है और आज भी है पर केवल इसीलिए उन्हें कोई कलाकार नहीं कह सकता।

सर्वमान्य बात है कि कोई ठोक पीटकर पत्रकार नहीं बनाया जा सकता। पत्रकारीके लिए कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ अनिवार्य होती हैं जो किसी-किसीको निसर्गतः प्राप्त हो जाती हैं। जिसे 'पत्थरोंमें कहानी और झर झर झरनेवाले झरनोंमें सवाद दिखाई देता हो, जिसकी कल्पना अन्तरिक्ष और विश्व-की गतिकी प्रतिच्छाया देखनेमे समर्थ होती हो और जो अपनी अनुभूतिको सरस सजीव शब्दोंमे अभिव्यक्त करनेकी क्षमता रखता हो वही पत्रकार हो सकता है। यह न समझ लेना चाहिये कि पाठशालामे वहाँकी पत्रिकामें आपके लेख प्रकाशित हो चुके हैं अतः आप सफल पत्रकार हो सकते है। आप शार्टहैंड जानते हैं, टाइप कर लेते हैं और कुछ लिख भी लेते हैं अतः पत्रकारीके योग्य हैं यह समझ लेना भी भारी भूल है। सभीका अपने विचार और अपनी भावना तथा अपनी अनुभूतिका एक जगत् अलग ही हुआ करता है। बहुधा मनुष्य अपने विचार और अपनी भावनापर स्वयं ही मुग्ध रहता है और समझता है

कि उसे यदि जगत्‌के सामने उसी उत्तमतासे रख सके जिस उत्तमतासे वह देखता है तो सारी दुनिया हिल उठेगी। पर मनुष्यके हृदय और उसके मुख अथवा उसकी लेखनीके बीच बहुत बडी खाई होती है जिसे पार कर जाना सबके लिए सम्भव नही होता। अपनेको शब्द और वाक्यके द्वारा अभिव्यक्त करना वह महती कला है जो प्रत्येकको प्राप्त नही हुआ करती।

जिन्हे यह कला आती है उनमेंसे भी सभी पत्रकार नही होते। पत्रकारमें वह विशेषता तो होती ही है पर उसमें साथ-साथ कुछ और भी होना चाहिये। उसका अपना विशेष ढङ्ग और स्वभाव होता है। जो जगत्‌की आँख और कान हो सके, जो सबके लिए सुन सके और देख सके, जीवनको प्रभावित करने-वाली दिन-प्रतिदिनकी घटनाओंकी तीव्र दौडमें जो उसके साथ रह सके तथा देशकी जनताके हृदय और मनको जो आन्दोलित कर सके और सबके भावोको प्रतिबिम्बित करनेके लिए स्वयं दर्पण बन सके वही पत्रकार हो सकता है। ऐसा पत्रकार चाहे उसका स्थान अपनी जातिके लोगोमे कितना भी नगण्य क्यों न हो, अपने कार्यमे सन्तोषका अनुभव करता है। जब सभी लेखकों और कलाकारोंमें भी यह बात नहीं होती तो फिर सब साधारण पढे-लिखे लोगोमे कहाँसे होगी ? कह सकते हैं कि सफल पत्रकार होनेके लिए सबसे पहली और सबसे बडी आवश्यकता उपर्युक्त नैसर्गिक गुणकी ही होती है। ऐसे लोगोका हृदय अनायास अपने ढङ्गसे मानव जीवनके प्रवाहमे अपनी ओरसे कुछ भेंट चढानेके लिए किसी अन्त.प्रेरणासे उत्प्रेरित हो उठता है। जो प्रकृति द्वारा प्रदान की गयी इस शक्तिका अधिकारी होगा उसे आगे बढ़नेके अवसर न जाने कहाँसे आ मिलते है। जो उससे वञ्चित होगा वह मिले हुए अवसरसे भी लाभ न उठा सकेगा।

पत्रकारका क्षेत्र अपने ढङ्गसे बडा व्यापक है। इसके अनेक खण्ड हैं और अनेक तथा विभिन्न प्रदेश है। कार्यकी विभिन्नता विविध दिशाएँ प्रदान करती है, जो एक दूसरीसे भिन्न होती हैं। कोई संवाद सङ्कलन करता है, कोई विशेष घटनाओंकी छानबीन करता है, कोई पत्रको सजानेका काम करता है, कोई सवादोको उचित ढङ्गसे प्रदर्शित करता है, कोई उनके महत्त्व और उनकी मनोरञ्जकताके अनुसार उनका चुनाव करता है, कोई उनपर मत व्यक्त करता है और भविष्यकी ओर सङ्केत करनेकी सामर्थ्य रखता है, किसीका कार्य सड़कों-

पर, उद्यानोंमें और मन्त्रिमण्डलोंके कमरों तथा नेताओंके मस्तिष्कमें घुस घुसकर समाचार ढूँढ निकालना है तो किसीका काम कार्यालयमें बैठकर कलम घिसते रहनेका है। कोई कार्यालयमें रहकर भी निरन्तर गतिशील है क्योंकि वह तार और टेलीफोनसे, रेडियो और टेलिप्रिंटरसे बहनेवाली अविराम संवादधाराको ग्रहण करता है, उसका नियमन करता है और उसे पाठकों तक उचित और आकर्षक ढङ्गसे पहुँचा रहा है। यह सारा काम कोई एक व्यक्ति नहीं करता। इनके विभिन्न क्षेत्र हैं और प्रत्येक क्षेत्रमें काम करनेवाले अलग-अलग व्यक्ति हैं। पर पत्रकारोंमें गिनती इन सबकी होती है। संवाददाता, विशेष संवाददाता, सम्पादक और सहायक सम्पादक, अग्रलेखोंका लेखक तथा विशेष विषयोंके लेखक आदि सभी पत्रकार कहलाते हैं। पर जहाँ इन सबका क्षेत्र अलग अलग है वहाँ सबमें एक गुण समान रूपसे अनिवार्यतः होना ही चाहिये। वे सब जगत्में निरन्तर नृत्य करनेवाली घटनाओंके प्रत्येक पद-विक्षेप और लय-तालको ग्रहण करनेकी नैसर्गिक शक्ति रखते हैं और उनका न केवल सङ्कलन करनेमें प्रत्युत उन्हें अभिव्यक्त करनेमें समर्थ होते हैं। इतना ही नहीं बल्कि उनसे उद्भूत प्रतिक्रिया और भावोंका भी सजीव चित्रण करनेमें सफल होते हैं। विभिन्न क्षेत्रोंमें होते हुए भी पत्रकारोंमें अभिन्नताका यह सूत्र समान रूपसे होता है और इसी कारण वे सब पत्रकार कहे जाते हैं।

पत्रकारकी व्याख्या तो हमने कर दी और उसकी स्वाभाविक विशेषताका उल्लेख भी हो गया। हम जानते हैं कि उपर्युक्त बातें साधारण रूपसे ऐसी गोल मटोल हैं जिन्हें पढ़कर पत्रकारीके लिए अग्रसर हुआ कोई भी नवागत घबड़ा उठेगा। सम्भवतः उसे निराशा भी होगी और आगे बढ़नेमें सङ्कोच भी होगा। पर यह आवश्यक था, इसलिए कि इस जीवनमें, जो वस्तुतः कठिन है पर देखनेमें विमोहक तथा आकर्षक है, उतरनेवाला समझ-बूझकर कदम बढ़ावे जिसमें गलत पेशेको ग्रहण कर अपने भविष्यको अन्धकारमय न बना सके। इतने पर भी जो पत्रकार होना चाहता है उसकी सफलताके लिए और जो बातें वाञ्छनीय होती हैं उनकी समीक्षा करना भी आवश्यक है समझ रखनेकी बात है कि पत्रकारके पेशेका द्वार अनावृत है। उसमें प्रवेश करनेके लिए न किसी विश्वविद्यालयकी डिगरी प्राप्त करना अनिवार्य है और न किसी

वेषयकी विशेषज्ञता ही आवश्यक है। देखा गया है कि साधारण रूपसे
ःखे युवक उनसे कहीं अधिक सफल पत्रकार हुए हैं जो विश्वविद्यालयोंके
ट होकर इधर आये हैं।

ार इसका अर्थ यह नहीं है कि पत्रकार होनेके लिए विद्या अथवा ऊँचे
ी आवश्यकता नहीं है। यद्यपि किसी डिगरीकी कैद पत्रकार होनेके लिए
यक नहीं है, पर उसके ज्ञानका विस्तार किसी डिगरीवाले स्नातक
ा एक विषयके पण्डितसे कहीं अधिक होना चाहिये। किसी वकीलके
कानूनका ज्ञान पर्याप्त है और किसी डाक्टरके लिए चिकित्साशास्त्रका।
ा पेशा संकुचित है अतएव ज्ञानका क्षेत्र भी उसी प्रकार सकुचित हो तो
आश्चर्य नहीं। पर पत्रकारकी गति दूसरी होती है। उसका सम्बन्ध
ीवन और जगत्के अङ्ग प्रत्यङ्गसे होता है। कोई क्षेत्र नहीं है, कोई
नहीं है, कोई प्रश्न और समस्या नहीं है जो उसकी सीमाके अन्दर न
ाती हो। समय और स्थितिके अनुसार उसे वकील और नीतिद्रष्टा,
ह और पुलिसवाला, दार्शनिक और कलाकार, वैज्ञानिक और साहित्यिक,
चक और भाष्यकार, व्यापारी और व्यावसायिक, राजनीतिज्ञ और शासक,
क और उपदेष्टा, सभी बनना पड़ता है। कौन सा ऐसा विषय है जिससे
म्बन्ध नहीं रखता? अदालतके मामलोंकी रिपोर्ट देते हुए कानून,
टके मैचके समय खेल, पार्लमेंटके वादविवादके समय राजनीति, विश्व-
लयोंकी शिक्षा-प्रणालीकी विवेचना करते समय शिक्षाशास्त्र, किसी चित्र,
ट, नृत्य, सङ्गीतकी आलोचनामें कला, युद्धके समय सेनाविज्ञान सभीका
तो उसे होना चाहिये। बिना इसके एक कदम भी तो वह आगे नहीं बढ़
ा। फलतः यह सिद्ध और निर्विवाद है कि किसी पत्रकारके लिए जहाँ
ीकी कैद नहीं है वहाँ उसे किसी भी साधारण डिगरीवालेसे कहीं अधिक
त ज्ञानकी आवश्यकता है। सक्षेपमें कह सकते हैं कि पत्रकारको सभी
ोंका थोड़ा-बहुत ज्ञान होना आवश्यक है। उसका मस्तिष्क विविध
ोंके पुस्तकालयकी भाँति होना चाहिये। इसके साथ-साथ यदि किसी
का विशेषज्ञ भी हो तो फिर क्या पूछना। यह सोनेमें सुगन्धके
न होता है जो उसकी कार्यक्षमताको अत्यधिक बढ़ा देता है।

इस ज्ञानके साथ-साथ उसमें कुछ और विशेषताएं भी होनी चाहिये। सार और तत्वकी बातोंको क्षणमात्रमें पकड लेना, मानसिक सतर्कता, समयानुसार अपनेको तदनुकूल बना लेनेकी क्षमता, सूक्ष्म विवेचनात्मक बुद्धि और दृष्टि संवादको सूँघकर ढूँढ निकालनेकी योग्यता आदि ऐसी बातें हैं जो उसकी सफलताके लिए आवश्यक हैं। फिर सहनशीलता और साहस, सतर्कता और सावधानी, निष्पक्षता और मौलिकता, कल्पना और पारदर्शी दृष्टि, निर्लिप्तता और निर्भीकता तथा सबसे बढ कर जगत् और जीवनके प्रति हृदयमें संवेदना तथा उदार भावना उसके आवश्यक गुण हैं जिनका विकास किये बिना पत्रकारीमें आगे बढना और सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। निस्सन्देह नया पत्रकार ज्ञानके इस व्यापक विस्तारको देखकर परेशान हो जायगा। समस्त विषयोंका थोडा थोडा ज्ञान प्राप्त करनेमें भी दस-बीस वर्ष लग जायेंगे। वह पूछ सकता है कि जब वर्षोंमें भी इसकी उपलब्धि सम्भव नहीं है तो पत्रकारीमें क्या कभी सफलता मिल ही नहीं सकती? इसका उत्तर दे देना आवश्यक है।

सफलताकी एक कुञ्जी और भी है। इसे यदि आप समझ लें तो बडी सीमातक सफल हो सकते हैं। पत्रकारके लिए सब ज्ञान प्राप्त कर लेना उतना आवश्यक नहीं जितना आवश्यक यह जान लेना है कि जरूरी ज्ञान कैसे उपलब्ध किया जा सकता है और जितना भी प्राप्त हो जाता है उसका उपयोग कैसे किया जाता है। आवश्यकता उत्पन्न होते ही क्षणमात्रकी सूचनापर ऐसे विषयकी समीक्षा आपको करनी पड सकती है जिसके सम्बन्धमें आप कुछ भी नहीं जानते। अनुभव बता देता है कि उस समय किस प्रकार आवश्यक ज्ञान उपलब्ध किया जाता है और किस प्रकार जो थोडा-बहुत मिलता है उसका उपयोग किया जा सकता है। पत्रकार सभी विषयोंका थोडा-बहुत ज्ञान प्रतिक्षण उपलब्ध करता रहता है। विविध विषयोंकी सूचना देनेवाली पुस्तकों (रेफरेन्स बुक) विश्वकोषों, तथा पत्र-पत्रिकाओंमे प्रकाशित होनेवाले विविध विषयोंके लेखों आदिसे उसे सदा सम्पर्क रखना होता है। प्रतिदिनके अपने कार्यमे उसे प्रतिक्षण इनकी सहायता लेनी पडती है और इस प्रकार प्रतिक्षण कामके सिलसिलेमे ही उसका ज्ञान बढता चलता है। ज्ञान प्राप्त करनेका

यही तरीका है। हाँ, उपलब्ध जानकारीका उपयोग करना उसकी अपनी मौलिक बुद्धि तथा प्रतिभाका काम है। इस प्रकार सभी विषयोंका साधारण ज्ञान प्राप्त कर वह अपनी नैयाको इस धारामें छोड़ दे और प्रतिदिनके अपने कामके सम्बन्धमें विभिन्न स्रोतोंसे प्राप्त ज्ञानको जोड़-जोड़कर अपना भाण्डार बढ़ाता चले। पुस्तकोंका अध्ययन करते चलना और बुद्धिकी सतर्कता और सूझसे काम लेते चलना भावी मार्गको प्रशस्त कर देता है।

पर जहाँ ज्ञान और मस्तिष्कके क्षेत्रकी चर्चा की गयी है वहाँ उससे अधिक आवश्यक बात शरीरके सम्बन्धमें है। पत्रकार-जीवन अपनानेवालेके लिए पुष्ट शरीर और उत्तम स्वास्थ्यकी अन्यतम आवश्यकता है। थोड़ेसे श्रमसे जो थक जाता हो, कामके बोझसे जिसके सिरमें शीघ्र ही ठनक पैदा हो जाती हो वह कभी भी पत्रकारोंकी श्रेणीमें सफल स्थान प्राप्त नहीं कर सकता। पत्रकारी-की विशेषता यह है कि वह कठिन और लम्बे तथा सतत आयासकी अपेक्षा करती है। स्वास्थ्यकी उत्तमता तो सदा ही और सब कार्योंके लिए ही वाञ्छनीय है पर पत्रकारी मनुष्यकी शक्ति और अध्यवसायकी जितनी माँग करती है उतनी शायद ही किसी और क्षेत्रमें होती हो। पत्रकारके कार्यके कोई नियत घण्टे नहीं हो सकते। जगत्‌की गतिके सम्बन्धमें समाचारोंकी निरन्तर खोज करना जिसका काम हो उसे रात और दिन, गरमी और सर्दी सभीका सामना करनेके लिए तैयार होना चाहिये। वह रातकी रात जागनेको बाध्य हो सकता है, भोजन और विश्रामसे वञ्चित हो सकता है, उसे लम्बी यात्रा करनी पड़ सकती है और घण्टों खड़े-खड़े समय बिताना पड़ सकता है। यह सब हँसते-हँसते सहन करनेकी शक्ति होनी चाहिये। हम जानते हैं कि आवश्यकताने सारे दिन श्रम करनेके बाद बिस्तरपर पड़े हुए पत्रकारको आधी रातको घसीट मँगाया है, बरसती और गर्जन करती हुई बरसातकी अँधियारी तथा कड़ाकेकी सर्दीकी परवाह न कर उसे कामपर डटनेको बाध्य होना पड़ा है।

दुनियाका काम रुक जाय पर पत्रको तो समयपर निकलना ही है। पत्रका कोई कार्य किसी दूसरे दिनके लिए टाला नहीं जा सकता। आप लेख लिखने बैठे हों और सिरमें पीड़ा आरम्भ हो जाय तो उसकी उपेक्षा करके भी लिखना

ही होगा क्योंकि कलके लिए वह काम टाला नहीं जा सकता। समयके क्षण-प्रतिक्षणके विरुद्ध युद्ध करनेवाला पत्रकार अपने कामको टाल ही कैसे सकता है। शिक्षक कभी चाहे विलम्ब कर दे और मजिस्ट्रेट भले ही अदालतको शीघ्र या विलम्बमें समाप्त करे पर पत्रकारकी उस भीड़ और परेशानीकी कल्पना कीजिये जब उसे निश्चित और निर्धारित समयपर डाक पकड़नेके लिए दुनिया भरकी बातोंको लिये-दिये और पत्रको साज-सजाकर बाहर कर देना अनिवार्य होता है। यह समय जैसे जैसे निकट आता है वैसे-वैसे पत्रके कार्यालयमें गरमी और तेजी बढ़ती चलती है। उस समय पत्रकारोंको देखिये तो ऐसा मालूम होता है मानो उनपर भूत सवार हो गया हो। यह सारा श्रेय और बोझ दुर्बल स्नायुतन्तु बरदाश्त नहीं कर सकते और न वे उसे सहन कर सकते हैं जो ढीले-ढाले, कोमल तथा सहज ही थकानका अनुभव करने लगते हैं। फलत प्रसिद्ध पत्रकार श्री लो वारेनके शब्दोंमे 'पत्रकारोंके लिए सबसे सुयोग्य उम्मेदवार वह व्यक्ति है जिसके सुदृढ शरीरमें सुदृढ और प्रौढ मस्तिष्क विद्यमान है। जो पत्रकार हो उसे एक ओर जहाँ ज्ञानका अन्वेषक होना चाहिये वही दूसरी ओर प्रचण्ड शारीरिक शक्तिवाले पहलवानकी तरह सबल भी होना चाहिये'।

पत्रकारका स्वभावतः धीर होना अत्यन्त आवश्यक है। साधारणत जो व्यक्ति कामके बोझसे पिसता रहता है वह चिड़चिड़ा तथा सहज ही क्षुब्ध हो जाया करता है। पत्रकारको स्वभावके इस दौर्बल्यसे भी लड़ना है। एक ओर उसे दिनरात आयास करना पड़ सकता है और दूसरी ओर पृथ्वीके समान धैर्य और समुद्र सदृश गाम्भीर्यसे काम लेना होता है। तरह-तरहके लोगोंसे मिलना होता है जिनमें बहुतसे अविवेकी और क्रोधी भी हो सकते हैं। उसके साथ अशिष्टता और असभ्यताका व्यवहार करनेमें भी कभी सङ्कोच न करनेवालोंकी कमी नहीं होती। ऐसे लोगोंसे भी सामना हो जाता है जिनकी नीरस और निकम्मी तथा दम्भपूर्ण बातोंसे जी ऊब जा सकता है पर पत्रकारकी परीक्षा भी ऐसे ही समय होती है। उसकी स्थिरता और धीरता ही उसे न केवल सफलता प्रदान करती है बल्कि इसके बिना उसका काम ही बिगड़ जा सकता है।

कामके सिलसिलेमें इन तमाम बातोंकी ओर सदा ध्यान देते रहनेकी आवश्यकता होती है। यह कभी न समझियेगा कि पत्रकारीके क्षेत्रमें पदार्पण करनेके साथही आप महान् और प्रतिष्ठित पत्रकार हो जायँगे।—जबसे आपने पत्रकारीमें प्रवेश किया है तबसे और जिस क्षण आप सर्वाङ्गीण पत्रकारके रूपमे अवतीर्ण होगे उस समयके बीच एक लम्बा काल यापन करना नितान्त आवश्यक होता है। इस बीचकी खाईको पार करनेके लिए आपको धीरता, लगन तथा सतत अध्ययन और सङ्कल्पसे काम लेना पडेगा। अवश्य ही प्रतिक्षण आप अनुभव प्राप्त करते चलेंगे और उसके आधार-पर आगे बढते जायँगे। शीघ्र ही यह बात स्पष्ट हो जायगी कि धैर्यपूर्वक अपने काममें लगे रहना ही सिद्धिका उपाय है क्योंकि निरन्तरका अभ्यास ही पूर्णता प्रदान करनेका एकमात्र साधन होता है।

कालके प्रवाहके साथ साथ प्रौढता, विवेक और योग्यता प्राप्त होती जाती है। नये पत्रकारको दैवके भरोसे अपनेको छोड देनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रारम्भसे ही उसे अपनी दृष्टि लक्ष्यपर रखनी चाहिये और हृदयमें पत्रकारके ऊँचे पदपर पहुँचनेका दृढ निश्चय होना चाहिये। अपनी कलाको सीखनेके लिए उसकी बुद्धिके कपाट सदा खुले रहें, वह सदा ग्रहणशील रहे और जो काम उसके सिपुर्द हो उसे अपनी सारी शक्ति और निष्ठासे पूरा करनेका उद्योग करता रहे। नये पत्रकारके सामने ऐसे अवसर आते हैं जब किसी ऐसे कामको करनेकी आज्ञा मिलती है जिसे वह छोटा समझता है अथवा अपने पद और अपनी योग्यतासे नीचेका अनुभव करता है पर उसे सदा इस अहङ्कारसे से अपनेको बचाना चाहिये। पत्रकारकी योग्यता और सफलताकी कुञ्जी यही है कि वह छोटे कामसे ही क्रमशः बढे। बहुधा विश्वविद्यालयोंसे निकलकर सीधे पत्रकार-कलाकी ओर आनेवाले युवकोंकी असफलताका मुख्य कारण यही होता है कि वे अपनी डिगरीके अभिमानमे यह धारणा लिये आते हैं कि उनकी योग्यता अपेक्षा करती है कि सीधे सम्पादककी कुरसी प्रदान कर दी जाय। यदि उनसे म्यूनिसिपलबोर्डकी बैठककी रिपोर्ट लानेके लिए कह दिया जाता है तो उनके अहङ्कारको चोट लगती है और जहाँ वे इस प्रकार एक बार गडबडाये कि उनका मार्ग कुण्ठित हुआ।

कठिनाई और परिश्रमसे भागना और यथासम्भव थोडेमे ही छुट्टी पा लेनेकी आदत नये पत्रकारका सबसे बडा शत्रु है। इसी प्रकार असावधानी और अनुत्तरदायित्व उसके भविष्यको सदाके लिए नष्ट कर देते हैं। लगन और सावधानीके साथ अधिकसे अधिक श्रम करने और जो करे उसे सुचारु तथा सुआयोजित ढङ्गसे करनेकी आदत वह सुदृढ नीव है जिसपर उसकी सफलताका भव्य-भवन खडा हो सकता है। ये आरम्भिक बातें है जिन्हें अपनाकर पत्रकार निर्विवाद रूपसे उन्नति करेगा। इन बातोंका अभ्यास उसके पत्रकार-जीवनमे अन्त तक उसका सहायक रहेगा। पत्रकारके लिए अपने उत्तरदायित्वको सदा स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है। उत्तरदायित्वसे हमारा तात्पर्य यह है कि जो करे सावधानी और सुन्दरताके साथ करे। साथ ही जो काम उठा ले अथवा जो बात उसके सिपुर्द कर दी जाय उसे पूरा करे। जिसपर भरोसा किया जा सके और जिसके सम्बन्धमें उच्चपदस्थोंको यह विश्वास हो जाय कि दिया गया काम पूरा होकर रहेगा वह जीवनमे सदा सफलता और आदर तथा सम्मानका भाजन होता है। पत्रकारको अपने सम्बन्धमे तो इस धारणा और ख्यातिको उत्पन्न करना ही होगा क्योंकि इसके बिना एक पग भी आगे जाना सम्भव नहीं है। पत्रकारीका पेशा ही ऐसा जटिल तथा उत्तरदायित्वपूर्ण है कि रत्ती भर भी असावधानी तथा लापरवाहीके लिए स्थान नहीं है। सम्पादकको यदि यह भरोसा न हो कि अमुक सहायक सम्पादक समयसे पत्र प्रकाशित कर देगा, यदि उसे विश्वास न हो कि अमुक संवाददाता जो संवाद भेज रहा है वह सत्य होगा और यदि उसे यह निश्चय न हो कि उसके लेखक तथा विशेष सवाददाता जो लिखेंगे वह न किसीके लिए मानहानिकर होगा और न किसी कानूनके विरुद्ध तथा अरुचिकर तो उसके लिए सम्पादनका कार्य करना ही असम्भव हो जायगा। यह सच है कि विश्वासपात्र और जिम्मेदार बननेके लिए विशेषरूपसे श्रमशील, जागरूक और सतर्क होनेकी आवश्यकता होती है। मनुष्यके जीवनपर इन बातोका खासा बोझ लद जाता है जिसके भारसे उसका मन और शरीर दबा-सा रहता है पर पत्रकार होना है तो इस भारको वहन करनेके लिए तत्पर होना ही होगा।

सुन्दर, ठोस और विश्वसनीय ढङ्गसे काम करनेके लिए पत्रकारीका पेशा अपनाते ही युवकको अपने उत्तरदायित्वका आभास हो जाना चाहिये। उसका एक-एक अक्षर जो लेखनीसे निकले जिम्मेदारीसे भरा हुआ होना चाहिये। स्मरण रखना चाहिये कि उसके पत्रका सुनाम और उस जनताका हित उसके ऊपर निर्भर है जिसकी सेवाके पवित्र कार्यमें वह संलग्न होने जा रहा है। कार्यक्षेत्रमें आते ही उसके अधिकारी विभिन्न प्रकारका काम पूरा करनेका आदेश देते दिखाई देंगे। कभी किसी घटनाका विवरण सङ्कलन करनेके लिए तो कभी अदालतके किसी मामलेकी रिपोर्ट लानेके लिए, कभी अनुवाद करनेके लिए तो कभी किसी विषयपर टिप्पणी लिखनेके लिए, कभी मेक-अप तो कभी प्रूफके लिए समय-समयपर आदेश मिलते रहते हैं। जहाँ आवश्यकता यह होती है कि नवागत पत्रकार विभिन्न प्रकारके सभी काम करनेका ढङ्ग जानता हो वहीं और उससे भी बढ़कर आवश्यकता इस बातकी होती है कि जो करे वह सावधानीसे करे और मिले हुए आदेशका परिपालन पूरी तरह करे। एक बात और समझ लेनेकी है। जो बात ज्ञात न हो उसके सम्बन्धमें अपने किसी सहयोगीसे पूछनेमें न कोई अपमान है और न हेठी। हमारा अनुभव है कि पत्रकारीमें नये-नये आये लोग बहुधा बहुत-सी बातोंसे अपरिचित होते हैं पर उनका मिथ्याभिमान उन्हें किसीसे उनका ज्ञान प्राप्त करनेमें बाधक होता है। फलतः अकसर ऐसी भद्दी भूलें हो जाती हैं कि बादमें उनके लिए कहीं अधिक लज्जित होना पड़ता है।

पत्रकार ज्ञानका निरन्तर अन्वेषक है और उसे अपने बुद्धि-कपाटको खोले रखना चाहिये। जो जहाँसे मिले उसे ग्रहण करनेके लिए सदा इच्छुक रहना और जहाँ सन्देह हो वहाँ किसीसे पूछ लेना न लज्जाकी बात है और न उसकी योग्यतापर किसी प्रकारका लाञ्छन। एक दोषका अनुभव हमें और है जिसका उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक है। पत्रकारीको अपनानेवाले नये पत्रकारको कभी उतना ही करके सन्तोष न करना चाहिये जितना उसके सिपुर्द किया गया है। 'मेरी ड्यूटी पूरी होगयी अब और कुछ क्यों करूँ' की मनोवृत्ति उसकी सफलता और भविष्यको मटियामेट कर दे सकती है। यदि उसका चेष्टा रहे कि कमसे कम समय और शक्तिका उपयोग कर किसी

कामसे छुट्टी पा जाय और घरकी राह ले तो निश्चय समझिये कि पत्रकारीमें उसकी गति कदापि न होगी। या तो वह निकम्मा सिद्ध होगा या स्वयं परेशान और निराश होकर इस पथको छोड़ भागेगा। कामचोरोंके लिए भले ही और कहीं किसी क्षेत्रमें गुञ्जायश हो पर पत्रकारीमे तो नहीं ही है। यदि किसीको सफल पत्रकार होना है, पत्रकारीमें ऊँचे पदपर पहुँचना और प्रतिष्ठा प्राप्त करना उसकी महत्वाकांक्षा है तो अधिकसे अधिक काम करना होगा। काम करनेका ढङ्ग और उसमें प्रवीणता तो शनैः शनै के अभ्याससे ही प्राप्त होती है, और यथासम्भव काममें जुटे रहना ही अभ्यासका एक मात्र मार्ग है।

सिद्धान्तकी बात तो यह है कि प्रत्येक पत्रकार अपनी चेष्टा और आत्म-शिक्षणके द्वारा ही पत्रकार बनता है। एक बार यदि आप पत्रकारीके क्षेत्रमें प्रविष्ट हो गये तो फिर अपने ही परिश्रम, अध्यवसाय और बुद्धिके भरोसे आगे बढना सम्भव होगा। किसी पत्रके सम्पादकको या किसी दूसरे व्यस्त अधिकारीको इतना अवकाश नहीं मिल सकता कि वह नवागन्तुकको पदे-पदे उचित शिक्षा देता चले। यह कार्य तो स्वयं उसे ही करना पडता है और अपने अनुभव, अपनी जिज्ञासा तथा अपनी जागरूकतासे काम सीख लेना पडता है। यह आवश्यक है कि आरम्भमें ही इस बातको अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लिया जाय कि पत्रकार होनेके लिए उसे पूर्णत' अपनी ही योग्यता, शक्ति और श्रमका सहारा लेना पडेगा। हमने उन समस्त साधारण तथा मोटी बातोंकी चर्चा कर दी है जिनके बिना पत्रकारीके क्षेत्रमें काम नहीं चल सकता। हमारा तात्पर्य उन युवकोंको उपदेश देना नहीं है जो इस दिशाकी ओर अग्रसर होते हैं अपितु उनके मित्रके नाते वे बातें बता देना है जो उनके कार्य तथा उनकी सफलतामे सहायक हो सकती हैं। पत्रकार होनेके नाते जीवनके अनुभवसे जिन आवश्यक बातोंका होना अनिवार्य ज्ञात हुआ उनकी ओर सङ्केत कर देना हमारा लक्ष्य था। इसी दृष्टिसे हम आगेकी पंक्तियाँ भी लिखते चलते हैं।

पत्रकारको जीवनमें किस तरहकी आदतें डालनी चाहिये और अपने स्वभाव और अभ्यासको कैसा बनाना चाहिये इसपर तो संक्षेपमें लिखा जा

चुका। अब कुछ और ऐसी आवश्यक बातोंकी चर्चा कर देना उचित है जिनका पत्रकारके जीवनमें विशेष स्थान होता है। पत्रकारको विभिन्न क्षेत्रोंका और अनेक विषयोंका साधारण ज्ञान होना अत्यन्त जरूरी है यह कह चुके हैं; पर जहाँ सब विषयोंके साधारण ज्ञानसे उसका काम चल जाता है वहाँ एक विषयपर पूरा अधिकार हुए बिना उसकी गति नहीं है। वह विषय है भाषा। पत्रकारको प्रतिक्षण और अपने जीवनपर्यन्त भाषाके ही साथ क्रीडा करनी पडती है। वही माध्यम है जिसके द्वारा वह सारे दृश्य जगत् और उसकी गतिविधिको चित्रित करता है; उसीके द्वारा वह उन अमूर्त भावों और कल्पनाओंको व्यक्त करता है, जिनका कि भौतिक जगत्की मूर्त घटनाएँ उसके अन्तःकरणमें सर्जन करती हैं। उसके लिए भाषाका वही महत्त्व है जो चित्रकारके लिए तूलिका और रङ्गका है अथवा मूर्तिकारके लिए मृत्तिका या पत्थरका है। उसको गढना, ढालना और उसमें जगत् तथा जीवनकी अनेक धाराओंको सजीव एवं मूर्त कर देना उसका काम होता है। पत्रकारकी लेखनी केवल लिखनेके लिए नहीं चलती और न उसका ध्येय विशुद्ध स्वान्तःसुखाय होता है। अपनेको स्पष्ट रूपसे अभिव्यक्त करनेमें जो सन्तोष, उल्लास और आनन्द मिलता है उसका अधिकारी पत्रकार भी होता है पर इसके साथ-साथ उसके सामने व्यापक जनसमाज, सारा जगत्, भी होता है जिसके लिए लिखना भी उसका ध्येय हुआ करता है। वह लिखता है उनका वर्णन करनेके लिए जिन्हें वह देखता है, सुनता है और अनुभव करता है पर इसके साथही वह लिखता है उन बातोंकी व्याख्या भी करनेके लिए जिन्हे दूसरे अनुभव करते हैं, देखते-सुनते हैं और कहते हैं तथा जिनपर विचार करते हैं। फिर वह न केवल विद्वानोंके लिए लिखता है और न केवल अज्ञोंके लिए; उसका काम सबके लिए, विशेषकर साधारण जनसमुदायके लिए लिखना होता है।

सभी विद्वान् और विशेषज्ञ भी एक दृष्टिसे साधारण ही होते हैं। अपने विशेष विषयमें कोई विशेषज्ञ हो सकता है पर दूसरे विषयोंमें वह उसी प्रकार साधारण है जिस प्रकार कोई दूसरा। फलतः पत्रकार अज्ञ और विज्ञके बीचकी कडी है; वह न केवल दोनोंको मिलाता है बल्कि दोनोंकी आवश्यकताओं-को भी पूरा करता है। फिर भाषापर उसे कैसा असाधारण अधिकार होना

चाहिये इसकी कल्पना स्वय कर लीजिये। शब्द और वाक्य उसके दास हों, उन्हे वह जब जैसे चाहे नचा सके और उनमें वह अर्थ भर सके जिसे प्रकट करना चाहता है तभी उसे सफलता प्राप्त हो सकती है। पूछा जा सकता है कि सभी प्रकारके लेखकोंके लिए भाषापर अधिकार प्राप्त करना क्या आवश्यक नहीं है? पत्रकार जो लिखेगा उसपर भी व्याकरण तथा भाषा सम्बन्धी सब नियम तो उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार दूसरेके लिए होते हैं। इस अवस्थामें पत्रकार और किसी दूसरे लेखकके लिए भाषा सम्बन्धी ज्ञान और व्यवहारमे भेद क्या हुआ? पर भेद होता है और सहजमे ही समझमें आ सकता है। पत्रकारकी लेखन-कला कई दृष्टियोंसे आवद्ध है। उसके लिए स्थान बँधा हुआ है, समय निर्धारित है। दूसरे जहाँ केवल अपने विषय-विशेषपर लिखते हैं वहाँ पत्रकारको सभी विषयोंपर लेखनी चलानी पडती है। दूसरे जहाँ केवल विज्ञ जनोंके लिए अथवा केवल अपने सुखके लिए लिखते हैं वहाँ पत्रकारके सम्मुख उसके पाठकोंकी भीड़ रहती है जिनकी रुचि, बुद्धि, हित और अहितका ध्यान रखना पड़ता है। साथ ही जो कुछ लिखना होता है वह विशेषतः साधारण मनुष्यके लिए लिखना रहता है इसलिए सीधी, सरल, स्पष्ट पर सजीव और आकर्षक भाषामें लिखना होता है। पर इन सबके सिवा उसकी भाषामें एक बात और होनी चाहिये। जो लिखे वह वास्तविकतासे, केवल वास्तविकतासे अनुप्राणित हो। उसके शब्दोमें वास्तविकताका अनुपात और अंश किसी भी दूसरे लेखककी अपेक्षा अधिक होना ही चाहिये। वास्तविकताको चित्रित करनेमे भाषा भी वास्तविक हो उठे और सारी कल्पना तथा भाव भी विशुद्ध वास्तविकतापर आश्रित हों तभी घटनाओंकी विवेचनामें वह अक्षुण्ण तटस्थताका परिचय दे पाता है।

यही कारण है कि विश्वविद्यालयमें निबन्ध लिखनेमें प्रवीण और पुरस्कार-प्राप्त विद्यार्थी भी जब इस क्षेत्रमें आते हैं तो उनके छक्के छूटते दिखाई देते हैं। अपनी पूर्व-सफलताके आधारपर वे यह समझकर आते हैं कि हम पत्रकारीके योग्य हैं और शीघ्र ही सम्पादक हो बैठेंगे पर यहाँ दूसरी कठिनाइयाँ और आवश्यकताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। विश्वविद्यालयमें सप्ताहमें एक बार चुने हुए

विषयपर पहलेसे तैयारी करके लेख लिख लेना सरल होता है। उन लेखोंकी परीक्षामें लेखकके भाव, विचार तथा भाषापर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। विषयकी विवेचना करनेवाला पण्डित होता है और पाण्डित्यका प्रकटीकरण कर देता है। पर पत्रकार होकर केवल पाण्डित्यसे नहीं बल्कि जीवनके बाह्य तथा आन्तरिक ज्ञानसे लिखना होता है। वस्तु विशेषको अपनी ही दृष्टि अथवा कल्पनाके अनुसार देखकर नहीं बल्कि उसका जो प्रकृत रूप है उसी रूपमें देखकर लिखना होता है। जगत् जैसा है और उसकी गति जैसी है उसे उसी रूपमे लीजिये, चित्रित कीजिये और यदि मत प्रकट करना है तो वास्तविकतासे सम्बद्ध तर्कोंके आधारपर कीजिये। और यह सब प्रतिदिन, यदा-कदा दिनमे कई बार, करना होगा और बहुधा वे विषय जो अपरिचित और अकल्पित होगे, सामने आ डटेंगे। बिचारे पुस्तकोंके पूजक और तैयारी करके लिखनेके अभ्यस्त कहाँ इस दौड़में टिक पायेंगे?

नया पत्रकार प्रश्न कर सकता है कि फिर यह विशेषता प्राप्त कैसे की जाय? हम उत्तरमें कहेगे कि इस विशेषताकी प्राप्ति आपको अपने कामसे ही होगी। प्रतिदिनके अभ्याससे मनुष्य अपनेको न केवल इस स्थितिके अनुकूल बना लेता है बल्कि क्षण-क्षणका अनुभव उसके ज्ञान और शक्तिके भण्डारको बढ़ाता चलता है। दूसरी बात यह है कि लिखनेके योग्य होनेके लिए पत्रकारको व्यापक रूपसे पढ़ना चाहिये और अच्छी तरहसे पढना चाहिये। विभिन्न विषयोंकी पुस्तकोंको, अधिकसे अधिक पत्र-पत्रिकाओंको और सूचक-पुस्तकोंको यथासम्भव अपना साथी बनाना चाहिये। जो विषय उपस्थित हों उनपर लिखनेकी चेष्टा कीजिये और तत्सम्बन्धी बातोंको सूचक-ग्रन्थों अथवा ऐसे ही अन्य साधनोंसे तत्क्षण ढूंढ निकालनेकी कोशिश कीजिये। धीरे-धीरे ज्ञान विस्तृत और व्यापक होता जायगा। पत्रोंकी फाइल, कटिंग और पढी हुई पुस्तकोंसे लिये गये नोट आपके सहायक हुआ करेंगे। पठन और अध्ययन न केवल ज्ञानको बढ़ाता है बल्कि मन और मस्तिष्कको भी प्रभावित करता है। लेखकके व्यक्तित्व और शैलीकी छाप आपके मनपर अनजाने बैठ जाती है जो आगे चलकर आपको भी व्यक्तित्व प्रदान करती है। आपका यही व्यक्तित्व आपकी लेखनशैलीका निर्माण करता है। किसी विषयको मनोरञ्जक, सजीव,

प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक ढङ्गसे अभिव्यक्त करनेकी रीतिको ही शैली कहते हैं। अपनी शैलीमें लेखक अपनेको, अपने व्यक्तित्वको व्यक्त कर देता है। शैलीके बिना लेखककी कृति सूनी और प्राणहीन दिखाई देती है। फलतः जितनी ही अधिक सरलता और सहज भावसे, 'बिना कृत्रिमता और आयासके लेखक अपनेको व्यक्त करता है उतनी ही प्रभावोत्पादक और ओजस्वी उसकी शैली होगी।

तात्पर्य यह कि पत्रकारके लिए सफल लेखक होना आवश्यक है जिसका भाषापर असाधारण अधिकार हो। पर लेखक होनेके लिए उसमें कुछ बातें अनिवार्य रूपसे और भी होनी चाहिये। ऐसी बुद्धि हो जिससे वह दृश्य अथवा अदृश्य घटनाओंका वास्तविक रूप देखनेकी क्षमता रखता हो; ऐसा हृदय हो जिससे बाहरी जगत्की घटनाओंसे उद्भूत भावनाकी अनुभूति अन्तस्तलमें कर सके, कल्पनाकी शक्ति ऐसी हो जिसके द्वारा वास्तविकताके घात-प्रतिघातसे उत्पन्न होनेवाले अमूर्त परिणामोंकी रूपरेखा प्रस्तुत की जा सके और अन्ततः लिखनेकी वह शक्ति हो जो उस शैलीके रूपमें प्रकट हो जिसके द्वारा लेखक अपनी बुद्धि, अनुभूति और कल्पनाको भाषाके माध्यमसे चित्रित कर सके। स्मरण रखियेगा कि पुस्तकोंके द्वारा तथा जीवनकी वास्तविकताके अधिकाधिक निकट आकर और दिन-प्रतिदिनके अनुभवसे ज्ञान प्राप्त करनेकी अधिकाधिक आवश्यकता जितनी आधुनिक पत्रकारके लिए है उतनी कदाचित् किसी दूसरे पेशेमें संलग्न किसी दूसरे व्यक्तिके लिए नहीं होती।

हम समझते हैं कि इस अध्यायमें पत्रकारीमें प्रवेश करनेवालोंके लिए जितनी बातें आवश्यक हो सकती हैं उनकी चर्चा की जा चुकी। अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता न समझकर हम इसे समाप्त करना चाहते हैं पर अन्तिम पंक्तियोंके पूर्व एक अत्यन्त छोटी किन्तु आवश्यक बातकी ओर ध्यान आकृष्ट कर देना चाहते हैं। पत्रकार प्रेसके लिए जो 'कापी' तैयार करता है उसमें कुछ बातोंकी ओर ध्यान रखना जरूरी होता है।

(१) कागजकी लम्बी स्लिपोंपर लिखना चाहिये। कम्पोजिटरको इसमें

 होती है।

(२) अक्षर स्पष्ट और साफ हों अन्यथा छपाईमें भद्दी भूल हो जानेका खतरा बढ़ जाता है। कम्पोजिङ्गमें भी स्पष्ट अक्षरोंसे सुविधा होती है।

(३) लिखी हुई लाइनोंके बीच काफी स्थान छोडना चाहिये जिसमें सहायक सम्पादक या सम्पादकको संशोधन करनेका स्थान मिल जाय।

(४) प्रत्येक पृष्ठपर पृष्ठ-संख्या तरतीवसे देना न भूलिये नहीं तो ऐन मौकेपर कम्पोज किया हुआ मैटर ऐसा अस्तव्यस्त आ सकता है कि आप घबडा जायँ।

(५) अपनी स्लिपके ऊपरका भाग स्लिपके तृतीयांशके करीव छोडकर लिखिये जिससे शीर्षक लगानेमें सुविधा हो।

(६) सदा स्लिपके एक ही ओर लिखिये।

(७) यदि रिपोर्ट लिख रहे हों या भाषणादिका विवरण हो और कई स्तम्भों तक चलनेवाला हो तो वीच-बीचमें छोटे-छोटे शीर्षक देते चलिये। सौन्दर्यके साथ-साथ उपयोगिता बढ जायगी।

(८) नया पैराग्राफ आरम्भ करते हुए [ऐसा चिन्ह बनाइये।

(९) अक्षरके ऊपर अक्षर बनाकर संशोधन न कीजिये। यदि कुछ परिवर्तन करना है तो शब्द या वाक्य काट दीजिये और फिरसे लिखिये।

(१०) जिन नामों या शब्दोंके कम्पोज करनेमें भ्रम हो सकता हो या जिनके गलत छपजानेकी आशङ्का हो उनके नीचे लकीर खींच दीजिये।

(११) दो पृष्ठोंके बीचमें किसी और पृष्ठको जोड़ना हो तो अक्षरोंका प्रयोग कीजिये ;–जैसे १ और २ पृष्ठोंके बीचमें १ (क), १ (ख)।

(१२) विभिन्न विषयोंकी कापियाँ लिखते हुए पृष्ठसंख्याके साथ सङ्केताक्षर (कैचवर्ड) लगा दीजिये ; जैसे यदि असेंबलीकी रिपोर्ट हो तो 'अ-१', 'अ-२' : फिर बाढ़की रिपोर्ट होतो 'बा-१', 'बा-२'। इससे कम्पोजिटर और मेक-अप करनेवाले, दोनोंको जो मैटर जिस विषयका है उसे ठीक-ठीक लगाकर रखनेमें सुविधा मिलेगी।

(१३) कापी लिख लेनेके बाद हो सके तो उसे फिरसे देख लीजिये ! रिपोर्ट या लेख तैयार करके देते समय तो अवश्य ही ऐसा कर लेना चाहिये।

(१४) कापीके समाप्त होनेपर नीचे लकीर खींच दीजिये जो इस बातकी सूचक होगी कि उसकी समाप्ति हो गयी।

(१५) तारोंका अनुवाद करते समय स्थान और तिथिका उल्लेख ऊपर कोनेपर अवश्य कर दीजिये ; किसी भी समाचारकी तिथि दे देना जरूरी होता है।

(१६) अनुवादमें या किसी घटनाका उल्लेख करते हुए यदि किसी स्थानपर सन्देह हो जाय तो बिना उसका निराकरण किये सन्दिग्ध बात न लिखिये। सन्दिग्ध बातको छोड़ देना अच्छा है पर उसे लिपिबद्ध करना ठीक नहीं।

(१७) प्रूफ देखनेमें विशेष सावधानीकी आवश्यकता है। संशोधनके चिन्होंका अभ्यास अच्छी तरह कर लीजिये जो परिशिष्टमें दिये हुए हैं। यद्यपि यह कार्य पित्तामार और नीरस है पर बिना इसके जाने पत्रकारकी गति नहीं है।

इन छोटी-बड़ी बातोंको हृदयङ्गम करके इस क्षेत्रमें आनेवाले युवककी सफलतामें कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती यह हमारा विश्वास है। तत्काल इस कार्यमें आये हुए व्यक्तिको कठोर श्रम और अकिञ्चन वेतन सोत्साह और प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करना ही पड़ता है। बहुधा उसके जिम्मे छोटे-छोटे काम ही किये जाते हैं, पर इससे घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि उसे अपने काममें रस है, हृदयमें दृढ़ सङ्कल्प है और अध्यवसाय तथा सफल होनेकी अदम्य इच्छा है तो शीघ्र ही वह अधिक ऊँचे पद और सुयशका भागी होगा इसमें सन्देह नहीं। यदि उसके लिए डिगरियोंकी कैद नहीं है तो कोई भी समझदार पढ़ा-लिखा व्यक्ति अपनी जागरूकता, जिज्ञासा और सतर्कतासे सफल पत्रकार बननेमें समर्थ हो सकता है। पत्रकार-जीवनकी कठिनाइयाँ अनेक हैं पर इसमें कुछ आकर्षण भी है। निरन्तर गतिशील जगत्के स्वरूपका प्रतिक्षण परिवर्तन और विश्वके विभिन्न तथा व्यापक क्षेत्रोंके विविध अङ्गोंका दर्शन पत्रकारके जीवनमें रस तथा मोहकताका सर्जन किया करता है। वह सर्वत्र पहुँचता है और सब कुछ देखता है। जगत् किस प्रकार कठपुतलीकी तरह न जाने कितनी लौकिक और अलौकिक

धारा-उपधाराओंके घात-प्रतिघातोंसे नाच रहा है इसका साक्षात्कार उससे अधिक कौन करता है? यही है विभूति जो उसकी समस्त कठिनाइयों और परेशानियोंसे उद्भूत खेदका परिमार्जन कर देती है। यदि उसका मस्तिष्क प्रौढ़ है, हृदय भावुक है, बुद्धि अध्ययन और विवेकशील है तथा लेखनी सशक्त और चरित्र विश्वसनीय तथा उज्ज्वल है तो वह न केवल सफल होगा बल्कि मानवताकी अन्यतम सेवा करनेका पुण्य उपार्जन करेगा।

सम्पादक—उसके कार्य और आदर्श

पत्रकारोंकी पंक्तिमें सम्पादकका स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। समाचार पत्र यदि विशाल जलपोतके समान मान लिया जाय तो सम्पादकको उसका कर्णधार कह सकते हैं। किसी समाचारपत्रकी सफलता और अच्छाईके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उसे योग्य सम्पादकका नेतृत्व प्राप्त हो। सम्पादक ही वह प्राणतत्त्व है जो समाचारपत्ररूपी शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग और समस्त अवयवोंमें गीतिशीलता, स्पन्दन और रसका सञ्चार करता है। उसीके ऊपर इस महान यन्त्रके सञ्चालनका सारा उत्तरदायित्व होता है। समाचारपत्रके विविध क्षेत्रोंके सञ्चालन, नियमन, नयन और प्रोत्साहन तथा निर्माणके लिए सम्पादक ही वह केन्द्र-विन्दु है जहाँसे जीवनदायिनी प्रकाशकी किरणें चारों ओर फैलती रहती हैं। पत्रके सहस्रों पाठक-पाठिकाओंके लिए वह स्वयं पत्रका प्रतीक है। यदि किसीको अपना दुखड़ा पत्रमें प्रकाशित कराना है तो वह सम्पादकको लिखेगा। किसीको नौकरी चाहिये, कोई विज्ञापनके लिए स्थान खोजता है, किसीको अपना लेख प्रकाशित कराना है, किसीको वक्तव्य देना है, कोई अपनी लिखी पुस्तककी आलोचना चाहता है, कोई अधिकारियोंके अन्यायसे पीडित है—ऐसे सभी अपने अपने समाचारपत्रसे सहायता चाहते हैं जिसके लिए पत्रकी सजीव मूर्तिके रूपमें प्रतिष्ठित सम्पादकको ही जानते हैं और डाक विभागकी कृपासे उसके निकट पहुँचकर टेबिलपर आसीन हो जाते हैं। भले ही उससे व्यक्तिगत परिचय न हो पर अपरिचित व्यक्ति भी व्यक्तिगत प्रश्नों और समस्याओंको उसतक पहुँचाता है और उससे सुलझाव तथा पथ-प्रदर्शनकी आशा करता है।

सम्पादकीय विभाग और पत्रका क्षेत्र तो उसके वरदहस्तकी छायाकी अपेक्षा करता ही रहता है। वही पत्रकी नीतिका निर्धारण करता है, उस नीतिका परिपालन कराता है और जब इसमें त्रुटि होती है तो त्रुटिकर्ताके अपराधकी विवेचना भी करता है। पत्रकी व्यवस्था, शासन और न्यायके

तीनों विभागोंका केन्द्रीकरण इसी व्यक्तिमें होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सम्पादक निरङ्कुश अथवा स्वच्छन्द शासककी भाँति है। इसके विपरीत वह खिलाड़ियोंकी टीमके कप्तानके समान है जो अपने साथियोंपर अपनी इच्छाको जबर्दस्ती लादा नहीं करता। वह स्वय सहयोगियोंकी इच्छा और भावनाकी प्रतिमूर्त्ति होता है अतः उसकी आज्ञा और इच्छा सबके लिए मान्य होती है। सम्पादक अपने सहयोगियोंको स्वयं अपने भाव और विचारसे स्फूर्ति प्रदान करता है, उन्हें काम करनेका ढङ्ग प्रदान करता है तथा अपने उज्ज्वल व्यक्तित्वसे प्रभावित करता है; वह उनके भाव और उनके विचार तथा संसर्गसे स्वयं भी स्फूर्ति ग्रहण करता रहता है। नीतिके लिए उत्तरदायी होनेके नाते पत्रकी भलाई-बुराईका सारा बोझ उसे ही वहन करना होता है। प्रत्येक सहयोगी अपने कर्तव्यको जानता है अथवा नहीं और जो काम उसके सिपुर्द है उसे योग्यतापूर्वक कर रहा है अथवा नही यह देखना सम्पादकका ही काम है।

विविध क्षेत्रोंमें कार्य करनेवाले नाना प्रकारके कार्यकर्ता उसकी अन्तर्दृष्टिके सामने रहने चाहिये क्योंकि सब उसीसे उत्प्रेरणा पाते है और सबका पथ-प्रदर्शन उसे ही करना पडता है। किसके जिम्मे कौन काम है, कौन संवाददाता कहाँ किस स्थानपर नियुक्त किया गया है, किस रिपोर्टर द्वारा भेजा गया समाचार आज पत्रका सर्वोत्कृष्ट और सबसे महत्वपूर्ण संवाद होगा, भूमण्डलके किस कोनेमें कौनसी महत्वपूर्ण घटना घटने जा रही है जिसकी गतिविधिपर तीक्ष्ण दृष्टि लगाये रहना चाहिये, जनताके सामने आज कौनसा प्रश्न सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, किस प्रश्नके गर्भमें भविष्य छिपा हुआ है जिसकी ओर सङ्केत करना चाहिये, कौनसा विषय देशके सामने उपस्थित है जिसके सम्बन्धमें विचार प्रकट करना और जनताका पथ-प्रदर्शन करना आवश्यक है, आदि तमाम बातोंपर सम्पादकके मस्तिष्कमे स्पष्ट और विशद रेखाका अङ्कन होना आवश्यक है जिसके बिना वह अपने कामको सफलतापूर्वक पूरा नहीं कर सकता।

उसका पत्र समयसे प्रकाशित हुआ या नहीं, पत्रमें छपा हुआ एक एक अक्षर उसकी नीति और मर्यादाके अनुकूल है अथवा नहीं, और कौनसी बात छपनेसे छूट गयी आदि छोटी-छोटी और तफसीलकी बातोंसे लेकर देश और जगत्के महान्से महान् प्रश्नों तक उसकी दृष्टिकी गति होनी चाहिये

दिनके वाद दिन और रातके वाद रात वीतती चली जाती है, वर्षोंका समय कट जाता है पर सम्पादकके आसनपर आसीन व्यक्तिको प्रतिक्षण यही करते बीतता है। उसे कभी अवकाश नहीं है। वह सदा जाग्रत् है, सचेष्ट है और सचेत है। भले ही सप्ताहमे किसी एक दिन पत्रका प्रकाशन न हो पर सम्पादकको तब भी अपने कामसे छुट्टी नहीं मिल सकती। पत्रका प्रकाशन न होनेसे जगत्की गतिविधिमे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह तो चलता ही रहता है अत: सम्पादकको भी उसकी चालपर निगाह रखनी होती है। उसके कार्यकी गुरुताको कानूनने भी बढ़ा रखा है। किसी थानेदारके अधीन कार्य करनेवाला पुलिसका कांस्टेबुल यदि चोरी करता या अपने काममें असावधानी करनेके लिए पकड़ा जाय तो दुनियाका कोई कानून उसके लिए थानेदारको दण्ड देनेकी व्यवस्था नहीं करता। पर सम्पादक उन सबकी गलतियों और बुराइयोंके लिए जिम्मेदार माना जाता है जो उसके अधीन काम करते हैं। यदि पत्रमें किसीकी मानहानि करनेवाली कोई बात छप जाय, कोई अश्लील विज्ञापन हो अथवा कोई ऐसा वाक्य जिसे अधिकारी पसन्द न करते हों प्रकाशित हो जाय तो दण्डके लिए सम्पादक ही पकड़ा जायगा। उक्त वाक्यके लेखकका नाम भी यदि छपा हो तो भी अपराध सम्पादक और मुद्रक तथा प्रकाशकका ही माना जायगा।

सम्पादकके पदपर प्रतिष्ठित व्यक्तिका उत्तरदायित्व यहीं समाप्त नहीं हो जाता। वह समाचारपत्र रूपी उस यन्त्रका सञ्चालक है जिसका समाजके जीवनमे गहरा प्रभाव छाया हुआ है। फलतः सम्पादकपर नैतिक जिम्मेदारी भी होती है। यदि समाचारपत्रोंका लक्ष्य केवल धन कमाना नहीं है, यदि उनका आदर्श जनहितकी रक्षा करना तथा साधारण मनुष्यका साथी, मित्र, उपदेष्टा तथा रक्षक और पथप्रदर्शक होना है तो उसका सम्पादक, सम्पादक होनेके नाते, उस विशाल जनसमूहके प्रति उत्तरदायी है जिसकी सेवा करनेके लिए उसका पत्र प्रकाशित होता है। पत्र स्वयं निर्जीव और जड़ पदार्थ है। कागजके टुकड़ोंमें जान नहीं हुआ करती। इतने परिश्रमसे तैयार किया गया पत्र अपने पाठकके हाँथमें पहुँचनेके दो घण्टे बाद रद्दीकी टोकरीमें ही स्थान पाता है। फिर उसका उपयोग भी रद्दीकी भाँति ही होता है पर इतना

ल्पकालिक जीवन लेकर भी वह सामूहिक रूपसे जन-हृदयपर
ए दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ जाता है उसे कोई अस्वीकार
। अमेरिकाके प्रसिद्ध लेखक इमर्सनने लन्दनके 'टाइम्स'की
हुए कहा है कि 'इंग्लैंड'में 'टाइम्स'के प्रभावका जितना
अनुभव किया जाता है उतना और किसीका नहीं । ऐसी अन्य कोई
शक्ति नहीं है जिससे लोग इतना डरते हों अथवा जिसकी आज्ञाका इतना
परिपालन किया जाता हो । प्रातःकाल 'टाइम्स'में आप जो पढ़ेंगे वही चर्चा
सायङ्काल समस्त सभ्य समाजमें होती दिखाई देगी । 'टाइम्स'के कान ऐसे
तीक्ष्ण हैं कि वे सर्वत्रकी बात सुन लेते हैं । तमाम बातोंकी पूरी जानकारी
उसे सबसे पहले हो जाती है । क्षण-क्षण वह बढ़ता जा रहा है और पदे-पदे
उसकी विजय होती चलती है ।'

पत्रोंकी शक्तिसे मन्त्रिमण्डल और शासक काँपते हैं । उसी शक्तिके भरोसे
वे बहुधा सरकारोंकी स्थापना और कभी-कभी विघटन तथा संहारतकमें भी
सफल होते रहे हैं । विचार करनेकी बात है कि उन कागजके टुकड़ोंमें जो
सामने आनेके घण्टे-दो-घण्टे बाद चिथड़ोंसे अधिक महत्त्व नहीं रखते,इतनी शक्ति
कहाँसे आ जाती है जिसका उल्लेख इमर्सनके समान लेखकको भी करना पड़ा
है । इस शक्तिका स्रोत वह नैतिक उत्तरदायित्व ही होता है जिसे अपने ऊपर
लादकर सम्पादक कागजके टुकड़ोंमें प्राण-सञ्चार करता रहता है । जनताका
हित और केवल उसीका हित-सम्पादन करना सम्पादककी उस शक्तिका स्रोत
है जो समाचारपत्रके स्तम्भोंके मध्यसे प्रवाहित होती दिखाई देती है । केवल
संवाद प्रकाशित कर देना और उनपर टीका-टिप्पणी मात्र करके सन्तोष कर
लेना ही सम्पादकका काम नहीं होता और न व्यापारियोंको विज्ञापनके लिए
स्थान प्रदान करके धन कमानेके लिए ही पत्रका प्रकाशन होता है । सम्पादक
एक व्यक्ति होते हुए भी संस्थाके समान है जिसकी आत्मा अपनेको
समष्टिके हितमें लय कर देती है । वह जन-चेतनाका, जनाकाङ्क्षाका, जना-
धिकार और जनहितका संरक्षक बन जाता है जिसकी रक्षा करना उसके सतत
यत्नका लक्ष्य होता है । यही कारण है कि जनताके जीवनपर पत्रका असाधारण
प्रभाव होता है ।

इस प्रभावका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग करना सम्पादकके हाथमें है। वह जनताके चरित्र और जीवनके उत्थानमें सहायक होता है और उसके पतन और विनाशका कारण भी हो सकता है। वह देशमें शान्तिकी धारा बहा सकता है और अशान्ति, विक्षोभ और द्वेषकी आग भड़का सकता है, शासकों और शोषकोंको अन्यायके पथसे विरत करनेकी चेष्टा कर सकता है और उनके हाथकी कठपुतली बनकर जनहितका संहार भी कर सकता है। अपनी नीति और लेखनीके द्वारा निर्दलितों और उत्पीडकोंके विरुद्ध, रूढ़ियों और अन्धविश्वासोंके विरुद्ध, प्रतिक्रियावादिता और स्वार्थके विरुद्ध, अन्याय और दासताके विरुद्ध उस प्रचण्ड युद्धका सूत्रपात कर सकता है जो मानव-प्रगतिका सहायक होता है और वही कुनीति तथा स्वार्थमें फँसकर और कर्तव्यसे पराङ्मुख होकर संस्कृति और उत्थानके मार्गमें बाधक बनकर उन समस्त शक्तियोंको बलप्रदान कर सकता है जो विकासके प्रवाहको रोकनेमें लगी हुई हैं। फिर विचार कीजिये कि ऐसे व्यक्तिपर कितना महान् उत्तरदायित्व होता है और उसका पथ कितना कठोर है। यही कारण है कि इस पथपर आरूढ़ होनेकी क्षमता रखनेवालेमें कौन-कौनसे गुण होने चाहिये इसकी विवेचना करना नितान्त कठिन हो जाता है। सम्पादकके सम्बन्धमें तो यह नहीं ढूँढ़ना है कि उसमे कौन-कौनसे गुण होने चाहिये बल्कि यह ढूँढ़ना चाहिये कि कौनसे गुण न होनेपर भी काम चल जा सकता है क्योंकि वास्तवमें उसको विविध गुणोंका आगार होना चाहिये।

नेता और राजनीतिज्ञ, सन्त और लेखक, उपदेष्टा और व्यवसायी, योद्धा और पण्डित, कलाकार और विवेचक आदि सभीके गुण और उनकी विशेषताएँ यदि उसमें केन्द्रीभूत हों तभी आधुनिक पत्रका कोई सम्पादक अपने समस्त कर्तव्योंकी पूर्ति कर सकता है। उसमें उज्ज्वल चरित्रके साथ-साथ विस्तृत ज्ञान होना चाहिये जिसका उपयोग समय समयपर आवश्यकतानुसार करके वह अपने पत्र और अपनी जनताके प्रति अपने उत्तरदायित्वको पूरा कर सकता है। कल्पनाकी शक्ति, भविष्यके अन्धकारका भेदन करके दूर तक पहुँचनेवाली दृष्टि और वर्तमानमें चलनेवाले राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक चक्रोंका पूर्ण ज्ञान होना भी नितान्त आवश्यक है। प्रश्नोंकी तात्विक विवेचना

करनेवाली बुद्धि और समस्याओंके मूलमें पहुँचनेवाला विवेक, सत्यकी प्रियता, निष्पक्षता, दृढ़ सङ्कल्प, न्याय्य पक्षपर अविचल आरूढ बने रहनेका साहस, मानवजीवनके प्रति हृदयमें संवेदना और उसकी प्रवृत्तियोंका परिज्ञान, भय, लोभ और स्वार्थको चरणोके नीचे दबाकर कर्तव्यकी पूर्तिमें डटे रहनेकी भावना, आदि गुणोंकी गणना करायी जा सकती है जिनके आधारपर सम्पादकके जीवन-का निर्माण होना चाहिये। उसकी नीतिका आधार न्याय और सत्य हो। इन दोनोंके लिए बडेसे-बड़ेका विरोध करना और उनके क्षोभका सामना करनेके लिए तत्पर रहना ही सम्पादकका आदर्श होना चाहिये। सत्यको छिपाना उसके लिए अक्षम्य अपराध है। किसीका भय और किसीकी कुटिल भ्रुकुटियाँ उसे इस पथसे विरत न करने पावें।

हाँ, केवल एक शर्त है जिसके लिए कभी-कभी सत्यको प्रकाशमें लाना भी रोका जा सकता है। यदि सत्य होते हुए भी किसी बातका प्रकाशन सार्व-जनिक हित और कल्याणके विरुद्ध हो तो उसका प्रकाशन रोक देना ही उचित हो सकता है। जिस जनताका वह सेवक है और जिसके हितके लिए प्रकाशित होना उसके पत्रका लक्ष्य है उसके हितके विरुद्ध कुछ भी प्रकाशित करना, चाहे वह सत्य ही क्यों न हो, किसी पत्रका कर्तव्य नहीं हो सकता। यही एक रेखा है जो पत्रोंकी स्वतन्त्रता और सम्पादककी लेखनीकी सीमा बाँध सकती है। इसके सिवा सत्यका प्रकाशन और असलकी पोल खोलना ही उसका काम है चाहे इसमें कितनी भी बाधा क्यों न पडती हो।

पूछा जा सकता है कि सत्यका प्रकाशन करनेके लिए क्या कानूनोंकी उपेक्षा करना और अपने अस्तित्व तकको खतरेमें डाल देना भी उचित है? भारत ऐसे पराधीन देशमें तो यह प्रश्न सर्वथा सङ्गत है। प्रतिदिन सम्पादकोंके सम्मुख ऐसे सवाल उठा करते हैं। किसी गाँवसे समाचार आता है कि अमुक अधि-कारी घूस लेता है और जनता पीड़ित है। कहींसे पत्र आता है कि अमुक अफसर पक्षपात करता है, अमुक जमींदार अत्याचार करता है, अमुक संस्थामें गबन हुआ है। जाँच-पडताल करनेके बाद, समाचारकी सत्यतामें सन्देह न रह जानेके अनन्तर भी बहुधा उसका प्रकाशन नहीं किया जाता क्योंकि अदालतमें अभियोग सिद्ध करनेके लिए आवश्यक और प्रबल प्रमाण प्राप्त

नहीं होते। प्रश्न होता है कि ऐसे समय किया क्या जाय? यदि बातें प्रकाशित कर दी जायँ तो पत्रपर विपत्ति टूट पड़ती है और यदि मौनावलम्बन किया जाय तो सम्पादकके महान् कर्तव्यकी अवहेला होती है। हमें अनुभव है कि बहुधा सवाद भेजनेवाले और अत्याचारसे पीडित लोग भी चाहते तो है कि समाचार छप जाय पर जब गवाही आदि देनेका अवसर आ जाता है तो बगलें झाँकने लगते हैं। अधिकारियोंके भयसे वे सत्य बात भी, जिसे कहना उन्हींके हितमें होता है, कहना अस्वीकार कर देते हैं। यह स्थिति लज्जाजनक है और प्रमाण है भारतीय समाजके नैतिक तथा चारित्रिक अधःपातका। पर प्रश्न यह है कि ऐसे अवसरपर सम्पादक, जिसका कर्तव्य ही इस स्थितिको बदलकर राष्ट्रीय जीवनमें चारित्रिक विकास करना है, क्या करे? प्रश्नका उत्तर देना कठिन हो जाता है क्योंकि इसमें व्यावहारिक कठिनाइयाँ बहुत हैं, पर जब हम सम्पादकोंके कर्तव्यकी विवेचना करने वैठते हैं तो स्पष्ट निर्णय प्रदान करना अनिवार्य हो जाता है। सम्पादकीय पदकी गुरुता और शोभाके आलोकमें उक्त प्रश्नका एक यही उत्तर हो सकता है कि यदि सम्पादक विघ्न-बाधाओंके भयसे अपने मार्गसे विरत होता है तो अच्छा है कि वह इस पदपर आनेका कष्ट ही न करे। विघ्नोंसे, अन्यायसे और निरंकुश बलधारियोकी सत्तासे सत्यको और जन कल्याणकी रक्षाके लिए भिडते रहना यदि उसका कर्तव्य नहीं है तो न उसके समाचारपत्रकी आवश्यकता है और न वह स्वयं सम्पादकके आदरणीय पदके योग्य है।

भारत ऐसे देशमें जहाँकी जनता प्रेरणाहीन और निर्जीव हो और जो चारो ओरसे सतायी जा रही हो यह कार्य और सम्पादकोंमें अपने इस कर्तव्यकी भावनाका होना तो और भी अधिक आवश्यक है। लिखने या किसी बातको प्रकाशित करनेके पूर्व यह देख लेना तो अत्यन्त आवश्यक है कि जो बात छापी जा रही है वह सत्य है या नहीं। बहुधा शिकायती चिट्ठी आदि भेजनेवाले छोटे-से मामलेको भी अतिरञ्जित बनाकर भेजते है। कभी-कभी असत्य और निराधार बातें भी भेज दी जाती हैं। द्वेषके वशीभूत होकर अथवा किसीको बदनाम करनेकी इच्छासे और कभी-कभी किसीसे वैर निकालनेके लिए या विरोधीपर अपना रङ्ग जमानेके लिए भी ऐसी कुचाले चली जाती हैं। ऐसी

चिट्ठियोंके सम्बन्धमें सम्पादकको अत्यधिक सतर्कतासे काम लेना चाहिये। आवश्यक तो यह है कि डाक वह स्वयं देखा करे और ऐसे समाचारों या संवादोंको अपने सामने ला रखनेका आदेश सहायकोंको दे दे जो किसी प्रकार सन्दिग्ध हों या कानूनके विरुद्ध पड़ते हों। सावधानीके साथ उनकी साधारता और सत्यताकी जाँच अवश्य कर ली जाय। पर यह निश्चय हो जानेपर कि घटना सत्य है, उसका प्रकाशन जनताके हितके लिए करना ही कर्तव्य है। इसके लिए यदि विपत्ति आती है तो उसका सामना करना चाहिये और यदि दण्ड मिलता हो तो उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिये। दृढ़ता और नैतिक बल तथा साहसका उदाहरण स्थापित कर वह न केवल अपने कर्तव्यका पालन करेगा बल्कि देशके उन असंख्य मूक, मरियल और निर्दलित लोगोंमें जान भी फूँकेगा जो अन्याय और असत्यके विरुद्ध, अपने स्वार्थके लिए भी, आवाज उठानेमें समर्थ नहीं होते।

शिकायती पत्रोंतक ही यह बात परिमित नहीं है। जनताके अधिकार और उसके मङ्गलके लिए यदि आवश्यक हो, यदि सत्य और न्याय इसकी अपेक्षा कर रहे हों तो समय-समयपर सरकारकी नीति तककी कड़ी टीका और आलोचना करनेमें भी पीछे न रहना चाहिये। स्पष्ट है कि इस देशकी विदेशी सरकारकी अधिकतर-नीति ऐसी रहती है जिसकी आलोचना आवश्यक हो जाती है क्योंकि उसका सारा विधान, सारी व्यवस्था और सारी नीति ब्रिटेनके हितकी दृष्टिसे सञ्चालित होती है। विदेशी सरकार न केवल अपने हितकी चिन्ता करती है अपितु उसकी पूर्तिके लिए यदि आवश्यक हो तो भारतके हितोंको निर्भयतापूर्वक कुचलकर भी अपना काम साधनेमें सङ्कोचका अनुभव नहीं करती। जिस देशकी यह स्थिति हो वहाँके पत्रोंके सम्पादक जनताकी सेवाका व्रत लेनेके बाद यदि राष्ट्रीय हितोंकी बलि चढ़ानेवाली सरकारके विरुद्ध लेखनी नहीं चलाते तो फिर उनकी उपयोगिता ही क्या है? उसपर शासकोंकी कोप-दृष्टि भहरा पड़ेगी, अधिकारियोंके कठोर पञ्जे उसका गला घोंट देनेकी चेष्टा करेंगे, कानूनोंकी लम्बी भुजाएँ उसे लपेटकर विचूर्ण कर देनेके लिए उतावली हो उठेंगी, पर सम्पादकीय पदकी मर्यादा और गौरव इस बातकी अपेक्षा करता रहेगा कि इन विपत्तियोंका सामना करनेका सङ्कल्प लेकर सम्पादक दृढ़ भावसे अपने मार्गपर चलता रहे।

सत्य और न्यायके आधारपर पत्रकी नीतिका निर्धारण करना और बहु-जनहिताय, बहु-जनसुखाय उस नीतिका सञ्चालन करना यदि भारत ऐसे पराधीन देशमें कठिन कार्य है तो स्वतन्त्र देशोंके सम्पादकोंका पथ भी सुगम नहीं रहा है। यदि यहाँ यह पुनीत कार्य बहुधा अपराध हो जाता है और सरकार सम्पादकको दण्डित कर देती है तो वहाँ भी अधिकारी सदा पत्रोंको कमसे कम क्रोधकी दृष्टिसे अवश्य देखते रहे हैं। समाचारपत्र तथा सम्पादन-कार्यके इतिहासको जब हम देखते हैं तो यही पाते हैं कि यह सङ्घर्ष उस समयसे बराबर जारी है जब आधुनिक पत्रोंके रूपमें जनशक्ति आविर्भूत हुई। आजसे प्रायः एक शताब्दी पूर्व इंग्लैण्डमें, जब वहाँके पत्र वर्षोंके कठिन युद्ध और सङ्घर्षके बाद अपनी स्वतन्त्रताका उपभोग कर रहे थे उस समय भी उनके और वहाँकी सरकारके बीच कशमकश चल रही थी। श्रीविकमस्टीडने समाचारपत्र और राज्यशक्तिकी विवेचना करते हुए एक ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख किया है जो इसपर पर्याप्त प्रकाश डालती है। महारानी विक्टोरिया ब्रिटेनके राजसिंहासनपर आसीन थी जब सन् १८५१ ईसवीके दिसम्बरमें फ्रांसकी प्रजातन्त्रात्मक सरकारके अध्यक्ष नेपोलियनने अपने पुरुषार्थ और बलपर अपनेको फ्रांसका सम्राट् बना लिया। इंग्लैण्डमे लार्ड जान रसल प्रधान मन्त्री थे। उनके मन्त्रिमण्डलमें लार्ड पामरस्टन परराष्ट्र विभागके मन्त्री थे। पामरस्टनने बिना मन्त्रिमण्डलसे राय लिये अथवा बिना महारानीको सूचना दिये नेपोलियनको फ्रांसका शाहशाह स्वीकार कर लिया और उनकी नव-सङ्घटित सरकारकी सत्ता मान ली। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके अन्य सदस्य पामरस्टनके इस कार्यसे क्षुब्ध अवश्य हुए पर तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति इस बातकी अपेक्षा कर रही थी कि नेपोलियनको सन्तुष्ट रखा जाय तथा मन्त्रिमण्डलका मतभेद भी प्रकट न होने दिया जाय। फलत. मामला वहीका वहीं रफा-दफा कर देनेकी कोशिश की गयी।

पर जनहितके लिए सदा सतर्क रहनेवाले 'टाइम्स' से 'डाउनिङ्ग स्ट्रीट' के शान्त भवनमे खेला जानेवाला खेल छिपा न रहा। एक दिन इस घटनाको प्रकाशित करते हुए 'टाइम्स'ने गम्भीर गर्जन किया और मन्त्रिमण्डलकी कड़ी टीका आरम्भ की। स्वयं नेपोलियन तक इस ब्रिटिश पत्रकी कठोर टीका और

आक्षेपसे विक्षुब्ध हो उठे और उन्होंने ब्रिटेनसे माँग की कि उसका मुख बन्द किया जाय। सरकारने चेष्टा भी की पर सफलता तो दूर रही, दो महीनेके अन्दर लार्ड जान रसलकी सरकारको ही पदत्याग करना पड़ा। उनके बाद लार्ड डरबी ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री हुए। रसलके पदत्यागसे यद्यपि डरबीको ब्रिटेनके प्रधानमन्त्रीके पदपर आसीन होनेका अवसर मिला तथापि वे ब्रिटिश पत्रोंके बढ़ते हुए प्रभावको देखकर भयभीत हो उठे। उन्होंने अपने पूर्ववर्तीकी स्थिति देखी थी और यह अनुभव कर रहे थे कि जो हुँकार रसलके पतनका कारण हो सकता है वह समय आनेपर डरबी अथवा तत्सम अन्य किसी भी राजनीतिज्ञकी सत्ताको सङ्कटमें डाल सकता है। राजनीतिज्ञोंके समान स्वार्थने पत्रोंके इस प्रभावको निरापद न माननेके लिए उन्हें बाध्य किया। पर डरबी कर ही क्या सकते थे? ब्रिटिश पत्रोंने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की थी और वे तथा उस देशकी जनता उस स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए सदा जागरूक तथा सजग दिखाई देती थी। यह सम्भव न था कि कानूनकी शृङ्खलासे उसे जकड़नेकी चेष्टा की जाय। फलतः लार्ड डरबीको जब कुछ न सूझा तो उन्होंने सम्पादकोंको उपदेश देना आरम्भ किया और एक नये सिद्धान्तका प्रतिपादन किया।

डरबीने पार्लमेण्टकी साधारण सभामें भाषण करते हुए कहा कि 'राजनीतिज्ञों और शासकोंको जनहितके लिए ही बहुत सी सच्ची बातोंको भी छिपाना पड़ता है। उनका कर्तव्य उन्हें बाध्य करता है कि कभी-कभी वे सत्यपर भी परदा डाल दें। जब हमारे देशके पत्र आज राजनीतिक मामलोंमें अपनी चोंच घुसेड़ते हैं और यह आकांक्षा करते हैं कि राजनीतिज्ञके पद और हैसियतको प्राप्त करें तो यह भी उनका कर्तव्य है कि वे राजनीतिज्ञकी जिम्मेदारियोंको समझें और उन्हें ओढ़नेके लिए भी तैयार रहें।' डरबीका यह आक्षेप 'टाइम्स' के उस कार्यकी ओर सङ्केत करता था जो उसने मन्त्रिमण्डलके रहस्यको उद्घाटित करके किया था। उस समय उक्त पत्रके सम्पादकका पद श्री डेलान सुशोभित कर रहे थे जिन्हें आज भी ब्रिटेनके पत्रकार अपने आदर्श और अपने आचार्यके रूपमें मानते हैं। डरबीके इस नये सिद्धान्तकी विवेचना करते हुए उस समय 'टाइम्स' ने अपने अग्रलेखमें जो बातें कही थीं वे आज भी सम्पादकोंके लिए

स्मरणीय तथा विचारणीय है। उसके लेखोंने वास्तवमें पत्र और उसके सम्पादकके कर्तव्य, स्वरूप और उत्तरदायित्वकी समीक्षा की थी जो सिद्धान्तरूपमें आज भी वैसी ही सत्य है जैसी उस समय सत्य थी।

'टाइम्स' कहता है कि 'एक देशभक्त और विचारशील सम्पादकका लक्ष्य सचमुच वही होता है जो किसी देशभक्त तथा विचारशील मन्त्री या प्रधान मन्त्रीका हो सकता है पर जहाँ दोनोंके लक्ष्य समान हैं वहाँ लक्ष्यकी पूर्त्तिके साधन और काम करनेकी दोनोंकी पद्धतिमें जमीन आसमानका अन्तर है। कोई राजनीतिज्ञ जो पार्लमेण्टके विरोधी दलका सदस्य होता है सरकारकी जिम्मेदारी उठानेकी अपनी तत्परता प्रकट करनेके लिए बोलता है। जो राजनीतिज्ञ पदासीन होता है वह सरकारका सञ्चालन करनेकी दृष्टिसे बोलता है। राजनीतिज्ञोंकी दृष्टि राजनीतिक समस्याओंकी विवेचनाकी ओर नहीं रहती वरन् तात्कालिक राजनीतिक प्रवाहकी गतिकी ओर रहती है। सत्यका अन्वेषक और शोधक होना उनके लिए आवश्यक नहीं होता बल्कि प्रश्नोंकी ओर तात्कालिक उपयोगिताकी दृष्टिसे ही वे देखते हैं। किसी देशको सरकार चाहे कितनी भी अन्यायमूलक क्यों न हो और क्यों न वहाँके शासक अत्याचारी हों जिनके हाथ रक्तरञ्जित दिखाई देते हों पर अन्य सरकारें उनके प्रति सम्मान प्रकट करने तथा सौजन्यका व्यवहार करनेके लिए बाध्य होंगी। जहाँ राजनीतिज्ञोंकी पद्धति ऐसी होती है वहाँ सौभाग्यसे सम्पादककी स्वतन्त्रताको आबद्ध करनेवाली ऐसी कोई श्रृङ्खला नहीं है। वह अपने लक्ष्यकी पूर्त्तिके लिए केवल तर्क और सत्यकी सहायता लेता है क्योंकि शासनके कार्य अथवा किसी सरकारी विभागसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। सम्पादक या पत्रकारका कर्तव्य वही है जो एक ऐतिहासिकका कर्तव्य होता है—सत्यकी खोज करना और पाठकोंके सामने केवल उन बातोंको रखना जो उसकी जानकारीके आधारपर सत्य प्रतीत होती हो। उसका यह कर्तव्य नहीं है कि वह उन्हीं बातोंको प्रकाशित करे जिन्हें प्रकाशित करना अधिकारी या राजनीतिज्ञ पसन्द करते हैं। फलत. राजनीतिज्ञ और पत्रकारका कर्तव्य तथा उनका स्वरूप मूलतः विभिन्न है और उन दोनोंको मिलाकर एक ही नियममें बाँधना सिद्धान्ततः और व्यवहारत. भी बिलकुल गलत तथा अनुचित है। सम्पादक या पत्रकार राजनीतिज्ञके प्रभाव और शक्तिके

इच्छुक नहीं होते। उनका अपना स्थान है जिसके आधारपर वे उस शक्ति और प्रभावके अधिकारी होते हैं जो पशु-बल तथा अक्षुण्ण शक्तिपर आश्रित सरकारें अपनी निरङ्कुशताके लिए प्राप्त करनेकी चेष्टा किया करती हैं।'

'टाइम्स' आगे कहता है 'सम्पादक जनताके विश्वास और सद्भावके आधार-पर जो शक्ति और पद प्राप्त करता है तथा उसका उपयोग जनताके प्रति अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्वका निर्वाह करनेके लिए करता है उसे हम किसी प्रकार नीचे गिरानेके लिए तैयार नहीं हैं। उसकी शक्ति और उसका अधिकार किसीसे कम हो 'या अधिक पर हम यह स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हैं कि वह मन्त्रिमण्डलके पदाधिकारियोंकी भाँति अपने ऊपर वैसे ही बन्धन लगाकर अपनी सीमाको सङ्कुचित करेगा। स्वतन्त्रतापूर्वक अपने कर्तव्यको पूरा करने तथा जनताके कल्याण और हितोंकी रक्षा करनेके लिए पत्र न राज-नीतिज्ञोंसे कोई समझौता करके अपनेको बाँध सकता है और न किसी सरकारकी सुविधाके लिए अपने नैसर्गिक अधिकारोंका त्याग कर सकता है। सम्पादकके गौरव और स्वतन्त्रताका निर्दलन उसी दिन हो जायगा जिस दिन पत्र इस प्रकार अधीनताका पद स्वीकार कर लेंगे। पत्रोंका प्रथम कर्तव्य राष्ट्रके सामू-हिक हितकी रक्षा करना है पर इसके साथ वे किसी ऐसी बातकी उपेक्षा भी नहीं कर सकते जो मानव सभ्यताके पथको कण्टकाकीर्ण बना रही हो। राज-नीतिज्ञोंके लिए आवश्यक हो सकता है कि वे स्वतन्त्रताकी पवित्र प्रतिमाको भी आवृत कर दें पर हम निर्दलित मानवाधिकारको उज्जीवित करने तथा अपने आदर्शोंकी पूजामें संलग्न रहना ही अपना कर्तव्य समझते हैं'।

विस्तारसे हमने इस घटना और इन वाक्योंका उल्लेख इसलिए कर दिया है कि पाठक भलीभाँति देख लें कि पराधीन देशोंमें ही नहीं पर स्वाधीन ब्रिटेन-के स्वाधीन पत्रोंके स्वरको भी सरकारी स्वरके अनुकूल बनाये रखनेकी चेष्टा होती रही है। पर वहाँके सचेत पत्रकार और वहाँकी जागरूक जनता अपने अधि-कारोंकी रक्षामें सावधान रही है और इसी कारण अपने पद और गौरवकी रक्षा करनेमें ब्रिटिश पत्र सफल होते रहे हैं। पदाधिकारियों और सरकारको चलाने-वाले राजनीतिज्ञ यदि कानून द्वारा सम्पादकोंकी लेखनी कुण्ठित कर सकते तो कदाचित् वैसा करनेसे न चूकते। पर जब उधर खतरा दिखाई दिया

और जनक्षोभके भयने आगे बढने न दिया तो सिद्धान्तोंकी रचना और स्थापना करके उनके आवरणमें पत्रोंको दबाये रखनेका यत्न किया गया। यह है मनोवृत्ति उन वर्गोंकी जो शासक-पदपर आरूढ हुआ करते हैं। इस स्थितिमें भारतीय सम्पादक जो निरङ्कुश, स्वेच्छाचारी और अनुत्तरदायी विदेशी सरकारके अधीन हैं प्रतिक्षण शासकोंकी कोपाग्निमें भस्म होनेके लिए तैयार न रहे तो वे अपने कर्तव्यकी रक्षा कर ही नहीं सकते।

'टाइम्स'ने अपनी पंक्तियोंमें सम्पादकके कर्तव्य, उत्तरदायित्व और आदर्शकी जो रूपरेखा खींची है वह एक शताब्दी पूर्व जितनी सत्य थी उतनी ही सत्य आज भी है। इसी कारण हमने बार-बार कहा है कि सर्वत्र ही और भारतमें विशेषकर पत्रकारका पेशा उत्सर्ग, कष्टसहन और तपका पेशा है। यहाँकी जनता गिरी हुई, देश पराधीन, सरकार निरङ्कुश और विदेशी है। इन भयानक आवर्तोंके बीचसे सम्पादकको अपनी नैया खेकर आगे लेजाना है। देशको उठाना है, जनहितकी रक्षा करना है, सत्य और न्यायपर मर मिटना है, राष्ट्रकी स्वतन्त्रताको पुनः स्थापित करना है और प्रगति तथा सभ्यताके विकास-पथको प्रशस्त करनेमें अपनी शक्ति लगा देना है। भारतीय पत्रोंकी नीति इसी लक्ष्यके आधारपर स्थिर हो सकती है पर उस नीतिके सञ्चालनमें स्वार्थी, अधिकार-लोलुप और शोषक शासकोंके प्रचण्ड प्रहारोंका सामना पदे-पदे करना होगा। वे सत्यको आवृत करेंगे, न्यायका गला घोंटेंगे और पत्रोंको कर्तव्यसे विमुख करनेमें अपने समस्त बलका उपयोग तक करना अनुचित न समझेंगे। ऐसी दशामें हमारे सम्पादकका चरित्र कैसा होना चाहिये और उसमें किन गुणों और विशेषताओंकी आवश्यकता है इसपर स्वयं वे ही विचार कर लें जो इधर आना चाहते हैं।

———

सम्पादकीय कार्य

सम्पादकके नैसर्गिक गुणों और उसके व्यापक उत्तरदायित्व तथा आदर्शकी विवेचना हमने कर दी पर सम्पादकको सम्पादकीय कार्यके सम्बन्धमें भी कुछ जाननेकी आवश्यकता होती है। सम्पादक पत्रकार-मण्डलका उच्चतम पदाधिकारी होता है फलतः यह आवश्यक है कि पत्रकारोंके विभिन्न और समस्त विभागोंके कार्यका पूरा-पूरा ज्ञान उसे हो। यद्यपि सम्पादक न रिपोर्टिङ्ग करता है, न संवाद सङ्कलनका कार्य, न अनुवाद करता है न प्रूफ-संशोधन, न मेक-अप करता है न पत्रको सजानेका काम तथापि उसे इन तमाम कार्यों और विषयोंका पूरा जानकार होना आवश्यक है। आवश्यकता पड़नेपर उसे इन तमाम कामोंको करनेमें समर्थ होना चाहिये। जबतक पत्र सम्बन्धी सब बातोंमें वह पारङ्गत न होगा तबतक अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंका न मार्ग-प्रदर्शन कर सकता है और न उनपर उसके व्यक्तित्वकी छाप बैठ सकती है। इसीलिए अच्छा यह समझा जाता है कि जो व्यक्ति सम्पादकके आसनपर आसीन होनेके पूर्व इन तमाम कार्यों और श्रेणियोंसे गुजर चुका होता है वह अपेक्षाकृत सीधे कुरसीपर आकर बैठ जानेवाले सम्पादकसे कहीं अधिक सफल और कार्यक्षम सिद्ध होता है।

आधुनिक पत्रका सम्पादक किसी विशेष कार्यके लिए जिम्मेदार नहीं होता। यूरोप और अमेरिकाके पत्रोंके सम्पादक सम्भवतः एक पंक्ति भी लिखनेका अवकाश नहीं पाते। एक समय था जब वे अग्रलेख और टिप्पणियाँ लिखा करते थे, चिट्ठी भेजनेवालोंका उत्तर दिया करते थे और बहुधा पत्रोंमें छिड़ जानेवाले विविध-विषयक विवादोंमें भाग लिया करते थे पर अब यह स्थिति बदल सी गयी है। अग्रलेख और टिप्पणियोंतकके लिए अलग लेखक नियुक्त किये जाते हैं जिनका काम ही यह होता है कि वे प्रतिदिन लेख दे दिया करें। एक ही व्यक्ति सब विषयोंका पूरा पण्डित नहीं हो सकता और न सब विषयोंपर अधिकारपूर्ण लेखनी ही चला सकता है अतः ब्रिटिश और

अमेरिकन पत्र विभिन्न विषयोंके लिए विभिन्न लेखक नियुक्त करते हैं। भारतके पत्रोंकी यह स्थिति नहीं है। कुछ अंग्रेजी भाषाके भारतीय पत्र तो अग्रलेख-लेखकोंसे काम लेते भी हैं पर देशीभाषाके दैनिक पत्रोंमें शायद ही कोई ऐसा हो जहाँ इस प्रकारकी व्यवस्था हो। हिन्दीपत्रोंकी आर्थिक स्थिति तो और भी बुरी है। अधिकतर पत्रोंके सम्पादक न केवल अग्रलेख और टिप्पणी लिखकर छुट्टी पाते हैं वलिक उन्हे अनुवाद करना पडता है, प्रूफ भी देखना होता है और कभी-कभी संवाद-सङ्कलनमें भी सलग्न होना पडता है। फलतः इस देशके सम्पादकको पत्र-विषयक समस्त कार्योंसे पूर्णत अभिज्ञ होना नितान्त आवश्यक है।

पर इसका यह अर्थ नहीं है कि सम्पन्न पत्रोंके सम्पादक, जिन्हें उपर्युक्त कार्य न करने पडते हों सब बातोंसे परिचित न रहे। यूरोप और अमेरिकाकी पत्रकला बड़ी उन्नत स्थितिमें पहुँची हुई है। वहाँ सम्पादक यद्यपि अग्रलेखादि भी नहीं लिख पाता तथापि उसे कामके भारी बोझसे पिसना होता है। लेख भी न लिखनेके दो कारण विशेष रूपसे उपस्थित रहते हैं। पहिली बात तो यही है कि सम्पादकके ऊपर इतना कार्य-भार रहता है कि उसे लिखनेका अवकाश बहुत कम मिलता है। दूसरा कारण यह है कि आजके पत्र केवल एक, दो या तीन विषयोंसे ही सम्बन्ध नहीं रखते। राजनीति, परराष्ट्रनीति, अर्थनीति, शासननीतिसे ही उनका काम नही चलता; विज्ञान, साहित्य, कला, दर्शन, नृत्य, अभिनय, चित्रपट, व्यवसाय, वाणिज्य, कृषि आदि जीवन सम्बन्धी सभी विषय उनकी समीक्षाके अन्तर्गत आते हैं। एक व्यक्ति चाहे कितना बड़ा विद्वान् क्यों न हो सब विषयोंका विशेषज्ञ नहीं हो सकता। आजका युग विशेषज्ञोंका है अत' आवश्यक होता है कि नानाविध विषयोंकी समीक्षाके लिए एकाधिक व्यक्ति नियुक्त किये जायँ जो तत्सम्बन्धी लेख लिखा करें। इन्ही कारणोसे वहाँके सम्पादकोंको अधिक और प्रतिदिन लिखनेकी आवश्यकता नहीं पडती। पर इस भारसे मुक्त होकर भी वे कामके बोझसे दबे रहते है।

सम्पादक पत्रका सूत्रात्मा होता है जिसमे सभी विभागोंके लोग अपने-अपने स्थानपर मालाकी मनियाकी तरह पिरोये हुए रहते हैं। आधुनिक पत्रके कार्यालयमें चले जाइये और देखिये कि उसके कामका विस्तार कितना फैला

हुआ है। देशके कोने-कोनेमें संवाददाता होते हैं, विदेशोंमें संवाद भेजनेवाले नियुक्त किये जाते हैं, रिपोर्टर होते हैं, विशेष घटनाओं और कार्योंके लिए विशेष संवाददाता तथा विशेष विषयोंके लेखक होते हैं। इनके सिवा समाचार एजेन्सियोसे दुनियाके कोने-कोनेके समाचार आते रहते है। देश और विदेशकी राजनीति, अर्थनीति, व्यापार-वाणिज्य-नीति सम्बन्धी समाचारोके सिवा जगत्‌की प्रमुख आकस्मिक तथा साधारण घटनाओंके संवाद पहुँचते रहते हैं। पत्रोमे मनोविनोद, रेडियो, सिनेमा, थियेटर, नृत्य, सङ्गीत, साहित्य, विज्ञान, अदालतमे चलनेवाले मामलो आदिके सम्बन्धमें समाचारोके स्तम्भ अलग होते है। अब घुडदौड, सट्टा, खेल, शब्द-पहेली-प्रतियोगिता, फैशन, रहन-सहन, विभिन्न देशोंके सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी मनोरञ्जक रीति-रिवाज, सार्वजनिक संस्थाओं तथा पुस्तकों आदिकी आलोचना भी पत्रोंके मुख्य विषय हो गये हैं। चित्र, व्यङ्ग्य चित्र, मानचित्र, विज्ञापन आदिके प्रदर्शन विशेष रूपसे किये जाते है। ये तमाम मसाले आठ या दस घण्टेके बीच पत्रोंमें एकत्र कर दिये जाते हैं। ध्यान रखना होता है कि असत्य, मानहानिकर तथा भ्रष्ट और अश्लील बातोंका समावेश न हो जाय।

विचार करनेकी बात है कि यह सारा काम थोडेसे समयमें पूरा करना कितना आश्चर्यजनक है। थोड़ेसे व्यक्तियोके किये सब नहीं हो सकता। इसलिए सुसङ्घटित और आयोजित ढङ्गसे प्रबन्ध करना पड़ता है। सम्पन्न और सब दृष्टिसे परिपूर्ण पत्रके सर्वाङ्गीण कार्यालय इस सङ्घटन और आयोजनके अद्भुत नमूने होते हैं। सम्पादकीय विभाग पत्र-उत्पादन और निर्माण-क्रियाके अनेक विभागोंमे एक विभाग है और इस एक विभागको भी कामकी सुविधाकी दृष्टिसे अनेक छोटे-छोटे विभागोसे बॉट देना होता है। सम्पादकके अधीन अनेक सहायक सम्पादक होते हैं। इन सहायकोकी छोटी-छोटी टुकडियाँ बन जाती है। पर-राष्ट्रविभाग, राजनीति-विभाग, अर्थनीति विभाग, व्यवसाय-विभाग, विज्ञान-विभाग, स्थानीय विभाग, देशी और विदेशी विभाग और इसी प्रकार आवश्यकताके अनुसार अनेक विभाग एक-एक योग्य सहायक सम्पादकके अधीन हो जाता है। उन सबके ऊपर प्रधान सहायक सम्पादक होगा जो आनेवाले समाचारों और तारोको विभिन्न विभागोके पास भेजता

रहता है। बड़े पत्रोंमें प्रधान सहायकके नीचे समाचार-सम्पादक होते हैं जो आनेवाले तारों और पत्रोंकी छँटाई करके विभिन्न विभागोंके पास उन्हें भेजते रहते हैं। उस दशामें प्रधान सहायक दूसरे जरूरी काममें व्यस्त रहता है। पत्रका मेक-अप कैसा हो, पृष्ठका प्रमुख शीर्षक क्या हो, किस प्रकार आज कौन-सा संवाद प्रदर्शित किया जाय, सब काम समयसे हो आदिकी देखरेख उसके अधीन होती है।

तैयार कापियोंका कम्पोज होना और प्रूफ-संशोधन अलग होता रहता है। इस प्रकार एक ही सम्पादकीय विभागके अनेक उपविभाग स्वतन्त्र रूपसे काम करते रहते हैं पर जहाँ अलग-अलग यह होता रहता है वहाँ उसे एक सूत्रमें बाँधे रहनेकी भी आवश्यकता होती है। पत्र आपके सामने विच्छिन्न और अव्यवस्थित टुकड़ोंमें नहीं प्रत्युत अपनी सम्पूर्णतामें आता है। फलतः विभक्त होकर काम करते हुए भी सम्पादकीय विभागका काम व्यवस्थित और एकात्मक होना चाहिये। इस एकसूत्रताका आधार सम्पादक होता है। सारे विभाग उसीके अधीन हैं और वही उन सबके लिए उत्तरदायी है। उसकी नीति न केवल लेखोंमें बल्कि सवादोंमें भी झलकती दिखाई देती है। संवादोंको उपस्थित करनेके ढङ्ग, उनके शीर्षक और उनके प्रदर्शनसे ही यह पता चल जाता है कि प्रश्न-विशेषके सम्बन्धमें पत्रकी नीति क्या है। सम्पादकका व्यक्तित्व और पत्रका आदर्श पङ्क्ति-प्रतिपङ्क्तिसे ही प्रकट हो जाता है। सारे आयोजन, सारी व्यवस्था, सारे ढङ्गपर सम्पादककी छाप होती है जो पत्रको अपनी पूर्णतामें उपस्थित करता है। यह बात कहनेमे कुछ नहीं मालूम होती पर करते हुए यही इतना बड़ा काम हो जाता है जिससे अवकाश पाना सम्पादकके लिए कठिन होता है। पत्रका एक संस्करण समाप्त हुआ कि दूसरेकी तैयारी आरम्भ हो जाती है। सम्पादक अपने विभागके मुखियोंका सम्मेलन करता दिखाई देता है। आजके समाचारोसे भावी प्रश्नोका जो सङ्केत मिला है उसके अनुसार सम्पादक विविध समस्याओंके सम्बन्धमें अपनी दृष्टि स्थिर कर लेता है। अमुक बातका समर्थन करना है, अमुकका विरोध, अमुकका विशेष रूपसे प्रदर्शन करना है, अमुकको जनताकी दृष्टिके सामने विशेषरूपसे लाना है, अमुक बातकी ओर साधारण लोगोंकी दिलचस्पी अनिवार्यरूपसे होगी, वे उसके

सम्बन्धमें अधिकाधिक जानना चाहेंगे अतः विस्तृत विवरण और विवेचना होनी चाहिये, आदि तमाम बातें कलके लिए स्थिर हो जाती हैं।

इन सबके लिए सम्पादक ही मार्ग-निर्धारण करता है। यदि देश-विदेशकी अमुक-अमुक घटनाओंकी जानकारी विशेष रूपसे होनी चाहिये तो उसके लिए संवाददाताओंको आदेश भेजना, विशेष संवाददाताओंकी आवश्यकता हो तो उन्हें नियुक्त करना तत्काल आवश्यक होता है। लेखक किस विषयपर लेख लिखे, कलके लेखमें प्रश्न-विशेषके सम्बन्धमें क्या दृष्टिकोण ग्रहण किया जाय आदि बातोंका निर्णय सम्पादकको ही करना होता है। संस्करण प्रकाशित होते ही पत्रकी समीक्षा कर कौन बात छूट गयी, कौन अनावश्यक बात छप गयी, कहीं कोई बात नीतिके विरुद्ध तो नहीं हुई, पत्रको अधिक सुन्दर बनानेके लिए और क्या किया जा सकता था, आदि बातोंके सम्बन्धमें सहायकोंको तत्क्षण सम्पादक आदेश देगा। इस प्रकार छोटीसे छोटी तफसीलकी बातसे पत्र-विषयक बडीसे बडी बातका निर्णय उसे ही करना होता है अतः प्रत्येक विभागपर, प्रत्येक सहयोगीपर, प्रत्येक प्रश्न और प्रत्येक समस्यापर सजगताके साथ प्रत्येक क्षण उसकी दृष्टि पडती रहनी चाहिये। किस तेजी और सतर्कता, और उत्तेजित स्थितिमें वह काम करता रहता है? यही कारण है कि लेख लिखने या अनुवाद करने या मेक-अप करने जैसे तफसीलके कार्योंमें वह अपना समय नहीं लगा पाता।

उसके कामके स्वरूपका जो चित्र खींचा गया है उसके अनुसार उसके लिए आवश्यक योग्यताओंका उल्लेख सहज ही किया जा सकता है। शीघ्र निर्णयपर पहुँचनेकी शक्ति, दूरकी सूझ, पारदर्शी दृष्टि, समाचारकी चेतना, जनताकी मनोवृत्ति और रुचिका ज्ञान, सहयोगियोंसे सहयोग पानेकी क्षमता, शारीरिक और मानसिक श्रम करने योग्य स्वास्थ्य, विभिन्न विषयोंका व्यापक ज्ञान, अपने कामसे पूर्ण परिचय, तीव्र स्मरण-शक्ति, व्यवस्थित ढङ्गसे काम करनेका अभ्यास, समयकी पाबन्दी, आदि गुणोंका होना आवश्यक है। एक दिनमें इन तमाम बातोंकी उपलब्धि नहीं होती। वर्षोंके परिश्रम, अध्यवसाय और अभ्यासके द्वारा जिस व्यक्तिने इन्हें प्राप्त किया हो वह सफल सम्पादक हो सकता है। उसका व्यक्तित्व उसके सहायकों और सहयोगियोंपर

छाया रहेगा, उसके आदर्शसे वे सब आपादमस्तक ओतप्रोत रहेंगे और उसके पत्रमें उसीकी आत्मा झलकती दिखाई देगी।

हमारे देशमे सम्पादकोंके लिए अग्रलेख लिखना आवश्यक-सा होता है। हिन्दी पत्रके सम्पादक तो अनिवार्य रूपेण यह काम करते ही हैं। जो सम्पादक इस भारसे मुक्त रहते हैं उन्हे भी बहुधा नहीं तो यदाकदा अग्रलेख लिखना ही पडता है। पत्रका यह स्तम्भ अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। पश्चिमके समाचारपत्रोंमें इसकी महिमा घटती जा रही है पर भारतमे अब भी सम्पादकीय स्तम्भ पत्रोंके प्राण समझे जाते हैं और पाठक उन्हे आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। सार्वजनिक जीवनपर उन स्तम्भोका खास प्रभाव भी होता है। सम्पादक इन स्तम्भोंके लिए विशेष रूपसे उत्तरदायी होता है अत. उनकी ओर विशेष सावधानी तथा सतर्कता बरतनेके लिए भी बाध्य होता है। अग्रलेख लिखना सरल काम नहीं होता। उसके लिए कई बातोंपर ध्यान देनेकी आवश्यकता होती है। निर्धारित स्थान होता है, समय बँधा होता है, नया विषय होता है, सम्पादकको अपना दृढ मत प्रकट करना पडता है, पत्रकी नीतिका निदर्शन करना होता है, प्रमाण और जिम्मेदारीके साथ लिखना पडता है और ऐसे लोगोंके लिए लिखना होता है जिनका ज्ञान और जिनकी बुद्धि साधारण होती है। इसके सिवा पाठकोंकी रुचिका ध्यान रखना पडता है और साथ-साथ उनके मनपर वह छाप भी डालनी पडती है जो जनमतका निर्माण करनेमें समर्थ होती है। कानूनकी चिन्ता करनी पडती है, देश-हितको सामने रखना पडता है, सत्य और न्यायका पक्ष लेना पडता है, ताजेसे ताजे और सामयिक तथा महत्वपूर्ण प्रश्नको चुनकर विवेचना करनी पडती है। अपनी बुद्धि और कल्पनाके द्वारा ही यह निर्णय करना पडता है कि आजका अमुक विषय सबसे महत्वपूर्ण है जिसके सम्बन्धमे पत्रके पाठक स्पष्टीकरणकी आशा अपने पत्रमे कर रहे होंगे।

समयका महत्त्व सबसे अधिक होता है। कभी-कभी तो यहाँतक नौबत आती है कि लिखे हुए और कम्पोज हो चुके अग्रलेखको रोककर नवागत किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर तुरत बिलकुल नया लेख तैयार कर देना पडता है। दैनिक पत्रके सम्पादककी तेजीकी कल्पना करना साधारण साहित्यिक लेखको

या ग्रन्थकारोंके लिए कठिन होता है। उसकी लेखनीकी स्याही सूख भी नहीं पाती कि उसे पुनः तीव्रगतिसे चलते आप देखेंगे। ऐसी अवस्थामें अग्रलेख लिखना एक कला मानना चाहिये। सम्पादक होनेका इच्छुक किस प्रकार यह गुण प्राप्त कर सकता है और पत्रके लिए लेख लिखते समय किन बातोंका ध्यान रखना चाहिये इसकी विवेचना हम किसी अगले अध्यायमें करेंगे, यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त है कि इस कार्यको उठानेवालेका मस्तिष्क यदि उचित बौद्धिक उन्नति तथा ज्ञानका आधार उपस्थित कर रहा हो तो कुछ दिनोंके अभ्यासके बाद इस दिशामें अच्छी गति हो जाती है। आवश्यकता इस बातकी है कि लेखकका ज्ञानक्षेत्र विस्तृत हो। आधुनिक इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्रका काफी अच्छा ज्ञान तथा अध्ययन हो, बुद्धि मौलिक तथा सूक्ष्मता लिये हुए हो और दृष्टि तनिक तीक्ष्ण हो तो शीघ्र ही इस कलाका अभ्यास हो जाता है। सम्पादकके लिए आवश्यक है कि उपर्युक्त विषयोंके सिवा अधिकसे अधिक अन्य जितने विषयोंका साधारण ज्ञान प्राप्त कर सके प्राप्त करनेकी चेष्टा करे। थोडा-थोडा परिचय बहुतसे विषयोंका होना उसके लिए आवश्यक है। साथ ही उसमे यह गुण हो कि अपरिचित विषयोंके सम्बन्धका ज्ञान जहाँसे मिल सकता हो वहाँसे तत्क्षण लेकर उनके तन्तु एकत्र कर सके।

इसके सिवा भाषापर अधिकार हो। प्रौढ़, प्राञ्जल, भावपूर्ण और अर्थ-गर्भित किन्तु स्पष्ट, संयत और सरल ढङ्गसे लिखी गयी भाषा प्रभावकर होती है। विशेषता यह होनी चाहिये कि संक्षेपमें उन तमाम भावोंकी अभिव्यक्ति की जा सके जिन्हें व्यक्त करना लेखका उद्देश्य है। 'करत-करत अभ्यासके' ये तमाम बातें सुलभ हो जाती हैं। अग्रलेखके अलावा सम्पादकोंका एक विशेष कार्य उन चिट्ठियोंका सम्पादन भी है जो विभिन्न स्थानोंसे उसके पास प्रकाश-नार्थ आती हैं। 'डाकका यह थैला' पत्रोंका आवश्यक अङ्ग होता है। उनके द्वारा पत्रकी लोकप्रियता बढ़ती है और चतुर सम्पादक यदि सूक्ष्मसे काम ले तो उनके द्वारा यह भी भाँप लेता है कि उसका पत्र कितना प्रभावकर हो रहा है और उसकी नीतिके सम्बन्धमें साधारण जन-समुदायके क्या विचार हैं तथा जनता उससे और किन बातोंकी अपेक्षा कर रही है। यदि पत्रमें त्रुटि हो या

कोई कमी हो तो उसका पता भी इन पत्रोंसे चल जाता है जिसे सरलता-पूर्वक दूर करनेकी चेष्टा की जा सकती है। यही कारण है कि सम्पादक इस थैलेको स्वयं देखनेका समय निकालनेकी चेष्टा करते हैं। आवश्यकता इस बातकी होती है कि अधिकसे अधिक चिट्ठियोंका प्रकाशन किया जाय।

यह ठीक है कि पत्रमे स्थानकी कमी होती है और चिट्ठियोंको प्रकाशित करनेके लिए यह समस्या परेशान करती रहती है पर जहाँतक सम्भव हो यह काम करना पत्रोंके लिए हितकर होता है। लोकप्रियताकी वृद्धि और बिक्रीको बढ़ानेके लिए तो यह अमोघ औषध है। चिट्ठी भेजनेवाले सुदूर गाँव और कस्बेके लोग अपनी चिट्ठीको प्रकाशित देखकर एक प्रकारकी निकटता और स्नेहका अनुभव करने लगते हैं। समझते हैं कि उनका पत्र उनके साथ है, दुखमें, सुखमें हर तरहसे सहायक है। इसके सिवा एक बात और है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। समाचारपत्रोंमें प्रकाशित अपना नाम देखकर लोग कितने प्रसन्न और उत्तेजित हो जाते हैं इसका अनुभव जिन्हे होगा वे जानते होंगे कि इन चिट्ठियोंका प्रकाशन पत्रकी लोकप्रियताको बढ़ानेमे कितना सहायक होता होगा। एक कहानी है कि ब्रिटेनमें एक बालिका टेलिफोन-की डाइरेक्टरीमे अपना नाम प्रकाशित हुआ देखकर इतनी प्रसन्न और उत्ते-जित हो उठी कि उसका सारा शरीर काँपने लगा। इस तरहका प्रभाव अकसर होता है और जिनका नाम छप जाता है वे पत्रके न केवल ग्राहक हो जाते हैं अपितु प्रचारक भी। फलतः यथासम्भव उनका प्रकाशन आवश्यक है। स्थानकी कमी हो तो पत्रोंका सार लेकर, व्यर्थकी भूमिकाको काट-छाँटकर, कभी-कभी दो दो वाक्योंमे आशयमात्र ग्रहण करके नाम सहित छाप देनेकी चेष्टा करनी चाहिये। सम्पादकको इतना अवश्य देख लेना चाहिये कि पत्रोमे कोई मान हानिकर अथवा तत्सम बातें न हों।

सम्पादककी सफलताके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि वह अपने देशमे, समाजमें तथा साधारण रूपसे जगतमें समय-समयपर बहने-वाली धाराओंके प्रवाहसे पूर्णतः परिचित हो। विभिन्न प्रश्नोंके सम्बन्धमें अपना मत स्थिर करनेमें तथा उपयुक्त मत प्रकट करनेमे उसे इस बातसे बड़ी सहायता मिलेगी। हमारे देशमें यह बड़ी भ्रान्त धारणा है कि सम्पादकको सक्रियरूपसे

दिन लन्दनके एक क्लबमें ब्लूमफील्ड अपने एक मित्रके साथ खाना खा रहे थे। उनके मित्र भी एक दूसरे पत्रके सम्पादक थे और अपनी विद्वत्ता तथा गम्भीर अध्ययन-शीलताके लिए प्रसिद्ध थे। दैवात् उसी समय एक पादरी भी वहाँ आ गये। उन्होने भी उन दोनोंके पास ही आसन जमाया। ये तीनों खाना खाते हुए आपसमें बातचीत करते जाते थे। यकायक पादरीने रूसकी महारानी मेरीके एक पत्रकी चर्चा की जो उनके पास आया हुआ था। रूसकी महारानी मेरी इग्लैण्डकी महारानी एलेक्जाड्राकी वहिन थी। पादरीने वह पत्र उन लोगोको दिखा दिया। पत्रमें उन्होंने रूसके शाही परिवारके क्रान्तिकारियोंद्वारा कत्ल किये जानेकी घटनाका सविस्तर वर्णन किया था। यह सन् १९१७ की घटना है जब रूसमें बोलशेवी क्रान्ति हुई थी।

'ब्लूमफील्डने भोजन समाप्त करके उसी समय अपने कार्यालयकी राह ली। पादरीके पत्रके आधारपर उन्होंने रूसी शाही परिवारकी हत्याका विस्तृत विवरण तैयार किया, आवश्यक चित्रो सहित उसके सम्बन्धमे नोट लिखे और दूसरे दिन प्रकाशित होनेवाले अपने पत्रके प्रथम पृष्ठपर प्रमुख रूपसे उसे छाप दिया। दूसरे दिन इस सनसनीदार समाचारके कारण उनके पत्रकी धूम मच गयी। पर दूसरे सम्पादक महोदयने, जो उनके साथ ही खाना खा रहे थे और सब समाचार जानते थे यह सोच भी न सके कि उसका उपयोग किया जा सकता है। ब्लूमफील्डको सन्देह था कि कदाचित् उक्त दूसरे सम्पादक महाशय भी अपने पत्रमे उन समाचारोंको छाप देंगे। प्रातःकाल उठकर पहला काम उन्होने यही किया कि अपने गत रात्रिके साथीके पत्रका एक-एक कोना देख डाला। कहीं उस समाचारका नाम-निशान भी न था। ब्लूमफील्ड बड़े प्रसन्न हुए पर उन्हे आश्चर्य भी हुआ कि उनके साथीके ऐसा करनेका कारण क्या था। फलत. उन्होने उन्हे टेलिफोन किया और पूछा कि उस समाचारकी ऐसी उपेक्षा क्यो की गयी। उत्तरमे उक्त सम्पादकने कहा 'आप जानते हैं कि मै कोई बात तबतक नहीं छापता जबतक प्रामाणिक ढङ्गसे प्राप्त न हो। मामला जरूर सङ्गीन और महत्वपूर्ण था लेकिन मैने उसे छापना उचित न समझा।'

पाठक देखें कि किस प्रकार बिना माँगे अन्तर्राष्ट्रीय महत्वका समाचार आ टपका और एक चतुर सम्पादक, जिसकी समाचार-भावना जाग्रत् हो, कैसे

लाभ उठानेमें समर्थ हुआ। पत्रकार-जीवनका जिन्हें अनुभव है वे जानते हैं कि मिलने-जुलनेसे अनायास ऐसे समाचार मिल जाते है।

सम्पादकोंके सम्बन्धमें उनके गुणों और उनकी विशेषताओ, उनके आदर्श और उनके उत्तरदायित्वके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा जा सकता है पर आवश्यक बातोंकी चर्चा मात्र करके हमें सन्तोष करना पडता है। फिर तमाम बातोंको विवेचना करके ग्रन्थका कलेवर बढाना अनावश्यक भी है। पुस्तकमें उन गुणोंकी चर्चा करके अथवा उन्हे पढकर न कोई सम्पादक बनाया जा सकता है और न कोई बन सकता है। थोडीसी आवश्यक आरम्भिक बातोंका उल्लेख केवल इस दृष्टिसे किया गया है कि इस दिशाकी ओर जो अग्रसर हो वह बढनेके पूर्व अपनी समीक्षा करले। देखले कि वह उस उत्तरदायित्वका भार वहन करनेकी शक्ति रखता है अथवा नही जिसे उठानेके लिए तत्पर हो रहा है। वह आदर्शवादिता और वे मानसिक, शारीरिक तथा नैसर्गिक गुण उसमें है या नही जो किसीको सफल सम्पादक बना सकते हैं; दिन-प्रतिदिन कठोर अध्यवसाय और गहरा अभ्यास करके अपनी कलाको धीरतापूर्वक सीखनेकी क्षमता उसमे है या नहीं। इन प्रश्नोंका उत्तर स्वयं देकर जो इधर आयेगा वह जीवनमें सफलता प्राप्त करेगा और जनसेवाके इस कठोर पथपर प्रसन्नतापूर्वक चल सकेगा।

सभी स्वीकार करेंगे कि यह मार्ग कण्टकाकीर्ण है जिसमें सतत सङ्घर्ष और विघ्न-बाधाओंका सामना करनेके लिए तत्पर रहना पडता है। किसी व्यक्तिके लिए इस प्रकारका जीवन अङ्गीकार करना सरल नहीं है, पर सरल नहीं है इसीलिए सम्पादक समाजका सम्मानित और विशिष्ट व्यक्ति होता है जिसे सब आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। उसका त्यागमय, तपस्वी और आदर्शवादी जीवन ही उसकी शक्तिका स्रोत है। जिसमें यह सामर्थ्य न हो कि इस पथका पथिक बनकर सङ्कटोंका आवाहन कर सके उसकी भलाई इसीमें है कि वह जीवनोपायका दूसरा रास्ता ढूँढ निकाले। पत्रकारीके बाह्य आकर्षणोंसे आकृष्ट होकर बहुतसे नवयुवक इधर आते हैं पर वे नहीं जानते कि ऊपरी आवरणके भीतर वह आग जलती रहती है जिसमे अपनी आहुती देनेवाले साधकको ही प्रवेश करना चाहिये। पत्रकार-जीवन क्षण क्षण नवीनता, स्पन्दन, स्फूर्ति और गतिको

लहरियोंमें लहराता हुआ देखनेमें जितना आकर्षक ज्ञात होता है उतनी ही महती साधना, सतर्कता, आदर्शवादिता तथा नैष्ठिक व्रत और उत्सर्गकी अपेक्षा भी करता रहता है। आजका नवयुवक इस अङ्गकी ओर नहीं देखता। वह उस शक्ति, सम्मान और भावनासे प्रलुब्ध होकर दौड पडता है जो सम्पादकको परिवेष्टित किये दिखाई देती हैं फिर भले ही उसमें योग्यता, क्षमता और आदर्शवाद तथा तपका अभाव ही क्यों न हो जो उक्त पदपर आरूढ होनेके लिए आवश्यक होते हैं। जरूरत इस बातकी है कि ऐसे लोग वस्तु-स्थितिसे परिचित हो जायँ क्योंकि इसीमें उनका हित है और इसीमें पत्रकारीके गौरवकी रक्षा है।

सहायक सम्पादक-उपसम्पादक

सम्पादक समाचार-पत्ररूपी जलपोतका यदि कप्तान है तो उसके यन्त्रका मुख्य सञ्चालक वह सहायक सम्पादक या उपसम्पादक है जो वास्तवमें विशाल जगत् उदधिमें उसके सफल सन्तरणके लिए जिम्मेदार होता है। विदेशी समाचारपत्रोंके कार्यालय सम्पादकके सिवा अन्य अनेक सहायकोंकी नियुक्तिपर चलते हैं जो विभिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं। सहायक सम्पादक, समाचार-सम्पादक, उप-सम्पादक आदि कतिपय प्रकारके सम्पादकोंकी रचना समाचार-पत्रोंके आधुनिक स्वरूप और उसके विस्तारने अनिवार्य कर दी है। पूर्व पृष्ठोंसे पाठकोंको यह आभास भलीभाँति मिल गया होगा कि आजके समाचारपत्रोंका प्रकाशन विराट् आयोजनके आधारपर होता है क्योंकि उन्होंने जगत्के अङ्ग-प्रत्यङ्गको अपने क्षेत्रके भीतर कर लिया है। ऐसी अवस्थामें किसी समाचारपत्रके एक भी संस्करणका प्रकाशन किसी एक दो अथवा चार छः व्यक्तियोंके लिए नहीं हो सकता। वह परिणाम होता है ऐसे सैकड़ों व्यक्तियोंके परिश्रम और अध्यवसायका जो उसके विभिन्न क्षेत्रोंमें अपने-अपने स्थानसे अपना-अपना काम पूरा करते रहते है। केवल सम्पादकीय विभागके कार्यालयको ही ले लीजिये तो आप देखेंगे कि उसके अधीन कतिपय छोटे-छोटे विभाग अलग-अलग काम करते रहते हैं।

सम्पादक यद्यपि कंगूरेके समान इस विशाल भवनके ऊपर चमकता रहता है तथापि उसके आधारमें वे अनेक तत्व और उपादान होते हैं जिनकी भित्तिपर यह अट्टालिका खड़ी होती है। सम्पादकके सहायकोंमें अग्रलेख-लेखकके सिवा विभिन्न विषयोंके अलग-अलग सम्पादक होते हैं। विज्ञान, राजनीति परराष्ट्र साहित्य, खेल-कूद, आलोचना आदि विभिन्न विषयोंकी जिम्मेदारी अक्सर उन विषयोंके विशेषज्ञोंपर छोड़ दी जाती है जो उक्त क्षेत्रोंके सम्पादकके नामसे पुकारे जाते हैं। बहुधा लन्दन 'टाइम्स' के 'राजनीतिक सम्पादक' अथवा न्यूयार्क 'टाइम्स' के 'विज्ञान सम्पादक' आदिकी चर्चा पत्रोंमें

पढनेको मिल जाया करती है। ब्रिटिश और अमेरिकन पत्रोंमें अगाध पूँजी लगी हुई है और वे धन तथा सुविधाओंसे पूर्णतः सम्पन्न हैं। उनकी पत्रकार-कला भी बहुत उन्नत अवस्थामें पहुँची हुई है। यही कारण है कि वे इतने विद्वानों और लेखकोंकी सेवा प्राप्त करनेमे समर्थ होते हैं। ये ही वे सहायक सम्पादक या 'असिस्टैण्ट एडिटर' हैं जिनका काम अपने अपने विषय-सम्बन्धी लेखोको लिखना, बाहरसे आये लेखोंका सम्पादन करना तथा तत्सम्बन्धी नयी बातों और समाचारोंको जो कार्यालयमें आते रहते हैं देखना तथा शोधन करना होता है।

सहायक सम्पादकोंके सिवा समाचार-सम्पादक होता है जो वास्तवमें प्रधान सम्पादकके बाद सबसे अधिक महत्व रखता है। समाचारोंके सङ्कलनके लिए यही सबसे अधिक जिम्मेदार है। समाचार प्राप्त करनेके सूत्र ठीक तरहसे काम करते हैं या नहीं और किन-किन सूत्रोंसे आवश्यक समाचार प्राप्त किया जा सकता है तथा कब, कहाँ, किस समाचारका महत्व है जिसे प्राप्त करना चाहिये आदि बातोंका पूरा प्रबन्ध करना इसीके ऊपर होता है। आनेवाले संवादोंको विषयके अनुसार छाँट-छाँटकर सम्पादकोंके विभिन्न विभागोंमें कापी तैयार करनेके लिए भेज देना भी इसीका काम होता है। इसे ही 'न्यूज़-एडिटर' अथवा समाचार-सम्पादकके नामसे पुकारा जाता है। पर इसके अलावा कहीं-कहीं 'प्रधान उपसम्पादक' (चीफ सब-एडिटर) अलग होते हैं जिनका विभाग उपसम्पादकीय विभाग कहलाता है। बहुधा समाचार-सम्पादक ही प्रधान उपसम्पादक भी कहलाता है पर कुछ पत्रोमे जो धनसम्पन्न होते हैं और अधिक व्यक्तियोंकी नियुक्ति करनेकी क्षमता रखते हैं उपर्युक्त दोनो पदोंको अलग भी कर देते है। पर पृथक् हो या एक हो उप-सम्पादक वास्तवमें पत्रका कर्ता-धर्ता और प्रमुख सञ्चालक होता है। यही विभाग है जो मुख्यत पत्रकी रचना और निर्माण करता है। इसीकी कला, दूरदर्शिता, सावधानी, कुशलता और अध्यवसायका मूर्तरूप वह पत्र होता है जो सायङ्काल या प्रातःकाल अपने पाठकोंकी सेवामे उपस्थित होता है। विभिन्न प्रकारके सम्पादकोंकी इतनी विवेचना हमने कर दी पर हमारे देशमे कुछ थोड़ेसे पत्रोंको छोडकर उनका इतना विभाग अबतक नहीं हुआ है। भारतके पत्र अधिकतर गरीब हैं

और अर्थाभावका सङ्कट सदा उनके मस्तकपर मँडराया करता है। आवश्यक होते हुए भी उनमें यह क्षमता नहीं है कि अपने कार्यालयमें सम्पादकोंकी यह सेना सुसज्ज कर सकें। देशी भाषाके और विशेषकर हिन्दीके पत्रोंमे ता सम्पादक और थोड़ेसे सहायक सम्पादकोंसे ही काम लिया जाता है। प्रायः सम्पादक ही अग्रलेख लिखते हैं और कभी-कभी समाचार-सम्पादक अथवा प्रधान उप-सम्पादकका काम भी करते हैं।

दो चार सहयोगी अवश्य होते हैं जो संवाद-सङ्कलन, प्रूफ-संशोधन, मेक-अप, अनुवाद, आदि सब काम करते हैं। यही कारण है कि हिन्दीपत्रोंमें अबतक सम्पादक और सहायक ही होते हैं जो मिलकर उन तमाम कार्योंको पूरा करते हैं जिनके लिए बड़े-बड़े श्रीसम्पन्न पत्रोंमें अलग-अलग नियुक्तियाँ की जाती हैं। इनको हम सहायक सम्पादक भी कहते हैं और उपसम्पादक भी। हमारे यहाँ दोनों शब्द पर्यायवाची हो गये हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सहायक सम्पादक अथवा उपसम्पादक आजके समाचारपत्र और सम्पादकीय विभागका मेरुदण्ड है जो सारे भारका वहन करता है। उसके कर्तव्य, गुण और विशेषताओंकी विवेचना आवश्यक है क्योंकि पत्रकार-कलाका वह बड़ा महत्वपूर्ण और प्रमुख अङ्ग है। अच्छेसे अच्छे रिपोर्टर, संवाददाता, लेखक और विशेषज्ञोंकी उत्तमसे उत्तम कृति यदि उसे योग्य सहायक सम्पादककी सहायता न मिले तो बेकार और व्यर्थ हो जा सकती है। सहायक सम्पादकोंका विभाग तो उस छलनीके समान है जहाँ हर प्रकारका सामान पहुँचता है, चाला जाता है और सार तथा भूसी और कूड़ा-करकट अलग-अलग किया जाता है। पर उसका काम यहीं नहीं समाप्त होता। अपने मालका सुन्दर प्रदर्शन करना, उसे ऐसे आकर्षक ढङ्गसे सजाना कि राहचलता भी आकृष्ट होकर खरीदनेको बाध्य हो उसीका काम है। समाचारपत्रकी अनेक हैसियतोंमेंसे एक जरूरी और आवश्यक हैसियत यह भी है कि वह ऐसा पदार्थ है जो बिक्रीके लिए बाजारमें लाया जाता है। वह पाठकोंके लिए समाचार बेचता है, जिज्ञासुओंके लिए विचार बेचता है, विज्ञापनदाताओंके लिए स्थान बेचता है। भौतिक दृष्टिसे यही उसका व्यवसाय है। पर अन्य सब प्रकारके व्यापारोंसे उसकी भिन्नता इस बातमें

भी है कि वह अपने पद और परम्पराके अनुसार जनताके जीवनमे नैतिक मूल्यकी स्थापना करनेका प्रयत्न भी करता है।

एक प्रकारसे भौतिकके साथ साथ वह नैतिक व्यवसाय भी करता है। इस व्यवसायकी सफलता भी अन्य तमाम उद्योगोंकी भाँति इसीमे है कि उसके खरीदार उसे खरीदें। पाठकोंमे बिक्री बढे यह सब पत्रोंकी एकान्त चेष्टा होती है। इसीसे पत्र न केवल भौतिक लाभ उठा सकते हैं बल्कि अधिकसे अधिक लोगों तक पहुँचकर उनके जीवनको प्रभावित करके अधिकाधिक उन्नत और शिष्ट बना सकते है। जब समाचारपत्रोंका बेचना है तो फिर दूकानदारकी भाँति उन तरीकोंको ग्रहण करना पडता है जिनके द्वारा वह अपना माल प्रतिद्वन्द्वियोंकी स्पर्धामें भी बेचनेमे समर्थ होता है। दूकानको सजाना, आकर्षक ढङ्गसे अपने मालका प्रदर्शन करना, अधिकसे अधिक उपयोगी माल रखना, जनताकी आवश्यकताका पता रखना, ग्राहकोंको खरीदके लिए अपनी कलाके द्वारा बाध्य कर देना सफल दूकानदारोंकी सफलताका कारण होता है। पत्रको सजाना, विमोहक और आकर्षक बनाना, पाठकके लिए अनिवार्य बना देना उपसम्पादकीय विभागका ही काम है। सुन्दरसे सुन्दर कहानी हो, मनोरञ्जक और महत्वपूर्ण सवाद हो गम्भीर लेख हो पर उन सबका मूल्य तभी हो सकता है जब उपसम्पादक उसे इस प्रकार प्रदर्शित करे कि अधिकसे अधिक लोग उससे आकृष्ट हो और उसे पढनेके लिए उत्सुक हों। समयसे समाचारपत्रका प्रकाशित हो जाना, जनताकी रुचि और आवश्यकताके अनुकूल स्वरूप ग्रहण करके बाजारमे आना उपसम्पादकोंपर ही निर्भर है। फलत. कह सकते है कि हमारा पत्र जिस रूपमें हमारे सामने आता है उसे उस प्रकार चित्रित करनेवाला और उसका निर्माण करनेवाला मुख्यतः उपसम्पादक ही होता है। अवश्य ही जनता इस मण्डलीसे परिचित नहीं होती, कभी परिचित हो भी नहीं पाती। पत्रकी सफलता और उसके गौरव तथा समाजमे अपने स्थानके कारण प्राप्त होनेवाले सम्मान तथा सुयशका एक अंश भी उसे नहीं मिलता फिर भी परदेके पीछे यही टोली है जिसकी कला, सतर्कता और परिश्रमका परिणाम प्रतिदिन पत्रके रूपमें उपस्थित होता है।

यही कारण है कि आधुनिक पत्रकारीमें उपसम्पादकका पद अत्यन्त महत्व-पूर्ण हो गया है। उसकी शक्ति दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है और सम्भवतः बढती जायगी। योग्यसे-योग्य सम्पादक भी अपने इन अवयवोंकी सहायताके बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ सकता। आधुनिक समाचारपत्रोंका स्वरूप ही ऐसा है इसी कारण आज सब स्वीकार करते है कि उपसम्पादक अथवा सहायक सम्पादकोंका अनिवार्यरूपेग महत्वपूर्ण स्थान है। ब्रिटिश और अमेरिकन पत्रोंके सम्पादकोकी लेखनीका आज वह प्रभाव नहीं रहा जो अर्धशताब्दी पूर्व था। अग्रलेखोका स्थान वहाँके सामाजिक जीवनमें क्रमशः क्षीण होता जा रहा है पर उप सम्पादककी कलाका महत्व उसी प्रकार बढता जा रहा है। समाचारपत्रोकी बिक्री हमारे देशमें अब भी उसके विचार और उसकी नीति तथा सम्पादकीय लेखोकी प्रौढतापर बहुत-कुछ निर्भर करती है, पर विलायती पत्रोंकी स्थिति दूसरी होती जा रही है। पत्रोंके मत-मतान्तरपर उतना विचार नहीं किया जाता जितना उसकी विशेषताओं, उसके 'फीचरों', उसकी सजधज, उसके मेक अप, उसकी छपाई-सफाई, समाचारोंके सुन्दर ढङ्गसे विभिन्न स्तम्भोंमें वितरण तथा प्रकाशनपर किया जाता है। इन सब बातोंसे भी अधिक ध्यान समाचार प्रकाशित करनेमें उसकी तेजी और समयकी पाबन्दी-पर दिया जाता है। जिसका समाचार जितना अधिक नवीन होगा, जो जितना जल्द समाचार छापेगा तथा उसे उपस्थित करनेका जिसका ढङ्ग जितना अधिक आकर्षक और मोहक तथा सरल होगा वह पत्र उतना ही लोकप्रिय होगा।

यह सारा काम उपसम्पादक ही करता है अतः आज समाचारपत्रोंके जीवनमें उसका स्थान अत्यन्त आवश्यक और नितान्त महत्वपूर्ण हो गया है। हम पत्रकारीके क्षेत्रमें प्रथम, स्थान उसे ही देनेको बाध्य हैं। बिना उसके सद्भाव और सहयोग तथा एकनिष्ठ परिश्रमके किसी भी सम्पादककी सारी बुद्धि और कला व्यर्थ हो जायगी। वह चाहे तो पत्रको बना दे, उसे लोकप्रियता प्रदान कर दे। वही यदि चाहे तो उसका सर्वनाश भी कर दे सकता है। बिना उसके पत्रका अस्तित्व भी बाकी न बचेगा। जिस पत्रका उपसम्पादकीय विभाग जागरूक होगा, तुष्ट और प्रसन्न होगा तथा हृदयसे अपने पत्रकी सफलताके लिए यत्नशील होगा वह निश्चयेन उन्नत तथा लोकप्रिय

हो जायगा। इस विभागकी सतर्कता और सहयोग सम्पादक, व्यवस्थापक, अग्रलेख-लेखक आदि सभी अङ्गोपाङ्गोंके सम्मिलित यत्नसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। प्रसन्न, सन्तुष्ट और समाश्वस्त उपसम्पादकीय विभाग जहाँ अपने पत्रको सजीव बना सकता है वहीं यदि वह क्षुब्ध तथा असन्तुष्ट हो तो बडेसे बडे पत्रके विकासको कुण्ठित कर दे सकता है।

यदि उपसम्पादकीय विभागके कार्योंकी समीक्षा की जाय तो हम देखते हैं कि उसका न केवल व्यापक कार्यक्षेत्र है बल्कि उसका अधिकार भी असाधारण है। उपसम्पादक एक प्रकारकी कडीके समान है जो पत्रके विभिन्न क्षेत्रोंको परस्पर जोड़ता है। सम्पादक यदि बहुत ऊपर है और साधारण कम्पोजिटर बहुत नीचे है तथा मशीनका मिस्तरी उससे भी दूर है तो उन सबको मिलानेवाले उपसम्पादक ही होते हैं। रिपोर्टर, सवाददाता, विशेष सवाददाता, लेखक, विशेष लेखक, कम्पोजिटर, मिस्तरी, सम्पादक, व्यवस्था-विभाग, विज्ञापनदाता और पाठक इन सबको परस्पर मिलानेवाली शृङ्खला आखिर उपसम्पादकीय विभागके सिवा दूसरी कौन है? प्रातः संस्करण निकलनेके बाद ही तत्काल उसका कार्य आरम्भ हो जाता है। समाचारपत्रके कार्यालयमें चले जाइये और इस मण्डलीको काम करते देखिये। समाचार-सम्पादक या प्रधान उपसम्पादकके टेबिलपर दृष्टिपात करते ही आप कागजोंका भारी गट्ठर देखेंगे। समाचार वितरण करनेवाली एजेन्सियोंके भेजे हुए तार जिन्हे 'प्रेस टेलिग्राम' कहते हैं एकके बाद दूसरे आते रहते हैं। जिस प्रकार परदेपर होनेवाले सिनेमाके दृश्य एकके बाद दूसरे शीघ्रगतिसे बदलते रहते हैं वैसे ही समाचारोंके तारोंका ताँता बँधा रहता है, देखते-देखते उनका बोझ लग जाता है। 'टेलिप्रिण्टर' इन तारोंको लम्बे कागजकी रीलपर छाप-छापकर बाहर फेंकता चलता है। उसका सिलसिला खत्म होता दिखाई नहीं देता, मानो द्रौपदीका अनन्त चीर हो। पर समाचार एजेन्सियाँ ही तार नहीं भेजती। पत्रोंके अपने रिपोर्टर, संवाददाता और विशेष सवाददाता अपनी सूझ और बुद्धिसे उपार्जित संवादोको शीघ्रसे शीघ्र भेजनेके लिए आकुल रहते हैं। उनके तार विविध घटनाओं, उनके विवरणों अथवा उद्घाटित रहस्योंको लिये हुए बारी-बारीसे उसके सामने पहुँचते रहते हैं। टेलिफोनकी घण्टी बराबर

घनघनाती रहेगी और कहीं दूरसे बोलनेवालेकी स्वर-लहरी विभिन्न सन्देशोंका वाहन बनकर पहुँचती रहेगी। चिट्ठियोंका थैला भी उसके सामने ला पटका जायगा। स्थानीय रिपोर्टरोंकी रिपोर्ट भी आ धमकेगी। प्रधान उपसम्पादक समाचारोंके बोझसे दब जायगा पर उसे तत्काल सावधान होकर नीर-क्षीर विवेकसे काम लेना पडता है। तुरन्त आये हुए तारों, चिट्ठियो, रिपोर्टोंकी छँटाई आरम्भ हो जाती है। जिस विभागसे सम्बन्ध रखनेवाले तार होते हैं वे उस विभागमें भेजे जानेके लिए पृथक् पृथक् किये जाते हैं।

देशी, विदेशी, राजनीतिक, अर्थनीतिक समाचार विषयानुसार छाँट दिये गये। अबतक विभिन्न विभागोंके मुखिया पहुँचकर उसे घेर लेते हैं। उन्हें उनके विभागके तार देते हुए प्रधान उप अथवा समाचार-सम्पादक, आवश्यक और अनावश्यक तारो या संवादोंकी छँटाई भी कर देता है। निकम्मे, महत्वहीन समाचार अलग कर दिये गये और जिनका प्रकाशन होना है वे अपने-अपने विभागमें भेज दिये गये। वहाँ समाचारोंकी शुद्धि और उनका संस्कार आरम्भ होता है। अनुवाद किया गया, भाषा शोध दी गयी, छपने लायक स्वरूप प्रदान कर दिया गया। समाचारोंके मस्तकपर आकर्षक और भाव-गर्भ शीर्षकोंको बैठाकर उन्हे महत्व और जीवन प्रदान कर दिया गया। लम्बे समाचारों और विवरणोंमें बीच-बीचमे उप-शीर्षक भी लगा दिये गये जिससे पाठककी दौडती हुई दृष्टिको कहीं-कहीं अटककर विश्राम कर लेनेका अवसर मिल जाय। जिन संवादोंके साथ चित्र देना जरूरी है उनके साथ चित्र, किसीके साथ मानचित्र अथवा किसीके ऊपर-नीचे छोटे नोट या टिप्पणी यदि आवश्यक हुई तो जोड दी गयी। संवादोंके आवश्यक अङ्गोंको अधिक महत्व यदि प्रदान करना है तो बीच-बीचमें टाइप बदल दिये गये जो विशेषताकी सूचना देते चलते हैं। जो संवाद बहुत लम्बे होते हैं उनपर या आयी हुई रिपोर्टमें अनावश्यक भूमिका हुई तो उसपर उपसम्पादक अपनी 'नीली पेंसिल'का प्रयोग धड़ल्लेसे कर देता है। अनावश्यक अङ्ग छाँट दिया जाता है। उप-सम्पादकके इस अधिकारसे कोई भी अपनेको अछूता नहीं रख पाता। उसकी 'पेंसिल' अमोघ खड्गकी भाँति संवादोंपर गिरती है और अङ्गच्छेद करके तुष्ट हो जाती है। अवश्य ही यह उच्छेद संवादोंको असुन्दर या विकृत नहीं

बनाता। उसकी कला इस बातमें है कि अनावश्यक बातें इस प्रकार छाँट दी जायँ कि समाचार और अधिक सप्राण तथा चुस्त हो उठे, उसका न भाव नष्ट होने पावे, न असङ्गतिका दोष आने पावे और न अर्थ और स्पष्टतामें किसी प्रकारकी कमी हो।

बहुधा उसे किसी घटनाकी कहानीको बिलकुल नये और संक्षिप्त रूपमें फिरसे लिख देना भी पडता है। किसीको भी स्थान तथा समयके बन्धनका उतना अनुभव नहीं करना पडता जितना उपसम्पादकको। आये हुए समाचारोंको, विशेषकर तमाम महत्वपूर्ण, नये और मनोरञ्जक समाचारोंको प्रकाशित करना उसका लक्ष्य होता है। लेख, चित्रादि जितनी विशेषताएँ होती हैं उन्हें स्थान प्रदान करना अनिवार्य होता है। पर सबको स्थान दिया कहाँसे जाय? पत्रके स्तम्भ तो परिमित होते हैं। उतनेमें ही सबका समावेश करना आवश्यक होता है। फलत: बहुधा उसे संक्षिप्तीकरणका आश्रय लेना पडता है। किसीकी काँट-छाँट कर दी, किसीका आशयमात्र लेकर थोडेमें नये ढङ्गसे गढ़ दिया, किसी लेखका कोई टुकडा दिया। इस प्रकार 'कापियाँ' तैयार होने लगीं और कम्पोजिङ्गके लिए तरल तरङ्गकी भाँति एकके बाद दूसरी जाने लगीं। 'मैटर' कम्पोज होकर आने लगा और प्रूफका संशोधन किया जाने लगा। यह काम भी उपसम्पादकीय विभाग ही करता है। उधर संशोधित प्रूफ दुरुस्त होने लगा और इधर 'मेक-अप'का काम जारी हुआ। 'मेक अप' को दूकान सजानेकी कला समझिये। पत्रका स्वरूप, सौन्दर्य और आकर्षण तथा सम्मोहन आदि सारी बातें बहुत कुछ इसीपर निर्भर रहती हैं। प्रधान उपसम्पादक सबसे महत्वपूर्ण समाचारका चुनाव कर लेता है। उसके प्रदर्शनकी रूप-रेखा भी मनमें स्थिर कर लेता है। पृष्ठ शीर्षककी रचना भी कर लेता है। अब मेक अप इस ढङ्ग और दृष्टिसे आरम्भ होता है कि पत्र न केवल भडकीला हो बल्कि समाचारोंका प्रदर्शन एक ओर जनताकी रुचि और सुविधाके अनुकूल हो और दूसरी ओर उसके द्वारा विविध प्रश्नोंके सम्बन्धमें पत्रकी नीतिका सङ्केत मिल जाय। इसीमें उपसम्पादकीय विभाग अपने व्यक्तित्व और अपनी आत्मा तथा अपनी कलाकी छाप बैठा देता है।

संवादपत्रोंके लिए दो बाते उसका प्राण होती है। उपसम्पादक इन्हे अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लें। एक तो यह कि ताजेसे-ताजे और नयेसे-नये समाचार अधिकसे-अधिक छापे जायँ और दूसरी यह कि पत्रका स्वरूप मनहूस, मरियल और रोता दिखाई न देने पावे। फलतः पृष्ठके बाद पृष्ठ और स्तम्भके बाद स्तम्भका मेक-अप होता चलता है। यह काम बडी जिम्मेदारीका भी होता है। जल्दीसे समाचार इधर-उधर न हो जायँ, शीर्षक कोई और नीचे समाचार कुछ दूसरा होकर सारे पत्रको भ्रष्ट न कर दे, एक ही संवाद दो-दो बार न छप जाय आदि अनेक बातें देखी जाती है। मेक अप होता चलता है और उधर प्रधान कम्पोजिटर या फोरमैन कम्पोज़-किये हुए मैटरको फरमेमें कसता चलता है। मेक-अप करनेवाला जिस समाचारको जिस पृष्ठ और जिस स्तम्भमें रखनेका आदेश देता है उसे उस स्थानपर रखनेके लिए फोरमैन कम्पोज किये गये 'टाइप मैटर' को लोहेके फरमेमें कस देता है और यही फरमा मशीनपर जाकर छपाई करता है। जहाँ रोटरी मशीन होती है वहाँ कम्पोजिङ्ग हाथसे नहीं लाइनोटाइप नामक मशीनसे होती है। पूर्वके पृष्ठोमे बता चुके है कि किस प्रकार स्टीरियो ढाला जाता है और रोटरी मशीन उसी ढले हुए स्टीरियोको लेकर घण्टेमे तीस हजारसे सवा डेढ लाख कापियाँ तक छापती है काटती है, मोडती है और बाहर फेंकती चलती है। हाथसे कम्पोज किये हुए मैटरकी ही चाल हिन्दी पत्रोंमे है। उसे न रोटरीकी आवश्यकता है और न लाइनोटाइपका उपयोग होता है।

जब पत्र छपकर आ जाता है तो उसे देखकर उपप्रधान उस दिनका अपना काम समाप्त करता है। सात आठ घण्टोके बीच यह सारा काम समाप्त करना होता है। जिस भीड, दबाव और तीव्रतासे उप सम्पादकीय विभाग काम करता है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह अनुभवकी ही वस्तु है। सिर उठाने या दम मारनेकी भी फुरसत नहीं होती। प्रतिक्षण उसे घडीपर दृष्टि रखनी होती है, और सामने उन समस्त उपादानोपर ध्यान रखना होता है जिन्हे प्रकाशित करना है। कहते हैं कि उपसम्पादकको चार नेत्र होने चाहिये; एक घडीपर हो, दूसरा समाचारकी सत्यतापर हो, तीसरा आपत्तिजनक तथा मानहानिकर बातोको रोकनेकी ओर हो और चौथा पत्रकी अधिकसे-अधिक

सामयिकता, पूर्णता और सर्वांगीणताकी ओर हो। बहुधा उसे असाधारण स्थितिका सामना करना पड़ता है। इधर तो फरमेको मशीनपर भेजनेका समय होगया और उधर कोई असाधारण संवाद आ पहुँचा। टेलिप्रिण्टरने कहीं भूकम्प होनेकी, किसी जहाजके डूबनेकी, किसी बड़े आदमीकी मृत्युकी अथवा किसी प्रभावशाली नेताकी गिरफ्तारीकी सूचना दे दी। दस मिनटमें यदि फरमा मशीनपर चला नहीं जाता तो डाकका मिलना असम्भव हो जायगा। पर समाचार आ गया और उपसम्पादक उसे दिये बिना रह नहीं सकता। दुनिया-में बहुत से काम होंगे जहाँ 'आज नहीं तो कलकी' गुञ्जाइश रहती है; जो आज न हो सका अथवा जो बाकी बच गया वह कल कर दिया जायगा। पर समाचारपत्रके दफ्तरमे कलके लिए कुछ भी छोडा नहीं जा सकता और न कोई बात टाली जा सकती है। समाचार आया और उसका महत्व बढा। यदि तत्क्षण प्रकाशन न हो जाय तो फिर यही संवाद मृतक हो गया। जो आज नही गया उसका कल कोई भी मूल्य न रह जायगा। फलतः उपसम्पादकीय विभाग जुट पडा। तारका अनुवाद किया गया, कम्पोज किया गया, प्रूफ देखा गया, फिरसे मेक अप किया गया। नये सवादको स्थान प्रदान करनेके लिए किसी स्तम्भमें जगह निकालनी पडती है अत. कहीं-न-कहींसे कोई समाचार उडाया गया या किसीका शीर्षक काटकर छोटा किया गया अथवा किसी समाचारका कुछ अंश यदि छाँटा जा सकता हो तो छाँटकर अलग कर दिया गया।

इस प्रकार नवागत तार ठूँसा गया, फिरसे फरमा कसा गया और मशीनपर भेज दिया गया। कठिनाई यह होती है कि यह सारा काम दस मिनटके अन्दर कर देना होता है। उस समयकी तेजी कार्यालयमे जाकर ही देखी जा सकती है। जैसा कह चुके हैं कि लाइनोटाइपमे तो एक अक्षर भी यदि परि-वर्तित करना होता है तो साराका सारा स्टारियो नये सिरेसे पुन ढालना होता है। संक्षेपमें उपसम्पादकके कार्यके विस्तारकी रेखा इसी प्रकार खींची जा सकती है। ध्यान देकर देखा जाय तो ज्ञात होता है कि पत्रके सम्बन्धमे ऐसी कोई बात है ही नहीं जो उपसम्पादक न कर सकता हो। हाँ, नीतिका निर्धारण वह नहीं करता और न उसे किसी बातको तोड-मरोड कर उलट देनेका अधिकार है। मनमानना काट-छाँटकर सकता है पर किसीकी 'हाँ' को

'नहीं' और किसीकी 'नहीं' को 'हाँ' नहीं बना सकता। इसके सिवा समाचारोका निर्वाचन, शोधन, संस्कार, स्वरूप-निर्माण, शीर्षकोकी स्थापना, पत्रकी सजावट, आवश्यक चित्रादिसे सुशोभित करना, शीर्षको आदिके लिए टाइपका चुनाव, मुखपृष्ठके लिए संवादको चुनना, पृष्ठका शीर्षक बनाना, विविध संवादो, रिपोर्टों, लेखों, कहानियो आदिका विभिन्न स्तम्भोंमें स्थान स्थिर करना, आदि सब बातें उसीके हाथमें है। वह चाहे तो किसीकी लिखी रिपोर्टको संक्षिप्त बना सकता है, दूसरे रूपमे ढाल दे सकता है, अस्वीकृत कर दे सकता है अथवा और अधिक विस्तृत करके, टिप्पणी और नोटसे तथा कभी-कभी चित्र और नकशे आदिसे सुशोभित करके कही अधिक महत्व प्रदान कर दे सकता है। अन्तमें कौन संवाद या कौनसी बात कहाँ छपे और आजके पत्रका स्वरूप कैसा हो यह निश्चय भी वही करता है। प्रकाशित पत्र उसकी आज्ञा और अधिकारकी सूचना लेकर सामने आता है।

समाचारपत्रके जीवनमें जिसका इतना महत्वपूर्ण स्थान हो और जिसका कार्यक्षेत्र विस्तृत तथा अधिकार व्यापक हो उसे किन गुणों, विशेषताओं और योग्यताओंसे सुशोभित होना चाहिये तथा अपना काम सुचारु रूपसे करनेमें समर्थ होनेके लिए क्या-क्या करना चाहिये इसपर भी संक्षेपमें बिचार कर लेना आवश्यक है। उपसम्पादक यदि समाचार-सम्पादनके लिए उत्तर-दायी है अथवा अपने विभागका प्रधान है तो उसका काम प्रातः संस्करणके प्रकाशित होते ही आरम्भ हुआ समझना चाहिये। पहला काम वह यह करेगा कि आदिसे अन्ततक प्रकाशित संस्करणको सावधानीके साथ पढ जायगा। एक-एक अक्षर और एक-एक वाक्य, विराम, अर्धविराम, शीर्षक, मेक-अपका ढङ्ग सब सावधानीके साथ देख जायगा। रातके सहयोगियोंकी त्रुटि, पत्रमे रहजानेवाली कमी उसके सामने आ जायगी। तत्काल दूसरा सहयोगी पत्रोंके संस्करणोंको देखकर उनसे अपने पत्रकी तुलना करेगा। कौन बातें अपने पत्रमें छूट गयीं और दूसरोंने प्रकाशित कर दीं तथा दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमें कौनसी बातें विशेष हैं इसका पूरा नकशा उसके मस्तिष्कमें बन जाना चाहिये। इसी अध्ययनके सिलसिलेमें समाचारोंकी समीक्षा कर लेना भी उसका काम है। गत संस्करणका कौनसा तार या कौनसा समाचार

ऐसा है जो अपने गर्भमें महत्वपूर्ण भावी घटनाओंका बीज धारण किये हुए है, ऐसे समाचारके सम्बन्धमें विशेष सतर्कता होनी चाहिये। सम्भव है उसकी अधिक जाँच-पड़ताल या अध्ययन और रहस्योद्‌घाटनके लिए अपना संवाददाता नियुक्त करना आवश्यक हो। यदि ऐसा समाचार अपने रिपोर्टर या संवाददाताका भेजा हुआ है तो उसे विशेष रूपसे आदेश देनेकी आवश्यकता होगी कि वह सावधानी और विस्तारके साथ अपने संवाद भेजे और जिन बातोंका रहस्योद्‌घाटन करना है उनको समझनेमें अपनी शक्ति लगाये।

इस प्रकार कायदेसे कार्यालयमें बैठकर काम आरम्भ करनेके पूर्व ही प्रधान उपसम्पादकके मस्तिष्कमें सायं संस्करणके लिए एक अस्थायी रूप-रेखा बन जानी चाहिये। कार्यालयमें आते ही वह तारकी छँटाई आरम्भ कर देता है और जगत्‌के कोने-कोनेसे आनेवाले समाचारोंके निरन्तर प्रवाहको नियन्त्रित करने लगता है। उसे अपने संवाददाताओं, विशेष संवाददाताओं या रिपोर्टरों द्वारा भेजे गये तार, चिट्ठी अथवा टेलिफोन संदेशको विशेष रूपसे अपने अध्ययनका आधार बनाना चाहिये। अपने संवाददाताओंके समाचार पत्रकी विशेष सम्पत्ति होते हैं। जो संवाद समाचार एजेन्सियोंसे प्राप्त होते हैं वे तो सर्वत्र समान रूपसे प्रकाशित हो जाते है, पर अपने विशेष समाचार पत्रकी नवीनता, मौलिकता और विशेषताके द्योतक होते हैं। प्राप्त हुए अपने समाचारोंको प्रदर्शित करना, उन्हे प्रामुख्य प्रदान करना और आकर्षक ढङ्गसे प्रकाशित करना प्रत्येक पत्रकार आवश्यक समझेगा। पर प्रधान उपसम्पादक जहाँ इस दृष्टिसे अपने संवादोंका अध्ययन करेगा वहीं यह भी देखेगा कि उनमें कोई बात कहीं मानहानिकर, कानूनकी दृष्टिसे आपत्तिजनक तथा पत्रकी नीतिके प्रतिकूल तो नहीं है।

समाचार-सम्पादक अथवा प्रधान उपसम्पादक ही सम्पादकके सामने वास्तवमें जिम्मेदार होता है। उसकी जिम्मेदारी कानूनकी दृष्टिमें भले ही न हो पर पत्र-कार्यालयमें समाचारपत्रके प्रत्येक स्तम्भ और प्राय. प्रत्येक वाक्यके लिए वही जिम्मेदार है। समाचार प्राप्त होनेवाले समस्त स्रोतोंका ठीक-ठीक सञ्चालन करना उसीका काम है। कहाँ रिपोर्टर नियुक्त हैं, कहाँ नहीं हैं, कहाँ नियुक्त होना चाहिये, संवाददाता या विशेष संवाददाता कहाँ-कहाँ हैं, और

कहाँ-कहाँ होने चाहिये, जो हैं वे ठीक-ठीक समयसे संवाद भेजते है या नहीं, कौन सी घटनाएँ विशेष रूपसे छानबीनकी अपेक्षा कर रही हैं, कहाँ विशेष घटनाओंके घटने या महत्वपूर्ण संवाद मिलनेकी सम्भावना है, अपने पत्रमें अन्य प्रतिद्वन्द्वियोंकी अपेक्षा समाचार-स्तम्भ अधिक मौलिक, नवीन और ताजे रहते हैं या नही आदि सारी बातोंकी व्यवस्था करना उसीका काम है। उसीका काम है कि वह अपने सहयोगियोंमें काम बाँटे और देखे कि वे ठीक-ठीक अपने कर्तव्यकी पूर्ति कर रहे हैं या नहीं। पत्रके समाचार-स्तम्भोंमें क्या प्रकाशित हो, क्या न हो, कौन संवाद प्रामुख्य प्राप्त करे, पृष्ठका शीर्षक क्या लगाया जाय, किस समाचारका विस्तार और प्रदर्शन हो आदि तमाम बातोंका वही निर्णय करता है।

योग्यतापूर्वक इस कार्यका उत्तरदायित्व निर्वाह करनेके लिए चुस्ती, शीघ्र-निर्णय करनेकी शक्ति तथा गहरी सूझकी आवश्यकता होती है। पर इस चपलता और तेजीके वातावरणमें तेजीके साथ कार्य करते हुए भी उसमें धीरता और विवेक होना चाहिये। भले ही प्रधान उपसम्पादक कामके बोझसे दबा हो, उसकी नीली-लाल पेन्सिल दाहिने-बायें दनादन वार कर रही हो, वह किसी तारको अस्वीकृत करनेमें, किसीके अङ्गच्छेदमें, किसीका स्वरूप बदलनेमें, किसीको महत्व प्रदान करनेमें और किसीकी उपेक्षा करनेमें जुटा हुआ हो पर उसे हर हालतमें अपनेको शान्त और धीर बनाये रखना आवश्यक है। उसे प्रत्येक सहयोगीको काम बाँटनेमें, रिपोर्टरोंको इधर-उधर भेजनेमें, संवाददाताओंको बराबर आदेश देते रहनेमें, प्रेसवालोंको कापीकी माँग पूरी करनेकी व्यवस्था करनेमें लगा रहना पड़ेगा, पर साथ ही स्तम्भोंके निर्धारित स्थानको ध्यानमें रखते हुए चिन्ता करनी पड़ेगी कि कापियोंका अजीर्ण न होने पावे, तारोंका वारा-न्यारा करते हुए देखते रहना होगा कि कोई जरूरी बात छूट न जाने पावे, अधिकसे अधिक सनसनीदार समाचारोंकी खोज करते हुए सदा इसपर दृष्टि रखनी होगी कि कहीं किसी ऐसी बातका प्रकाशन न हो जाय जो कानूनको गला घोंट देनेका अवसर प्रदान कर दे और यह सब करते हुए भी घड़ीकी टिक टिकपर सदा एक दृष्टि रखनी पड़ेगी। उसके कामका स्वरूप उसे बौखला देनेके लिए पर्याप्त है फिर भी उसकी सफलता तभी सम्भव

है जब वह अपने दिमागको ठण्ढा रखे। उसकी मुद्रा और मन शान्त हो और स्नायु-तन्तु किसी प्रकार उत्तेजित न होने पावें। उसे अपनेको एक प्रकारकी निर्लिप्ततामे रखते हुए भी घोर कर्मपथमें नियोजित रखनेका अभ्यास होना चाहिये।

श्रीकृष्णका उपदेश अर्जुनके लिए आवश्यक और उपयोगी रहा हो या न रहा हो पर आधुनिक दैनिक समाचारपत्रके प्रधान उपसम्पादकके लिए तो स्थितप्रज्ञता प्राप्त करनेकी चेष्टा अवश्य ही उपयोगी तथा आवश्यक है। जब-तक मस्तिष्क और मनको सक्रिय और सचेष्ट तथा चपल रखते हुए भी शान्त न बनाये रखेगा तबतक उसका काम चल ही नहीं सकता। कारण यह है कि एक ओर उसे व्यवस्थाका काम करना होता है और दूसरी ओर कल्पना तथा विवेकसे काम लेना पडता है। भावी घटनाओके सम्बन्धमे प्राप्त सङ्केतोंसे कल्पना करनेकी शक्ति होनी चाहिये, अनुमानसे परिणाम निकालनेकी बुद्धि होनी चाहिये और यह समझ होनी चाहिये कि किस घटनाके गर्भमें महान् समाचारकी महत्ता छिपी हुई है जिसका प्रदर्शन करके वह अपने पत्रके गौरव और अपनी कलाकी पूर्णताकी छाप पाठकोंके हृदयमें बैठा दे सकता है। इसे ही समाचार-चेतना भी कह सकते हैं जिसकी पराकाष्ठा उसमे होना आवश्यक है। प्राप्त हुए ढेरके ढेर तारों और संवादोंमें सबके सब कामके नहीं होते। प्रधान उपसम्पादक उनमें आवश्यक और उपयोगी तारोंका चुनाव करता है पर इस चुनावके लिए कसौटी यही है कि किस सवादमे समाचारत्व कितना अधिक है। इस चुनावमें सफल होनेके लिए उद्बुद्ध समाचार चेतना आवश्यक गुण है।

प्रधान उपसम्पादकके लिए स्वयं कुछ लिखना आवश्यक भले ही न हो पर लिखनेकी कलामे निष्णात होना आवश्यक है। उपसम्पादककी विशेषता तो यह है कि वह केवल उपसम्पादक ही नहीं होता। उसमें पत्रकार-क्षेत्रके विविध अंशोमें काम करनेवाले विभिन्न लोगोंके सब गुण होने चाहिये। सम्पादक-की भाँति उत्तरदायित्वका बोध, आदर्शवादिता, कल्पनाशीलता, पारदर्शी बुद्धि और लेखनकी कलामें प्रवीणता तथा विविध विषयोंका अच्छा ज्ञान उसे भी होना चाहिये। वह आये हुए विवरणो और संवादोंकी काट-छाँट करता है और उन्हे अकसर नये रूपमें ढाल देनेको बाध्य होता है। समाचार या रिपोर्टें

और बहुधा वक्तव्य या लेखादि जो प्रकाशनार्थ आते हैं विविध-विषयक होते हैं। कभी किसी वैज्ञानिक आविष्कारके सम्बन्धमें समाचार आता है, कभी सेना-विषयक, कभी रेल, वायुयान, रणपोत आदिके विषयमें, कभी इतिहास, राजनीति, अर्थनीति सम्बन्धी, कभी साहित्य, कला, अभिनयके विषयमें, कभी खेल-कूद और नाच-रङ्गके सम्बन्धमें, कभी अदालती मामलेके विषयमें समाचार आते रहते हैं। जो इन विषयोंके बारेमें थोड़ा-बहुत ज्ञान न रखता होगा वह कैसे उनका शोधन, संस्कार या स्वरूप-निर्माण कर सकेगा? कैसे समझ सकेगा कि उन समाचारोंका महत्व किस दृष्टिसे कितना है? आधुनिक जगत्की गतिविधि और इतिहासका परिज्ञान न होगा तो कैसे विश्वमें प्रतिक्षण होनेवाले परिवर्तन-का दर्पण अपने पत्रको बना सकेगा? फलतः अनेक विषयोंका ज्ञान और लिखने-का अभ्यास होना ही चाहिये।

पर सम्पादकके इन गुणोंसे पूर्ण होते हुए उसमें व्यवस्थापककी विशेषताएँ भी होनी चाहिये। वह मुख्यतः व्यवस्थाका ही काम तो करता रहता है। सह-योगियोसे काम लेना, उत्तम ढङ्गसे और आयोजित प्रकारसे काम कराना तो उसके जिम्मे होता ही है पर इसके साथ व्यवस्थापककी व्यवसाय-बुद्धि भी होनी चाहिये। उसे पत्रको इस ढङ्गसे सजाना है कि वह प्रतिद्वन्द्वियोका सामना करते हुए बाजारमें खप सके। पाठक उसके ग्राहक हैं अतः ग्राहकोंकी रुचि, मनोवृत्ति, आवश्यकता और माँगका विचार रखकर ही पत्रकी बनावट होनी चाहिये। उधर रिपोर्टरों और संवाददाताओंके सारे गुण भी होने चाहिये। मुख्य गुण तो समाचारका बोध ही है। कहाँ क्या हो रहा है और जो हो रहा है उसमें समाचारत्व कितना है और यदि कहीं सचमुच समा-चारकी दृष्टिसे महत्वपूर्ण बात हो रही है तो उसे कैसे प्राप्त किया जाय, ताजासे ताजा खबरें सबसे पहले अपने पत्रको कैसे प्राप्त हों, वे समयसे मिल जायँ जिसमें उन्हें स्थान दिया जा सके और हर तरहसे सजाकर पत्र रोचक बनाया जाय यह उसकी सतत चेष्टा होनी चाहिये। फलतः समाचारको समझने, चुनने और खोजने ढूँढ़नेकी प्रवृत्तिपर ही उसकी सफलता निर्भर है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपसम्पादकमें सभी गुण होने चाहिये। सम्पादक और व्यवस्थापकके, रिपोर्टर और संवाददाताके सब गुणों तथा विशेषताओंसे

सम्पन्न उपसम्पादक किसी पत्रका प्राण और उसकी सफलताका आधार है। जिन सम्पादकोंको योग्य सहायक मिल जाते हैं उन्हे भाग्यवान् समझना चाहिये और जिन पत्रोंको उनकी सेवा प्राप्त हो जाती है उनकी सफलताको भी निश्चित मान लेना चाहिये।

जिम्मेदार, आदर्शवादी तथा अपने गौरवका अनुभव करनेवाले उपसम्पादकको सदा अपने पत्रकी नीतिपर ध्यान रखना चाहिये। पत्रकी नीति क्या है, इसका बहुत कुछ पता तो समाचारपत्रके मेक-अप और सवादोंके प्रदर्शन तथा शीर्षकसे ही चल जाता है। मान लीजिये कि कांग्रेसजनोंके एक जुलूसपर किसी शहरकी पुलिसने गोली चलायी और तीन आदमी मर गये। इस समाचारके शीर्षक विभिन्न पत्रोंमें विभिन्न ढङ्गसे प्रकाशित दिखाई देंगे। पाठक उन्हींसे पत्र-विशेषकी नीतिका अनुमान लगा सकते हैं। उदाहरणार्थ—कांग्रेसवादी कोई पत्र कुछ इस प्रकारका शीर्षक लगायेगा —

पुलिसकी बर्बरताका नग्न ताण्डव
निहत्थी जनतापर गोलियोंकी बौछार

सरकारपरस्त पत्रका शीर्षक कुछ इस प्रकारका होगा—

अमन और कानूनके लिए भारी खतरा
उपद्रवकारियोंकी उद्दण्डतासे स्थिति गम्भीर
पुलिस गोली चलानेके लिए बाध्य

लिबरलदलका कोई पत्र यदि शीर्षक लगायेगा तो कहेगा—

मजिस्ट्रेटकी आज्ञा भङ्ग करनेका यत्न
स्थिति काबूमे करनेके लिए बलप्रयोग
पुलिसकी गोलियोंसे अनेक हताहत

पत्रकी नीति यदि कुछ हो और समाचारोंका प्रदर्शन उसकी विपरीत दिशाकी ओर सङ्केत कर रहा हो तो यह बात बेतरह खटकती है और उससे पत्रके गौरवको ठेस पहुँचती है। फलतः अपने पत्रकी नीतिके विषयमे विशेष प्रकारसे सावधान रहना आवश्यक है।

हमारे देशके देशी भाषाके पत्रोंमें उपसम्पादकीय विभागका एक जरूरी और सबसे मुख्य काम अनुवाद करना भी है। तार वगैरह अबतक अंग्रेजी भाषामें ही आते हैं और हमारा दुर्भाग्य है कि हम अबतक इस स्थितिसे छुटकारा नहीं पा सके हैं। ऐसी अवस्थामें हिन्दी आदि देशी भाषाओंके उप-सम्पादकोंको अंग्रेजीका अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है जिसमें वे सरलता और शीघ्रताके साथ तारोंका सही अनुवाद कर सकें। अनुवाद करते हुए अक्षर-अक्षरका भाष्य करने या अर्थ करनेकी चेष्टा करनेकी आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक अंग्रेजी शब्दके स्थानपर हिन्दी शब्द बैठानेका यत्न करनेकी अपेक्षा सारे समाचारका भाव और अर्थ समझना और उसे अपनी भाषामें सफलता और पूर्णताके साथ व्यक्त करना कहीं अधिक आवश्यक और उपयोगी है। समाचार-पत्रके कार्यालयमें बैठकर धीरे-धीरे काम करनेकी गुञ्जाइश नहीं होती क्योंकि थोड़ेसे समयके भीतर सब काम निश्चित रूपसे पूरा कर देना अनिवार्य होता है। फलतः अनुवाद करनेका अच्छा अभ्यास होना चाहिये। न केवल सही अनुवाद करना चाहिये बल्कि शीघ्रताके साथ उसे पूरा करनेकी योग्यता भी सम्पादन करना चाहिये। कोई यह न समझ ले कि अनुवाद कर लेना बिलकुल सरल काम है। हमारा अनुभव है कि सीधे कालेजसे निकलकर आये हुए विद्यार्थी जब इस काममें लगा दिये जाते हैं तो उनके हाथ-पैर फूल जाते हैं। अंग्रेजी और हिन्दी लेकर अच्छी श्रेणीमें एम० ए० परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी एक-दो तारोंके अनुवादमें उतना समय लगा देते हैं जितनेमें अभ्यस्त अनु-वादक एक डेढ़ स्तम्भकी कापी तैयार कर लेता है। इतनेपर भी अनुवाद इतना भद्दा और निरर्थक होता है कि बिना भलीभाँति शोधन किये पत्रके लायक नहीं हो पाता। ऐसे लोगोंसे महीनोंतक केवल अनुवाद कराया जाता है तब कहीं जाकर वे किसी कामके होते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि अनुवादके लिए विशेष अभ्यासकी आवश्यकता है क्योंकि अंग्रेजी या हिन्दी भाषाके ज्ञान मात्रसे न वह गति आती है और न भावार्थको अभिव्यक्त करनेका ढङ्ग जो दैनिक समाचारपत्रोंके लिए आवश्यक होता है। अनुवाद करनेके लिए नया-नया काम मिलनेपर दो बातें विशेष रूपमें सहायक होती हैं। पहिली बात तो यह कि न शब्दकोषका उपयोग करनेमें

आलस्य करे और न सहयोगियोंसे किसी शब्द या वाक्य-विशेषके सम्बन्धमें पूछनेमें लज्जा या सङ्कोच। कहीं जरा भी सन्देह किसी बातमें हुआ कि उसका निराकरण किये बिना आगे न बढ़िये ; न गोलमटोल लिखकर टालनेकी कोशिश करनी चाहिये और न केवल अनुमानके आधारपर अन्धाधुन्धी भिड़ाना चाहिये। इससे अनुवाद भ्रष्ट हो जाता है, अर्थका अनर्थ हो जाता है और अनुवादक उपहास्य हो जाता है। दूसरी बात यह है कि प्रतिदिन अंग्रेजीके अधिकसे अधिक तार पढ़िये और हिन्दीमें हुए उनके अनुवादका, जो पत्रमें प्रकाशित हो गया रहता है, सावधानीके साथ पारायण कीजिये। कार्यालयके कामसे छुट्टी होनेपर इसमे काफी समय लगाना चाहिये। धीरे-धीरे आप स्वयं अभ्यस्त होते जायँगे और शीघ्र ही तेजीके साथ अच्छा और सरल तथा पत्रके योग्य अनुवाद करते दिखाई देंगे।

उपसम्पादकके लिए शीर्षक लगानेकी कलाका ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है। हमने इसे भी 'कला' कहा है पर जान-बूझकर ही इस शब्दका प्रयोग किया है। साधारण व्यक्ति नहीं समझ पाता कि किसी समाचारके मस्तकपर उसका सारांश लेकर शीर्षक बैठा देनेमें कौनसी बडी कला है। पर अनुभवी पत्रकार और चतुर तथा सावधान पाठकसे पूछिये तो पता चल जायगा कि शीर्षक बनाना उसी प्रकार कला है जिस प्रकार चित्र बनाना अथवा कहानी लिखना। किसी कलाकी कृतिकी सफलता और विशेषता इस बातमे होती है कि वह दर्शकके हृदयपर, उसके मन और मस्तिष्कपर अपनी सत्ता स्थापित कर देती है। कलाकार अपनी कृतिके द्वारा अपनी जिस अनुभूतिको प्रकट करता है वही अनुभूति यदि अपनी कृतिके प्रेक्षकके हृदयमें जाग्रत् कर सके तो उसकी कलाकी सफलता स्वीकार करनी होगी और मानना होगा कि उसका लक्ष्य पूरा होगया। कलामयी कृति वर्णनातीत होती है। वह केवल अनुभव-गम्य होती है। समाचारोंके सफल शीर्षकमें कला कैसे और क्यों होती है इसकी विवेचना तो नहा की जा सकती पर आप यदि ध्यानपूर्वक विचार करें तो स्वीकार करेंगे कि उसमें कुछ होता है जिसका अनुभव हमें उसे देखते ही हो जाता है। उपयुक्त, सफल और पूर्णाङ्ग शीर्षक अपने चार छ अक्षरोंमे ही समाचारके सारे भाव, उसकी ध्वनि, उसकी महत्ता और उसके तमाम आधार और

वातावरणको भी क्षणमात्रमें उसी प्रकार झलका देता है जिस प्रकार आकाशमें सहसा चमककर चपला विलुप्त हो जाती है। शीर्षक केवल समाचारका सूचन अथवा उसका संक्षिप्ताशय अथवा उसकी व्याख्या मात्र नहीं करता। इन सबके सिवा वह स्वयं 'समाचार-शरीर' का प्राण होता है जो सारे स्तम्भमें जीवनका सञ्चार कर देता है। पाठक जीवनके इसी स्पन्दनका अनुभव करता है।

किसी पत्रके उपसम्पादकीय विभागकी कला और तेजस्विता, सफलता तथा सजीवता देखनी हो तो उस पत्रके समाचारोंके शीर्षकोंका अध्ययन कीजिये। इनमें समाचार सम्बन्धी कितना बोध है, दूरतक देखनेकी कितनी शक्ति है, नवीनता और मौलिकताकी मात्रा कितनी है, कल्पनाशीलताका परिमाण क्या है और भविष्यके अन्धकारको भेदकर आनेवाली घटनाओंको समझनेकी कितनी सामर्थ्य है, जनरुचि और मनोवृत्तिका कितना परिज्ञान है आदि सारी बातोंका अनुमान उन्हींसे लग जायगा। यदि उपसम्पादकीय विभाग निकम्मा, निष्प्राण और किसी प्रकार काम खत्म करके घर भागनेकी प्रवृत्तिवाला है तो पत्रमें प्रकाशित शीर्षक ही उसके हृदयका परिचय दे देंगे। यदि उपसम्पादक सजग, सचेत, जागरूक और सजीव तथा वास्तविक पत्रकार हैं तो दूसरा ही दृश्य दिखाई देगा।

वस्तुतः शीर्षक और मेक-अप किसी पत्रमें सम्पादकीय विभागका दर्पण है जिसमें उसके प्रकृत रूपका दर्शन आप कर सकते हैं। पत्रकी बिक्री बढ़ानेके लिए आवश्यक है कि जनसमाज पत्र खरीदनेके लिए आकृष्ट किया जाय। साधारण कमाई करके अपना जीवन निर्वाह करनेवाले राहचलतेको भी दो पैसे व्यय करनेके लिए उत्प्रेरित कैसे किया जाय? विचारपूर्वक देखें तो ऐसा करनेके लिए चार बातें आवश्यक ज्ञात होती हैं। पत्र ऐसा हो कि पाठक उसे देखनेके लिए आकृष्ट हो, देखनेके बाद पढनेके लिए उत्प्रेरित हो, पढनेपर कही गयी बातें उसकी समझमें आने लायक तथा जीवनको स्पर्श करनेवाली हों, समझनेपर ऐसी हों जिनमें पाठक विश्वास कर सके।

पत्रमें इन चारोंका समावेश होना चाहिये। अपनी ओर देखनेके लिए ग्राहकको बाध्य करनेके लिए उसका मेक-अप सुन्दर होना चाहिये। पढ़नेके लिए उभाड़नेका काम शीर्षक करते हैं। शीर्षकोंकी सफलता इसीमें है

कि देखते ही पाठक और अधिक पढ़नेके लिए उत्सुक हो जाय। समझ-में आने लायक होनेके लिए भाषा सरल, स्पष्ट, संयत और समाचारको उपस्थित करनेका ढङ्ग सुलझा हुआ होना चाहिये और जीवनको स्पर्श करनेके लिए उन विषयोंका समावेश होना चाहिये जो जीवनकी धारा और समस्या तथा समयके अनुकूल हों। अन्ततः विश्वास उत्पन्न करनेके लिए संवाद केवल और विशुद्ध सत्य हो। फलतः शीर्षकका महत्व स्पष्ट है पर इसमें सावधानीकी बडी आवश्यकता है। पाठकमें उत्सुकता उत्पन्न करनेका अर्थ यह नहीं है कि शीर्षकके साथ अनाचार किया जाय। शीर्षकोंके साथ दो प्रकारके अनाचार अकसर होते हैं; अनावश्यक और कभी-कभी निराधार सनसनी पैदा करना और दूसरे उसे भ्रष्ट बना देना। अमेरिकन पत्रोंमें बहुधा यही दोष पाया जाता है। सारे पत्रको भडकीला बनानेके लिए विचित्र प्रकारसे समाचारोंको तोड़-मरोडकर अर्थ निकालते हैं और लम्बे लम्बे तथा मोटे और भडकीले शीर्षकोंसे समाचार-पत्रको भर देते हैं। बहुधा साराका सारा समाचार शीर्षकोंके रूपमें ही छाप दिया जाता है। फिर उनमें भ्रष्टताका पुट भी विशेष रूपसे रहता है। मानव हृदयकी ओछी प्रवृत्तियोंको उभाडनेवाले शीर्षक लगाते हैं। यह कला नहीं है और न पत्रकारीके आदर्शके अनुकूल है। शीर्षक उत्तेजक होते हुए भी सयत, गम्भीर और पवित्र हो सकते हैं। इसीमें उसकी कला है और इसीमें पत्रकारकी सफलता सूचित होती है।

शीर्षक लगाते हुए कुछ साधारण बातोंकी ओर भी ध्यान रखना चाहिये। यथासम्भव कोई भी शीर्षक एक ही लाइनमें समाप्त कर देना चाहिये। दो दो लाइनोंमें शीर्षकका एक ही वाक्य अनावश्यक स्थान नष्ट करता है और पत्रमें स्थान-का बहुत बडा मूल्य होता है। उदाहरणके लिए किसी भी पत्रमें किसी समाचारका शीर्षक ले लीजिये और आप हमारा आशय समझ जायँगे। यहाँ सङ्केत कर देना भी अनुचित न होगा; जैसे—नीचेका एकस्तम्भीय शीर्षक ले लीजिये।

गङ्गाकी बाढ़
सैकडो गाँव जलमग्न
जल-प्रलयका भीषण दृश्य

इसीको गलत ढङ्गसे लिखना हो तो लिखेंगे—

गङ्गाकी बाढसे सैकड़ों गाँव बह गये
भयावने जलप्रलयका दृश्य
दिखाई दे रहा है !

बात दोनोंमें एक ही है पर एक शीर्षक एक वाक्यमें समाप्त होता है और दूसरा दो लाइनें घेर लेता है। व्याकरणकी दृष्टिसे वाक्यको पूराका पूरा लिखकर शीर्षक बनाना भला नहीं ज्ञात होता। उससे न केवल स्थानका अपव्यय होता है बलिक शीर्षक भी बलहीन दिखाई देने लगता है। चुने हुए शब्दोंमें सारा भाव प्रकट कर देना शीर्षक बनानेवालेकी सफलता प्रकट करता है। इस बातका ध्यान भी रखना चाहिये कि शीर्षक ऐसा न हो जो मानहानिकर हो अथवा जिससे कानूनके शिकञ्जेमें आ जानेका भय हो। इस विषयमें उपसम्पादकीय विभागको विशेषरूपसे सतर्क रहना चाहिये। पहले ही कह चुके हैं कि शीर्षक संवादमें प्राणसञ्चार करते हैं; पत्रकी नीति और प्रश्नविशेषके सम्बन्धमें उसके भाव, मत तथा रुचिको प्रकट करते हैं। समाचारोंके शीर्षक बहुधा किसी लेख अथवा आलोचनासे कहीं अधिक भाव प्रकट कर देते हैं जिससे पाठक अपेक्षाकृत कहीं अधिक प्रभावित हो जाता है। शीर्षककी इस शक्ति, प्रभाव और महत्वसे सरकारें भी भलीभाँति परिचित होती हैं और उससे उद्भूत परिणामका अच्छा ज्ञान होता है। यही कारण है कि युद्धके समय अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सङ्कटके समय सरकारकी नीति समाचारपत्रोंके शीर्षकोंपर नियन्त्रण स्थापित करनेकी हो जाती है। इंग्लैण्डमें एक नहीं अनेक बार वहाँकी पार्लमेण्टमें राजनीतिक नेता पत्रोंके शीर्षकोंकी शिकायत करते सुने जाते हैं। सरकारी नीतिके प्रवक्ता ऐसे समय जब उनकी नीति कुछ होती है और पत्रोंकी कुछ, बहुधा पत्रोंको उनके शीर्षकोंके लिए उलाहना देते हैं। अधिनायकवादी देशोंकी सरकारें तो सेंसर विभागसे स्वीकृति पाये बिना शीर्षकोंको छापनेकी अनुमति ही नहीं देतीं। हमारे देशमें युद्धकालमें समाचार-पत्रोंपर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं उनमें शीर्षकोंका नियन्त्रण करनेका यत्न सबसे प्रमुख स्थान रखता है। इसी बीच जिस राजनीतिक आन्दोलनकी सृष्टि हो गयी है उसने तो अधिकारियोंको उन्मत्त बना दिया है। सरकारी सेंसर-

विभाग शीर्षकोंके टाइप, उनकी मोटाई, लम्बाई, चौडाई तथा शब्दोंतकपर रोक-थाम करता रहा है और पहले स्वीकृत कराकर तब उन्हें प्रकाशित करनेकी आज्ञा देता रहा है। क्या ये बातें ही शीर्षकोंके महत्व और उनकी सजीवताका प्रमाण नहीं हैं ?

शीर्षकोंका ऐसा महत्वपूर्ण स्थान है इसीलिए यह आवश्यक है कि उनकी रचना करते समय उपसम्पादक सतर्कतासे काम ले। मानहानिकर अथवा कानूनी दृष्टिसे आपत्तिजनक शीर्षक पत्रपर विपत्ति ढा दे सकता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सावधानीकी मात्रा अतितक पहुँच जाय और अपनी खाल बचानेके लिए शीर्षक निष्प्राण बना दिया जाय। विदेशी सत्ताके अधीन होते हुए पत्रके सञ्चालनमें खतरोंका सामना करना ही पडता है और ऐसा करते हुए भी देश तथा राष्ट्रके हितकी रक्षा करनी पडती है। अपनी स्वतन्त्रताकी सङ्कुचित परिधिमें हमारे पत्रकार जिस निर्भयतासे अपने पत्रकी नीतिका सञ्चालन करते हैं उसीका सहारा लेकर आवश्यक सावधानीके साथ शीर्षकोंकी रचनाका अभ्यास करना चाहिये।

शीर्षकोंके सम्बन्धमें एक बात और लिख देना है। प्रमुख शीर्षकके सिवा अन्त.शीर्षक भी अकसर लगाये जाते हैं। लम्बे-चौड़े वक्तव्योंको, अथवा सभा-समितियो, सम्मेलनों और व्यवस्थापक सभाओंके कार्यविवरणोंको प्रकाशित करते हुए बीच-बीचमें छोटे-छोटे शीर्षक लगा देना जरूरी हुआ करता है। इससे एक ओर पत्रकी शोभा बढ़ जाती है और दूसरी ओर पाठकोंको पढनेमे सुविधा होती है। स्तम्भके स्तम्भ सरोतर रँग देनेसे पत्रका स्वरूप मनहूस सा हो जाता है। आँखें जब उसके कलेवरपर दौडने लगती हैं तो उन्हें विश्राम करनेका स्थान मिलना चाहिये। छोटे-छोटे उपशीर्षक विश्रामस्थलका ही काम करते हैं। फिर सौन्दर्य तो सृष्टि वैषम्यमें ही है। पेजका पेज यदि सपाट ढङ्गसे छपा हो तो पाठककी दृष्टिमें सारा पत्र शुष्क मरुस्थलकी भाँति चमक उठेगा जिससे दूर भागनेकी ही प्रवृत्ति पैदा होगी। यदि बीच-बीचमें दूसरे टाइपके शीर्षक रहे तो सूरत बिलकुल बदल जायगी। पाठक भी शीर्षकोंको देखकर जो अश पढ़ना चाहेगा आसानीसे ढूँढ़ लेगा और पढ़ लेगा।

जिस प्रकार शीर्षक पत्रको आकर्षक, रुचिकर और प्रभावकर बनाते हैं उसी प्रकार मेक-अपका ढङ्ग भी उन्हे मोहक तथा सप्राण बना देता है। लिपि-बद्ध समाचारोंका सुन्दर, पाठकोंके पढ़नेमें सुविधाजनक, भावपूर्ण तथा प्रभाव-कर प्रदर्शन करना मेक-अपका लक्ष्य होता है। मेक-अप पत्रकी सजावटका नाम है। बार-बार हम कह चुके हैं और फिर कहते हैं कि पत्र वह पदार्थ है जिसे बाजारमें पहुँचकर अपने प्रतिद्वन्द्वियोंका सामना करते हुए अपने लिए ग्राहक ढूँढना पड़ता है। ग्राहकोकी संख्या जितनी अधिक होगी उतना ही अधिक विज्ञापन मिलेगा और उतनी ही अधिक पत्रकी आर्थिक उन्नति होती चलेगी। पाठकोंने कलकत्ता, बम्बई आदिमें अंग्रेजी ढङ्गकी दूकानें देखी होंगी। दूकानदार बड़ी सावधानी, बड़ी सुन्दरता और बड़े परिश्रमसे अपनी दूकान सजाता है। दूकानोंकी सजावट आजकल एक कला हो गयी है। 'शो रूम' और 'विण्डोड्रेसिंग' अर्थात् प्रदर्शन करना और उसके लिए खिड़की, दरवाजों आदिको आकर्षक ढङ्गसे सजाकर अपने मालको इस प्रकार लगाकर रखना कि खरीदार आकृष्ट हो जाय, दूकानदारोंके लिए आवश्यक हो गया है और जो दूकानदार इसमें जितना अधिक समर्थ होता है वह उतनी ही अधिक अपने व्यापारमे सफलता प्राप्त करनेकी आशा करता है। मेक अपको वही 'विण्डोड्रेसिंग' या 'दूकानकी सजावट' के समान समझना चाहिये। मेक-अपके द्वारा पत्र अपनी प्रतिद्वन्द्वितामें बड़ी सीमातक बाजी मार ले जानेकी आशा करते हैं।

उपसम्पादकीय विभागकी सूझ और कल्पनाशीलता तथा कलामयी प्रवृत्तिपर ही किसी पत्रका सफल मेक अप निर्भर है। यदि उपसम्पादकमें विवेचनाकी शक्ति और उद्‌बुद्ध समाचार-चेतना हो तथा समाचारोंको उनके महत्वके क्रमसे यथास्थान उचित ढङ्ग से प्रदर्शित करनेकी तमीज हो तो उसके द्वारा किया गया 'मेक-अप' पत्रके स्वरूप और महत्वको निस्सन्देह बढा देगा। उपसम्पादकीय विभागमे काम करनेवालोंको मेक-अप करनेकी पद्धतिके सम्बन्धमें कोई निश्चित तथा निर्णीत नियम नहीं बताया जा सकता। स्थिति, आवश्यकता, पाठकोंकी रुचि तथा परिस्थितियोंकी माँगको समझकर मेक-अप-का स्वरूप निर्धारित करना पड़ता है। उपसम्पादक स्वयं ही इसका निर्णय

कर सकता है कि आज उसके पत्रके मेक-अपका ढङ्ग क्या होना चाहिये। यह समझ और सूझ अभ्याससे ही प्राप्त की जा सकती है। मेक-अप करनेकी कला सीखने तथा समझनेके लिए उप सम्पादक प्रतिदिन दस, बीस अथवा अधिकसे अधिक पत्रोंको देखे और सावधानीके साथ जाँच करे कि विभिन्न समाचारों, प्रश्नों तथा समस्याओंके सम्बन्धमें विभिन्न पत्रोंने किस प्रकार प्रदर्शन करनेका निश्चय किया। क्रमश· वह स्वय समझने लगेगा कि मेक-अप करनेका सर्वोत्तम ढङ्ग किसका है और इस प्रकार धीरे-धीरे इस कार्यके करनेकी कलामें पारङ्गत हो जायगा।

मेक-अप करते हुए जो बात मुख्यरूपसे ध्यानमें रखनी चाहिये उसका उल्लेख मोटे तौरसे यहाँ कर दिया जा सकता है। समाचारका सुन्दर और सु-आयोजित प्रदर्शन ही मेक-अपका लक्ष्य होता है यह पहले कह चुके हैं। पत्रको आकर्षक बनाना मात्र उसका लक्ष्य नहीं है यद्यपि सुन्दर मेक-अपके परिणामस्वरूप वह आकर्षण आपसे आप पत्रको अवश्य प्राप्त हो जाता है। फलतः समाचारका प्रदर्शन करना मुख्य काम है। जब समाचारका प्रदर्शन करना है तो उसके लिए उपसम्पादकमें समाचार-बोध और समाचार-चेतना आवश्यक है। कौन संवाद कितना महत्व रखता है और प्रत्येक दृष्टिसे विचार करनेपर भी किस समाचारमें सर्वोत्कृष्ट समाचारत्वका गुण कितना वर्तमान है यह समझे बिना क्रमसे यथास्थान और यथायोग्य संवाद-प्रदर्शन किया ही नहीं जा सकता, अतएव मेक-अप करनेवालोंका यह विवेक जाग्रत् होना चाहिये।

जिस संवादका जितना अधिक महत्व हो उसे उसके अनुकूल ही महत्वपूर्ण स्थान तथा शीर्षक प्रदान करना चाहिये। यही मेक-अपके सिद्धान्तका आधार है। पर इस आधारको सामने रखते हुए कुछ और बातोंकी ओर ध्यान देना भी जरूरी होता है। पत्रके मुखपृष्ठपर उस दिनका सर्वोत्कृष्ट संवाद प्रथम स्थान पावे। उसीके अनुरूप और उसीके आधारपर पेज भरका शीर्षक लगा दिया जाय। उसके बाद क्रमसे कम महत्वके समाचार स्थान पावें। पर ध्यान रखना चाहिये कि समाचारोंको बैठाते हुए पृष्ठका स्वरूप न बिगडने दिया जाय। पृष्ठका स्वरूप कैसे बिगड जाता है इसका पता उन लोगोंको लग जायगा जो प्र पाँच दस दैनिक पत्रोंको लेकर उनके मेक-अपको ध्यानसे देखते हैं।

किसी पत्रके मुखपृष्ठपर आप जितने संवाद देखेंगे उन सबके अधिकतर शीर्षक द्विस्तम्भीय दिखाई देंगे। पर मेक-अपकी यह पद्धति दोषपूर्ण होती है। सारे द्विस्तम्भीय शीर्षकवाले समाचार एक ही पृष्ठमे भर दिये जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि सारा पृष्ठ मोटे-मोटे शीर्षकोंसे लदा दिखाई देता है। यह भी पता नही चलता कि कौन समाचार कितना महत्वपूर्ण है क्योंकि सभीके शोर्षक समानरूपसे बड़े, मोटे टाइपवाले और भडकीले होते हैं। अकसर पृष्ठके चार या छः स्तम्भोंमे वे शीर्षक एक ही लाइनमें फैले दिखाई देते है।

दृष्टि पडते ही मेक-अपका दोष दिखाई दे जाता है क्योंकि सारेके सारे पृष्ठका स्वरूप बिगड़ा हुआ नजर आता है। समाचारोंको स्थान देनेमें न कोई तरतीब दिखाई देती है और न कोई क्रम। समाचारोंका शीर्षक एक, दो अथवा तीन या चार स्तम्भोंमें उनके महत्वके अनुसार होता है। एक प्रकारसे शीर्षक ही उनके महत्वके सूचक हो जाते हैं। यदि सभी समाचारोंके शीर्षक दो या तीन स्तम्भोतक फैलाकर लम्बे कर दिये गये और सभी सनसनीदार बना दिये गये तो फिर वास्तविक महत्वपूर्ण और सनसनीदार समाचारोंका प्रदर्शन किस प्रकार किया जा सकता है? इसी प्रकार कुछ पत्र मेक-अप करते हैं जिन्हें देखनेसे ही मनहूसियत टपकती है। छोटे-छोटे शीर्षकोंके समाचार सीधे-सीधे स्तम्भोमें भर दिये गये; न टाइपोंमें अधिक भेद होता है और न शीर्षकोमें। सादगीकी मात्रा सारे पत्रके स्तम्भोंमें इतनी समता भर देती है कि उन्हे देखते ही चित्त जैसे गम्भीर और सूखा हो जाता है। इसे भी आप सदोष मेक-अप कह सकते हैं।

किसी-किसी पत्रमें समाचारोंको उनके विषयके अनुसार छाँट कर रखते हैं और उनका स्थान पहलेसे निर्धारित कर देते हैं; जैसे, पृष्ठ एकमें विदेशी समाचार, पृष्ठ दो में देशी, किसीमें खेल-कूद और किसीमे कविता-कहानी तथा किसीमें बाजार-दर। यह तरीका भी अच्छा है क्योकि पाठक अपनी रुचिके अनुसार जिस विषयके समाचारको पढना चाहता है उसे निर्धारित पृष्ठ और स्तम्भमें ढूँढ लेता है। पर आजकल एक दूसरी पद्धति भी चली है जो अत्यधिक रूपसे प्रचलित हो गयी है। यह पद्धति अमेरिकन पत्रोंकी है। वे सारे प्रमुख और महत्वके संवाद मुखपृष्ठपर प्रकाशित कर देते हैं। पर समाचारके

समस्त विवरण एक ही पृष्ठमें नहीं आसकते अतः उनके शीर्षक और मुख्यांशको पहले पृष्ठपर और शेष विवरण भीतरके पृष्ठोंके स्तम्भोंमें छाप देते हैं। पहले पेजपर जहाँ संवाद खत्म किया वहाँ नीचे 'पृष्ठ २ कालम ३ में' लिख देते हैं जिसमें पाठक उसे उक्त स्थानमें पा जाय।

इस पद्धतिका गुण यह है कि सभी प्रमुख समाचारोंका सङ्केत एक साथ ही मुखपृष्ठपर मिल जाता है पर इसमें सावधानीकी आवश्यकता अधिक होती है। पहले तो समाचारोंको स्थान देनेके क्रमका चुनाव उनके महत्व और उनकी उपयोगिताकी दृष्टिसे करना होता है जिसके लिए उपसम्पादकमें समाचारको परखनेकी बुद्धिका होना नितान्त आवश्यक है, दूसरे, पृष्ठको सजाने और सुन्दर बनानेकी ओर ध्यान रखना पड़ता है। ऐसा न हो कि सारे शीर्षक एक ही लाइनमें लदे दिखाई दें। ऊपर छोटे-छोटे टाइपका एकस्तम्भीय शीर्षकवाला समाचार यदि दिया गया है तो उसी स्तम्भमें बीचमें मोटे टाइपका शीर्षक अच्छा न लगेगा। द्वि—स्तम्भीय शीर्षकका समाचार तो और भी भद्दा मालूम होगा। फिर पृष्ठकी तुला भी बिगड़ने न पावे। यदि पेजके बायी ओरके सिरेपर दो स्तम्भोंमें द्वि—स्तम्भीय शीर्षक (डबल कालमका हेडिंग) है और दायीं ओरके दोनो स्तम्भोंमें 'टू पाइका' या 'वन्निक' टाइपोमें गढे गये शीर्षकके समाचार रख दिये गये हैं और बीचके दो स्तम्भोंमें नीचे-ऊपर छोटे टाइपके और मध्यमे मोटे टाइपके समाचार छाप दिये गये हैं तो पृष्ठकी तुला बिगडी हुई नजर आयेगी।

इसका स्वरूप ऐसा ही होगा जैसे किसी सुन्दर बनी इमारतमें एक ओर भडकीला कँगूरा हो और उसके सामने दूसरो ओर फूसका छप्पर डाल दिया गया हो। मेक-अप करनेवालेको अपने मस्तिष्कमें सारे पृष्ठकी रूपरेखा इस प्रकार खीच लेनी चाहिये कि उसमे जहाँ संवादोंका प्रदर्शन उनकी विशेषताके अनुरूप हो वहीं पत्रका पृष्ट भी देखनेमे भला मालूम हो। सुन्दर चित्रकी भाँति उसकी शकल हो जो किसी प्रकार आँखोमें खटकने न पावे। इसके सिवा ध्यान यह भी रखना चाहिये कि सवादोंका उलट-फेर न होने पावे। दैनिक पत्रमें काम शीघ्र गतिसे करना होता है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है और ... बढती चलती है वैसे-वैसे कामको पूरा करनेकी तेजी भी बढ़ती चलती है।

अन्तमें होनेवाले कार्योंमें तो सदा बडी गहरी गति रखनी पड़ती है। मेक-अप हमेशा ही विचित्र शीघ्रताका शिकार होता है क्योंकि छपाईके पूर्वका वही अन्तिम काम होता है। इस तेजीके कारण कभी-कभी ऐसी भद्दी और भयानक भूलें हो जाती हैं कि सारे पत्रकी सारी सजावट और सारा श्रम नष्ट हो जाता है। अकसर समाचार उलट-पलट जाते हैं। शीर्षक कुछ है और उसके नीचे समाचार कुछ दूसरा आ धमकता है। ऐसी गलतियोंका उल्लेख पूर्वके पृष्ठमें कर भी चुके है। कभी-कभी तो अण्डबण्ड चित्रतक छप जाते हैं। पण्डित जवाहरलाल नेहरूकी पुत्री श्रीमती इन्दिरा नेहरूका विवाह होनेवाला था। एक पत्रमें वर-वधूके चित्र प्रकाशित हुए। वधूका चित्र छापते हुए उक्त पत्रने श्रीमती इन्दिराके स्थानपर उनकी फूआ श्रीमती कृष्णाहथी सिंहका चित्र छाप दिया।

पाठक विचार करें कि कैसी भद्दी, भ्रष्ट और उपहास्य भूल हो गयी। मेक-अप करनेवालेको बड़ी भीड़ और तेजीमें काम करते हुए भी अपनी आँखोंको खोले, बुद्धिको चपल और मनको शान्त रखना चाहिये। तमाम आवश्यक बातोंपर निगाह हो, घड़ीकी ओर भी ध्यान रहे और समाचारोंके महत्वको समझते हुए पत्रको आकर्षण प्रदान करनेकी चेष्टा बनी रहे। कहाँ चित्र देना तथा कहाँ मानचित्र स्थापित करना है यह भी न भूले। इस प्रकार सतर्कता-के साथ इस कार्यमें संलग्न होना और अपनी कुशलताका परिचय देना पत्रको जीवन प्रदान कर देता है। निश्चित है कि पत्रकी सफलता बहुत कुछ मेक-अपकी सफलता और उपयुक्त शीर्षकोंकी स्थापना तथा प्रदर्शनपर निर्भर है। इसके द्वारा सीधे और महत्वहीन संवाद भी मनोरञ्जक तथा सबल प्रदर्शित किये जा सकते है और महत्वपूर्ण संवाद भी निष्प्राण बना दिये जा सकते हैं। निरन्तरके अभ्यास तथा बहुतसे समाचारपत्रोंका प्रतिदिन सावधानीके साथ अध्ययन करनेसे समय पाकर उपसम्पादक इस कामको सरलताके साथ कर लेगा।

प्रूफ-संशोधनका काम यद्यपि बड़ा नीरस, शुष्क और पित्तमार समझा जाता है पर उसका महत्व उपर्युक्त बातोंसे किसी प्रकार कम नहीं है। सम्पादकीय विभागमें कार्य करनेवालेके लिए प्रूफ-संशोधन करनेका अभ्यास होना

अनिवार्य रूपसे आवश्यक है। खेदकी बात है कि हमारे हिन्दीके दैनिक पत्रोंमें इस अङ्गकी बडी उपेक्षा की जाती है। हिन्दीके किसी समाचारपत्रको ले लीजिये और आप प्रत्येक स्तम्भकी प्रायः प्रत्येक पङ्क्तिमें एक न एक भूल पायेंगे। भूलें भी ऐसी भद्दी होती हैं कि पत्र पढ़ना असम्भव हो जाता है। यदि हिन्दीके पत्रोंके स्तरको ऊँचा करना है तो प्रूफ संशोधनकी उचित व्यवस्था करनी ही होगी। उपसम्पादक बननेकी इच्छा रखनेवाले तो इसका अभ्यास करके ही कदम आगे बढ़ायें। प्रूफ संशोधन करनेवालेके लिए भाषाका अच्छा ज्ञान होना चाहिये जिसमें वह न केवल अनुवादकी अशुद्धियाँ वल्कि व्याकरण-सम्बन्धी गलती भी दुरुस्त करता चले। दैनिक पत्रोंका प्रूफ-सशोधन करना एक प्रकारसे सम्पादन करना ही है। साधारण छापेखानोंमें भी वहाँ छपने-वाली पुस्तको या परचो आदिका प्रूफ-मशोधन करनेवाले होते हैं। पर वे अधिकतर 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' वाले ही होते हैं। वे मूल कापीसे मिला-मिलाकर कम्पोज हुए मैटरकी अशुद्धियाँ सुधारते चलते हैं। पर दैनिक पत्रका प्रूफ-सशोधक यद्यपि किसी लेख या विवरणके भाव और मतको उलट पलट नहीं सकता पर किसी घटनाके सम्बन्धमे यदि कोई गलत बात लिख गयी हो या कोई अनुवाद अशुद्ध हुआ हो तो वह उसकी उपेक्षा भी नहीं कर सकता। यदि अग्रलेखमे ऐसी कोई भूल दिखाई दे तो प्रूफ-संशोधकका कर्तव्य है कि उसकी ओर लेखकका ध्यान आकृष्ट कर दे।

प्रूफके लिए भी सतत अभ्यासकी आवश्यकता है। उसके चिह्नोंको जान लेना चाहिये और ध्यान रखना चाहिये कि सशोधित रूप हाशियेपर लिख दिया जाता है। पंक्तिके अशुद्ध अक्षरों या शब्दोंको शोधकर वहीं संशोधित स्वरूप लिखनेसे काम नहीं चलता, क्योंकि कम्पोजिटर हाशियेपर ही लगे चिह्नों-को देखता है और तदनुकूल स्वय संशोधन कर देता है।

उपसम्पादकीय विभागके प्रत्येक सदस्यको उपर्युक्त सभी कामोका अभ्यास क्रमशः कर लेना चाहिये क्योंकि उसीकी योग्यता और कार्य-क्षमतापर उसके पत्रका गौरव और उसकी सफलता आश्रित है। आधुनिक पत्रोकी एक और विशेषताकी ओर ध्यान आकृष्ट किये बिना उपसम्पादकीय विभागके सम्बन्धका समाप्त नहीं किया जा सकता। आजके दैनिक समाचारपत्र समाचार-पत्र

होते हुए भी मासिक अथवा त्रैमासिक पत्रिकाओंका आंशिक अभिनय भी करते है। साप्ताहिक पत्रोंका पत्रिकात्मक रूप तो अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। पत्रिकाओंमें विविध विषयक लेखों और विचारोंका सङ्कलन होता है। साप्ताहिक समाचारपत्र और आधुनिक दैनिक पत्र भी विविध प्रकारके लेखों और विचारोंको अधिकाधिक स्थान देने लगे हैं। यद्यपि समाचार देना उनका मुख्य काम है फिर भी इन विशेषताओंकी उपेक्षा कोई भी अच्छा दैनिक पत्र नहीं कर सकता। पूर्वके पृष्ठोंमें कह चुके हैं कि आजका पत्र जीवनका कोई अङ्ग ऐसा नहीं है जिसका समावेश अपने स्तम्भोंमें न करता हो। ऐसी दशामें प्रधान उपसम्पादककी एक जिम्मेदारी यह भी है कि वह विविध विषयोंके सम्बन्धमें उपयुक्त मसाला जुटाया करे। कविता, कहानी, राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति, दर्शन, साहित्य, कला, अभिनय, नृत्य, सङ्गीत, खेल-कूद, फैशन, फर्नीचर, शिशुपालन, गृहस्थी, कृषि, उद्योग, व्यापार आदि विषयोंके सम्बन्धमें उत्तम लेखादिसे यथावसर अपने स्तम्भोंको विभूषित करता रहे। इसके सिवा व्यङ्गचित्रों, चित्रों आदिसे भी पत्रको सजाना जरूरी होता है। फलतः यह आवश्यक है कि उपसम्पादकीय विभाग विभिन्न विषयोंके लेखकोंकी जानकारी रखे और उनसे लेख-प्राप्तिकी चेष्टा करता रहे। कार्यालयमे ख्यात-नामा लेखकोंकी सूची रखना सहायक होता है। कभी-कभी उन्हें पत्र लिखकर लेखोंकी माँग करते रहना चाहिये। लेखकोंके पास उपहारस्वरूप पत्रकी एक प्रति भेजते रहना अच्छा होता है। पर सदा अच्छे लेखकोंसे लेख नहीं मिला करते और पत्रमें प्रतिदिन योजनानुसार कुछ न कुछ विशेष बातें होनी ही चाहियें। उपसम्पादक यह कहकर छुट्टी नहीं पा सकता कि उसके टेबिलके खानेमें अमुक विषयपर कोई लेख उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थितिका सामना करनेके लिए भी उपसम्पादकोंको तैयार रहना चाहिये। प्रधान उप-सम्पादकका कर्तव्य है कि वह अपने विभिन्न सहयोगियोंको उनकी रुचि और योग्यताके अनुसार विषय-विशेषका अध्ययन करनेके लिए और तद्विषयक लेख लिखनेके लिए प्रोत्साहित करता रहे। अच्छा हो कि इन विषयोंपर ऐसे दो-चार लेख लिखे हुए सुरक्षित रखे रहें जिसमें आवश्यकता पड़नेपर वे तत्काल प्रेसमें दे दिये जाया करें।

उपसम्पादक यह सुनकर घबडायें नहीं कि उन्हें विविध विषयोंपर लेख लिखना हो सकता है। यह कार्य बहुत कठिन नहीं है। यदि उपसम्पादक विभिन्न पत्रोंमें अपनी रुचिके लेख विशेष रूपसे पढ़ा करें तथा 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' अथवा 'स्टेट्समैन इयरबुक' अथवा 'क्वार्टर्ली रजिस्टर' जैसी पुस्तकोंसे आवश्यकता पडनेपर सहायता लेना सीख जायँ तथा लिखनेका अभ्यास कर लें तो लेख तैयार कर लेना कठिन नहीं हुआ करता। इसी प्रकारके अध्ययनसे उनका ज्ञान-भण्डार बढ़ता जायगा और कुछ दिनोंमें वे एक-दो विषयोंके अच्छे जानकार हो जायँगे। पत्रकारके लिए अध्ययन करते रहना और विविध विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा करते रहना नितान्त आवश्यक है। इससे भी अधिक आवश्यक इस बातका ज्ञान प्राप्त करना है कि जरूरी बातों और सूचनाओंको जानने तथा प्राप्त करनेके स्रोत क्या हैं तथा उनका उपयोग किस तरह किया जा सकता है। जिस प्रकार विविध विषयोंकी आवश्यक सूचना प्रदान करनेवाली पुस्तकें (रेफरेन्स बुक्स) उपसम्पादककी सबसे बडी सहायिका होती हैं उसी प्रकार उसे 'फाइल' रखने और 'कतरन' (कटिङ्ग) रखनेका अभ्यास भी करना चाहिये। सम्पादकीय विभागके कार्यालयमें कुछ पत्रोंकी 'फाइल' रखना तो नितान्त आवश्यक होता है। अनुभव बताता है कि 'फाइलों' के बिना पत्रका काम शायद चल ही नहीं सकता। बहुधा तारोंसे जो समाचार आते हैं वे ऐसे होते हैं जिनके पूर्वापर सम्बन्धकी व्याख्या किये बिना छाप देना व्यर्थ ही होता है क्योंकि पाठक उन्हे समझ ही नहीं सकता। उदाहरणके लिए मान लीजिये कि एक दिन यह समाचार आया कि 'अमेरिकाकी सिनेटने राष्ट्रपति रूजवेल्टकी सिफारिशोंकी अवहेलना करके कोयलेकी खानोंके मजदूरोंकी हडताल सम्बन्धी बिल बहुमतसे अस्वीकृत कर दिया'। समाचार एजेन्सीसे आया हुआ यह तार इसी रूपमें यदि छाप दिया गया तो पाठक उसका क्या अर्थ समझेगा ? रूजवेल्टकी सिफारिश क्या थी, हड़ताली मजदूरोंके सम्बन्धका बिल क्या था और हड़ताल क्यों हुई थी आदि बातोंकी सङ्क्षिप्त व्याख्या किये बिना उक्त तारका प्रकाशन साधारण पाठकके लिए व्यर्थ होगा। चतुर और सावधान उपसम्पादक तत्काल पत्रोंकी फाइलसे सहायता

दो चार वाक्योंके साथ इस तारको प्रकाशित करके अपनी कुशलताका

परिचय देगा। 'कतरनों' से भी उसे सहायता लेनी पड़ती है। ऐसे विषयोंके लेख और समाचारोंकी 'कतरनें' काटकर एक रजिस्टरमें चपका लेनेका अभ्यास करना चाहिये जिनसे विषय-विशेषके सम्बन्धमे जानकारी मिलती हो। हो सकता है कि दस-बीस मिनटोके भीतर किसी अकल्पित विषयपर आपको कुछ लिखनेकी आवश्यकता पड जाय। सहसा समाचार मिला कि 'रविबाबूका देहान्त हो गया।' समाचार छापते हुए उनका चित्र तो आप प्रकाशित करेंगे ही पर साथ-साथ दस लाइनोंकी और आवश्यकता होगी। रविबाबूके जन्मकी तिथि, मृत्युके समय उनकी उम्र, उनके जीवनका महत्त्व तथा उनकी विशेषता और देशमे उनके व्यक्तित्वके स्थानका अति संक्षिप्त परिचय तत्काल दे दीजिये। अधिक बातें बादमें लिखी जायँगी पर इतनेके बिना वह समाचार अधूरा रह जायगा। तत्काल अपनी कतरनोंसे अथवा सूचना-पुस्तकोंसे सहायता लेनी होगी और उचित साहित्यिक ढङ्गसे अति आवश्यक बातोंको लेकर एक पैराग्राफ तैयार कर देना होगा।

धैर्यके साथ अध्यवसाय और श्रम तथा अभ्यास करते रहनेसे ही ये बातें प्राप्त हो जाती हैं। हिन्दीके पत्रकारोंमें इस बातकी बड़ी कमी है। लेखकको अनुभव है कि उपसम्पादकीय विभागमें काम करनेवाले अपने कार्यमे रस नहीं लेते। उनकी मनोवृत्ति कुछ ऐसी हो जाती है जैसी साधारण दफ्तरोंके बाबुओंकी होती है। कमसे कम मेहनत करके किसी प्रकार कामके घण्टे पूरे करने और समय समाप्त होते ही छाता या छडी उठाकर घरकी ओर भागनेका उपक्रम करनेकी उनकी आदत हो गयी है। पत्रकारके लिए और विशेषकर सम्पादकीय विभागके सदस्योंके लिए यह मनोवृत्ति उनका सबसे बडा शत्रु है। ऐसे लोग इस क्षेत्रमें त्रिकालमें भी सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। सदा याद रखना चाहिये कि पत्रकारका जीवन केवल पैसा कमानेका उपाय मात्र नहीं बल्कि एक प्रकारकी पवित्र साधना है जिसकी पूर्ति और सिद्धिके लिए एकान्त निष्ठा, अदम्य उत्साह और अविचल श्रद्धाकी आवश्यकता है। जो व्यक्ति सेवाका यह व्रत ग्रहण करे वह उसे प्रसन्नता और सन्तोषके साथ ग्रहण करे। यदि उसे अपने काममें रस मिलेगा और यदि अपने दिन-प्रतिदिनके कठिन परिश्रम और अनेक कठिनाइयोंका सामना करनेसे एक प्रकारके आत्मसन्तोषकी

अनुभूति होगी तभी उसका जीवन सफल तथा समाजके लिए उपयोगी हो सकेगा।

आधुनिक पत्रकार-कलाने अपने ढङ्ग और स्वरूपके द्वारा उपसम्पादककी शक्ति और उसके उत्तरदायित्वको बेतरह बढा दिया है। उसकी शक्ति और उत्तरदायित्वका यह विस्तार इस बातकी अपेक्षा करता है कि उपसम्पादकके नैसर्गिक और प्राप्त गुण तथा उसकी विशेषताएँ भी व्यापक तथा विस्तृत हों। उपसम्पादकमे समाचार-बोध, विवेचनात्मक बुद्धि, व्यापक दृष्टिकोण, कल्पनाशीलता, सामाजिक जीवनके प्रति सजीव सहानुभूतिपूर्ण भाव, सत्यके प्रति निष्ठा, सेवाव्रतको पूरा करनेका दृढ सङ्कल्प, अपने काममें दिलचस्पी आदि नैसर्गिक गुण तो होने ही चाहिये पर इन सबके सिवा उसमें कुछ और बातें भी हों—

(१) मस्तिष्क व्यवस्थित और सन्तुलित हो जिसके फलस्वरूप वह उचित विवेचना करने तथा तत्वको समझनेमें समर्थ हो सके।

(२) मन शान्त हो और उत्तेजित वातावरणमे शीघ्रतासे काम करते हुए भी अपनेको धीर तथा युक्त रख सके।

(३) प्रत्युत्पन्नमति हो और शीघ्रतासे निर्णय करनेकी शक्ति हो।

(४) तीक्ष्ण बुद्धि, उत्तरदायित्वका बोध तथा साहसके साथ कल्पनाकाशमे उड़नेकी क्षमता रखते हुए भी उसका उपयोग उचित दिशामें करनेकी समझ हो।

(५) बहुश्रुत साधारण बुद्धि और न्याय-पथपर डटे रहनेका दृढ निश्चय हो।

(६) घटनाओंके समाचारोंके समुद्रमें नाक तक डूबे रहते हुए भी तत्वकी बातको चुन लेने और उचित प्रकारसे उसे प्रकट करनेकी योग्यता हो।

(७) समयको पहचानने और उसके अनुकूल बननेकी शक्ति हो।

(८) प्रौढ साधारण शिक्षा तथा व्यापक साधारण ज्ञान।

(९) विशेष रूपसे आधुनिक प्रश्नों और समस्याओंके सम्बन्धमे अच्छी जानकारी और समझ। आधुनिक पत्रकार-कला और साधारण साहित्यका अच्छा ज्ञान।

(१०) पत्र सम्बन्धी कानूनोंका साधारण ज्ञान।

(११) भाषापर खासा अधिकार और भावको व्यक्त करनेकी क्षमता।

(१२) प्रौढ तथा स्वस्थ शरीर जिसमें घण्टों अविचल भावसे कठिन कार्य किया जा सके। थोडेमें ही सिर, पेट और कमरके दर्दवाले निकम्मे सिद्ध होंगे।

(१३) सहयोगियोको प्रसन्न रखने, उनके प्रति सहानुभूति रखने, उनकी कठिनाइयोंको समझने तथा साथ लेकर काम करनेकी क्षमता।

(१४) सम्पादन-कला विषयक तमाम कार्मोको भलीभाँति जानना और आवश्यकता पडनेपर उन्हे कर सकनेकी योग्यता रखना।

अन्तत. अपने काम और पेशेके प्रति पवित्र भाव रखना और यह समझना कि देश और समाजकी सेवामे आत्माहुतिके लिए ही उसने अपने पैर बढ़ाये हैं। सम्पादकीय विभागके जीवनकी कठिनाइयोंकी चर्चा की जाय तो स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है। दिन-रात, हर क्षण काम करनेके लिए तत्पर रहना, जगत्की उथल पुथलको अपने पत्रके दर्पणमें देखते हुए भी उससे अलग रहकर छोटेसे कमरेमें कागजोंके बीच दवे हुए काम करते जाना हृदयको नीरस बना देता है। सम्पादक या उपसम्पादकके लिए न सिनेमा है, न खेल-कूद हैं, न राग रङ्ग है। बहुधा अपने बच्चों और अपनी पत्नीसे भी उस समय दूर पडे रहना होता है जब सारा संसार सुखकी नीद सोता रहता है। कृष्ण कहते हैं कि सब प्राणियोंके लिए जो रात है उसमें सयमी जागता है और जो मुनिके लिए दिन है उसमें सारा जगत् सोता रहता है। संयमी और मुनिके लिए तो यह होगा ही, पर हम पत्रकार किस संयमी और मुनिसे कम हैं? जब जगत् सोता रहे उस समय हम पिसते रहे। इतनी कठिनाईके बाद भी इसका कोई स्पष्ट भौतिक पुरस्कार नहीं। पत्र सब पढते हैं पर सम्पादकीय विभागके उप-सम्पादकको कौन जानता है? उसे न आदर प्राप्त है और न यश।

इस प्रकार जगत्से अलग होकर कठिन परिश्रम करनेवाला और परदेके पीछे बैठकर जगत्की सेवा और जनताकी आराधनामें अपनी आहुति देनेवाला ही सफल सम्पादक या उपसम्पादक हो सकता है। पर जहाँ ये कठिनाइयाँ हैं वहाँ अपने पद और कामकी महिमा, पवित्रता तथा मर्यादाको समझनेवाले

उद्बुद्ध तथा कर्मठ पत्रकारको सफलतापूर्वक काम पूरा करनेके बाद जो आत्म-सन्तोष प्राप्त होता है उसकी तुलना क्या इन्द्रपद भी कर सकता है? जब हम देखते हैं कि हमारी लेखनी युगवाणीका प्रतिनिधित्व कर रही है, हमारा पत्र सहस्रोंको ज्ञान और मनोरञ्जन प्रदान कर रहा है, सैकडोंके जीवनकी यातनाओं-को ऊपर लाकर उनके भविष्यको उज्ज्वल कर रहा है तथा सत्य और न्याय तथा मानवताकी पूजामें बलशाली सत्ताधारियों और अधिकारसम्पन्न राजमुकुटतकको दहला देनेमें समर्थ हो रहा है तो हमारी प्रसन्नता और शान्तिकी सीमा नहीं रहती। उस समय हमारा काम वह आत्मबल प्रदान करता है जो किसी भौतिक वैभवके द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता।

समाचार-संग्रह

समाचार-एजेंसियाँ

समाचारपत्रोंका अस्तित्व मुख्यतः समाचारोंका सङ्कलन करके उन्हें प्रकाशित कर देनेके लिए है। ब्रिटेन और अमेरिकाके पत्रोंपर दृष्टिपात कीजिये जो आधुनिक पत्रकार-कलाके जनक हैं तथा जहाँकी पत्रकारी अति उन्नत स्थितिमें पहुँची हुई है। अधिकतर लोकप्रिय पत्रोंको देखते ही आपको ज्ञात हो जायगा कि उनके सम्पादकीय स्तम्भ क्रमशः संक्षिप्त होते चले जा रहे हैं। इन स्तम्भोंमें सम्पादक अपने विचार प्रकट करता है और विविध प्रश्नोंके सम्बन्धमें अपनी नीतिका प्रतिपादन करता है। सम्पादकीय लेख अपना महत्व और प्रभाव रखते हैं फिर भी उनका कलेवर धीरे-धीरे संक्षिप्त होता जा रहा है। पर सम्पादकीय स्तम्भोंसे दृष्टि हटाकर उन पृष्ठोंकी ओर देखिये जिनमें समाचारोंका सङ्कलन हुआ रहता है। आप देखें कि किस सावधानी, कुशलता और मोहकताके साथ पत्रके सवादोंका प्रदर्शन किया जाता है। उन्हें सजानेमें कितने श्रम और कितने धन तथा कितनी सतर्कतासे काम लिया गया होगा, सवादोंको एकत्र करनेवाले रिपोर्टरों और संवाददाताओंने अपने कितने समय और कितनी शक्तिका उपयोग किया होगा। समाचारपत्रोंमें समाचारोंका कितना मूल्य होता है इसका पता उन्हें देखते ही मिल जाता है। हम सरलतासे कह सकते हैं कि पत्रोंकी प्रमुख उपयोगिता समाचार-प्रदान करनेमें ही है और दूसरी तमाम बातें गौण स्थान रखती हैं।

समाचारोंका सङ्कलन कैसे किया जाता है और उन्हें प्राप्त करके किस प्रकार उनका उपयोग किया जाता है इसपर संक्षेपमें हम तीसरे अध्यायमें प्रकाश डाल चुके हैं। उसके सिवा पूर्वके प्रायः सभी अध्यायोंसे पाठक भली-भाँति समझ गये होंगे कि पत्र अपने इस प्रमुख कर्तव्यकी पूर्त्ति किस प्रकार करते हैं। इस अध्यायमें विशेष रूपसे हम उन सूत्रोंकी विवेचना करना चाहते हैं जो केवल समाचार-सङ्कलनका काम करते हैं। समाचारपत्रोंके लिए संवाद प्राप्त करनेके दो मुख्य प्रकार विशेष रूपसे प्रचलित हैं। पहला सूत्र

तो समाचार वितरण करनेवाली एजेंसियाँ होती हैं और दूसरा उन रिपोर्टरों, सवाददाताओं, विशेष सवाददाताओंकी टोली होती है जिन्हे पत्र अपनी ओरसे समाचार-सग्रह करनेके लिए नियुक्त करते हैं। समाचार-वितरण करनेवाली एजेंसियाँ प्रायः सभी बडे देशोंमें स्थापित हैं जिनके रिपोर्टर और संवाददाता फैले हुए होते हैं। ब्रिटेनकी रायटर समाचार-समिति इनमें सबसे पुरानी है जो सारे जगत्‌के समाचारोंका सङ्कलन करती है और अपने ग्राहकोंको प्रदान करती है। रायटर कम्पनीकी स्थापना कैसे हुई और कैसे समाचार-सग्रह करनेकी इस कल्पना और विचारका उदय हुआ इसपर हम 'पत्रका निर्माण और प्रकाशन' शीर्षक अध्यायमें थोडा प्रकाश डाल चुके हैं।

रायटरके वाद जर्मनीमें वुल्फ ब्यूरो और फ्रांसमें हावास एजेंसीकी स्थापनाका उल्लेख भी कर दिया है। वर्तमान समयमें तो यूरोपके विभिन्न देशोंमें समाचार-समितियाँ स्थापित हैं। रूसकी तास एजेंसीने इस युद्धमे समाचार प्रदान करनेमें काफी नाम प्राप्त किया है। यूरोपकी नगरियोंके सिवा अमेरिका-का असोशियेटेड प्रेस और यूनाइटेड प्रेस तथा इण्टरनेशनल न्यूज़ सर्विस, जापानकी दो समाचार एजेंसियाँ, कनाडा, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि देशोंकी एजेसियाँ अपने-अपने देशोंमें समाचार-सङ्कलनका काम करती रहती हैं। अमेरिकाकी उपर्युक्त तीनों कम्पनियोंके हजारों संवाददाता न केवल अपने देशमे प्रत्युत देशकी सीमाके बाहर जगत् भरमे फैले हुए हैं। अमेरिकाका असोशियेटेड प्रेस तो एक प्रकारसे सहयोग समिति (कोआपरेटिव सोसाइटी) के समान है जिसके सदस्य अमेरिकाके चौदह सौसे अधिक पत्र हैं। असो-शियेटेड प्रेस सारे देशमें अपने तारसे सवाद वितरण करता है। प्राय तीन लाख मील लम्बे तारकी व्यवस्था करके वह संवाद भेजता रहता है। कहते हैं कि प्रतिदिन दो लाख शब्दोंसे अधिकके प्रेस टेलिग्राम उसे भेजने पडते है। असोशियेटेड प्रेसके संवादोंको छापनेका अधिकार जिन पत्रोंको है वे प्रति ष्ठित समझे जाते हैं। अमेरिकाका यूनाइटेड प्रेस भी प्रतिदिन डेढ़ लाख शब्द अपने प्रेस टेलिग्रामसे भेजता है। वह व्यापारिक संस्था है और प्राय एक सहस्र पत्रोंको संवाद भेजता रहता है। 'इण्टरनेशनल न्यूज सर्विस' भी संवाद

वितरण करनेकी एजेंसी है जिसकी स्थापना जगत्के सर्वश्रेष्ठ पत्र-स्वामी श्री विलियम रैंडोल्फ हार्स्टने की थी। अमेरिकाके सात सौ पत्र इसके संवादोंके ग्राहक हैं जिन्हे तार द्वारा संवाद भेजनेमें डेढ लाख शब्दोंसे अधिकके प्रेस-टेलिग्राम रोज भेजने पडते है। अमेरिकाके बड़े-बडे कुछ पत्रोंके आठ-आठ संस्करण प्रतिदिन होते हैं। ये समाचार-एजेंसियाँ उनकी संवाद-बुभुक्षाको तृप्त करनेमें दिनरात लगी रहती हैं। तारोंके माध्यम से प्रवाहित समाचार-धारा अनवरत रूपसे दिनरात गतिशील रहती है। विभिन्न देशोंकी इन एजेंसियोंके काम करनेका अपना ढङ्ग अलग-अलग है। इनके रिपोर्टरों और संवाददाताओंका जाल-सा फैला हुआ तो है ही साथ ही ये परस्पर समाचारोका आदान-प्रदान भी करती रहती है। रायटरका अमेरिका, जापान, यूरोपकी कतिपय एजेंसियों तथा आस्ट्रेलिया, कनाडा आदिकी एजेंसियोंसे अलग-अलग सम्बन्ध है। वह इनसे इनके देशके समाचार खरीदता है और एक देशके संवाद दूसरे देशकी एजेंसीको बेचता है। तमाम समाचारोंका सङ्कलन लन्दनके उसके प्रमुख कार्यालयमें होता है और फिर वहाँसे वे धरातलके कोने-कोनेमें भेजे जाते है। अमेरिकाका असोशियेटेड प्रेस भी रायटरकी भाँति ही जगद्व्यापी समाचार-सङ्कलन और वितरणमे प्रमुख स्थान प्राप्त कर रहा है जिसके रिपोर्टरोंकी महती सेना दूर दूरतक व्याप्त है।

लन्दनमे रायटर विदेशी समाचारोंके सङ्कलनका काम करता है पर देशी समाचारोंका संग्रह करनेके लिए कतिपय एजेंसियाँ स्थापित है। प्रेस-असोसियेशन, सेण्ट्रल न्यूज एजेंसी, लन्दन न्यूज एजेंसी, नेशनल प्रेस एजेंसी, एक्सचेंज टेलिग्राफ कम्पनी आदि अनेक लन्दनकी एजेंसियाँ हैं जो ब्रिटिश समाचारपत्रोंको अपने देशके समाचार वितरित करती रहती हैं। इनके सिवा लन्दनमें और बहुत-सी एजेंसियाँ है जो विशेष विषयोंके लेख या समाचार तथा विवरण प्रदान करनेका ही काम करती हैं। कोई खेलकूद, कोई घुडदौड, कोई कहानी, कोई आलोचना, कोई स्थान तथा विशेष घटनाओंके चित्र, कोई अदालतोमे चलनेवाले मामले, और कोई गुप्तचरोंके असाधारण कारनामो तथा उनके द्वारा सङ्गीन और रहस्यमय अपराधोंके उद्घाटित किये जानेके मनोरञ्जक विवरण विशेष रूपसे प्रदान करती हैं। ब्रिटिश

पत्रकार-कला इतनी उन्नत हो गयी है और वहाँके पत्रोंका क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि इस प्रकारकी एजेंसियोंके लिए कामकी कमी नहीं रह गयी है। लन्दनमें इन अनेक कम्पनियोंमे यहाँका प्रेस-असोसियेशन सबसे अधिक प्रसिद्ध है। देशी समाचारोंके संकलनमें यही मुख्य तथा विशेषज्ञ माना जाता है। सन् १८७० ईसवीमें इसकी स्थापना हुई थी। उस समय ब्रिटिश प्रान्तोंसे निकलनेवाले पत्र राजधानीमें प्रकाशित होनेवाले पत्रोंकी अपेक्षा पिछडे हुए थे। प्रान्तीय पत्रोंने लन्दनके पत्रोंका सामना करनेके लिए तथा तत्सम समाचारों आदिकी प्राप्ति समयसे करनेके लिए इसकी स्थापना अपनी सम्मिलित पूँजीसे की थी।

उसी समय लन्दनमे तार भेजनेवाली दो कम्पनियाँ थीं जो व्यक्तिगत पूँजीसे चल रही थीं। तबतक सरकारने तार-विभागको अपने अधिकारमें नहीं लिया था, पर सन् १८७० ई० मे ब्रिटेनकी सरकारने इन दोनों तारकी कम्पनियोंको अपने अधिकारमे कर लिया। ये कम्पनियाँ अपनी ओरसे तारद्वारा समाचार भेजनेका काम किया करती थीं। कदाचित् समाचारोंके वितरणमें जनताकी इस प्रकारकी स्वतन्त्रतासे ही भयभीत होकर सरकारी विधाताओंने उन्हें अपने हाथमें कर लेनेका निश्चय किया। तारकी कम्पनी तो सरकारी कब्जेमें गयी पर समाचार सग्रह करने और भेजनेका जो काम वे कम्पनियाँ कर रही थीं वह बन्द हो गया। कोई सरकारी विभाग समाचार-संग्रह करनेके लिए सङ्घटित नहीं किया जा सकता था। अब समाचारपत्रोंको यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि वे स्वयं समाचार-सङ्कलनकी व्यवस्था करें। अलग-अलग इस कार्यको करना अत्यधिक व्ययसाध्य था। इसके सिवा एक पत्र सारे जगत्के समाचारोंका संग्रह कर भी नहीं सकता था। फलतः प्रेस-असोसियेशनकी स्थापना बाध्य होकर करनी पडी। प्रेस-असोसियेशनका सञ्चालन एक सञ्चालक बोर्ड करता है जिसके सात सदस्य प्रान्तीय ब्रिटिश पत्रोंके प्रतिनिधि ही होते हैं। पारी-पारीसे ये सातो सदस्य सञ्चालक बोर्डके अध्यक्ष होते हैं और सात वर्ष बाद सदस्यतासे पृथक् कर दिये जाते हैं। प्रेस-असोसियेशनकी सदस्यता प्रान्तीय पत्रोतक ही परिमित है और प्रत्येक पत्रको जो सदस्य होता है, निर्धारित संख्यामे इस कम्पनीके हिस्से

खरीदने पड़ते हैं। लन्दनके तथा लन्दनके बाहरके अन्य असदस्य पत्र भी प्रेस-असोसियेशन द्वारा सङ्कलित समाचारोंके ग्राहक हो सकते हैं परन्तु उसकी सदस्यता केवल प्रान्तीय पत्रोंको ही प्राप्त हो सकती है। प्रेस-असोसियेशनका प्रबन्ध इतना उत्तम और सर्वाङ्गीण है तथा समाचारोंका वितरण इतनी तत्परतासे होता है कि उसकी धाक बैठ गयी है। कहते हैं कि घुड़दौड़ोंकी रिपोर्ट वह इतनी शीघ्रतासे अपने समस्त ग्राहकोंके पास भेज देता है कि घुड़सवार जीनसे उतरने भी नहीं पाते कि पत्र दौड़के परिणाम और विवरणसे सूचित हो जाते हैं।

भारतमें पत्रकार-कला जैसे यूरोपसे आयी उसी प्रकार यहाँ समाचार-एजेंसीकी स्थापना भी बीसवीं शतीके आरम्भिक युगमें ही हुई। गत महा-युद्धके समयतक भारतके अंग्रेजी पत्रतक विदेशी समाचार खरीदनेमें समर्थ नहीं होते थे। हिन्दीके जो दो-चार दैनिक पत्र निकलते थे वे उस समय-तक अंग्रेजी पत्रोंके समाचारोंका अनुवाद प्रकाशित करके ही सन्तोष करते थे। कहते है कि गत महायुद्धके पूर्वतक प्रसिद्ध 'अमृतबाजार पत्रिका' ऐसा प्रतिष्ठित सवाद-पत्र भी विदेशी समाचार खरीदनेकी क्षमता नहीं रखता था, फलतः हिन्दी पत्र तो ताजे समाचार कहाँसे पाते। पर अंग्रेजी पत्रोंमेंसे कुछ प्रमुख पत्र तबतक भारतके प्रमुख नगरोंमें अपने संवाददाता रखते थे और उन्हींसे प्राप्त समाचारोंसे काम चलाते थे। देशी भाषाके पत्र उनकी जूठनसे अपना पेट भरते थे। प्रयागसे उस समय प्रकाशित होनेवाले 'पायो-नियर' का बड़ा नाम था जो समाचार संग्रहमें सबसे अधिक सफल और अग्रणी था। कुछ समय बाद 'कोर्टस् न्यूज सर्विस' नामकी एक एजेंसी स्थापित हुई थी जिससे अंग्रेजी भाषाके पत्र देशी संवाद प्राप्त करते थे। पर यह भी विशेष सफलता प्राप्त न कर सकी। अन्ततः देशी भाषाके पत्रोंके लिए भी ताजे समाचार मिलनेका उपक्रम उस समय हुआ जब श्री कृष्णचन्द्ररायने असोशियेटेड प्रेस नामक समाचार-एजेंसीकी स्थापना की। सम्भवतः उक्त 'न्यूज सर्विस' भी इसी संस्थामें मिला ली गयी। असोशियेटेड प्रेसने कुछ दिनतक सफलतापूर्वक कार्य किया पर बादमें श्री कृष्णचन्द्रराय तथा उनके यूरोपियन साथियोंमें कम्पनीके स्वामित्वके सम्बन्धमें झगड़ा पैदा हो

गया। राय महोदय इस झगडेके फलस्वरूप असोशियेटेड प्रेससे अलग हो गये और अपने दलबल सहित 'न्यूज ब्यूरो' नामक एक दूसरी संस्था स्थापित की।

पर तीन महीने भी नहीं बीत पाये थे कि श्री राय और असोशियेटेड प्रेसमें समझौता हो गया और वे पुनः उसमे सम्मिलित हो गये। श्री राय महोदयकी मृत्युके बादसे भारतका असोशियेटेड प्रेस लन्दनके रायटरके अधीन हो गया है। इसका प्रधान कार्यालय शिमलामें है। दुर्भाग्यसे यह समाचार-एजेंसी एक प्रकारकी सरकारी सस्थाके रूपमें काम करती है। इसके समाचारोंपर सरकारी रङ्ग चढ़ा हुआ होता है और यह उन्हीं समाचारोका वितरण करना पसन्द करती है जिन्हें सरकार आपत्तिजनक नही समझती। असोशियेटेड प्रेसके इस रूपसे ऊबकर सन् १९२५में बम्बईमें 'फ्रीप्रेस जर्नल' नामक समाचारपत्रके सम्पादक और सञ्चालक श्री एस० सदानन्दने फ्रीप्रेस'के नामसे एक समाचार-एजेंसी स्थापित की पर यह कम्पनी सन् १९३४ मे समाप्त हो गयी। इसके बाद इसके एक कार्यकर्त्ता और साझेदार श्री विद्याभूषण सेनगुप्तने सन्१९३४में 'यूनाइटेड प्रेस'के नामसे दूसरी एजेंसीकी स्थापना की जो अबतक अपना काम करती जा रही है। यह कम्पनी यद्यपि राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखनेवाली है तथा अपनी नीतिको निष्पक्ष रखती है फिर भी इसके मार्गमे अनेक कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण यह अधिक सफल नहीं हो सकी है। सबसे भारी कठिनाई तो सरकार ही है जो उसे सन्देहकी दृष्टिसे देखती है। असोशियेटेड प्रेस जहाँ सरकारसे संवाद सम्बन्धी सहायता पाता है, तमाम सरकारी समाचार आदि उसे पहले मिल जाते है वहाँ यूनाइटेड प्रेस आवश्यक पूँजीके अभाव और भारतीय पत्रोंके सहयोगकी कमीके कारण कठिनाइयोमे पडा हुआ भी अपना काम करता जा रहा है। भारतीय समाचार एजेंसियोका संक्षेपमें यही इतिहास है।

समाचार-एजेंसियोकी स्थापनाने समाचारपत्रोंका काम बहुत कुछ सरल कर दिया है। समाचार-एजेंसियाँ सवाद-सग्रह करनेमे, उन्हे प्रेषित तथा वितरित करनेमे प्रतिवर्ष करोडों रुपये व्यय करती हैं जो किसी एक पत्रके लिए सम्भव न था। यदि समाचारपत्र यह कर भी सकते तो कदाचित् एक आने, पैसे या एक पेनी, आध पेनीमें अपने पत्र किसी प्रकार भी न बेच सकते।

इन एजेंसियोंकी स्थापनाके फलस्वरूप ही आजके समाचारपत्र अपने आधुनिक रूपमें अवतीर्ण हो सके है। समाचार-एजेंसियोंके सवाददाता जगत्‌के सुदूर स्थानोंमें फैले हुए है। युद्धक्षेत्रकी विषम स्थिति और गोलियोंकी बौछारतकका सामना करते हुए वे संवादका संग्रह करते रहते हैं। समाचारका संग्रह करके वे उसे अपने प्रमुख कार्यालयोंको भेजते रहते हैं। टेलिफोन, तार, वेतारके तारसे समाचार भेजे जाते हैं। वायुयानोकी डाक, मोटर तथा रेलसे भी समाचार भेजनेका प्रवन्ध किया जाता है। टेलीप्रिंटरका उल्लेख हमने पिछले अध्यायमे किया है। आज यह यन्त्र अनिवार्य हो गया है। लन्दनकी एक्सचेज टेलिग्राफ कम्पनीने सन् १८७३ ईसवीमें सर्वप्रथम इस यन्त्रका आविष्कार और निर्माण किया था। उस समय एक मिनटमे पचीस शब्दतक तारसे उसके द्वारा भेजे जा सकते थे। तबसे इस यन्त्रमे वडी उन्नति हुई है और आज उसकी क्रिया-प्रणाली भारतीय समाचारपत्रोंके कार्यालयमे लगे हुए यन्त्रके द्वारा देखी जा सकती है। हिन्दी भाषाके कतिपय पत्र भी उससे लाभ उठा रहे हैं। अब तो आधुनिक टेलिप्रिण्टरके स्थानपर 'डाइरेक्ट प्रिंटर्स' नामक यन्त्र लगाया जाने लगा है जो न केवल स्तम्भके स्तम्भ समाचार कुछ मिनटोंमें दे देता है बल्कि कापी तक कम्पोज कर देता है। इसका प्रसार अभी नहीं हुआ है पर वह दिन दूर नहीं है जब दिक्कालकी दूरीकी उपेक्षा करते हुए भूमण्डलके किसी कोनेका समाचार पत्रोंके कार्यालयमें एकबारगी विजलीकी चमककी भाँति पहुँच जाया करेगा।

टेलिफोनसे समाचार भेजनेकी प्रथा तो अब भी प्रचलित है। ब्रिटिश पार्लमेण्टकी साधारण सभामें होनेवाले भाषणोंकी रिपोर्ट ब्रिटिश पत्रोंको बहुधा टेलिफोनसे ही मिलती है। उधर किसी विख्यात राजनीतिज्ञका भाषण होता चलता है और इधर पत्रके कार्यालयमे उसकी रिपोर्ट छपती चलती है। अधिवेशन समाप्त होते-होते वहाँकी काररवाईकी सारी रिपोर्ट प्रातःकालीन सस्करणोंमें प्रकाशित हो जाती है। अब तो यहाँतक कल्पना की जा रही है कि संवाद भेजनेके लिए बेतारके टेलिफोन काममें लाये जा सकेंगे। कहते हैं कि बेतारके टेलिफोनका यन्त्र प्रत्येक रिपोर्टरके पास बक्समें वन्द उसी प्रकार रहेगा जैसे टाइपराइटर या फोटो उतारनेका कैमेरा रहता है। रिपोर्टर संवाद

संग्रह करनेके बाद लिखनेके कष्टसे भी बच जायगा। अपना यन्त्र उसने निकाला और अपने पत्रको जहाँ कहीं भी है वहींसे रिपोर्ट भेज दी, टेलिफोनके दफ्तरतक दौड लगानेकी भी आवश्यकता न रहेगी। वायुयानों तथा बेतारके तारसे समाचार भेजनेका प्रकार तो प्रचलित हो ही गया है। विज्ञानने पत्रकार-कलाको असाधारण रूपसे गतिशील और उन्नत बना दिया है। समाचार एजेंसियाँ तरह तरहसे शीघ्रातिशीघ्र समाचार-वितरणमें तो सफल हो ही रही हैं परन्तु आविष्कारोंने तो वह कर डाला है जिसकी कहानी ही सुनकर हम घोर आश्चर्यमे डूब जाते हैं। पाठक यह जानकर अचम्भेमें पड़ जायँगे कि अब तारसे, बेतारके तारसे और टेलिफोनसे भी समाचार ही नहीं चित्रतक एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेज दिये जाते हैं।

पत्रोंको सचित्र करना आधुनिक पत्रकारीका प्रमुख अङ्ग हो गया है। अमेरिका और इंग्लैण्डका ऐसा कोई पत्र न होगा जिसमें चित्रोंका समावेश न रहता हो। वहाँ तो विशेष रूपसे सचित्र पत्र अत्यधिक सख्यामें निकलने लगे हैं। चित्रोंका प्रयोग दिन-दिन बढता जा रहा है। इंग्लैण्ड आदिमें बीसो कम्पनियाँ हैं जो विशेष रूपसे पत्रोंको चित्र ही प्रदान करती है और चित्रोंके ब्लाक बना-बनाकर अपने ग्राहकोंको देती हैं। ये ब्लाक बडे यत्नसे पत्रक कार्यालयमें रखे जाते हैं। उपसम्पादक उनकी तालिका बनाकर, साङ्केतिक अक्षरोंसे उन्हे सुसज्ज करके रखता चलता है और समयपर उनका उपयोग करता है। भारतीय पत्रोंमें भी आज चित्रोके ब्लाक रखे जाते हैं। कोई लोकप्रिय पत्र न होगा जिसके कार्यालयमे दुनियाके प्रमुख नर-नारियो, नेताओं, राजनीतिज्ञों, प्रधानमन्त्रियोके ब्लाक न हों। जहाँ नहीं हैं वहाँ उनका सङ्कलन करना अनिवार्य माना जाता है। अच्छे समाचारपत्रोंके कार्यालय ब्लाक बनवानेका प्रबन्ध अपने ही यहाँ कर लेते हैं। तात्पर्य यह है कि पत्रोंकी सफलताके लिए आज उन्हे सचित्र करना आवश्यक है। किसी भी समाचारके साथ चित्र दे देना पत्रकी शोभा और उपयोगिताको दुगुना कर देता है। गङ्गाकी बाढ हो या कांग्रेसका अधिवेशन, भूकम्प हो या सैनिक क्वायद, यदि उसका समाचार छापते हुए चित्र दे दिया जाय तो समाचारका महत्त्व भी बढ़ जाता है। पत्रकार-कलाका आवश्यक अङ्ग हो गया है। इंग्लैण्डके 'डेलीमेल', 'डेलीमिरर' आदि लोकप्रिय

पत्र तो हवाई जहाजोंसे चित्र मँगाते हैं और लन्दन तथा पेरिसके लिए प्रकाशित होनेवाले संस्करणोमें साथ-साथ छापते हैं।

चित्रके इस महत्त्वके कारण अब समाचार-एजेंसियो तथा रिपोर्टरोंको भी चित्र सङ्कलन करना और वितरित करना आवश्यक हो गया है। आज फोटो उतारनेमें निष्णात होना पत्र-संवाददाताओ और रिपोर्टरोंके लिए आवश्यक हो गया है। आज विज्ञानने इस दिशामें भी चमत्कार दिखाया है। श्री लोवारेनने अपनी पुस्तक 'जर्नलिज्म'में इसका उल्लेख किया है। उनका कहना है कि प्रोफेसर कार्न नामक विद्वान्के आविष्कारोंके फलस्वरूप तार द्वारा चित्र भेजना सम्भव हो गया है। लन्दनके 'डेलीमिरर' नामक पत्रके सञ्चालकोंने इस प्रयोगको सफल बनानेके लिए बडा धन व्यय किया और वे इसमे सफल हुए। सुननेमे यह असम्भव ज्ञात होता है कि तार द्वारा चित्र भेजा जा सकता है पर वस्तुतः यह असम्भव सम्भव हो गया है और 'डेलीमिरर'ने अपने स्तम्भोंमें मैंचेस्टरसे लन्दनको तार द्वारा भेजे गये चित्रोंको महीनोंतक प्रकाशित करके उसकी सफलताका प्रमाण उपस्थित कर दिया। 'डेलीमिरर'ने जो प्रयोग आरम्भ किया था उसके फलस्वरूप सन् १९२० ई० की २३ जुलाईको उसने दो अमेरिकन जहाजोंकी दौडका चित्र प्रकाशित किया जो बेतारके तारसे भेजे गये थे। ये चित्र 'मिरर'के लन्दन कार्यालयमें न्यूयार्कसे भेजे गये थे। इसी सिलसिलेमें 'डेलीमेल'के प्रयत्नसे फोनद्वारा चित्र भेजनेका प्रयोग किया गया और एण्टवर्पसे पेरिसको फोनपर ही चित्र भेजे गये जो प्रकाशित किये गये। इन नगरोंके बीच दो सौ मीलकी दूरी है। यद्यपि फोनपर चित्र भेजनेका प्रयोग पूर्णतः सफल नहीं रहा फिर भी इसकी सम्भावना सन् १९२० में ही स्पष्ट रूपसे सिद्ध हो गयी थी।

ब्रिटिश और अमेरिकन पत्रोंकी यह विशेषता है कि वे पत्रका प्रकाशन मात्र करके तुष्ट नहीं हो जाते अपितु उसकी उन्नतिके लिए तरह तरहके वैज्ञानिक प्रयोगोंकी सहायता करते हैं और उन्हे उत्तेजन प्रदान करते है। आज यह स्वीकार किया जाता है कि आधुनिक छपाईका जो विकास हुआ है उसमें लन्दनके 'टाइम्स'का बडा भारी हाथ रहा है। समाचार-संग्रह और वितरण तथा चित्रोंकी प्राप्तिके लिए जो कुछ हो रहा है अथवा जिसके होनेकी सम्भावना

है उससे भी उनकी इस विशेपतापर प्रकाश पडता है। यही कारण है कि विदेशी पत्रकार-कला आज दिन दिन उन्नत होती जा रही है और अपनेको अधिकाधिक उपयोगी और कार्यक्षम बनाती चल रही है। समचार-वितरण करनेवाली एजेंसियाँ इतनी कार्यक्षम हो गयी हैं तथा उनकी कार्य-प्रणालीमें इतनी शीघ्रता तथा सामयिकता आगयी है कि आधुनिक समाचारपत्र प्रतिदिन जगत्की घटनाओंको उनके घटते ही घटते अपने स्तम्भों द्वारा प्रकाशमें लाकर जगत्के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

पर समाचारोंको प्राप्त करनेके लिए समाचार-एजेंसियोंके समान इतने उपयोगी, सफल और उत्तम साधन तथा स्रोतके रहते हुए भी आजके पत्र केवल उनपर ही निर्भर नहीं करते। उन्होंने दूसरे सूत्रकी स्थापना भी कर रखी है और वह है उनके अपने रिपोर्टरों, संवाददाताओं और विशेप मवाद-दाताओंकी सेना जो वास्तवमें उन पत्रों ी विशेपता, सजीवता, अभिनवता तथा मौलिकताके आधार होते हैं। एजेंसियाँ एक दो नहीं प्रत्युत अनेक पत्रोंको समाचार प्रदान करनेका काम करती हैं। ये पत्र विभिन्न मतावलम्बी होते हैं, इनकी नीति, दृष्टिकोण और विचार भिन्न तथा बहुधा परस्पर विरोधी भी होते है। फलतः एजेंसियों द्वारा प्रेषित समाचार वास्तविक घटनाके विशुद्ध विवरणके रूपमें ही होते हैं। ये एजेंसियाँ उनपर अपना कोई रङ्ग चढाना नहीं चाहतीं, यदि कोई रङ्ग चढाती भी है तो बहुधा सरकारी रङ्ग होता है। राजनीतिक अथवा परराष्ट्रनीतिक अथवा अर्थनीतिक समाचारोंको, जिनके सम्बन्धमें सरकारका अपना विशेप मत तथा दृष्टिकोण होता है, ये एजेंसियाँ सरकारी नीतिके रङ्गमे रँगकर भेज देती हैं।

लन्दनका रायटर और भारतका असोशियेटेड प्रेस इसके प्रबल प्रमाण हैं। दूसरी घटनाओंके समाचार, जिनका सरकारसे कोई सम्बन्ध नहीं है, सीधे-सादे वास्तविक विवरण मात्रके रूपमे होते हैं। वे समझती हैं और बहुत बडी सीमातक उनका यह समझना उचित है कि उनका काम केवल समाचारोंका संग्रह करना और उसी रूपमें उन्हे अपने ग्राहकोंके पास भेज देना है जिस रूपमे वे घटी हुई होती हैं। उनका काम यह नहीं है कि वे उनकी व्याख्या करें और उनपर अपने मतानुकूल निर्णय प्रदान करें। फलतः सभी पत्रोंमें

समाचार-एजेंसियोंके संवाद एक ही रूपमें पहुँचते है। पत्रोंका काम इतनेसे नहीं चलता। उनके लिए जरूरी होता है कि घटनाओंके और भीतर प्रवेश करें और उनके रहस्यको निकाल कर, अपने रङ्गमे रँगकर प्रकाशित करे, उनमें अपना स्वर तथा भाव भरें।

इसीसे वे अपने प्रतिस्पर्धियोंके मुकाबलेमे अपनी अलग विशेषता, उपयोगिता और आवश्यकता सिद्ध कर सकते हैं। फलतः समाचार एजेसियोंके सिवा उन्हे अपने रिपोर्टर और संवाददाता भी रखने पडते हैं। फिर एक बात और होती है। अकसर समाचार-एजेंसियाँ उन संवादोंको प्रचारित करना बन्द कर देती हैं जिनका प्रसार होना अधिकारियोको पसन्द नहीं होता। पत्र अपनेपर ऐसा कोई प्रतिबन्ध स्वीकार करना नही चाहते। उनका काम तो इसके विपरीत दिशामे है और वे जनताके सामने ही उत्तरदायी हैं। अधिकारी हो या और कोई शक्ति समाचारपत्र उन समस्त संवादोंको प्रकाशमें लाना चाहेगे जिनका जनहितसे सम्बन्ध है अथवा जिन्हे जनताको जनाना जरूरी है। ऐसी दशामें भी यह आवश्यक हो जाता है कि पत्र केवल समाचार-एजेसियोपर निर्भर न रहे। उन्हे अपने रिपोर्टरों और संवाददाताओंपर यह काम छोडना पडता है और खतरा उठाकर भी उनपर अधिक विश्वास करना होता है।

यही कारण है कि यूरोप और अमेरिकाके पत्रोके संवाददाता दुनियाभरमें फैले हुए हैं। जगत्की विशेष घटनाओंका अवलोकन, अध्ययन और समाचार-सङ्कलन करनेके लिए वे विशेष प्रतिनिधियोंको जगत्के विभिन्न स्थानोंमें भेजते है। भारतमें जब सन् १९३० ई० और १९३२ ई० में सत्याग्रह आन्दोलन हुए थे तो अमेरिकन पत्रोंके कतिपय प्रतिनिधि भारत आये हुए थे। प्रसिद्ध पत्रकार और ग्रन्थकार श्री वेबमिलरने गान्धीजीकी डाँडी-यात्रा और तत्कालीन सरकारी दमन तथा भारतीय राजनीतिकी जो विवेचना अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आइ फाउण्ड नो पीस' (मैने शान्ति नहीं देखी) के पृष्ठोंमें की है वह देखने लायक है। आज इस युद्धकालमें तो विदेशी पत्रकारोंकी भीड है। अमेरिका और चीनके पत्रकारोंका दर्शन हमें सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीके उस ऐतिहासिक अधिवेशनमें हुआ जो ८ अगस्त १९४२ को बम्बईमें हुआ था।

प्रसिद्ध अमेरिकन पत्रकार और पत्र प्रतिनिधि श्री लुई फिशरको भारतीय कब भूलेंगे जो सत्यकी विवेचना और स्पष्टीकरणके कारण भारतकी विदेशी सरकारके कोपभाजन बने और जिनके लेखों तथा भाषणोंकी रिपोर्टोंतकका भारतीय पत्रोंमें प्रकाशन करना अपराध घोषित कर दिया गया। इन देशोंके पत्रोंके सैनिक सवाददाता आज युद्धस्थलों और भयानक मोरचोंपर डटे हुए हैं।

दुर्भाग्यकी बात है कि भारतमे, देशी-भाषाके और विशेष कर हिन्दी भाषाके पत्र रिपोर्टरों और सवाददाताओंके महत्वसे परिचित ही नहीं हैं। वे न उनकी नियुक्ति करते हैं और न इसकी अधिक आवश्यकता समझते हैं। आज भी समाचार-एजेंसियोंपर निर्भर रहना ही उनकी दृष्टिमें सबसे बडी पत्रकारी है। यह भी एक बडा कारण है जिसके फलस्वरूप हिन्दीके पत्रोंमें कोई जान नहीं दिखाई देती और उनका स्तर गिरा हुआ प्रतीत होता है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो हिन्दी पत्रोके लिए अपने रिपोर्टरों और सवाददाताओंकी नियुक्ति अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक है। इसके दो कारण स्पष्ट हैं। हमारे हिन्दी भाषाके पत्र सौभाग्यसे अधिकतर राष्ट्रीयतावादी और देशकी स्वतन्त्रताके हिमायती तथा परिपोषक हैं। पर असोशियेटेड प्रेसके समान सरकारी एजेंसीके चिल्लूमे पानी पीकर अपने सवादों और विवरणोंमे वह भाव तथा उस व्यक्तित्वका समावेश नहीं कर पाते जिसका प्रतिनिधित्व करना उनकी नीति होती है। दूसरा कारण भी विचारणीय है। हमारे देशमें प्रेसके टेलिग्राम अब-तक अग्रेजी भाषामे ही भेजे जा सकते हैं। फल यह होता है कि हिन्दी भाषा-भाषी पत्रोंको उनका अनुवाद करनेके लिए अलग और विशेष व्यवस्था करनी पडती है। सम्पादकीय विभागकी सारी शक्ति और श्रमका अपव्यय इस काममे ही हो जाता है। आवश्यकता तो इस बातकी थी कि हिन्दी भाषामें तार भेजने का प्रबन्ध करनेके लिए आन्दोलन किया जाता और एक ऐसी समाचार-एजेंसीकी स्थापना की जाती जो न केवल राष्ट्रीय भावोसे उत्प्रेरित होती बल्कि राष्ट्रभाषा द्वारा ही अपना कामकाज करती। आज हमारे देशकी भाषा और भाव तथा वेश भी राष्ट्रीय ही चाहिये। पर जबतक यह नहीं होता तबतक हमारे पत्र समाचार-एजेंसियोसे आवश्यक सहायता लेते हुए भी अपने रिपोर्टरों और संवाददाताओंकी सेना खड़ी करनेकी चेष्टा करते तो उन्हे न केवल असोशियेटेड

प्रेस द्वारा भेजे गये सरकारी रङ्गमें रँगे समाचारोंसे बहुत कुछ छुट्टी मिल जाती, बल्कि सब छोटी-बड़ी बातोंके लिए अनुवाद करनेसे भी पिण्ड छूटता।

ये रिपोर्टर और संवाददाता जो समाचार तारोंसे भेजते उनका अनुवाद तो करना ही होता पर जो बातें टेलिफोन तथा डाकसे आतीं वे बहुत कुछ अनुवाद करनेके श्रमसे छुट्टी दिला देतीं। सम्पादकीय विभाग उस समयका उपयोग पत्रकी अधिकाधिक उन्नति करनेकी व्यवस्थाओंपर विचार करने तथा उन्हे कार्यान्वित करनेमें कर सकता था।

रिपोर्टर और संवाददाता

कहा जा चुका है कि समाचारपत्रोंका समाचार-स्तम्भ ही उनका प्राण होता है, पर समाचारोका सङ्कलन सम्पादकीय विभागके दफ्तरमें बैठकर कोई सम्पादक या उपसम्पादक नही कर सकता। उनके संग्रहके लिए दूसरे लोग होते हैं जो रिपोर्टर या संवाददाता कहलाते हैं। पाठकोंने समझ लिया होगा कि समाचार-एजेंसियाँ किस प्रकार संवादोका सङ्कलन करती हैं। उनके रिपोर्टर और संवाददाता पृथ्वीके विभिन्न भागोमें नियुक्त रहते हैं। जिस देशमें समाचार-एजेंसी है वहाँके प्रमुख नगरोंमें और विदेशोकी राजधानियो तथा कुछ प्रसिद्ध नगरियोंमें ये रिपोर्टर और संवाददाता फैले रहते है जो अपनी एजेंसीके कार्यालयको आवश्यक समाचार भेजा करते हैं। उन एजेंसियोके कार्यालय इन्हीं समाचारोंको अपने ग्राहक-पत्रों या दूसरी कम्पनियोंको बेच देते हैं और इसके लिए अपना निश्चित तथा निर्धारित मूल्य प्राप्त करते रहते है। जिस प्रकार समाचार-एजेंसियोंके रिपोर्टर और संवाददाता होते हैं उसी प्रकार पत्र भी अपने रिपोर्टर और संवाददाता नियुक्त करते हैं जो अपने कार्यालयको समाचार भेजा करते हैं। पत्रकारीके क्षेत्रमें संवाद-सङ्कलन करनेवालोका वग कदाचित् सबसे बडा और प्रभावशाली वर्ग होता है। ये समाचार-संग्रह करनेवाले साधारण रूपसे रिपोर्टर या संवाददाता ही कहे जाते हैं पर वास्तवमें इनमें कतिपय श्रेणियाँ होती हैं जिनके कार्यमें भी परस्पर थोड़ा-बहुत भेद होता है।

समाचारोंका संग्रह करनेके लिए पत्र जहाँसे प्रकाशित होता है वहींसे उपयुक्त व्यक्तियोंकी नियुक्ति आरम्भ हो जाती है और फिर अपनी शक्ति तथा सामर्थ्यके

अनुसार पत्र इनकी सख्या अपरिमित रूपसे वढ़ा सकते हैं। उनमें यदि शक्ति हो और वे चाहें तो जगत्‌के किसी कोनेको छोड भी नहीं सकते जहाँ उनके संवाददाता न हों। इतना ही नहीं अपितु उनमे यदि क्षमता हो तो सारे भूमण्डलके सामाजिक जीवनके अङ्ग-प्रत्यङ्गका समाचार तथा विवरण भेजनेके लिए अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर सकते हैं। इस प्रकार इन संवाद-सङ्कलन करनेवालोंकी सख्या अपरिमित हो सकती है। जहाँसे पत्र निकलते हैं वहाँ स्थानीय रिपोर्टर होते हैं। इनकी भी वहुधा दो श्रेणियाँ होती हैं· एक तो वे जो छोटी-वडी घटनाओंका पता लगाकर उनका समाचार लाते है और दूसरे वे जो किसी विशेष महत्त्वपूर्ण मामलेकी छानवीन करनेके कामपर नियुक्त किये जाते हैं। पत्रकारोंकी भाषामे एकको रिपोर्टर और दूसरेको संवाददाता कहते हैं। रिपोर्टरका क्षेत्र व्यापक है। उसका काम उस नगर या स्थानके जहाँ उसकी नियुक्ति हुई है उन समस्त समाचारोंको खोज लाना है जो समाचार कहलाने योग्य हैं। कहीं आग लगी हो, चोरी हुई हो, हत्या हो गयी हो, हड-ताल हुई हो, वाजारोंमें गड़वडी हुई हो, अदालतमें कोई मामला चल रहा हो, सभा-सोसाइटी, व्याख्यान, भोज, नृत्य, चायपार्टी आदि किसी भी क्षेत्रके किसी भी समाचारको जिसे वह समाचारकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण समझता है तथा जिसका प्रकाशन उसे आवश्यक ज्ञात होता है वह खोज ला सकता है।

संवाददाता भी सामान्यतः यही कार्य करते हैं पर कभी-कभी ऐसे सवाद-दाता भी होते है जो विशेष कार्योंपर नियुक्त किये जाते हैं। दिल्लीमे केन्द्रीय सरकार तथा व्यवस्थापक सभाकी रिपोर्टके लिए, कांग्रेस-अधिवेशन या हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अथवा ऐसे ही किसी खास समारोहका विवरण जाननेके लिए, किसो अकाल-पीडित या वाढसे क्षतिग्रस्त स्थानकी स्थिति देखनेके लिए, किसी महान् आन्दोलनका विशेष रूपसे समीक्षात्मक अध्ययन करनेके लिए समय-समयपर संवाददाताओंकी नियुक्ति होती है जो बहुधा विशेष संवाददाता कहे जाते है। रिपोर्टर और संवाददाताके काम प्रायः समान ही होते हैं पर विशेष संवाददाता और रिपोर्टरके काममे थोड़ा भेद स्पष्ट दिखाई देता है। रिपोर्टर प्रायः सभी मनोरञ्जक घटनाओं तथा समाचारोंका सङ्कलन करनेके लिए होते है और उनका क्षेत्र व्यापक होता है पर विशेष संवाददाता एक

प्रकारके विशेषज्ञ-से होते हैं जो विशेष बातोंकी जानकारी और समीक्षाके लिए नियुक्त किये जाते हैं। यही कारण है कि रिपोर्टरों या साधारण संवाददाताओंके लिए यह अच्छा नहीं समझा जाता कि वे जिन घटनाओंका विवरण भेजें उनपर अपना मत भी प्रकट करें अथवा निर्णय प्रदान करें। माना यह जाता है कि रिपोर्टर अपनी रिपोर्टमें किसी घटनाके सम्बन्धमें मत प्रकट करनेका काम सम्पादकीय विभागपर छोड़ देगा। परन्तु जहाँ रिपोर्टरको ऐसा करनेका अधिकार नहीं होता वहाँ विशेष संवाददाताको यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह घटनाओंके तथ्यमें प्रवेश करे और उनका विवरण देते हुए आवश्यक हो तो अपनी बुद्धि और अन्तःकरणकी झलक भी प्रदान कर दे।

विशेष संवाददाताओंकी नियुक्ति करते समय उनके विशेष ज्ञान और रुचिकी ओर भी ध्यान दिया जाता है। यदि किसी विज्ञान-सम्मेलनका विवरण लानेके लिए किसी संवाददाताकी नियुक्ति की जाती है तो इस बातपर ध्यान रखना आवश्यक होता है कि नियुक्त संवाददाता उस विषय-विशेषसे परिचित है अथवा नहीं तथा उसकी ओर उसकी रुचि और गति भी है या नहीं। ऐसे विशेष कार्योंके लिए नियुक्त किये गये लोग विशेष प्रतिनिधिके नामसे विख्यात होते हैं। इनके सिवा साधारण संवाददाता या रिपोर्टर प्रान्त और देशके विभिन्न जिलोंमें समाचार-सङ्कलनके लिए सामान्य रूपसे नियुक्त किये जाते हैं जो तरह-तरहके संवाद एकत्र करके अपने कार्यालयको भेजते रहते हैं। समाचार-एजेंसियोंके संवाद जहाँ सीधी-सादी प्रकृत घटनाके रूपमें होते हैं वहाँ इन लोगोंको उनकी तहमें घुसकर भीतरी बातें निकालने तथा उनका रहस्य तक उद्घाटित करनेकी स्वतन्त्रता होती है। विदेशोंमें नियुक्त संवाददाता 'विदेशी संवाददाता' (फारेन करेसपाण्डेण्ट) के नामसे विख्यात होते हैं। युद्ध आदिके छिड़ जानेपर प्रभावशाली तथा सम्पन्न पत्र अपने संवाददाता विभिन्न मोरचोंपर भी रखते हैं। उनका काम विशेष रूपसे खतरनाक तथा उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। ऐसे ही लोग सैनिक-संवाददाता कहे जाते हैं। आजकल तो राजनीतिक संवाददाता (डिप्लोमेटिक या पोलिटिकल करेसपाण्डेण्ट) के नामसे अति कार्यकुशल, सावधान तथा पारदर्शी दृष्टिवाले पत्रकार नियुक्त किये जाते हैं जो विभिन्न देशोंके पर-राष्ट्रीय विभागमें चलनेवाले कूटनीतिक चक्रोंकी गतिविधिका पता

लगाया करते हैं। इन संवाददाताओंपर विभिन्न देशोंकी सरकारें तीखी निगाह रखती हैं और वहाँके राजनीतिज्ञ उनसे भयभीत रहा करते हैं। मालूम नहीं ये कब किस रहस्यका उद्घाटन कर दें और न जाने उसका क्या परिणाम हो जाय। नाजी जर्मनी और फासिटी इटलीसे तो न जाने कितने विदेशी राजनीतिक संवाददाता निकाल बाहर किये जा चुके हैं और अनेक दण्डके भागी हो चुके हैं।

तात्पर्य यह कि अनेक श्रेणियोंमें विभक्त होकर तरह-तरहके समाचार-सङ्कलन करनेवाले रिपोर्टरों या संवाददाताओंका वर्ग अति व्यापक है जिसपर आधुनिक पत्रकार-कला तथा पत्रोंका वर्तमान स्वरूप बहुत कुछ निर्भर है। ये लोग चाहे समाचार-एजेंसियोंके लिए काम करते हों अथवा विशेष पत्रोंके लिए, पत्रकारोंमें अग्रणी स्थान रखते हैं। इनका पद और स्थान किसी समय भले ही छोटा समझा जाता रहा हो पर आज इनका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। कहनेको तो सम्पादक या प्रधान उपसम्पादक इनका नियन्त्रण करते हैं और ये उन्हींके अधीन काम करते हैं पर वास्तवमें सम्पादकोंके कान और उनकी आँख ये ही लोग होते हैं जिनका सहारा लेकर ही पत्रका सञ्चालन करना सम्भव होता है। इनके परिश्रम, सूझ, सतर्कता और समाचार-बोधपर ही पत्रकी सफलता निर्भर है। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ और शक्तिशाली सरकारें भी इनकी उपेक्षा नहीं कर सकतीं। यदि समाचारपत्रोंका समर्थन सरकारको प्राप्त करना है अथवा किसी राजनीतिज्ञको पत्रोंकी सहायता चाहिये तो उसे इन पत्रप्रतिनिधियोंकी ही शरण लेनी होती है। जनता तक पहुँचनेके लिए, जनमतको जाग्रत् करने अथवा अपने पक्षमें करनेके लिए, अपनी नीतिका स्पष्टीकरण करनेके लिए सिवा समाचारपत्रोंके दूसरा उपयुक्त साधन नहीं है। रेडियो एक साधन अवश्य उपलब्ध हुआ है पर उससे अबतक वह काम नहीं हो सका जो पत्र करते हैं। इस सम्बन्धमें हम किसी अगले अध्यायमें विचार करेंगे पर यहाँ इतना कहना अनुचित न होगा कि पत्रोंका स्थान अबतक इस दिशामें अक्षुण्ण ही है। फलतः यदि समाचारपत्रों तक सरकारोंको भी पहुँचना है तो उसकी कड़ी ये संवाददाता ही होते हैं।

लोकतन्त्रात्मक देशोंमें तो पत्रोंका समर्थन और उनकी सहायता और भी क होती है। निरङ्कुश और स्वच्छन्द अधिनायकवादी अनुत्तरदायी सरकारें

भले ही सङ्गीनोंके बलपर शासन करनेकी नीति अपनाकर पत्रोंकी उपेक्षा करें अथवा उन्हे अपने सङ्केतपर नचा लें पर प्रतिनिधि-मूलक शासन-व्यवस्था-की नीतिपर आश्रित सरकारोंको जनमतके इस प्रतीककी सहायता तथा समर्थन प्राप्त करनेके लिए यत्नशील रहना ही पड़ता है। पाठक बहुधा समाचारपत्रोंमें पत्रप्रतिनिधियोंके सम्मेलनका समाचार पढ़ते होंगे। आज ऐसे सम्मेलनोंकी परिपाटी विशेषरूपसे प्रचलित हो गयी है। पत्रप्रतिनिधि आमन्त्रित किये जाते हैं और उनके बीच बड़े-बड़े मन्त्री अथवा उच्च पदस्थ सरकारी अधिकारी आकर प्रश्न-विशेषके सम्बन्धमें अपनी नीति स्पष्ट करते है और पत्र-प्रतिनिधियोंके सब प्रश्नोंका उत्तर देते हैं। जबसे युद्ध छिड़ा है और अमेरिका युद्धलिप्त राष्ट्र बना है तबसे प्रति मङ्गलवार और शुक्रवारको ह्वाइटहाउसमें पत्र-प्रतिनिधियोंका सम्मेलन होता है और स्वयं राष्ट्रपति रूजवेल्ट वहाँ उनके सम्मुख आकर उनके प्रश्नोंका उत्तर देते है। इंग्लैंडमें भी प्रधान मन्त्री अथवा युद्ध-मन्त्रिमण्डलका कोई सदस्य ऐसे सम्मेलनका आयोजन करता है और वहाँ सरकारी नीतिका स्पष्टीकरण किया जाता है। भारतमें भी आज ऐसे सम्मेलनोंकी धूम रहती है। श्री जिना, श्री सावरकर, गान्धीजी, जवाहरलालजी आदि पत्र-प्रति-निधियोंके सम्मेलनमें आकर अपना मत व्यक्त करते हैं। इन सम्मेलनोंमें पत्रों और समाचार-एजेंसियोंके संवाददाता ही उपस्थित रहते हैं जिनकी जिज्ञासाको तुष्ट करके और अपनी नीति व्यक्त करके सरकारी अधिकारी या जननायक अपने मतका प्रसार पत्रों द्वारा होना देखना चाहते हैं और उनके समर्थनकी अपेक्षा करते हैं। इन बातोंसे स्पष्ट है कि पत्रोंके संवाददाताओंका स्थान देशके सामा-जिक और राजनीतिक जीवनमें महत्त्वपूर्ण हो गया है जिनकी कृपा प्राप्त करनेके लिए सभी लालायित रहते हैं।

संवाददाताओंका महत्त्व बढ़ना आश्चर्यकी बात नहीं है। आज राष्ट्रके जीवनमें पत्रोंका अभूतपूर्व स्थान है जो चतुर्दिक् अपना प्रभाव डाला करते हैं। पर इन पत्रोंकी सफलता समाचार-सङ्कलन करनेवालोंपर निर्भर रहती है। आजके पत्र वस्तुतः इस धरित्रीपर निवास करनेवाली मानवजातिके जीवनको प्रतिबिम्बित करनेके लिए सुन्दर दर्पणके समान होते हैं। जीवनकी उथल-पुथल और उसकी गतिकी प्रतिच्छाया बनकर वे देखनेवालेको स्वयं सजीव

दिखाई देते हैं। अपनी इसी सजीवतासे वे पुनः जीवनको प्रभावित करते हैं और जीवित नरनारियोंके हृदय और मस्तिष्कके सम्मुख उन्हींके जीवनको चित्रित करके उन्हें स्पन्दित कर देते हैं। पत्रोंका यही धर्म और उपयोग है। इसमे सफलता प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक है कि पत्र सप्राणताकी लहरियोंसे स्वयं स्पन्दित हों जिसमें जीवनका आलोक प्रत्यक्ष भासता दिखाई दे सके। ऐसी स्थितिमें पत्रोंके ऊपर उन लोगोंका प्रभाव सर्वाधिक होना स्वाभाविक है जो जीवनकी गति और धाराके अधिकाधिक प्रत्यक्ष सम्पर्क और सङ्घर्षमें प्रतिक्षण आते हों। यह काम सबसे अधिक सवाददाताके ऊपर ही पड़ता है। भले ही परदेके पोछे बैठकर पत्राभिनयका सारा सञ्चालन, नियमन और नियन्त्रण तथा आयोजन करनेवाले सम्पादक और उपसम्पादक तथा व्यवस्थापक और मिस्तरी हों पर रङ्गमञ्चपर सामने अभिनय करनेवाला तो रिपोर्टर ही होता है। जनताकी दृष्टि और उसके जीवनके सम्पर्कमें पत्रकी सजीव प्रतिमाके रूपमें, उसके प्रतीककी हैसियतमें कौन उपस्थित रहता है ? क्या यह पत्रका सवाददाता ही नहीं है जो अपने चारोंओर जिज्ञासा तथा उत्सुकता और सक्रियता तथा गतिशीलताकी आभा लिये सर्वत्र पहुँचा दिखाई देता है।

उसकी बुद्धि और अन्त करण ही वह केमरा है जो समाजके जीवनकी छाया ग्रहण करता है और फिर उसे अपने पत्रमें चित्रित कर देता है। मानव-हृदयमें स्थित दैत्य और देव, सुख और दु.ख, प्रकाश और अन्धकार, सबका दर्शन वही करता है। प्रकृतिका विनाश और सृष्टिकी लीलाको, जीवनकी ग्रन्थियों और समस्याओंको, सामाजिक उत्थान, विकास और पतन तथा पथ-भ्रष्टताको, विछोह और सान्त्वनाको अभिव्यक्त करनेवाला वही होता है। कहीं हँसी और कहीं रोना, कहीं जीवन और कहीं मृत्यु, कहीं राग और कहीं द्वेष, कहीं विलास और कहीं बुभुक्षाके द्वन्द्वात्मक नैसर्गिक घर्षणसे निर्मित इस धरातलका दर्शन करना और तज्जन्य अनुभूतियोका प्रदर्शन निर्लिप्तताके साथ करना उसीके जिम्मे होता है। प्रत्यक्ष रूपसे प्रेसकी रहस्यमयी महती शक्तिका प्रतिनिधित्व साधारण जन-जीवनमें करनेका श्रेय उसे ही प्राप्त होता है क्योंकि वही उसके अत्यन्त सन्निकट पहुँचा हुआ रहता है। फलत· यदि उसका महत्त्व हो और उसे हम प्रभावशाली कहें तो इसमें न कोई अचम्भेकी बात है और न यह अनुचित ही

समझा जायगा। इसी कारण आज रिपोर्टिङ्गका काम दिन-दिन न केवल उन्नत होता जा रहा है बल्कि भविष्यमें उसका महत्त्व अग्रलेख-लेखनसे भी अधिक हुए बिना बाकी न रहेगा।

रिपोर्टिङ्गका महत्त्व कोई नयी बात भी नहीं है। पत्रकार-कलाके क्षेत्रमें सम्पादक और उपसम्पादक तथा अन्य श्रेणियाँ जहाँ धीरे-धीरे आविर्भूत हुई हैं वहाँ रिपोर्टिङ्गका काम अत्यन्त पुराना है। समाचार जाननेकी उत्सुकता यदि मानव जीवनमें अति आरम्भिक कालसे रही है तो समाचारोंका सङ्कलन करके उनके द्वारा उस जिज्ञासाको सन्तुष्ट करनेका काम भी किसी-न-किसी रूपमें तभीसे होता आया है। जिस युगमे आजकलके से समाचारपत्र नहीं थे उस जमानेमें भी समाचारोंका सङ्कलन यथासम्भव होता रहा है और उनका वितरण किसी-न-किसी प्रकार किया जाता रहा है। समाचार-सङ्कलन करनेवालों और उन्हें फैलानेवालोंपर सरकारोंकी संशयपूर्ण कोपदृष्टि आज ही रहती है सो बात भी नहीं है। सदासे ऐसे लोगोंपर सरकारें प्रतिबन्ध लगानेकी और उनकी गतिविधि रोकनेकी चेष्टा करती रही हैं। इंग्लैण्डमे साप्ताहिक समाचार-पत्र सन् १६२२ ईसवीसे ही निकलने लगा था। दैनिक पत्र भी किसी-न किसी रूपमे सन् १६९५ ईसवीसे ही निकलने लगे थे पर पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पार्लमेण्टकी सभाओंका विवरण इसके एक शताब्दी बादतक पत्रोंमें प्रकाशित नही किया जा सकता था। प्रथम चार्ल्सके बाद क्रामवेलके जमानेमे थोड़े-बहुत विवरण पत्रोंमें प्रकाशित हो जाते थे पर उसके बाद जब द्वितीय चार्ल्स पुनः पदारूढ हुए तो कानून बनाकर यह अधिकार छीन लिया गया। फिर प्रथम जार्जके जमानेमें थोड़ी-बहुत ढिलाई की गयी ; पर सन् १७३८ ईसवीमें पार्लमेण्टने पुनः यह अधिकार छीन लिया।

पार्लमेण्टकी साधारण सभाने इस सम्बन्धमें जो प्रस्ताव स्वीकार किया था उसमें कहा गया था कि पार्लमेण्टके अधिवेशनोंकी रिपोर्ट किसी समाचार-पत्रमें प्रकाशित करना अत्यन्त अनुचित कार्य है और जो ऐसा करेगा उसके विरुद्ध कड़ी काररवाई की जायगी। बादमें चलकर सन् १७७४ ईसवीमें रिपोर्टों-को छापनेका अधिकार प्राप्त हुआ। इस बीच प्रायः तीस वर्षतक डाक्टर जान-सन गुप्तरूपसे पार्लमेण्टके विवरणोंका सङ्कलन करते रहे जिसके फलस्वरूप

तत्कालीन पार्लमेण्टकी कारखाईका विवरण उपलब्ध है जो आज भी पार्लमेण्टके इतिहासकी श्रृङ्खलाको जोडनेमें सहायक होता है। जिस प्रकार शताब्दियों पूर्व शासकवर्ग सावधानीके साथ उन्हे दबाये रहनेमें सचेष्ट था उसी प्रकार रिपोर्टर और रिपोर्टिङ्गपर आज भी सशङ्क दृष्टि रखी जाती है यद्यपि संवाददाताओंके अधिकार बढ गये हैं। कोई चाहे जितना भी सशङ्क रहे पर आज पत्र-सवाददाताओंकी उपेक्षा कोई नहीं कर सकता। उनके प्रवेशके लिए कहीं भी रुकावट नहीं डाली जाती। काग्रेसका अधिवेशन हो या केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओंका, सङ्घ-न्यायालय हो या मन्त्रियोंके गृह, कोई नृत्य अभिनय हो या एम० सी० सी०से क्रिकेटका मैच, सर्वत्र उनके लिए प्रवेश-पत्रोंका प्रबन्ध पहलेसे ही किया जाता है और 'प्रेस'के बैठनेके लिए सर्वोत्तम स्थानपर आयोजन किया जाता है। 'प्रेस'वाले नाराज न हों इसकी चिन्ता विशेष रूपसे की जाती है क्योंकि किसी समारोहकी सफलतामें उनका बहुत बड़ा हाथ रहता है। सुन्दर, सहानुभूतिपूर्ण तथा विस्तृत रिपोर्टिङ्गसे उनका प्रचार होता है और वे ही प्रेसवाले यदि उपेक्षा कर दें अथवा मट्टी पलीद करनेवाली रिपोर्टिङ्ग कर दें तो सारा किया-कराया बेकार हो जाता है।

आज तो इन रिपोर्टरोके प्रवेशको कोई कही रोकनेकी हिम्मत नहीं करता। बहुत आवश्यक होता है तभी पार्लमेण्ट या व्यवस्थापक सभाओं अथवा सभा-समितियोके गुप्त अधिवेशन किये जाते हैं और बादमें अधिकारियोंकी ओरसे प्रामाणिक वक्तव्य प्रकाशनार्थ दे दिया जाता है। पत्रकारोंमें इसी कारण यह कहावत प्रचलित है कि मरनेके बाद रिपोर्टरके लिए स्वर्ग और नरक दोनों-के प्रवेश-पत्र प्राप्त होंगे क्योकि इनमेसे किसीके अधिष्ठाताको शायद यह साहस न होगा कि उनका प्रवेश अपने यहाँ निषिद्ध कर दे। रिपोर्टरोसे बडे-बडे राजनीतिज्ञ भी घबराते हैं क्योंकि उनकी लेखनी न जाने कब किसे किस रूपमे चित्रित कर दे सकती है। चतुर राजनीतिज्ञोको जिसने पत्र प्रतिनिधियोके प्रश्नोंकी बौछारसे त्रस्त और परेशान होते देखा होगा वह जानता होगा कि उनकी दशा कैसी दयनीय हो जाती है। वे प्रतिनिधि ऐसे-ऐसे प्रश्न कर बैठते हैं कि राजनीतिज्ञ क्षुब्ध हो जाते है पर बेचारे अपने क्षोभको प्रकट भी ~ कर सकते क्योंकि उन्हे रिपोर्टरोंके नाराज हो जानेका डर रहता है।

उनके साथ कठोरताका व्यवहार करना खतरनाक हुआ करता है। श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित जब युक्तप्रान्तीय कांग्रेसी सरकारके मन्त्रिमण्डलकी सदस्या थीं तो स्वास्थ्य-सुधारके लिए इंग्लैण्ड गयी हुई थीं। उन्होंने वहाँके पत्रकारोंपर अपना मत व्यक्त करते हुए कहा था कि 'पत्रकार भयावने कीटाणु होते हैं और इस क्षेत्रकी महिलाएँ उनसे भी अधिक भयावनी होती हैं।' सम्भवतः पत्रकारोंके प्रश्नों और उनकी उत्सुकताने उन्हें इतना क्षुब्ध कर दिया कि वे अपना रोष उपर्युक्त वाक्योंमे प्रकट करके हृदयका भार हलका कर सकीं।

पर रिपोर्टरोंका महत्त्व केवल इसलिए नहीं है कि उनकी धाक बैठी हुई है और वे व्यापक अधिकारोंका उपभोग करते हैं। उनका महत्त्व इसलिए भी है कि उनका कार्य अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। उनकी रिपोर्टिङ्ग जहाँ जनताका ज्ञान बढ़ा सकती है, मानवको मानवका स्वरूप समझनेमें सहायता प्रदान कर सकती है और विभिन्न देशोंको एक दूसरेके निकट ला सकती है वहीं संसारमे अशान्ति और द्वेषकी विषमयी लहरें भी लहरा सकती है। महान् युद्धोंका सूत्रपात हो जाना अथवा प्रचण्ड दावाग्निकी भाँति विद्रोहोंका फूट पड़ना भी उनकी करनीका परिणाम हो सकता है। ऐसी घटनाएँ घट चुकी हैं और घटती रहती है जब पत्र-प्रतिनिधियों द्वारा भेजे गये उनके विवरण संहार और रक्तपातके कारण हो चुके हैं। इस देशमें किसे साम्प्रदायिक दङ्गोंके समयका अनुभव न होगा। साम्प्रदायिक उर्दू पत्रोंमे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलके जमानेमे तरह-तरहके समाचार इस प्रकार प्रकाशित होते रहे है और कांग्रेसी सरकारको हिन्दू सरकार बनाकर उनके द्वारा मुसलमानोंपर अत्याचार किये जानेके ऐसे निराधार विवरण प्रकाशित होते रहे हैं जो अनेक निरपराध तथा शान्त नागरिकोंके प्राण-नाशके कारण हुए हैं। उन्होंने देशके राष्ट्रीय जीवनमें वह विष घोल दिया है जिसके प्रभावसे वरसोंतक हम जलते रहेंगे। साम्प्रदायिक दङ्गोंकी आगमें घी डालनेका कुकृत्य करनेवाले रिपोर्टर ही हुआ करते थे।

एक पत्रकारने रिपोर्टरोंका वर्णन करते हुए अपनी पुस्तकमें ऐसी कतिपय अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओंका उल्लेख किया है जब उनके सम्बन्धमें की गयी रिपोर्टिङ्ग युद्धकी आग लगानेकी सीमातक पहुँच गयी। सौभाग्यकी बात थी कि नर-

संहारका डङ्का बजनेसे बच गया पर देशोंमें जो परस्पर क्षोभ और द्वेषकी लहर फैली वह बरसोंतक उनके सम्बन्धको जहरीला बनाये रही। सन् १९३३ ईसवीमें मास्कोमें मेट्रोविकर्स इञ्जीनियर्सके नाम एक बड़ा भारी मुकदमा चला था। यह मुकदमा छः अंग्रेज इञ्जीनियरोंपर रूसकी बोलशेवी सरकारने चलाया था। ये इञ्जीनियर रूसमे वहाँकी सरकार द्वारा स्थापित बिजलीके कारखानेमें नियुक्त थे। बोलशेवी सरकारके पास इन इञ्जीनियरोंके घूस लेने, सरकारकी रहस्यमयी बातोंकी सूचना दूसरे देशोंको देने तथा ध्वसात्मक कारखाई करनेकी शिकायत पहुँची और उसने इनपर इन्हीं अभियोगोंमें सोवियट सरकारकी 'सुप्रीमकोर्ट'में मुकदमा दायर कर दिया। फलत. ब्रिटिश इञ्जीनियर गिरफ्तार किये गये। उनका गिरफ्तार होना था कि ब्रिटिश पत्रोंके क्रोधकी सीमा न रही। वे सोवियट सरकारके विरुद्ध आग उगलने लगे और मुकदमा चलनेके पूर्व ही उन्होने यह निर्णय प्रदान कर दिया कि उनके इञ्जीनियर लोग निर्दोष हैं और यह सब सोवियट सरकारकी कुचाल है जिसमे वह ब्रिटिश नागरिकोंको झूठ ही फँसानेकी चेष्टा कर रही है।

सोवियट सरकारने बार-बार घोषणा की कि इनपर खुली अदालतमें मुकदमा चलेगा जिसमें सरकार अपने अभियोग सिद्ध करेगी और ब्रिटेनके समस्त पत्रोंको यह अधिकार है कि वे अपने प्रतिनिधि भेजकर मुकदमेकी कारखाईकी रिपोर्टिङ्ग अपने पत्रोंके लिए करायें; फिर भी ब्रिटिश पत्रोंका क्रोध शान्त न हुआ। लन्दनके 'टाइम्स' ऐसे गम्भीर पत्रने भी रूसको गाली देते हुए लिखा कि उसे 'न्यायके नामपर मास्कोकी अदालतो द्वारा किये जानेवाले गढन्त तमाशेमें कोई विश्वास नहीं हो सकता'। वर्तमान ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री विंस्टन चर्चिल, जो आजके युद्धमे रूसके मित्र बनते है, उस समय बेतरह बमके और यहाँतक कह गये कि 'रूसकी सरकार घृणित और जहरीली सरकार है जिसपर विश्वास नहीं किया जा सकता'। होहल्ला मचानेके बाद अन्तमें पत्रोने अपने प्रतिनिधि इस मामलेकी रिपोर्टिङ्गके लिए भेजे। एक ब्रिटिश पत्रकारने, जो उस समय मास्कोमे इस अदालतकी कारखाईकी रिपोर्टिङ्ग करनेके लिए भेजा गया था, ब्रिटिश रिपोर्टरोंके सम्बन्धमें जो लिखा है वह उसीके शब्दोमें सुनिये। वह कहता है कि 'मेरी समझमें इस मामलेकी रिपोर्टिङ्ग जिस प्रकार ब्रिटिश पत्रोंमें

की गयी वह हमारे देशका पत्रकारीके इतिहासकी अत्यन्त निन्दनीय घटनाके रूपमें रहेगी। संवाददाता रिपोर्टिङ्ग करते हुए अभियुक्तोंके विरुद्ध पेश किये गये प्रमाणोंको दबा देते थे। अदालतका अपमान करनेके लिए तथा उसकी निन्दा करनेके लिए कोई बात उठा नहीं रखी जाती थी। प्रायः प्रत्येक पत्र उन्मत्त हो गया था और पत्रकार विचित्र रङ्गमें रँगकर अपनी रिपोर्ट भेजा करते थे।'

यह पत्रकार आगे कहता है कि 'ग्रेटब्रिटेनके सिवा सारे यूरोपके पत्र रूसी सरकार द्वारा उपस्थित किये गये अभियोगोंकी साधारता देखकर ब्रिटेनके समर्थक नहीं हो सके, अन्यथा मुझे पूरा विश्वास है कि रिपोर्टरोंकी रिपोर्टिङ्ग दुनियाको पुनः भयावने युद्धकी आगमें झोंक देनेमें समर्थ हुई होती'। इसी कारण आज संवाददाताओंका बडा उत्तरदायित्व समझा जाता है। बड़ी-बड़ी बातोंके सिवा छोटी-मोटी घटनाओंका विवरण देते हुए भी उनका वही उत्तरदायित्व उपस्थित रहता है। गलत रिपोर्टिङ्ग करके वे अनर्थ कर दे सकते हैं, किसीके यश और सुनामको धक्का पहुँचा सकते है, जनहितकी हानि कर सकते हैं और अपने पत्रपर आफत बरपा करदे सकते है। फलतः अपने अधिकार और उत्तरदायित्वके कारण सवाददाता या रिपोर्टरका पद तथा कार्य विशेष रूपसे महत्त्व रखता है। पत्रसम्बन्धी कार्यमे जिसका इतना महत्त्वपूर्ण स्थान हो उसमें कौनसी विशेषताए होनी चाहिये यह जान लेना आवश्यक है। यह भी भलीभाँति जान लेना चाहिये कि जो पत्रकारीके इस क्षेत्रमें आना चाहता है उसे कौन-कौनसे काम करने होते है और किस प्रकार अपना कार्य सफलताके साथ पूरा करनेकी योग्यता सम्पादित की जा सकती है।

रिपोर्टर या संवाददाताका मुख्य काम अपने पत्रके लिए समाचार-संग्रह करना है। फलतः उसमें सबसे बडा गुण समाचारके 'समाचारत्वको पहचाननेकी क्षमता होनी चाहिये। समाचार-बोध या समाचार-चेतना नैसर्गिक गुण है और जिनमें यह प्रवृत्ति होगी वे ही सफल संवाददाता या रिपोर्टर हो सकते हैं। किसी प्रकारकी शिक्षा या विश्वविद्यालयकी उपाधि किसीमें इस गुणका सर्जन नहीं कर सकती। जिनमें यह चेतना होती है उन्हे साधारण या असाधारण बातोंसे अनायास समाचारकी गन्ध मिल जाती है। जिस बातको आप साधारण समझते हैं वह उसे महत्त्वपूर्ण दिखाई दे सकती है और जिसे

आपकी दृष्टि महत्त्वपूर्ण देखती है उसमें यदि समाचारत्वकी गन्ध नहीं है तो उसके लिए उसका मूल्य कौड़ी बराबर न होगा। घटनाओंको देखते ही या सुनते ही वह व्यक्ति जिसका समाचार-बोध उद्बुद्ध और उन्नत होगा यह समझ लेगा कि उस घटनाके गर्भमें समाचारकी दृष्टिसे आज कितना तथ्य है और भविष्यके लिए कितना मसाला है। समाचार-बोधके साथ रिपोर्टरमें दूरतक देखनेकी और कल्पना करनेकी विशेष क्षमताका होना आवश्यक है। संवाद किसी रिपोर्टरको माँगनेसे नहीं मिला करता प्रत्युत उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी पड़ती है। विदेशी संवाददाता अथवा प्रमुख नगरों और राजधानीमें नियुक्त रिपोर्टर यदि वहाँके राजदूतों और अधिकारियों तथा परराष्ट्रीय विभागके कर्मचारियोंसे समाचार पानेकी चेष्टा किया करे अथवा विदेशी पत्रोंको पढ़कर उनमें प्रकाशित हुए समाचारोंको काट-छाँटकर अपने कार्यालयको भेज देनेमें ही अपनी कलाकी इति समझेगा तो निश्चय समझिये कि समाचार सङ्कलन करनेवाला तथा उसका पत्र अपने प्रतिद्वन्द्वियोंकी प्रतिस्पर्धामें अवश्यमेव पीछे छूट जायगा।

यदि उसे सफलता प्राप्त करनी है तो गहराईमें उतरना होगा। जिस देशमें उसकी नियुक्ति हुई है वहाँके आधुनिक इतिहासको समझना, वहाँके प्रस्तुत प्रश्नों और समस्याओंके मूल रूपको जानना, राष्ट्रीय जीवनमें जो अनेक और बहुधा विरोधी धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं उनके रहस्यको समझना, वहाँके नेताओंको अतिनिकटसे जानना होगा और उनके प्रति मित्रताका भाव रखने और स्वयं उनका विश्वास प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी होगी। इस प्रकार व्यापक ज्ञान रखनेवाले संवाददाताके लिए घटनेवाली घटनाओंको समझना और उनका वास्तविक चित्र चित्रित करना सरल होगा। नेताओंके अपने प्रति विश्वासके फलस्वरूप उसे अनायास वे समाचार भी प्राप्त हो जा सकते हैं जो उसके दूसरे प्रतिस्पर्धियोंको प्राप्त नहीं होते। सवाददाता या रिपोर्टरको अपने प्रतिद्वन्द्वी दूसरे संवाददाताओंसे सदा सतर्क और सावधान रहना चाहिये। सदा याद रखना चाहिये कि दूसरे उससे आगे निकल जानेकी कोशिश करते होंगे अतः उन्हे पीछे छोड़ देनेमें ही उसकी सफलता है। समाचार-सङ्कलन करना और दूसरोंकी अपेक्षा उसे पहले अपने पत्रमें प्रकाशित कर देनेमें समर्थ

होना ही उसकी विशेषता है। जो बातें दूसरे पत्रोंमें छप गयीं उन्हें यदि बादमें आप अपने पत्रमें ले ही आये तो इसका अर्थ जूठनसे अपने कलेवरको भरना मात्र होगा।

अपने क्षेत्रमें सफल संवाददाता भी एक प्रकारसे सम्पादक ही होता है। समाचार प्राप्त करना, उसकी समीक्षा करना, उपयुक्त संवादोंको छाँटकर अलग करना और तत्काल उनको चित्रित करना तथा अविलम्ब प्रकाशनार्थ भेज देना उसका काम होता है। क्षणभरका विलम्ब भी अनुचित है और एक मुहूर्त भी नष्ट करना अपराध है। संवाददाताके लिए आलस्य उसका सबसे बड़ा शत्रु है। इस कामको कल कर देंगे अथवा आज छुट्टी मनायेंगे-का भाव जिस संवाददातामें हो उसे निकम्मा और बेकार समझ लीजिये। कोई नहीं कह सकता कि टेलिफोनकी घण्टी कब घनघना उठेगी और उसे तत्क्षण कमर कसकर अपने पत्रके लिए संवाद-संग्रह करनेकी दृष्टिसे दौड़ पड़ना होगा। भोजन करते हुए, रात्रिमें सुखकी नींद सोते समय सहसा उसकी पुकार हो सकती है और उसे थाली और शय्या भी छोड़कर निकल भागना पड़ सकता है। रातको ठण्ढ पड़ रही हो अथवा मेघ भीषण जलवर्षा कर रहे हों या जेठकी दुपहरी तप रही हो संवाददाता समाचार मिलनेकी सूचना पाकर यदि बैठा रहता है तो अपने कर्तव्यकी अवहेलना करनेका अपराध करता है। फलतः उसमें वह उत्साह, समाचार प्राप्त करनेकी वह मादकता तथा शरीर और स्वास्थ्यमे वह बल होना चाहिये जो उसे सदा समाचारकी गन्ध पाते ही उत्तेजित कर सके।

रिपोर्टर और सवाददाता स्थानीय हो या वैदेशिक, विशेप हो या साधारण, उसके कामके घण्टे निर्धारित नहीं हैं। दिन और रात, जाड़ा, गरमी या बरसात उसके लिए कोई भी अस्तित्व नहीं रखती। प्रत्येक क्षण उसकी ड्यूटी है। रातको बारह बजे कोई घटना घटी और संवाददाता यह कहकर छुट्टी नहीं पा सकता कि उसकी ड्यूटी केवल दससे चार बजे शामतक काम करनेकी है। उसे तो गीधकी भाँति न केवल दूरतक देखनेमें समर्थ होना है बल्कि सदा अपने शिकारकी खोजमें भी रत रहना होता है। कोई संवाददाता किसी एक स्थानसे समाचार प्राप्त करनेकी चेष्टामात्र करके अपना काम खत्म हुआ न

समझे। यह सच है कि कुछ स्थानोंका चक्कर नियमित रूपसे उसे लगाना चाहिये। कोतवाली, पुलीसके दफ्तर, नगरके थाने, म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डके दफ्तर, अदालतोंके कमरे, बाजारों और मण्डियोंका फेरा, नगरका स्वास्थ्य-विभाग, प्रमुख और महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक संस्थाओंके कार्यालय, नगरके प्रमुख सार्वजनिक नेता या कार्यकर्ता आदि दर्जनों ऐसे स्थान होते हैं जिनका चक्कर उसे प्रतिदिन काटना ही चाहिये। इन स्थानोंसे समाचार मिल जाते हैं पर केवल इनपर ही भरोसा करके चुप बैठ रहना मूर्खता होगी।

इनके सिवा उसमें इतनी क्षमता होनी चाहिये कि वह इधर-उधर वातावरणमें यदि समाचारकी गन्ध भी हो तो उसे पहचान ले। जहाँका रिपोर्टर है वहाँके वातावरणकी समीक्षा करता रहे और जीवन-गतिकी धारा किधर प्रवाहित हो रही है इसकी कल्पना करता रहे। संवाददाता देखेगा कि उसे यदि इन बातोंका ज्ञान है तो रिपोर्टिङ्ग करनेके लिए ऐसी बातें झलक उठेंगी जिनके महत्त्वको साधारण आदमी आज समझ भी नहीं सकता। फलतः संवाददाताकी बुद्धि सदा सतर्क हो। वह सूक्ष्मद्रष्टा हो जो बातोंकी तहतक पहुँच सके। इसके लिए उसकी बुद्धि तो पैनी होनी ही चाहिये साथ-साथ व्यवहारमे कुशलता भी नितान्त आवश्यक है। चतुर संवाददाताओंकी कला देखते ही बनती है। वे सबसे अपनी मित्रता स्थापित कर लेते हैं। वे सरकारी अधिकारियोंके प्रियपात्र बन जाते हैं। वे राजनीतिक नेताओंको प्रसन्न कर लेते हैं और बहुधा उनके अहम्की भावनाको तुष्ट करते भी दिखाई देते हैं। परस्पर विरोधी विचार, स्वभाव और मत रखनेवाले लोगोंसे संवाददाता समानरूपसे मिलता है और सबकी समानरूपसे मित्रता प्राप्त करता है तथा सबको अपने व्यवहारसे यह विश्वास दिला देता है कि वह उन्हींका मित्र है। उसकी गम्भीरता समुद्रसे कम नहीं होती। जो एक दूसरेके विरोधी हैं उनकी बात सुनेगा, दोनोंके हृदयके भाव, कार्यक्रम और नीतिका ज्ञान प्राप्त करेगा पर मजाल नहीं कि एककी बातकी भनक भी किसी दूसरेको मिल जाय; सबकी बातें सुनना और सुनकर इस प्रकार पी जाना कि किसीकी बात किसी दूसरेके पास न पहुँच सके और न किसीके साथ विश्वासघात हो सके। संवाददाता अपने मतलबकी बात उसमेंसे निकाल लेगा और अपना काम करके बाकी पचा जायगा।

अपने इसी गुणके बलपर वह सफल होता है। छिछले हृदय और ओछी प्रवृत्ति-का व्यक्ति, जो बातोंको छिपाना और प्रकाशित करना नहीं जानता, इस दिशामें कदम न रखे क्योंकि वह न केवल स्वयं अयोग्य सिद्ध होगा बल्कि अपने पेशे और पत्रकी भी गहरी हानि करेगा।

ढूँढ़ने और पर्यवेक्षणसे तो संवाद मिल ही जाते हैं पर कभी-कभी वे अनायास उसी प्रकार आ धमकते हैं जैसे मृत्यु सहसा पहुँच जाती है। बातें करते हुए, होटलमें बैठकर खाना खाते हुए, रेलमें सफर करते हुए, किसी दूकानपर सामान खरीदते हुए, ऐसे समय जब आप उसकी कोई आशा नहीं करते आपकी गोदमें समाचार आया दिखाई दे जायगा। पर ऐसे समाचारोंका उपयोग करनेके लिए संवाददातामें तरल बुद्धि, समाचारत्वकी गहरी अनुभूति तथा तत्क्षण बात समझ लेनेकी योग्यता होनी चाहिये। हेमिल्टन फाइफने अनायास प्राप्त होनेवाले समाचारोंका उल्लेख करते हुए एक कहानी 'दि प्रेस परेड' नामक पुस्तकमें लिखी है। पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ उसे यहाँ दे देना अनुचित न होगा। सन् १९२० ईसवीकी बात है। एक विशाल ब्रिटिश वायुयान फ्रांसमें गिर पड़ा। आर. १०१ नामक यह विमान नया-नया बना था जिसपर वायुयान-विभागके ब्रिटिश मन्त्री सपर साथियोंके साथ सवार होकर उसकी सफलता देखनेके लिए उड़े थे। दुर्भाग्यसे पहिली ही उड़ानमें वह फ्रांसमें गिरा और उसके बहुतसे आरोही मृत्युको प्राप्त हुए। इस समाचारको ब्रिटिश यूनाइटेड प्रेसने अद्भुत प्रकारसे प्राप्त कर लिया। यूनाइटेड प्रेसके कार्यालयमें समाचार-सम्पादक फ्रांसका समाचार प्राप्त करनेके लिए टेलिफोन मिला रहा था। सहसा उसके टेलिफोनमें एक व्यक्तिकी आवाज सुनाई दी। यह व्यक्ति विनष्ट हुए विमानसे जीवित बच गया था। दुर्घटनाका समाचार ब्रिटिश वायुयान-विभागके कार्यालयको यह दे रहा था। गलतीसे उसके टेलिफोनका सम्बन्ध यूनाइटेड प्रेसके कार्यालयसे हो गया जहाँ बैठा हुआ समाचार-सम्पादक फ्रांससे टेलिफोन मिलानेकी चेष्टा कर रहा था। मृत्युसे बचे हुए व्यक्तिने यह जानकर कि वह सरकारी वायुयान-विभागसे बातें कर रहा है सारी घटनाका विस्तृत विवरण कह डाला। इधर समाचार-सम्पादक बराबर सुनता और नोट करता जा रहा था। कहनेवालेको क्या पता

कि वह पत्रकारसे बातें कर रहा है। सारी बातें सुन लेनेके बाद पत्रकारने उसे धन्यवाद देते हुए बता दिया कि वह यूनाइटेड प्रेस नामक समाचार-एजेंसीका संवाददाता है और दुर्घटनाकी सारी रिपोर्ट ब्रिटिश वायुयान-विभागको तुरत भेज देगा।

यूनाइटेड प्रेसके कार्यालयने तुरत सरकारको सूचना दे दी पर साथ ही अन्य सारी एजेंसियोंको पीछे छोडकर घटनाका भीतरी विवरण भी अपने ग्राहकोंके पास भेज दिया। पत्रकारोंको जीवनमें ऐसे अनेक अनुभव हुए होंगे जब अकल्पित ढङ्गसे उन्हे समाचार प्राप्त होगया होगा। एक घटना हमें याद आ रही है। कुछ वर्षकी बात है कि काशीके 'एयरोड्रोम'से (जहाँ वायुयान उतरते हैं) 'आज' कार्यालयमें सम्पादकके नाम टेलिफोन आया। 'एयरोड्रोम'से टेलिफोन नहीं आया करते थे अत. यह देखकर कुछ उत्सुकता हुई। टेलिफोन उठानेपर सम्पादकसे टेलिफोन करनेवालेने प्रश्न किया कि 'क्या आप कोई ऐसा प्रबन्ध कर सकते हैं कि मुझे पन्द्रह सोलह गैळन पेट्रोल मिल जाय'। असङ्गत प्रश्नसे सम्पादककी उत्सुकता बढ गयी। कोई व्यक्ति सम्पादकसे पेट्रोल दिलानेकी बात करे यह असाधारण बात थी, पर पत्रकारीकी प्रवृत्तिने इस असाधारणताको ही महत्त्व प्रदान किया। सम्पादकने पूछा—आप कौन हैं और पेट्रोलकी खोज क्यों कर रहे हैं? अब उसने उत्तर देना आरम्भ किया। बोला 'मै तातानगरका हूँ और ताताके विमानका सञ्चालक हूँ। जमदेशपुरसे अपने विमानमें पण्डित जवाहरलाल नेहरूको लेकर लखनऊ जा रहा था। अन्धडके कारण रास्ता भूल गया और व्यर्थ ही लम्बा चक्कर लगाना पडा। इसमें मेरा पेट्रोल खत्म हो गया। फलतः यहाँ बनारसमें अभी उतर पड़ा हूँ। मुझे पेट्रोलकी टङ्की अभी भर लेनी है और पण्डितजीको लेकर उड जाना है। मैं जानता नहीं कि पेट्रोल कहाँ मिलेगा इसलिए आपको टेलिफोन किया है।'

पाठक देखें कि कैसी सुन्दर कहानी थी। सम्पादकने पेट्रोलका प्रबन्ध तो तुरत कर ही दिया पर मनोरञ्जक समाचार भी प्राप्त किया। थोड़ी देर बाद विमान जवाहरलालजीको लेकर उड़ा पर अब प्रयागकी बात सुनिये। प्रयागमें यह सूचना प्रकाशित हो चुकी थी कि जवाहरलालजी नहीं हैं और तातानगर हुए हैं तथा निर्धारित तिथिको उनके आनेकी सम्भावना है। वह तिथि

अभी नहीं आयी थी। काशीसे जो विमान उन्हें लेकर उडा वह लखनऊ जानेवाला था पर फिर प्रकृतिने युद्ध छेड़ दिया। विमानचालक मार्ग फिर भूल गया, घण्टों आकाशमें इधर-उधर भटकता रहा। अन्धड़ और तेज हवा चल रही थी, अन्धकार हो रहा था, अतः उसने रास्तेमें ही उतरनेका निश्चय किया। सौभाग्यसे किन्तु अनजाने भटकता हुआ वह प्रयागके ऊपर पहुँच गया था, अतः वहीं उतर पड़ा। जवाहरलालजी बमरौलीसे उतरकर आनन्द-भवन पहुँच गये। किसीको प्रयागमें इस घटनाकी कुछ भी खबर न थी। 'नेशनल हेरल्ड'का प्रयागस्थित संवाददाता दैवात् आनन्दभवनके सामनेसे टहलता हुआ जा रहा था। उसने जवाहरलालजीके कमरेमें रोशनी देखी। उसकी पत्रकारसुलभ उत्सुकता जाग उठी। जवाहरलालजीके कमरेमें रोशनी क्यों? अभी उनके आनेकी तिथि भी तो नहीं आयी! वह आगे बढ़ा। दरवानसे पूछा—पण्डितजीकी कोई खबर है? दरवानने उत्तर देते हुए कहा 'वे कमरेमें ही हैं।' संवाददाता चकित हो गया। उत्सुकताके आवेशमें कमरेमें घुसा। प्रश्न करनेपर पण्डितजीने सारा किस्सा सुना दिया। दूसरे दिन 'हेरल्ड'में कहानी सदृश इस घटनाकी मनोरञ्जक रिपोर्ट प्रकाशित हो गयी और स्वयं प्रयागके पत्र पीछे छूट गये।

जब जीवनमें पत्रकारको इस प्रकार दैवात् समाचार मिल जाते हैं तो उसके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। पर ऐसे समाचारोंसे लाभ उठानेके लिए पत्रकारमें सहज उत्सुकता और संवाद सूँघकर ढूँढ़ निकालनेकी प्रवृत्ति होनी चाहिये। पेट्रोल कहाँ मिलेगा?—यदि इस असाधारण प्रश्नसे ही आप सचेत होनेकी क्षमता नहीं रखते अथवा जवाहरलालजीके कमरेमें वेवक्त रोशनी देखकर आप ठमक नहीं जाते और आपके मनमें औत्सुक्य नहीं उत्पन्न होता तो आये हुए समाचारका उपयोग भी आप नहीं कर सकते। रिपोर्टरके लिए जहाँ संवाद प्राप्त करनेमें सफल होना आवश्यक है वहीं उसे रिपोर्टिङ्ग करनेमें भी समर्थ होना चाहिये। रिपोर्टिङ्गके लिए पहली बात तो यह है कि संवाददाताके विवरणमें कोई बात निराधार या असत्य न होने पावे। उसकी लेखनीसे जो निकले वह यथार्थ हो, सही और साधार तथा सत्य हो। इसके लिए उसमें वही गुण होना चाहिये जो इतिहास-लेखकमें होता है। पत्रकार वास्तवमें

आधुनिक जगत् और जीवनके इतिहासका लेखक ही होता है। फलतः बड़ीसे बड़ी बातोंसे लेकर छोटीसे छोटी घटनातकका विवरण देते हुए इस बातका विचार सर्वोपरि रखना चाहिये कि उसकी तफसीलकी एक-एक बात, एक-एक अक्षरतक यथार्थ हो। रिपोर्टर, चाहे वह किसी गाँव या कस्बेका हो अथवा विदेशी संवाददाता हो, यह अवश्य समझे कि उसका उत्तरदायित्व महान् है क्योंकि उसकी लेखनीसे प्रवाहित शब्दावली व्यापक समाजके जीवनकी गति-पर प्रभाव डाल सकती है।

इसके सिवा वह अपने पत्रका प्रतिनिधि भी होता है। उसकी लापरवाही और अयोग्यता उसके पत्रको बदनाम कर सकती है, उसपरसे जनताका विश्वास उठा दे सकती है। जनवर्गके विश्वाससे वञ्चित पत्र अधिक दिनोंतक अपने जीवनकी रक्षा नहीं कर सकता और यदि किसी प्रकार टिक भी गया तो उसे पूर्णतः व्यर्थ ही समझना चाहिये। किसी पत्रका इससे बढ़कर कलङ्क और अपयश कुछ नहीं हो सकता कि उसमें प्रकाशित सवादोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता। अतएव यह जिम्मेदारी सवाददातापर ही है।

एक बात और भी ध्यानमें रखनी चाहिये। रिपोर्टरको समाचार-पत्र सम्बन्धी कानूनोंका ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। किसी अदालतमें चलनेवाले मामलेकी रिपोर्टिङ्ग करते हुए यदि वहाँकी कारखाईके सिवा सवाद-दाता किसी प्रकारकी टीका-टिप्पणी कर दे तो अदालतका अपमान करनेके अपराधमें उसका पत्र फँस जायगा। कोई गवाह या अभियुक्त अथवा वादी या प्रतिवादी अदालतमें जो बयान दे उसकी रिपोर्ट आप दे सकते हैं, पर अदा-लतके बाहर कही गयी किसी बातको प्रकाशित करना भी अपराध हो सकता है। अदालतके अपमानका जुर्म तो लग ही सकता है, किसी पक्षकी ओरसे मानहानि करनेका दावा भी ठोंक दिया जा सकता है। किसी भी घटनाकी रिपोर्टिङ्ग करते हुए देख लेना चाहिये कि जो लिखा जा रहा है वह मानहानि-कर तो नहीं है और यदि है तो उसके लिए आवश्यकता पड़नेपर सबूत दिया जा सकता है या नहीं।

एक बार एक संवाददाताकी भेजी हुई रिपोर्ट एक पत्रके कार्यालयमें आयी जिसमें कहा गया था कि 'अमुक स्थानके पुलिस सब-इन्स्पेक्टरपर कुछ

गुण्डोंने आक्रमण किया और उसकी नाक काट डाली'। समाचार इतना साधारण था कि उसके सम्बन्धमें सन्देह नहीं हो सकता था। अच्छे और कर्तव्य-परायण सब-इंस्पेक्टरोंके विरुद्ध गुण्डे तङ्ग आकर ऐसी काररवाई कर सकते हैं। फलतः पत्रमें समाचार प्रकाशित हो गया। थोड़ा समय भी नहीं बीता था कि पत्र सम्पादकको सब-इंस्पेक्टरकी ओरसे नोटिस मिली कि झूठा समाचार छापकर आपने अपमान किया है अतः क्षमायाचना कीजिये अन्यथा कानूनी काररवाई की जायगी। जाँच करनेपर मालूम हुआ कि ऐसी ही अफवाह सुनकर वहाँके संवाददाता महोदयने रिपोर्ट भेज दी थी जो वास्तवमें निराधार है। पत्रको अपमानित होना पड़ा और सार्वजनिक रूपसे अपने स्तम्भोंमे क्षमा-याचना करनी पड़ी। एक बार भी ऐसी असावधानी करनेवाले रिपोर्टरका पथ सदाके लिए कुण्ठित हो जाता है। फलतः समाचार-सङ्कलनके लिए उसे जितना ही उत्सुक और व्यस्त रहना चाहिये उतना ही अपने विवरणोंकी यथा-र्थता और सत्यताके सम्बन्धमें सावधान, सतर्क और आश्वस्त भी होना आव-श्यक है। संवाददाता अपने इस गुणसे न केवल अपने उत्तरदायित्वका निर्वाह और अपने पत्रकी सेवा करता है अपितु अपना व्यक्तिगत लाभ भी करता है। उसकी यथार्थताका सिक्का यदि जम गया तो वह अपने पत्रके अधिकारियोंका विश्वासभाजन हो जाता है ; क्रमशः उसपर अधिकाधिक उत्तरदायित्व डाला जायगा और उसका कार्यक्षेत्र विस्तृत होता जायगा। दूसरी ओर वह जनताका तथा उन लोगोंका विश्वासपात्र हो जायगा जिनके सम्पर्कमें आता है और जिनसे समाचार प्राप्त करनेमें सहायता लेता है। विश्वसनीय होना और विश्वास-भाजन बनना पत्रकारका ऐकान्तिक गुण है जिसपर उसकी बहुत कुछ सफ-लता निर्भर है।

रिपोर्टिङ्गकी सफलताके लिए दूसरी बात विवरणको लिखकर उपस्थित करनेकी क्षमता है। इसे हम पुनः कला कहेंगे और विस्तारसे इसकी समीक्षा करना उसी प्रकार कठिन समझते हैं जैसे सौन्दर्यकी व्याख्या करना कठिन समझते हैं। फिर भी कुछ सङ्केत प्रदान करना तो आवश्यक ही है। अपने विवरणको तैयार करते हुए जैसे यथार्थताका ध्यान रखना जरूरी है वैसे ही उसे सप्राण बनानेकी ओर भी ध्यान देना जरूरी है। पत्रकारकी लेखनशैलीकी

विशेषता इसी बातमें है कि किसी भी विषय, व्यक्ति, समस्या या घटनाका वर्णन करते हुए उसमें वह जीवन भर दिया जाय जो पाठकके हृदयमें अपने प्रति रोचकता, आकर्षण, मनोरञ्जन तथा वही अनुभूति जिससे लेखक उत्प्रेरित है, उत्पन्न कर दे। यदि आपकी शैली और विवरणका ढङ्ग नीरस, शुष्क, निर्जीव है, यदि आपकी लिखी बातें बिना प्रयास साधारण पाठककी साधारण बुद्धिमें बैठती नहीं जातीं, यदि वे उसकी कल्पनाशीलताको उत्तेजित नहीं कर देतीं, यदि वे उसे वही अनुभूति नहीं करा देतीं जो अनुभूति लेखकको हो रही है और यदि वे हृदयमें स्पन्दन और औत्सुक्यका प्रजनन नहीं कर देतीं तो आप पत्रोंके स्तम्भोंमे लिखनेके योग्य नहीं हैं। यदि लिखनेका ढङ्ग मनहूस हो गया तो बड़ेसे बड़ा समाचार प्राप्त करने और उसका विवरण प्रकाशित कर देनेका कोई मूल्य नहीं है। अपने पत्रके पृष्ठोंको उज्ज्वल और स्फूर्तिदायक बनाना ही पत्रकारका काम है। कोई पत्र उजड़ी वाटिका-सा रूप ग्रहण करके अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। उसमें तो वह गति और जीवन तथा प्रेरणा होनी चाहिये जो लोगोंके विचारोंको उत्तेजित कर दे, उनकी कल्पनामें जान डाल दे, उन्हें तत्सम्बन्धी बातोंपर विचार और तर्क करनेके लिए बाध्य कर दे तथा पत्रके दूसरे संस्करणको देखनेके लिए लालायित कर दे। यही है पत्रकारके जीवनकी साधना जिसकी सफलताके लिए दत्तचित्त रहना चाहिये।

इसमें सफलता प्राप्त करनेके लिए पत्रकारको अपनी कलाकी कृतिमें अपने व्यक्तित्वको, अपनी अनुभूतिको, अपने ही सजीव अंशको भर देना होगा। भाषापर अच्छा अधिकार हो और सरल ढङ्गसे लिखनेका अभ्यास हो। कठिन और समझमें न आनेवाले शब्दों तथा समस्त पदोंको यथासम्भव प्रयोगमें न लाइये पर अपने भावको प्रबल रूपसे अभिव्यक्त करनेमें समर्थ होइये। यह अभ्याससे सम्भव हो जाता है; पर अभ्यासके लिए लिखनेवालेमें कुछ आधार होना चाहिये। उसका मस्तिष्क भावोंसे भरा हो, शीघ्रता और यथार्थताके साथ बातोंको हृदयङ्गम कर लेनेकी शक्ति हो तथा अपनी कला सीख लेनेका दृढ़ सङ्कल्प तथा अदम्य लालसा हो तो क्रमशः अभ्याससे ये बातें प्राप्त हो जाती। संवाददाता यथासम्भव संवाददाताओं तथा पत्रकारों द्वारा लिखे गये लेखों,

वर्णनात्मक विवरणों, समीक्षात्मक तथा तुलनात्मक ग्रन्थोंको अधिकसे अधिक पढनेकी चेष्टा करे। इसके सिवा अधिकसे अधिक विषयोंका थोड़ा-थोड़ा ज्ञान प्राप्त करनेकी भी चेष्टा करे। साहित्य, इतिहास, राजनीति, अर्थनीतिका इतना ज्ञान कि तद्विषयक बातोंको समझ सके अत्यन्त आवश्यक है। जगत्‌की आधुनिक समस्याओं, प्रश्नों और विचारधाराओंसे परिचित हो। इस प्रकार वह भाव और भाषा दोनोंका सञ्चय करनेमें समर्थ होगा। फिर उसे सजीव, आकर्षक और सरल ढङ्गसे अभिव्यक्त करनेके लिए अभ्यासकी आवश्यकता रह जायगी। यह धीरे-धीरे किया जा सकता है।

संवाददाताके लिए उपर्युक्त ढङ्गसे रिपोर्ट लिखनेमें जहाँ और बातोंको ध्यानमें रखना आवश्यक है वहाँ एक बात और भी याद रखनी चाहिये। रिपोर्टर जो कुछ लिखता है उसमें उसका मुख्य उद्देश्य समाचारको प्रकट करना होता है। पर किसी घटनाका कौनसा अंश समाचारकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है यह समझे बिना उचित प्रकारसे विवरण नहीं लिखा जा सकता। जो अंश समाचार-गुण-प्रधान हो उसपर जोर देना, उसे सामने लाना आवश्यक है। पर इसका पता कैसे चले कि अमुक घटनाका अमुक अंश प्राधान्य रखता है? हम इस प्रश्नका उत्तर यही दे सकते हैं कि यह निर्वाचन और आविष्कार संवाददाताके समाचार-बोध और उसकी सजग चेतनापर ही निर्भर है। उदाहरण लेकर विचार करना सरल होगा। लखनऊमें किसी राजा द्वारा परित्यक्ता रानीपर रातको जब वे अपनी कोठीके बरामदेमें टहल रही थीं किसीने गोली चलायी। रानी घायल हुईं पर प्राण बच गये। आक्रमणकारी निकल भागा। यह समाचार स्वयं सनसनी पैदा कर देनेके लिए पर्याप्त है। पर यदि जागरूक संवाददाता होगा तो संवादके भीतर प्रवेश करनेकी चेष्टा करेगा। 'आक्रमणकारीने गोली चलायी' यह काफी महत्वकी घटना है पर रानी कबसे परित्यक्ता हुईं, राजासे उनकी अनबन क्यों चल रही है, राजाने दूसरा विवाह कर लिया है या नहीं, आदि बातोंका पता लगाकर यदि विवरणमें रख दिया जाय तो क्या वह भविष्यकी ओर और घटनाके रहस्यकी ओर अप्रत्यक्ष सङ्केत नहीं कर देता? लिखते समय आक्रमणवाली घटनाको प्रमुखता अवश्य प्रदान जायगी पर रानीका इतिहास कम प्राधान्य न रखेगा। परिणामतः विशेष

दिशाकी ओर जनताका ध्यान चला जायगा और इस घटनाकी सनसनी न केवल बढ़ जायगी बल्कि लोगोंके हृदयमें रहस्यके प्रति बडी उत्सुकता जाग्रत् हो जायगी।

अब संक्षेपमें स्थूलरूपेण उन थोडेसे किन्तु आवश्यक गुणोंकी चर्चा यहाँ और कर देना आवश्यक है जिनका समावेश सवाददातामें होना चाहिये। समाचारका सङ्कलन करने और उसे व्यक्त करनेमें समर्थ होनेके लिए जिन विशेष बातोंकी आवश्यकता होती है उनका वर्णन कर चुके हैं। पर इनमें सफलता प्राप्त करनेके लिए सवाददातामें कुछ साधारण बातें आवश्यक होती हैं। कहते हैं कि रिपोर्टरको त्रिनेत्र होना चाहिये। उसकी एक आँख अपने कामपर रहे, दूसरी घड़ीपर और तीसरी जनतापर जिसके लिए सवाद-सङ्कलन किया जा रहा है। संवाददाता स्वयं भावुक होते हुए भी भावनामें नहीं वह सकता। किसी भी घटनाको चाहे वह कितनी भी भावमयी अथवा वडी क्यों न हो वह केवल एक ही दृष्टिसे देखता है। दृष्टि यह होती है कि उसमें समाचारत्व कितना है; जनताको, पाठकोंको किस सीमातक उसे जाननेकी उत्सुकता होगी, कहाँतक वह उनमें उत्सुकता उत्पन्न करेगी और पत्रकी ओर आकृष्ट करनेमें किस सीमातक सफल होगी। जनताकी इस रुचि तथा मनोभावपर एक दृष्टि रखना इसी कारण आवश्यक होता है। कोई यह न समझे कि संवाददाताको अभावुक होनेका, निर्लिप्त वननेका परामर्श देना उसे जड वना देना है। वस्तुतः निर्लिप्तता उसका उसी प्रकार गुण है जिस प्रकार डाक्टर या वकीलका गुण होता है। डाक्टर रोगीकी शस्त्र-चिकित्सा करते हुए भावुकताके चक्करमे फँसना कब सहन कर सकता है? वह जानता है कि जीवित शरीरमें उसे छुरा भोंकना है, वह यह भी जानता है कि रोगीकी मृत्यु हो जा सकती है पर उसका कर्तव्य केवल इतना होता है कि वह रोगको देखे और उसके उपयुक्त उपचारकी चिन्ता और चेष्टा करे।

ठीक यही दशा संवाददाताकी समझिये। यह बात नहीं है कि उसपर घटनाओंका प्रभाव नहीं होता, फिर भी उसे अपनी बुद्धि और हृदयकी तुलाको सम रखना होता है। कहीं किसीकी हत्या हो गयी और मृतकके घरवाले दारुण हृदय-विदारक रोदन कर रहे हैं। संवाददाता समाचार लाने पहुँचता है।
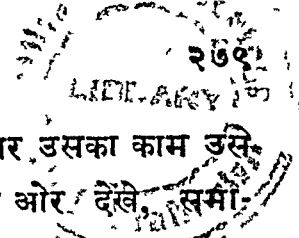
रोनेवालोंके चीत्कारसे भले ही उसका कलेजा पिघल जाय पर उसका काम उसे बाध्य करेगा कि इन दृश्योंकी उपेक्षा करके घटनाके तथ्यकी ओर देखे, समाचारकी दृष्टिसे उसके महत्त्वको तौले। फलत. इस निर्लिप्तताका अभ्यास करना ही होगा। संवाददाताको प्रत्युत्पन्नमति तथा मनको स्थिर रखनेमें भी सफल होना चाहिये। कठिनाइयोंसे न वह घबरा सकता है, न खतरोंसे डर सकता है और न अक्सर अपने सुखकी अवहेलना करनेमें आगापीछा कर सकता है। आवश्यकता पड सकती है कि भीड़में खड़े-खडे भाषणकी रिपोर्ट ले, पानीमे भीगते हुए स्थान-विशेषकी घटनाओंकी जानकारीकी चेष्टा करे। सफल और विख्यात पत्रकारोंकी तो ऐसी कहानियाँ है जो अचम्भेमें डाल देती हैं। 'न्यूयार्कके 'इविनिङ्ग न्यूज' नामक समाचारपत्रके सवाददाता श्री हेराल्ड लिटिलडेल अन्तर्राष्ट्रीय नौका-दौडकी रिपोर्ट लेनेके लिए भेजे गये थे। वे एक वायुयानपर उडते हुए यह दौड़ देख रहे थे। दुर्भाग्यवश वायुयानका इञ्जिन बिगड गया और तीन सहस्र फुट ऊँचेसे वे अतलान्तकके अतल तलमें जलसमाधि ग्रहण करनेके लिए अधोमुख हुए। अब श्री लिटिलडेलकी दशा देखिये। उन्होंने तत्काल अपने पत्रको इस वायुयानके पतनका समाचार बेतारके तारसे देना आरम्भ किया। उन्हे अपने प्राणोकी चिन्ता नहीं हुई पर समाचारपत्रको संवाद देनेकी बात सूझी। फलतः उन्होने समाचार भेज दिया। इसी बीच वे किसी प्रकार बचा लिये गये, पर बच जानेपर भी उनकी प्रसन्नता उनकी पत्रकारीपर हावी न हो सकी। उन्होने चटसे अपना जेबी-केमेरा निकाला और गिरते तथा डूबते हुए वायुयानका चित्र लेना आरम्भ किया। दूसरे दिन सारी घटना सचित्र उनके पत्रमें छप गयी। मनकी इतनी स्थिरता, बुद्धिकी ऐसी दृढता, अकल्पित गहरी सूझ तथा खतरेसे न घबराकर और प्राणोंकी चिन्ता छोडकर भी पत्रकार-प्रवृत्तिमें मस्त होकर समाचार प्राप्त करनेकी उन्मत्ततापर कौन आश्चर्य न करेगा? पर इसी कारण ये लोग अपना नाम भी अमर कर जाते हैं।

फलत· कठिनाइयों, विघ्नों, बाधाओ और खतरोंकी उपेक्षा करने तथा कठोर और विक्षोभकारक परिस्थितियोंके रहते हुए भी शान्तचित्त और ठण्डे दिमागसे काम करते रहनेमे समर्थ होना आवश्यक गुण है। जिनके स्नायुतन्तु

इतने प्रौढ नहीं होते, स्वास्थ्य खराव तथा मन कमजोर होता है वे समय आने-पर चारो खाने चित हो जाते हैं। दुर्वल हृदय किस प्रकार निकम्मा हो जाता है इसका एक उदाहरण लीजिये। एक संवाददाता महाशय थे जिन्हें एक वार एक स्थानपर फूट पडे भयावने हिन्दू-मुसलिम दङ्गेकी रिपोर्ट संग्रह करनेका काम सौंपा गया। उन्होंने काम तो उठा लिया पर चारोओर लूट, आग, हत्या, आघात, खून और विनाश तथा उन्मत्त हुई जनताकी दैत्यलीला देखते-देखते वे इस प्रकार घवरा गये कि उनका मस्तिष्क विकृत हो गया। सचमुच महीनों-तक वे विक्षिप्तावस्थामें पडे रहे। ऐसी अनेक घटनाओंका अनुभव पत्रकार-जीवनमे होता रहा है। धीर हृदय प्राप्त करनेकी चेष्टा करना आवश्यक है अन्यथा मनोभावोंकी गहरी उथल पुथल काम करना असम्भव कर दे सक्ती है। पत्रकार निर्लिप्त वने, एक प्रकारका मुनि हो जाय, चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेमें समर्थ हो।

व्यवहारकुशल होना, अधिकसे अधिक लोगोंसे मित्रता प्राप्त कर लेना, यथासम्भव लोकप्रिय होना, उत्तेजित किये जानेपर भी मनको वेकावू न होने देना, क्रोध और प्रलोभनको सिर उठानेका मौका भी न देना, आदि ऐसी वाते हैं जिनके विना कोई पत्रकार सफलतापूर्वक संवाददाताका काम नहीं कर सकता। उसे अपने व्यवहारसे यह प्रकट करना चाहिये कि वह किसीका अविश्वास नहीं करता; पर मनमें निश्चित रूपसे यह सिद्धान्त वना लेना चाहिये कि किसी वातपर केवल किसीके कह देनेसे वह तवतक विश्वास न करेगा जवतक स्वयं अपनी छानवीनसे उसकी वास्तविकताके सम्वन्धमें पूरा-पूरा पता न पा जायगा। घटनाओंको यथासम्भव संक्षेपमें चित्रित करनेका भी अच्छा अभ्यास होना चाहिये। पत्रमे स्थान निर्धारित होता है और प्रकाशनीय वातोंकी कमी नहीं रहती; फलतः सारी वातें पूर्ण रूपसे संक्षेपमे लिखनेवाला संवाददाता आदरका पात्र होता है। वहुधा जिलोंसे सवाद भेजनेवाले सवाद-दाता एक-एक घटनाका विवरण विस्तृत रूपसे भेजते हैं। वे तो जैसे यह समझते ही नहीं कि उनका कस्वा या जिला ही विश्व नहीं है और न केवल वहाँके संवाद छापनेके लिए समाचारपत्र प्रकाशित होता है। परिणाम यह है कि प्रधान उपसम्पादक अधिकतर लम्वे विवरणोंको 'अस्वीकृत'की

फाइलके हवाले कर देता है। लिखते हुए इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि अक्षर स्पष्ट हो, स्लिपके एक ओर लिखा जाय और लाइनोंके बीच इतना स्थान छोड दिया जाय कि सम्पादकके लिए आवश्यक संशोधन करनेका स्थान मिल सके।

संवाददाताओंको दो विषयोंका ज्ञान और हो तो उनकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। एक तो 'शार्टहैण्ड' तथा टाइपराइटिङ्गका और दूसरा फोटो उतारनेका। आजकल इन दोनोकी कितनी आवश्यकता होती है इसपर अधिक लिखना व्यर्थ है। चित्र तो विशेष रूपसे पत्रोके प्राण हो रहे हैं। इस कलाको सीख लेना अपने कार्यकी उपयोगिताको कई गुना बढ़ा देना है। 'शार्टहैण्ड'की आवश्यकता भी कम नहीं है यद्यपि उसे अनिवार्य नहीं कह सक्ते। व्याख्यान आदिकी रिपोर्टिङ्गमे 'शार्टहैण्ड' बहुत सहायक होता है। पर शार्टहैण्ड जानता हो या न जानता हो संवाददाताओंकी स्मृति और धारणाकी शक्ति जाग्रत् होनी ही चाहिये। अधिकतर बातोंका विवरण उसे अपनी स्मृतिके भरोसे ही लिखना पडता है। किससे कब मिलना है, कहाँ जाना है, कौन-कौनसे उत्सव या समारोह कब हो रहे है जिनकी रिपोर्ट लेना है आदि बातोंकी स्मृति उसे होनी चाहिये। अवश्य ही इन सब बातोंको अपनी डायरीमें भी नोट कर रखना अच्छा है। ऐसे लोगोके पते जिनसे काममें सहायता मिल सकती हो, अपनी डायरीमे लिख छोडना भी वाञ्छनीय होता है पर यह सब करते हुए भी अपनी स्मृतिको जगाते रहनेका अभ्यास करना ही चाहिये। संवाददाताका काम बिना इसके नहीं चल सकता क्योकि सब बातें डायरीमें न नोट की जाती है और न सदा इसका अवसर ही मिलता है।

आजकल संवाददाताओका एक और काम होता है जिसे पत्रकारीके क्षेत्रमें बडा महत्त्व प्राप्त हो गया है। यह है भेंट और वार्तालाप करना, जिसे पत्रकारोकी भाषामें 'इण्टरव्यू' कहते हैं। रिपोर्टिङ्गके क्षेत्रमें भेंट-मुलाकात करनेका काम और उसका विवरण देना अत्यधिक कठिन समझा जाता है। अच्छे और विख्यात पत्रकारोंका तो यहाँतक कहना है कि इस कार्यमे सफलता प्राप्त वही करता है जिसमें इसे करनेके लिए कुछ आवश्यक जन्मजात गुण होते हैं। पर थोड़ा-बहुत नैसर्गिक गुण तो सभी कामोंको अच्छी तरहसे करनेके लिए

होना ही चाहिये पर इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई साधारण किन्तु सचेष्ट व्यक्ति इसे करनेकी योग्यता प्राप्त ही नहीं कर सकता। कुछ आवश्यक बातें हैं जिन्हे हृदयङ्गम कर लेनेपर तथा तदनुकूल व्यवहार करके अभ्यास कर लेनेपर इस दिशामें कोई भी संवाददाता कामचलाऊ सफलता प्राप्त कर सकता है। भेंट और वार्तालाप करनेकी कलामें प्रवीण होनेके लिए नवागत रिपोर्टरोंको आरम्भसे ही अभ्यास करना चाहिये। वस्तुतः कठिनाई इसलिए होती है और सवाददाता असफल भी इस कारण होता है कि वह आरम्भमें ही किसी महान् व्यक्तिसे भेंट करनेके लिए भेज दिया जाता है। उस 'महान्'के व्यक्तित्वका रोब बेचारे नौसिखुए पत्रकारपर पहलेसे ही छाया रहता है। सम्मुख पहुँचनेपर बडेके बडप्पनकी भूमिका उसकी रही-सही शक्ति और चेतनाको भी लुप्त कर देती है।

प्रश्न करनेकी हिम्मत तो दूर रही उसके मुखसे बोली भी नहीं निकल पाती। परेशानीमें पडकर वह उन प्रश्नोंकी तालिका और क्रमको भूल जाता है जिसे लेकर भेंट करने जाता है। भेंट मुलाकातको एक प्रकारकी 'जिरह' समझिये। भेद केवल यह होता है कि वकील या बैरिस्टर जहाँ आपको अपने प्रश्नका उत्तर देनेके लिए बाध्य कर सकता है वहाँ पत्रकार ऐसा नहीं कर सकता। इतनी बातको छोड़कर भेंट करनेके लिए गया हुआ पत्रकार वास्तवमें जिरह करनेके लिए ही तैयार होकर जाता है। भेंट और वार्तालाप करनेका लक्ष्य क्या होता है? जिससे आप मिलने जाते हैं उससे कुछ खास बातों या प्रश्नोंके सम्बन्धमें उसके विचार, तत्सम्बन्धी उसका मत जाननेके लिए जाते हैं। आप चेष्टा करते हैं उसके हृदयकी गूढ़ बातोंको निकाल लेनेकी। यह तभी सम्भव है जब आप उस व्यक्तिके रोबसे जिससे वार्तालाप करने गये हैं पहले ही न दब जायँ। बडेसे बडेके बडप्पनको अपनेपर प्रभाव स्थापित न करने देना, अपने पद और मर्यादाको अक्षुण्ण बनाये रखना आवश्यक है। अपनेमें इस शक्तिको जाग्रत् करनेके लिए और किसीका रोब गालिब न होने देनेके लिए नव-नियुक्त रिपोर्टरको आरम्भसे ही आवश्यक अभ्यास करनेमें संलग्न होना चाहिये। अभ्यास इस प्रकार किया जा सकता है कि नगरकी विभिन्न संस्थाओं-के अधिकारियों, सार्वजनिक नेताओं, विविध विषयोंके पण्डितों, विशेषज्ञों या [illegible] नाम नोट कर ले। उनमेंसे जिस किसीसे पहले मिलना हो उसके

विषयके अनुकूल कुछ प्रश्नोंकी रचना करले। पूर्वसे ही निश्चित करले कि किस खास बातका खुलासा उसके द्वारा कराना अपना लक्ष्य है। इस प्रकार तैयार होकर पारी-पारीसे लोगोसे भेंट कर अपने वार्तालापकी रिपोर्ट तैयार करे। क्रमशः आप अभ्यस्त हो जायँगे और समय आनेपर किसी भी महान् व्यक्तिका सामना करनेमे समर्थ होगे। खेदकी बात है कि इस देशके पत्र, चाहे वे अंग्रेजीके हो या देशी भाषाके, इस ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। वे अपने रिपोर्टरोंको उपर्युक्त प्रकारसे भेंट करनेके लिए न प्रोत्साहन देते है और न इसकी आवश्यकता ही समझते हैं। जरूरत इस बातको है कि इस ओर विशेष ध्यान दिया जाय और भेंट-मुलाकातकी रिपोर्टोंको पत्रकी एक विशेषता बनाया जाय। इंग्लैण्ड और अमेरिकाके पत्र इस मामलेमें बहुत बढे हुए हैं और उनके पत्रकार भी भेंट करनेके कार्यमें दक्ष और प्रवीण हैं। गुन्थर, वेबमिलर, लुइफिशर, लियान्स आदि ऐसे ही जगत्प्रसिद्ध संवाददाता हैं जिन्होंने स्टालिन और हिटलर, मुसोलिनी और रजाशाह, गान्धी और च्यांगकाई-शेक ऐसे लोगोंसे भेंट और वार्तालाप करके पत्रकारीके क्षेत्रमें अपनी कहानीकी रचना कर डाली है। अस्तु—

नया रिपोर्टर धीरे-धीरे उपर्युक्त ढङ्गसे अभ्यास करके न केवल अपना ज्ञान बढायेगा बल्कि इतना ढीठ और पारङ्गत हो जायगा कि बड़ेसे बड़े मामलोंके लिए बडेसे बड़े लोगोंसे भेंट करनेमें सङ्कोच न करेगा। इस सम्बन्धमें कुछ और बातोंकी ओर ध्यान आकृष्ट कर देना उचित है। आप जिन लोगोंसे वार्तालाप करना चाहते है उनमे प्रायः तीन प्रकारके लोग होते है। एक तो वे जो बहुत बोलते है, दूसरे वे जो बहुत कम बोलते हैं और तीसरे प्रकारके लोग वे होते है जो बिलकुल मौन हो रहना पसन्द करते हैं। पत्रकारको तीनों प्रकारके लोगोसे काम लेनेके लिए तत्पर होकर चेष्टा करनी पडती है। कार्यकी कठिनता कल्पनाके क्षेत्रसे बाहर नहीं है। कोई असङ्गत और अनर्गल प्रलाप भी करता है पर आप उसे रोक नहीं सकते। उसके वाग्जालमेंसे अपने मतलबकी बातें निकाल लेना आपकी सूझ और बुद्धिपर निर्भर है। दूसरे वे हैं जो बार-बार उत्तेजित किये जानेपर भी मौन रहनेमे सफल होते है। उनसे अपनी चातुरी और व्यवहारकुशलतासे आपको अपना काम निकालना है। इन कठिनाइयोंके कारण ही वार्तालापमें सफल पत्रकार अपने क्षेत्रमें अधिक प्रशंसा तथा आदरके

पात्र होते हैं। जो पत्रकार सफलता चाहता हो वह स्वयं किसी भी बातसे—किसीकी वाचालता अथवा किसीके मौनसे—कदापि क्षुब्ध न हो। वह धैर्य और समझदारीके साथ बोलनेवालेके प्रत्येक शब्द, उसकी भावभङ्गिमा, उसकी मुख-मुद्रा और उसके विचारोंको बड़ी सावधानीसे हृदयङ्गम करता जाय। अच्छे संवाददाता भेंट करते समय अपने प्रश्नोंके उत्तरको कापीमें नोट करनेकी चेष्टा नहीं करते। इससे वह व्यक्ति जिससे आप जिरह कर रहे हैं अकसर भड़क उठता है और सम्भव है मौन ही धारण करले। फलतः एकाग्र मनसे तमाम बातोंको समझने और चित्तमें बैठाते जानेका यत्न करते जाइये। सम्भव हो तो उसके कुछ जोरदार वाक्योंको शब्द-प्रतिशब्द याद कर लीजिये और रिपोर्ट लिखते हुए उनका प्रयोग कीजिये। जो मौन रहनेकी चेष्टा करते हैं उनके साथ अधिक सावधानी बरतनेकी आवश्यकता होती है; उनके रङ्ग-रूपको देखकर यदि उनके स्वभावका अनुमान कर सकते हों तो उसका भी आश्रय ग्रहण कीजिये। फिर आवश्यकतानुसार चाटुकारिता करके, उनके अहम्-की भावनाका अध्ययन करके, उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करके, उनकी भावनाको उत्तेजित करके अपना काम निकालनेकी चेष्टा करनी होती है। धीरे-धीरे ये बातें अभ्याससे ग्रहण की जा सकती हैं। अच्छे पत्रकारोंसे बड़े-बड़े बुद्धिमान और प्रत्युत्पन्नमति लोगोंको भी घबराते देखा गया है।

एक बातका ध्यान और रखना चाहिये। पत्रकार जिससे भेंट या वार्तालाप करता है उससे एक प्रकारसे व्यक्तिगत रूपसे ही बातचीत होती है। अतः अच्छा यह है कि वार्तालापकी रिपोर्ट तैयार करके जिससे भेंट की गयी है उसे दिखा ली जाय और उसकी स्वीकृति प्राप्त करके तब प्रकाशित की जाय। भेंट करनेवाले सवाददातामे लिखनेकी शक्ति तो होनी ही चाहिये पर उसके सिवा उसका ज्ञान व्यापक हो, उसे व्यक्ति और प्रश्नोंकी अच्छी जानकारी हो, मिलन-सार हो, व्यवहारकुशल हो, विवेकी तथा तीक्ष्णबुद्धि हो। भेंट करनेके लिए साधारणतः प्रसिद्ध व्यक्ति चुने जाते हैं। भारतमे तो किसी प्रसिद्ध राज-नीतिक नेता अथवा सार्वजनिक व्यक्तिसे ही भेंट-मुलाकात करनेकी प्रथा-सी है पर यूरोपमे इसके लिए तरह-तरहके प्रसिद्ध लोग चुने जाते है। राजनीतिक नेता और सरकारी विधाताके सिवा किसी बडे वैज्ञानिक, विद्वान्, कवि, कलाकार,

लेखक, अभिनेता या अभिनेत्री तथा कभी-कभी भयानक अपराधोंके विख्यात अपराधियोंतकसे भेंट की जाती है। बातचीतकी रिपोर्ट लिखनेका ढङ्ग भी दो प्रकारका होता है: एक तो प्रश्नोत्तरके रूपमें, दूसरे लेखके रूपमें। साधारण संवादसंग्रहकी अपेक्षा यह कार्य कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है अतः विदेशी पत्र इसके लिए प्रसिद्ध तथा उत्तरदायी पत्रकारों या संवाददाताओंको ही नियुक्त करते है। किसीसे वर्तालाप करके उसकी रिपोर्ट लानेके लिए वे पत्र पर्याप्त धन भी व्यय करते है। भारतीय पत्रोंको इस दिशामें भी बहुत कुछ करना है। अबतक वे इस प्रकारके विवरणोंका महत्त्व अनुभव नहीं कर सके हैं। भारतीय पत्रकार-कलाको अपना स्तर ऊँचा करनेके लिए इधर ध्यान देना अनिवार्य है।

अब यह अध्याय समाप्त हो रहा है पर इसे समाप्त करते हुए हम उन लोगोंसे कुछ निवेदन कर देना चाहते है जो रिपोर्टर या संवाददाताके उत्तरदायित्वका वहन करते हैं या करना चाहते हैं। प्रत्येक संवाददाताको स्मरण रखना चाहिये कि अपने पत्रकी सजीव मूर्तिके रूपमें वही सबसे अधिक जनताके सम्मुख और निकट रहता है। यदि पत्रको जनताका आदरणीय बनाना है, उसका विश्वासपात्र होना है तथा अपनी आदर्शवादितासे जन-जीवनको उज्जीवित करना है तो आवश्यक है कि रिपोर्टर या संवाददाता अपने चरित्र, अपनी आदर्शवादिता, अपने उत्तरदायित्वकी रक्षा समुचित रूपसे करनेमें सदा सचेष्ट रहे। वह अपने पत्रका प्रतिनिधि है जिसके गौरव, सुयश और सुनामकी रक्षाका भार उसीपर है। पत्रकी नीतिको वह सदा अपने सामने रखे, उसकी सेवा करने और उसकी मर्यादा तथा पदको बनाये रखनेमें कोई बात उठा न रखे। उस मर्यादा और पदकी रक्षा तभी हो सकेगी जब वह अपने चरित्रको उज्ज्वल रखेगा तथा अपने पेशेको तप समझकर आवश्यक हो तो जीवन भी उत्सर्ग कर देनेके लिए तैयार रहेगा। उसे अपने स्वाभिमानकी रक्षा भी करनी चाहिये। सत्यकी पूजामें एकान्त भावसे निरत रहनेका दृढ सङ्कल्प कर लेना चाहिये। दुनियाका कोई भी भय, कोई भी लोभ या शक्ति उसे पथसे विरत न करने पाये। इसीमें उसके स्वाभिमानकी रक्षा और उसके पत्रका गौरव है। अमेरिकन पत्रकार वेबमिलर एक बार एक सैनिक प्रदर्शन देखने और उसकी

रिपोर्ट लेने गये। वे टहल रहे थे कि सामनेसे एक बड़ा जेनरल ठाटबाटसे आते दिखाई पड़े। वेबमिलरके पास पहुँचकर उसने उनको कदाचित अपमानित करनेकी दृष्टिसे अथवा कदाचित् सैनिकोंके सामने अपना रोब जमानेके लिए तड़पकर कहा 'तुम नहीं जानते कि मैं जेनरल हूँ। सलाम करो'।

वेबमिलर धकसे हो गये। उन्होंने देखा कि इसने तो धौंस जमा दी पर उनकी हाजिरजवाबीने साथ दिया। वे बोल उठे 'तुम नहीं जानते कि मैं पत्रकार हूँ। पत्रकार सलाम नहीं किया करता केवल उसका उत्तर देता है। अब जेनरलके स्तब्ध हो जानेकी पारी थी। वह जवाब सुनकर खीझ उठा, पर अब करे क्या? हतप्रभ जेनरल अपने ही सैनिकोंके सामने अपनी इज्जत बचानेके लिए तत्काल सीधे खड़ा हो गया और होशियारकी मुद्रामें जिसमें सैनिक सलाम करते हैं वेबमिलरको सलाम करते हुए जोरसे कहा 'अच्छा, अब तो सलाम करो'। वेबमिलरने उसका उत्तर सलाममें ही दे दिया। पत्रकारोंको सदा अपनी मर्यादा, अपने स्वाभिमानकी रक्षा करनी होगी, हठधर्मी और मिथ्याभिमानसे नहीं बल्कि अपने चरित्रकी उज्ज्वलता और आदर्शवादितासे। अन्तमें संवाददाता सदा स्मरण रखे कि समाचार-बोध उसका धर्म है और गहरी तथा अभिनव सूझ ही है उसका ईश्वर।

लेखन और लेखक

पत्रकार प्रमुख रूपसे लेखनीका व्यवसाय करता है। 'व्यवसाय' शब्द अच्छा नहीं है यह जानते हुए भी हमने उसका प्रयोग किया है। पत्रकार लेखनीके द्वारा लोकसेवा करता है, आत्मतुष्टि लाभ करता है पर इसके साथ-साथ अपनी जीविकाका उपार्जन भी करता है। इसी अर्थमें हमने व्यवसाय शब्दका प्रयोग किया है। एक चित्रकार अपनी आन्तरिक अनुभूतियोंको चित्रित करनेके लिए तूलिकाका आश्रय ग्रहण करता है। उसीके द्वारा वह अपनी भावना, कल्पना तथा अनुभूति और विचारको साकार रूप प्रदान करता है। अपनी कलाचातुरी-से निर्मित कृतिका आश्रय ग्रहण करके वह दर्शकोंके हृदयमें वही भाव, वही विचार, वही कल्पना और वही अनुभूति उत्पन्न करनेकी चेष्टा करता है जो उसके हृदय और मस्तिष्कमें उपजती है। जिस सीमातक चित्रकार दर्शकोंको स्व हृदय-गत अनुभूतियोंका, अपने अन्तर्लोकका अनुभव और बोध करानेमें समर्थ होता है उस सीमातक वह सफल माना जाता है। पत्रकार भी अपनी लेखनीसे वही करता है जो चित्रकार अपनी तूलिकासे। पत्रकार जगत् और जीवनके प्रवाहका साक्षात्कार करता है। इस दर्शनके फल-स्वरूप उसके हृदय और मस्तिष्कमें न जाने कितने प्रकारके भावों, अनुभूतियों और विचारोंका जन्म होता है। वह थोड़ी देरके लिए अपने अहम्‌की पृथक् सत्ताको विस्मृत कर देता है, अपने व्यक्तिगत लाभालाभकी भावनासे मुक्त हो जाता है और अपनेको जीवनकी वास्तविक स्थिति तथा जगत्‌के वास्तविक विराट् स्वरूपकी व्यापक सीमामें लय कर देता है।

इस अवस्थामें उसके हृदयकी अनुभूतियाँ जिस भावावेशकी सृष्टि कर जाती हैं वह उसकी अभिव्यक्ति लेखनीके द्वारा करता है। वे जिन कल्प-नाओंका उद्भव कर जाती हैं उन्हें वह लेखनीके द्वारा मूर्त रूप प्रदान करता है। वे जिन विचारोंका प्रजनन कर जाती हैं उन्हें वह लेखनीके द्वारा प्रवाहित करता है। पत्रकारकी सारी कलाकी सफलता इसी बातपर अवलम्बित है कि वह

सफलताके साथ अपनेको, अपने अन्तर्भूत अमूर्त भावोंको लेखनीके द्वारा आयोजित शब्दों तथा वाक्योंमें इस प्रकार भरदे कि पत्रोंकी पाठक-जनताका हृदय उसीका अनुभव करने लगे जिसकी अनुभूति पत्रकारको होती रही है। पत्रकारीके क्षेत्रमें प्रत्येकके लिए इस प्रकार अनुभूत्यभिव्यक्ति तथा भावाभिव्यञ्जनमें समर्थ होना आवश्यक है। सम्पादक हो या अग्रलेख-लेखक, सहायक सम्पादक हो या उपसम्पादक, रिपोर्टर हो या सवाददाता अथवा स्वतन्त्र पत्रकार प्रत्येकके लिए इस बातकी नितान्त आवश्यकता है कि वह अपनेको लेखनीके द्वारा व्यक्त करनेमें समर्थ हो। भले ही उसमें घटनाओंको समझने और उनके मूलतक पहुँचनेकी शक्ति भरी पड़ी हो, कल्पनाके द्वारा भविष्यके आवरणका भेदन करके दूरतक देखनेकी क्षमता प्रभूत मात्रामें हो, और जगत्की उथल-पुथलके पीछे प्रवाहित धाराका साक्षात्कार करनेमे भी वह सफल हो पर उसकी ये समस्त विशेषताएँ उसे तबतक पत्रकार नहीं बना सकतीं जबतक वह तज्जन्य भावों और अनुभूतियोंको लेखनी द्वारा लिपिबद्ध करके सामने उपस्थित नहीं करता।

पत्रकारको पदे-पदे लिखनेकी आवश्यकता पड़ती है पर लेखनकी कला वह विभूति है जो सबको समान रूपसे प्राप्त नहीं होती। जन्मजात लेखकमें विशेष प्रतिभा होती है जो कदाचित् प्रकृतिके वरदानके रूपमें प्राप्त हो जाती है। उद्भट विद्वानों, प्रकाण्ड पण्डितों तथा तीक्ष्ण-बुद्धि विचारकोंमें भी ऐसे भाग्यवान कम होते हैं जो अपने ज्ञानके ही अनुपातमें लेखकके गुणोंसे भी परिपूर्ण हों। जिसने कभी लेखनी उठायी होगी उसे अनुभव होगा कि सीधी और सरल तथा स्पष्ट भाषामे किसी साधारण घटनाका समुचित, यथार्थ तथा सम्बद्ध वर्णनमात्र कर देना भी कितना कठिन हुआ करता है। साधारण व्यक्तिको तो जाने दीजिये, अच्छे विद्वान् और पण्डित भी बहुधा इसमें सफल नहीं होते। पेरिसमे एक बार प्रसिद्ध और आदरणीय वैज्ञानिकोंकी एक सभा हुई। सभामें किसी विवाद-ग्रस्त प्रश्नपर दो वैज्ञानिकोमे ऐसा घोर मतभेद उपस्थित हो गया कि दोनोंमें गहरी अनबनकी सम्भावना उत्पन्न हो गयी। स्थिति गम्भीर होते देख कर सभाके अध्यक्षने सभा विसर्जित कर दी पर उसने समस्त उपस्थित विद्वान् विज्ञानविदोंसे प्रार्थना की कि उनमेंसे प्रत्येक घटनाका संक्षिप्त विवरण तैयार करके उसे दे दे। उपस्थित विद्वानोंमें कोई मनोविज्ञानका पण्डित था, कोई

चिकित्साशास्त्रका और कोई समाजशास्त्रका। पचास पण्डितोंने अलग-अलग अपना विवरण लिखा। कहते हैं कि तेरह सज्जनोंद्वारा लिखित विवरणोंमें पचास प्रतिशत गलतियाँ थीं। चौतीसने अपनी रिपोर्टमें पन्द्रह प्रतिशत बातें अपनी ओरसे जोड दी थीं और केवल एकका वर्णन ऐसा था जिसमें बीस प्रतिशतसे कम भूलें मिलीं। जब वैज्ञानिक विद्वानोंकी यह दशा है तो साधारण लोगोंकी स्थितिके सम्बन्धमें कल्पना कर लेना सहज ही है। फिर पत्रकार बनना और लेखनीका सफल आराधक होना कितना कठिन कार्य होगा इसपर अधिक प्रकाश डालनेकी आवश्यकता नहीं है।

जिन्हें इस क्षेत्रमें पदार्पण करना है वे उपर्युक्त कठिन कार्यभारको उठानेका दृढ सङ्कल्प करनेके अनन्तर ही इधर आनेका कष्ट करें। साधारण रूपसे भी सफल पत्रकार और लेखक होनेके लिए गहरी साधना और एकान्त तपस्या आवश्यक होती है जिसके बिना लेखनीकी प्रसन्नता प्राप्त करना असम्भव है। हम उन लोगोंके सम्बन्धमें यह बात नहीं कह रहे हैं जो जन्मसे ही उज्ज्वल प्रतिभाकी आभा लेकर धरातलपर अवतीर्ण होते है। मानी हुई बात है कि उन लेखकोंकी एक श्रेणी ही है जिनके रक्तमें कला ओतप्रोत है। जो स्वभावतः ओजस्विनी सजीव कल्पनासे अभिभूत हैं, जिनकी हृत्तन्त्री प्रकृत्या झंकृत हो चुकी है और जिनके श्वास-प्रश्वासमें भाव-लहरी लहराया करती है उन सिद्ध कलाकारोंके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी हिमाकत कोई नहीं कर सकता। पर साहित्य और कलाके क्षेत्रकी ऐसी वन्दनीय विभूतियोंकी संख्या कितनी है? अँगुलियोंपर गिन लेने लायक इन महान् व्यक्तित्वोंको जाने दीजिये। हम तो उन साधारण कोटिके लोगोंके सम्बन्धमें कहना चाहते हैं जिनकी संख्या बड़ी है और जो रुचि तथा भावुकताके वशीभूत होकर इस दिशामें अग्रसर होते हैं। जैसे साहित्य और कलाके क्षेत्रमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है वैसे ही पत्रकारीका प्राङ्गण भी उनसे भरा पड़ा है। वे भावुक और महत्त्वाकांक्षी युवक जिनमें पर्याप्त साधारण ज्ञान वर्तमान है, जो अपने भावोंको साधारण रूपसे व्यक्त करनेकी क्षमता रखते हैं, जिनपर आदर्शवादिताकी छाया पड गयी है, जो लोकाराधनकी भावनासे भावित हैं और जिनका हृदय संवेदन तथा सहानुभूतिकी शक्ति रखता है पत्रकारीकी ओर आकृष्ट हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

ऐसे लोगोंके लिए लेखनीके प्रीत्यर्थ कठिन साधना करनेका निश्चय कर लेना आवश्यक है। लेखनी उठाते ही उसे अपने मनके अनुकूल नर्तन करनेके लिए बाध्य कर देनेवालोंको भले ही लेखनशास्त्रके ज्ञानकी आवश्यकता न हो पर साधारण वर्गके लोग तभी सफलतापूर्वक अपनेको व्यक्त करनेमें समर्थ हो सकते हैं जब वर्षोंतक लगनके साथ वे इस दिशामें यत्न करें। शनैः शनैः अभ्यास करते रहनेपर एक समय आ सकता है जब साधारण व्यक्ति भी यदि अलौकिक नहीं तो सफल लेखक या पत्रकार हो ही सकता है। ऐसे सहयोगियोंके सहायतार्थ सक्षेपमे कुछ आवश्यक बातोंकी चर्चा यहाँ कर देना अनुचित न होगा। हम जानते हैं कि किसीकी सहायतासे कोई लेखक नहीं बनाया जा सकता। विश्वविद्यालयोंकी उपाधियाँ, अथवा पत्रकार-कलाकी शिक्षा देनेवाले पाठक्रमको पढाकर कोई चाहे तो किसीमें वह स्फूर्ति, वह उत्प्रेरणा और वह शक्ति उत्पन्न नहीं कर सकता जो किसीको लेखक बनानेका कारण होती है। कोई शास्त्रोंका हजार अध्ययन करे, भाषाविज्ञानकी गुत्थियोंको भली-भाँति समझ ले फिर भी वह तबतक लेखक नही हो सकता जबतक उसके अन्तर्जगत्मे वह आलोक व्याप्त न हो जो उसकी अन्तःप्रेरणाका कारण होता है।

फलत: अलौकिक प्रतिभाविहीन साधारण साहित्यकारसे भी इतना नैसर्गिक गुण तो होना ही चाहिये कि वह अपने अन्तरतम प्रदेशमे पैठकर न केवल उन अनुभूतियोंका रसास्वादन कर सकता हो जिन्हे उसके हृदयमें दृश्यादृश्य जगत्की सत्ता उपजाया करती है अपितु उन्हे अभिव्यक्त करनेमें भी समर्थ हो। जिसमें यह योग्यता होगी वही सफल लेखक हो सकेगा। मनुष्य-जीवनमे अपनेको अभिव्यक्त करनेकी लालसा माताके गर्भमे ही अवतरित हो जाती है। उसकी सबसे महती विशिष्टता इसी बातमें है कि प्रकृतिने उसे वाणीके रूपमे अलौकिक विभूति प्रदान की है जिसके द्वारा वह अपनेको अभि-व्यक्त करनेमे समर्थ होता है। उसका यही विशेष गुण उसे मानवेतर समस्त प्राणिजगत्से पृथक् करता है। प्रकृतिको भी कदाचित् यह अभीप्सित रहा है कि मनुष्य अपनेको व्यक्त करे। यदि उसकी यह इच्छा न होती तो मनुष्यके जीवनको अनुभूति, कल्पना तथा भावनाकी इतनी शक्ति क्यो प्रदान की जाती?

साधारण पशुमें भी अनुभूति होती है पर अपेक्षाकृत उसकी सीमा जितनी सङ्कुचित है कदाचित् अभिव्यक्तिकी लालसा भी उसी अनुपातमें कम है। फलतः उसे वाणीका वह वरदान प्राप्त नहीं है जो मनुष्यको प्रदान किया गया है। मनुष्य दूसरेके दुःख-सुखकी अनुभूति स्वयं करता है, सत्य, सौन्दर्य और शिवके स्वरूपकी आभासे स्पन्दित हो उठता है और तज्जन्य कल्पनाओंके आधारपर जिन आदर्शोंकी स्थापना करता है उन्हींकी तुला बनाकर जीवनका अङ्कन करता है। अनुभूतिके इस चरम परिस्फुटित-विकसित रूपके फलस्वरूप वह अपनेको व्यक्त करनेके लिए आकुल रहता है क्योंकि न केवल अपना किन्तु दूसरोंका दु.ख-सुख भी उसे दुखी या सुखी बनानेमें समर्थ होता है। मानवताका विकास मानवकी विकसित हृदयानुभूति, कल्पना, भावना और विवेककी जागर्ति और सचेष्टताका ही परिणाम है। उसका यह अमूर्त अन्तर्लोक अपने आलोकसे पथप्रदर्शन करता हुआ उसे विकासके प्रशस्त पथपर प्रतिक्षण आगे बढ़ाता गया है। जीवनकी इस गतिने हमें, हमारे समाजको, इस मानवाकीर्ण धरतीको आज वहाँ पहुँचाया है जहाँ हम अपनेको और उसे पहुँचा हुआ पाते हैं। अपनी आत्मानुभूति, आनन्दानुभूति या दुःखानुभूतिको व्यक्त करनेकी आकुलता और अभिव्यक्तियोंमें शान्ति, सन्तोष तथा रसकी प्राप्ति मनुष्यके सजात गुण है। इसी कारण वाणी और भाषाके द्वारा वह स्वाभिव्यक्तिकी लालसाकी पूर्ति करता रहा है पर उतनेसे उसे सन्तोष न हुआ। उस क्षण-स्थायी सुखकी आयुको कुछ अधिक स्थायित्व प्रदान करनेके लिए उसने लिपि.ो जन्म दिया और आज साहित्यके रूपमें उसके अन्तर्जगत्का वह अभिव्यञ्जन सजीव अभिव्यक्ति और साकार रूप ग्रहण करके हमारे सामने उपस्थित है।

फलतः जिसमें अपनेको व्यक्त करनेकी आकुल चाह होगी, जिसकी अनुभूति-शक्ति जाग्रत् होगी और जो अपनी अभिव्यक्तिमें रसका अनुभव करेगा वह चेष्टा करके अपने लक्ष्यमें अवश्य सफल हो जायगा। जैसे किसी भी कवि, साहित्यकार या कलाकारके लिए उपर्युक्त नैसर्गिक गुण आवश्यक हैं वैसे ही कोई भी तबतक पत्रकार न हो सकेगा जबतक उसकी उपर्युक्त भावनाएँ जाग्रत् न हों। पत्रकार जगत्का सूक्ष्मद्रष्टा होनेके सिवा दूसरा है ही क्या ?

लौकिक और अलौकिक जगत् मानव जीवनको जिस प्रकार प्रभावित करते रहते हैं और जिस प्रकार मानव उन्हे प्रभावित करता रहता है उनका साक्षात्कार और चित्रण करना पत्रकारका मुख्य कार्य होता है। जीवन और जगत्का यह पारस्परिक घात-प्रतिघात और दोनोंका वास्तविक रूप उसके अन्तस्तलमें जिन अनुभूतियों, कल्पनाओं, विचारों और भावनाओं तथा आदर्शोंका सर्जन करते हैं उन्हे वह अभिव्यक्त कर देता है और अभिव्यक्तिकी वह धारा ही पत्रोंके स्तम्भोंमें प्रवाहित होती रहती है। पत्र वे दर्पण हैं जिनमें पत्रकार जगत्के स्वरूपको प्रतिबिम्बित कर देता है; पत्र वे पट हैं जिनपर अपनी लेखनीके द्वारा वह संसारको चित्रित कर देता है।

पर यहाँपर प्रश्न किया जा सकता है कि पत्रकारका या किसी भी लेखकका उद्देश्य क्या होता है? वह क्यों लिखता है? पत्रकार यदि जगत्-सम्बन्धी अपनी अनुभूतियोंको व्यक्त करता है तो उसमे उसका प्रयोजन क्या होता है? इस प्रश्नका उत्तर उपर्युक्त वाक्योंमें ही मिल गया होगा। पहली वात तो यही है कि मनुष्य प्रकृत्या अपनेको अभिव्यक्त करना चाहता है। उसे अपने इस क्रिया-कलापमें आनन्दकी अनुभूति होती है। फिर जिस व्यक्तिका उत्तम मानवांश जाग्रत् है, जिसका हृदय और मस्तिष्क उन्नत तथा विकसित है, जो कल्पनाशील और आदर्शवादी है वह दूसरोंको भी उस आनन्दकी अनुभूति कराना चाहता है। इसमें उसे जिस सुखका स्वाद मिलता है उसे वह सन्तोपके साथ ग्रहण करता है। पर पत्रकारका प्रयोजन इतना ही नहीं होता; वह इसके सिवा कुछ और भी चाहता है तथा करता है। वह लोकसेवाके पवित्र पथपर अग्रसर होकर अपनी रचना करता है। जीवनके प्रति, सहजातियोंके प्रति, मानवताके प्रति उसके हृदयमें सहानुभूति होती है। वह आदर्शवादी होता है अतः सत्य और न्यायकी स्थापनाके लिए, अनाचार, शोषण और दासताका पथावरोधन करनेके लिए, कालात्माकी पुकारके अनुकूल जगत्को उलट-पुलटकर समाजको अधिक सुखकर, श्रेयस्कर और मानवीय स्तरपर ले जानेके लिए, ससारके समस्त ज्ञानको व्यापक रूपसे सबकी सम्पत्ति बना देनेके लिए लेखनी उठाता है। अवश्य ही वही उसका जीवनोपाय भी है। उसीसे वह अपनी रोटी भी कमाता है पर केवल पेटके लिए

व्यवसाय करना उसका प्रमुख लक्ष्य नहीं होता। जो पत्रकार केवल अपनी स्वार्थसाधनाके लिए यत्नशील होता है वह भ्रष्ट है और लेखनीके साथ व्यभिचार करनेवाला है। फलतः हम कह सकते हैं कि पत्रकारका प्रयोजन होता है जगत्‌की उत्क्रान्तिका पथ प्रशस्त करना, जनता जनार्दनकी सेवा करना और उस अलौकिक आत्मानन्दकी अनुभूति करना जो उन्नत मानवांश स्वाभिव्यक्तिमे प्राप्त करता है। पत्रकार होकर लेखनी उठानेवाला इस लक्ष्यको, इस आदर्शको, अपने जीवनके इस प्रयोजनको अपने दृष्टि-पथसे कदापि ओझल होने नहीं दे सकता।

सम्प्रति आधुनिक पत्रकारोंमें जिस विपरीत विघातक प्रवृत्तिका उदय हो रहा है उसकी ओर ध्यान आकृष्ट कर देना सङ्गत प्रतीत होता है। आज एक धारा यह बही हुई है कि पत्रकारका मुख्य काम लोकरञ्जन करना है। ब्रिटिश और अमेरिकन पत्रोंमें इस धारणाका प्राबल्य न केवल बढ़ गया है प्रत्युत् प्रायः उसी दृष्टिसे वहाँ पत्र और पत्रकारोंके जीवनका सञ्चालन हो रहा है। यह समझा जाता है कि जनता पत्रोंके द्वारा अपना मनोरञ्जन चाहती है फलतः यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि उसकी रुचि, इच्छा तथा माँगका ध्यान रखते हुए पत्रकार अपने पत्रका निर्माण करे। जनता ही वास्तवमें पत्रका ग्राहक है। जब प्रत्येक व्यापारी स्वभावतः वही माल बाजारमें लाता है जिसकी खपत होती है, जिसे ग्राहक ढूँढते हैं और जिसकी माँग दिन-दिन बढ़ती चलती है और जब पत्र भी बाजारमें अपने ग्राहकोंके सामने बिक्रीके लिए उपस्थित किया जाता है तब कोई कारण नहीं है कि उसका स्वरूप ऐसा क्यों न बना दिया जाय जिसे ग्राहक पसन्द करते हैं और जिसकी माँग दिन-दिन बढ़ती जाय। इस तर्कको स्वीकार करके पत्रकार अपने पत्रका निर्माण करने चलता है। जनताकी रुचिके सम्मुख आत्मसमर्पण कर देना उसका मुख्य लक्ष्य हो जाता है। जनता यदि व्यभिचारके किस्से पढ़ना पसन्द करती है तो धरतीके कोने-कोनेसे ऐसी घटनाओंको खोज लाना और उनका मनोरञ्जक वर्णन उपस्थित करना उसकी कलाका अङ्ग हो जाता है। जनता यदि नग्न स्त्री-पुरुषोंका चित्र देखना पसन्द करती है, यदि उनकी कुत्सित कामलीलाका सजीव विवरण

पढना चाहती है, यदि हत्या और डकैतीकी सनसनीखेज कहानियाँ पसन्द करती है तो पत्रकार अपने पत्रमें उन्हे स्थान देनेमें क्यों हिचके ?

ब्रिटेनके 'न्यूज आव दि वर्ल्ड' नामक पत्रका उल्लेख पूर्वके पृष्ठोंमें किया जा चुका है। कहते हैं कि इस पत्रकी ग्राहक-संख्या सम्भवतः संसारके किसी भी पत्रसे अधिक है। इतनी लोकप्रियताका सम्पादन करनेमें यह पत्र सफल क्यों हुआ इसका रहस्य उपर्युक्त प्रकारकी पत्रकारकलामें सन्निहित है। 'न्यूज आव दि वर्ल्ड'के स्तम्भोंपर दृष्टिपात कीजिये। उसमें राजनीतिक तथा आर्थिक समाचारोंके लिए प्राय: ८ स्तम्भ प्रदान किये जाते हैं; बाकी १८ स्तम्भोंमें खेलकूद तथा २५ स्तम्भोंमें तलाक, व्यभिचार, अपहरण, डकैती, हत्या, जालसाजी, आत्महत्या, कुत्सित कामलीलाके समाचार भरे पडे रहते हैं जिनका सजीव चित्रण और वर्णन मनोरञ्जक तथा उत्तेजक ढङ्गसे किया जाता है। एडोल्फ मायर्सने इस स्थितिकी समीक्षा करते हुए उचित ही कहा है कि 'इसका अर्थ तो यह हुआ कि ब्रिटेनकी १५ प्रतिशत जनता राजनीति और अर्थनीतिकी बातें पसन्द करती है, ३५ प्रतिशत खेलकूद और ५० प्रतिशत जीवनकी हीन और वासनामयी प्रवृत्तियोंमें दिलचस्पी लेती है।'

प्रसन्नताकी बात है कि भारत अभी उस सीमातक निर्लज्जता और पतनके पङ्क में नहीं डूबा है यद्यपि हमारे दुर्भाग्यसे इस देशमें भी यह प्रवृत्ति उदीयमान होती दिखाई दे रही है। आज पत्रकारोंके सामने यह प्रश्न है कि उसकी लेखनी और उसकी कलाका प्रयोजन क्या है ? यह सच है कि पत्रकारको लोकरञ्जन भी करना चाहिये। यह भी सच है कि जन-रुचिका ध्यान रखना उसके लिए आवश्यक है पर इसके साथ-साथ यह भी प्रश्न है कि हमारे पत्र क्या 'भाँड' से अधिक और कोई महत्त्व नहीं रखते। 'भाँड' दर्शकोंका मनोरञ्जन करते हैं पर वह मनोरञ्जन घृणित तथा कुत्सित प्रवृत्तियोंको उत्तेजित कर जीवनकी वीभत्सताको सामने लाकर ही करते है। जो पत्रकार अपनी लेखनीकी सार्थकता भी इतनेमें ही मानता है उसे क्या हम पत्रकार कहें ? क्या उसे हम लेखक कह सकते हैं जो अपनी लेखनीका सञ्चालन जीवनमें वासनाकी आग प्रज्वलित करनेके लिए करता है ? स्पष्ट है कि मनुष्य जो है उससे प्रभावित होता है। समाचारपत्र साधारण जनोंका सबसे बडा

साहित्य होता है जो प्रतिदिन उनके सामने उपस्थित होता रहता है। पत्रोंमें वे जो पढते हैं उन्हें सत्य समझकर उसपर विश्वास करते हैं। उनके मानस-पट-पर पत्रोंके स्तम्भ अपनी छाया, अपने संस्कार छोडते जाते है जो अलक्ष्य भावसे जन-जीवन और जनाचरणका निर्माण करते रहते हैं।

फलत प्रश्न उठता है कि क्या उन पत्रोंमें जो लोक-चरित्रके निर्माणमें सहायक होते है विष घोल देना उचित कहा जा सकता है? पत्रकार लोक-रञ्जन इसलिए नहीं करता है कि लोकका विनाश करदे। लोकरञ्जन भी लोक-सेवाकी पवित्र भावनासे उत्प्रेरित होकर ही किया जाता है। दबी हुई, सतायी हुई, शोषित और प्रताडित, दीन और दुखी जनताके नीरस जीवनमे पत्रोंद्वारा रसधार प्रवाहित कर देना, निराशान्धकारमें पडे अभागे प्राणियोंको भविष्यकी आशामयी प्राणसञ्चारिणी किरणोंसे उज्जीवित कर देना तथा उन्हे अज्ञान-गह्वरसे निकालकर ज्ञानालोककी झलक दिखा देना पत्रोंका मुख्य काम होता है। बालकका रञ्जन जैसे उसकी माता करती है उसी प्रकार पत्रकार भी जनताका अनुरञ्जन करता है। फिर बालक यदि आगके अङ्गारेसे खेलनेके लिए उत्सुक होता है तो उसे भस्म हो जानेके लिए उभाडकर माता उसका मनो-रञ्जन नहीं करती। पत्रकार भी जीवनकी वीभत्सता और मानवकी आदि-पशु-प्रवृत्तियोंको उत्तेजित करके जनताका रञ्जन नहीं कर सकता। साहित्यके क्षेत्रमें अथवा पत्रकारीकी दिशामे कदम बढानेवाले व्यक्तिको कभी अपनी लेखनीको उसके आदर्शोंसे भ्रष्ट होने न देना चाहिये। लोकसेवा उसके जीवनका उज्ज्वल आदर्श है। असत्य, अन्याय तथा अनाचारका नाम धरतीसे मिटे, जीवन सत्यकी ओर, विकासकी ओर, संस्कृति और शिष्टताकी ओर, सहानुभूति और समवेदनाकी ओर तथा अन्तत वासनामयी कुप्रवृत्तियोंको संयत करनेमें समर्थ होकर परिष्कृति, सौन्दर्य, उज्ज्वलता और पूर्णताकी ओर अग्रसर हो—यही जीवनका प्रगतिवाद है जिसकी गतिको न केवल चित्रित करना अपितु अधिक तीव्र बनाना पत्रकारकी लेखनीका लक्ष्य होना चाहिये।

'पत्रकार क्या लिखता है और क्यों लिखता है?' इसकी समीक्षा संक्षेपमें कर दी गयी पर मुख्य प्रश्न तो लेखन-कलाके सम्बन्धमें ही उपस्थित होता है। सम्पादक अग्रलेख लिखता है। सहायक सम्पादक या उप-सम्पादक भी

कभी अग्रलेख, कभी टिप्पणियाँ, कभी स्वतन्त्र विषयोंपर लेख, कभी आलोचना आदि लिखते ही रहते हैं। इस उत्तरदायित्वसे यदि वे पूर्णतः वरी रहें तो भी उन्हें प्रतिदिन कुछ न कुछ लिखना ही होता है। समाचार सम्बन्धी प्राप्त तारोंका प्रकाशनीय स्वरूप निर्माण करना, सवाददाताओं द्वारा भेजे गये विवरणोंका सम्पादन करना, किसी अंशको विस्तृत और किसीको संक्षिप्त कर देना, किसी अशको व्यर्थ समझकर निकाल देना और किसीकी किसीसे शृङ्खला जोड़ देना, कार्यालयमें पाठकों द्वारा भेजी गयी अनेक चिट्ठियोंका पुनर्लेखन, प्रकाशनार्थ आये हुए लेखोंका संस्कार सहायक सम्पादक या उपसम्पादक ही करते हैं। यदि उनमें लेखन-कलाका ज्ञान न हो, यदि वे स्वयं लेखकोंके गुणसे विभूपित न हों तो इस कर्तव्यकी पूर्ति सुचारुरूपसे नहीं कर सकते।

रिपोर्टर या संवाददाता तो मुख्यतः अच्छे लेखक होने ही चाहिये। वे पत्र और सम्पादकके न केवल नेत्र और उसके कान हैं बल्कि मुख भी हैं जिसके द्वारा विविध घटनावलियोंकी अभिव्यक्ति और चित्रण होता है। फलतः लेखनीपर उनका अधिकार होना अनिवार्यत आवश्यक है। दर्शन और श्रवणसे उत्पन्न अनुभूतियोंको लिपिबद्ध रूपमें व्यक्त करना, घटनाओंका सजीव और रोचक, स्पष्ट और सरल, सत्य और साधार चित्रण करना तबतक सम्भव ही नहीं है जबतक संवाददाता या रिपोर्टर अपनी कलमका धनी न हो।

इनके अलावा पत्रकारोंका एक व्यापक वर्ग और है जिन्हें हम 'स्वतन्त्र पत्रकार' कह सकते हैं। अंग्रेजी भाषामें इन्हे 'फ्रीलान्स जर्नलिस्ट' कहते हैं। 'लान्स' कहते हैं बरछीको और 'फ्री' का अर्थ होता है स्वतन्त्र। पत्रकारोंका स्वतन्त्र बरछीसे सम्बन्ध स्थापित हुआ देखकर पाठक आश्चर्यमें पड जायँगे। स्वतन्त्र लेखनी अथवा 'फ्री पेन' के विशेषणसे उनका विभूपित होना तो सार्थक होता पर 'बरछी' का प्रयोग उनके साथ कुछ निरर्थक-सा ज्ञात होता है। 'फ्रीलान्स' शब्दकी अपनी स्वतन्त्र कहानी है। यूरोपमे एक युग था जब वहाँ सामन्तोंकी तूती बोलती थी। विभिन्न देशोंकी रियासतोंमें राजा थे जिनके अधीन बहुतसे सामन्त हुआ करते थे। उनका अपने देशके शासन-यन्त्रपर, शासक-समूहपर, समाजपर प्रबल प्रभाव स्थापित था। अपने देशके राजाओंके

अधीन होते हुए भी उनकी आन्तरिक सत्तामें स्वतन्त्रता पर्याप्त थी। सैनिक दृष्टिसे भी उनका महत्त्व था, उनके पास सैनिक टुकड़ियाँ रहा करती थीं जो समय पड़नेपर अपने राजाकी सहायता करती थीं। सामन्तोंके पारस्परिक झगड़े भी बहुत होते थे जिनमें वे अपनी-अपनी सैनिक टुकड़ियोंसे काम लेते थे। उसी युगमें 'फ्रीलान्सों'का उदय भी हुआ।

कुछ लोग जो साहसी थे, आयुधजीवी और युद्धप्रिय थे, अपनी स्वतन्त्र टोली स्थापित करके अकसर लूटपाट मचाया करते थे। कभी-कभी दो सामन्तों-के झगड़ोंमें कोई टोली किसी सामन्तकी ओरसे लड़नेके लिए अपनी सेवाएँ अर्पण करती और उसके फलस्वरूप पर्याप्त धन पुरस्कारमें पाती। एक प्रकारसे ये शस्त्रव्यवसायियोंकी टोलियाँ थीं जो धीरे-धीरे 'फ्रीलान्स'के नामसे विख्यात हो गयीं। पत्रकारोंमें वे लोग जो किसी पत्र-विशेषके अथवा किसी समाचार-एजेंसीके नियुक्त कर्मचारी नहीं हैं परन्तु स्वतन्त्र रूपसे पत्रोंकी सेवा करते हैं और उसके लिए पुरस्कार स्वीकार करते हैं 'फ्रीलान्स जर्नलिस्ट' कहे जाने लगे। इनमेंसे अनेक है जो संवाददाताका काम करते है, अनेक विविध विषयोंपर लेख लिखते हैं, अनेक आलोचनाका, कहानी लेखनका काम करते हैं। यूरोप-अमेरिकामें 'फ्रीलान्स जर्नलिज्म' बड़ा व्यापक है और अनेक प्रसिद्ध पत्रकार इसी भाँति स्वतन्त्र रूपसे पत्रों द्वारा विशेष कार्यके लिए आमन्त्रित किये जाते हैं। कहना न होगा कि इस श्रेणीके पत्रकारोंकी लेखनी यदि उनकी क्रीत दासी न हो तो वे न प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते हैं न सफलता। तात्पर्य यह कि पत्रकारोंकी श्रेणीमें जो भी है उसके लिए लेखनकलामें पटु और सफल होना आवश्यक है।

पर ग्रन्थमें लेखन-कलाके सम्बन्धमें विस्तारसे विचार करना सम्भव नहीं है। लेखनीकी शक्ति और महिमाके वर्णन, उसकी समीक्षा और विश्लेषणके लिए स्वतन्त्र ग्रन्थकी आवश्यकता होगी जिसके लेखनका उत्तरदायित्व कोई उपयुक्त और सफल तथा योग्य विद्वान् तथा लेखक ही उठा सकता है। इस ग्रन्थमें जिसका विषय दूसरा है, अधिक विस्तारकी आशा नहीं की जा सकती। पत्रकार बननेकी इच्छा रखनेवाले नवयुवकोंके सहायतार्थ संक्षिप्तरूपेण कुछ आवश्यक बातोंकी चर्चा कर देना मात्र हमारा लक्ष्य होगा।

मनुष्यको प्रकृतिने उन्नत मस्तिष्क और विकसित हृदय प्रदान किया है। जिन परिस्थितियोंने उसे परिवेष्टित कर रखा है उनका दर्शन करनेकी, जगत्के गूढ रहस्योंको जाननेकी, वास्तविकतातक पहुँचनेकी, सत्यका अनुशीलन करनेकी प्रवृत्ति स्वभावतः उसके हृदयमें वर्तमान रहती है। इस चेष्टामें वह स्वतः सतत रत रहता है जिसके फलस्वरूप उसके अन्तस्तलमें नानाविध भावतरङ्गें उठा करती हैं। हृदयानुगत अनुभूतियाँ, विचार, कल्पनाएँ और भावनाएँ उसके अन्तर्जगत्की सृष्टि निरन्तर किया करती हैं और वह उनका अनुभव करता रहता है तथा उनपर मनन करता जाता है।

अपने ही चित्ताकाशमें उन्मुक्त विचरण करनेवाला उसका हृदय अमूर्त विहगकी भाँति लम्बी उडान लेता रहता है पर इतनेसे ही उसे परितृप्ति प्राप्त नहीं होती। वह स्वयं उड़ता है और चाहता है कि दूसरे भी उसकी उडानका दर्शन करें। उसकी इस नैसर्गिक लालसाका परिणाम उसकी स्वाभिव्यक्तिकी आकाङ्क्षामें मूर्त दिखाई देता है। मानव अपनेको, अपने अन्तर्लोकको जगतके सामने, दूसरोंके सामने व्यक्त कर देना चाहता है। अपनी अनुभूतियाँ दूसरोंके हृदयमें उत्पन्न कर सके और दूसरोंकी अनुभूतियोंका अनुभव स्वयं कर सके, यही तो उसकी चाह होती है। उसका यह संवेदनशील, सहानुभूतिमय स्वरूप ही उसकी विशेषता है। यह पुनीत हृदयाङ्कुर जब विकसित होकर महान् वृक्ष बन जाता है तब मानव जीवन अपनी भौतिक सीमाका उल्लङ्घन करके संसृतिके विराट् रूपमें लय हो जाता है। जगत्का सुखदुःख उसकी अपनी सम्पत्ति हो जाता है और उसके संवेदनशील हृदयकी परिधिमें विश्व लय हो जाता है। यही अन्ततः उसके जीवनकी सार्थकता है और इसीमें है उसकी पूर्णता।

अभिव्यक्ति, अपनी अभिव्यक्ति, जीवनके मूर्त, अमूर्त भावोंकी अभिव्यक्ति की मनुष्यकी परमाकाङ्क्षाका यही लक्ष्य और प्रयोजन है। पर अभिव्यक्तिकी पूर्ति करना साधारण कार्य नहीं है। इसके लिए आवश्यकता साधनकी थी। उसने दो साधन भी ढूँढ़ निकाले: वाणी और लेखन। इन्हीं दोनों उपायोंसे हृदयको खोलकर रख देनेकी साधना उसके जीवनका अङ्ग बन गयी। वाणी और लेखनीके लिए भी माध्यमकी आवश्यकता थी। ऐसा वाहन अपेक्षित था

जो भावधाराका आधार उसी प्रकार हो सके जिस प्रकार आकाश ध्वनि-लह-रियोंका आधार होता है ; ऐसा साधन जो उसका वहन कर सके और दृश्य जगत्‌के सम्मुख रूपहीन तरङ्गोंको स्वरूप प्रदान कर सके आवश्यक था।

फलतः भाषा उस माध्यमके रूपमें उद्भूत हुई पर भाषाका भव्य भवन निर्मित होता है शब्दों और वाक्योंसे। शब्द ईंटें हैं जिन्हें बैठाते चलिये और वाक्यरूपी मसालेसे उन्हें जोड़ते जाइये। इस प्रकार विनिर्मित भाषा विशाल और रम्य रूप धारण करके उपस्थित होती है। रूप जैसे प्राण बिना निष्फल होता है वैसे ही भावशून्य और अर्थहीन भाषा भी निर्जीव होती है। अतएव भाषामें प्राण-सञ्चारण करनेवाली, उसमें गति प्रदान करनेवाली सञ्जीवनी बूटी वह भाव-धारा है जो मानव हृदयमें निर्गत होती रहती है।

भाषाका आश्रय लेकर, शब्दोंके परिधानमें आवेष्टित कर मनुष्य अपने भावों और विचारोंकी अभिव्यक्ति करने लगा—पहले वाणीके द्वारा, फिर उसे अधिक स्थायित्व प्रदान करनेके लिए लेखनीके द्वारा। क्रमशः अपनी अभि-व्यक्तिको अधिक आकर्षक, अधिक रम्य, अधिक प्रभावशाली, पूर्ण और सर्वा-ङ्गीण बनानेकी चेष्टा होती गयी। अभिव्यक्तिमें अधिकसे अधिक सफलता प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक था। जितना ही हम अपनी अनुभूतियोंका, विचारों और कल्पनाओंका प्रादुर्भाव दूसरेके हृदयमें कर सकें उतनी ही अधिक हमारी अभिव्यक्ति सफल मानी जायगी। अतएव अभिव्यञ्जनकी प्रणालीको अधिका-धिक सौन्दर्य और रोचकता प्रदान करनेकी चेष्टा आवश्यक थी। इसी चेष्टाको हम कला कह सकते हैं। अभिव्यक्तिमें सौन्दर्यकी धाराको प्रवाहित करना कला है जिसके गर्भसे जगत्‌का साहित्य उद्भूत हुआ है।

हम आशा करते हैं कि नव-पत्रकारके सम्मुख हमारा आशय स्पष्ट हो गया होगा। पत्रकार बनकर वह जगत्‌के स्वरूपको जिस रूपमें देखता और सम-झता है, तज्जन्य जो अनुभूतियाँ और कल्पनाएँ उसके हृदयमें उत्पन्न होती हैं उन्हें दूसरोंके लिए, अपने पाठकोंके लिए, जनहितके लिए, लोकसेवाके लिए, स्वान्तः सुखके लिए अभिव्यक्त करनेके निमित्त वह लेखनी उठाता है। लेखनी ग्रहण करते ही उसे भाषा और भाषाके अङ्गों, शब्दों और वाक्योंका सहारा लेना पड़ेगा। अतः लेखक बननेकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तिके लिए सर्वप्रथम

आवश्यकता भाषापर अधिकार प्राप्त करनेकी है। आपका जो माध्यम है, आपके विचारोंका जो वाहन है, आपका जो साधन और आधार है वह यदि आपके अधिकारमें न हो तो आप उसका सञ्चालन अपने मनोनुकूल कैसे कर सकते हैं?

घोड़ेपर आप बैठ जायँ, पर उसपर काबू न पा सकें तो निश्चित समझिये कि वह आपको खड्डमें फेंककर ही शान्त होगा। लेखनीको हाथमें लेनेके पूर्व किसी भी पत्रकार या लेखकको पहले भाषापर अधिकार स्थापित कर लेना चाहिये। आपकी इतनी गति, कमसे कम, अवश्य हो जाय कि आप भाषाके स्वरूप और स्वभावको समझ सकें जिससे भावाभिव्यञ्जनके लिए उपयुक्त और सार्थक शब्दोंका प्रयोग कर सकें।

आप पूछ सकते हैं कि शब्दोंमें भी क्या कोई रहस्य है? उनकी उपयुक्तता और सार्थकताको समझनेसे आपका तात्पर्य क्या है? उत्तरमें हम निवेदन करेंगे कि शब्दोंकी पहेली विकट होती है। उनकी उपयुक्तता और सार्थकताको समझनेपर ही लेखककी सफलता निर्भर है। शब्द वह तत्व है जो भाषाके शरीरका निर्माण करता है। शब्दमें ही अर्थ निहित होता है और शब्द तथा अर्थके चमत्कारको समझ लेनेवाला ही लेखक बन सकता है। शब्दोंसे छोटे-बड़े वाक्योंकी रचना होती है और ये वाक्य ही वे अवयव हैं जिनका सम्मिलित और सामूहिक रूप भाषामें मूर्त्तिमान होता है।

आप लिखते हैं अपना मन्तव्य व्यक्त करनेके लिए और यह सम्भव होता है शब्दोंके प्रयोगसे। शब्दोंमें अर्थ भरा होता है अतः अपने भावोंका अर्थबोध पाठकको करानेके लिए ही आप शब्दका प्रयोग करते हैं। इसीसे यह सिद्ध है कि शब्दोंकी उपयुक्तता और सार्थकताका ज्ञान होना आवश्यक है। आप जो कहना चाहते हैं उसका पूरा स्पष्टीकरण पाठकके सम्मुख हो जाय, आपके भाव पूर्णतः व्यक्त होकर उसके सामने मूर्त हो जायँ यही आपका लक्ष्य है और यह तभी सम्भव है जब आप उन शब्दोंका प्रयोग करें जो आपके भाव और अर्थका बोध कराते हैं।

सरिता और सर दोनोंमें जलका भण्डार भरा रहता है पर आप यदि उनके लिए जलनिधिका प्रयोग कर दें तो साराका सारा अर्थ ही दूसरा हो जायगा। जलनिधि समुद्रका ही बोध करा सकता है। इसी प्रकार समुद्रका बोध

करानेके लिए यदि आप जलाशयका प्रयोग कर दें तो आपका सारा भाव नष्ट हो जायगा। समुद्रसे बढ़कर जलाशय दूसरा नहीं है पर उस शब्दसे बोध नदी या तालावका ही होता है। यही शब्दोंकी पहेली है। अतः उनका प्रयोग करते समय उनकी उपयुक्तता और सार्थकतासे परिचित होना आवश्यक है।

इन पङ्क्तियोंमें शब्दशास्त्र या भाषाविज्ञानकी समीक्षा नहीं की जा सकती और न हमारा यह विषय ही है। इसे जानने या समझनेकी रुचि जिनकी हो वे इसका अध्ययन स्वतन्त्र रूपसे कर सकते हैं। हमारा आशय नये मित्रोंसे केवल इतना कह देना है कि लेखक होनेके लिए उन्हे भाषापर अधिकार स्थापित करना आवश्यक है। अधिकार स्थापित करनेके लिए इतना तो आवश्यक है ही कि लेखक शब्दोंका उपयुक्त और सार्थक प्रयोग करना अवश्य जान लें। शब्दशास्त्रियोंने तो शब्दकी उपयुक्तता और सार्थकतापर व्यापक विचार किया है। शब्दोंकी ध्वनि, उनकी प्रकृति, उनका पर्यायवाचित्व, उनकी शक्ति, विकास द्वारा हुए उनके एकाधिक परिवर्तित स्वरूप आदि अनेक वातोंका ज्ञान शब्दकी उपयुक्तता और सार्थकताको समझनेके लिए वे आवश्यक वताते हैं। अभिव्यञ्जनकी क्रियाको सफलतापूर्वक सम्पादित करनेके लिए इन विषयोंका ज्ञान होना आवश्यक भी है। शब्दोंसे निकलनेवाली ध्वनि अर्थबोधमें कितनी सहायक होती है यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। वर्णनका जैसा प्रसङ्ग हो उसीके अनुकूल ध्वनिवाले शब्दोंका प्रयोग करनेमें सफल लेखक कदापि न चूकेगा। जहाँ करुणाका अथवा प्रेमका प्रसङ्ग हो वहाँ कोमल उच्चारणवाले, जहाँ रौद्र अथवा क्रोध या क्षोभके भावोंका वर्णन करना हो वहाँ कटु उच्चारण-वाले शब्दोंका प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि शब्दोंकी ध्वनिसे अर्थबोधमें सहायता मिलती है।

आँधी आगयी हो और सैकड़ों मकानोंके छप्पर उड़ गये हों, धन-जनका नाश हुआ हो और उसका वर्णन करनेके लिए आप बैठें तो किस प्रकार करेंगे? 'सायंकालीन शीतल समीर वेगसे बहने लगा' लिख देनेसे आपके भावों-को ही आघात पहुँचेगा। आप पाठकके हृदयमें उस वातावरणकी सृष्टि न कर सकेंगे जिसे करना आपका लक्ष्य है। वहाँ तो आप यही लिखेंगे कि

'प्रचण्ड वेगसे हाहाकार करती हुई भयावनी आँधी आयी।' शब्दोंकी ध्वनिसे ही अर्थ समझनेमें कितनी सहायता और रुकावट पहुँचती है यह इतनेसे स्पष्ट हो जायगा। सफल लेखक इन तमाम बातोंका ध्यान रखता है। शब्दोंके पर्यायवाची रूप भी इसी भाँति सार्थक या निरर्थक हो जाते हैं। जो शब्द एक स्थानपर अर्थ स्पष्ट करनेमे सहायक होता है वही दूसरे स्थानपर व्याघात उपस्थित कर देता है। इन तमाम बातोंकी व्याख्या जान लेनेके लिए नये लेखकको अन्यत्र खोज करनी होगी पर सामान्य रूपसे अपने मनमें इतना समझ लेना चाहिये कि उसके लिए सार्थक और उपयुक्त शब्दोंके प्रयोग-का ज्ञान आवश्यक है। भाषाविज्ञान और शब्दशास्त्रकी विशेषज्ञता सम्पादन करना भले ही नितान्त आवश्यक न हो पर बिना इसके भी उसे इतना जान लेना ही चाहिये कि किस शब्दका प्रयोग किस स्थानपर उसके अर्थका स्पष्टीकरण करनेमे और पाठकको अर्थबोध करानेमें समर्थ होगा। यही शब्दोंकी उपयुक्तता और सार्थकताका ज्ञान है।

जब शब्दोंपर ही लेखककी सफलता निर्भर है और उसकी रचना-की सुन्दरता या असुन्दरता उपयुक्त और सार्थक शब्दोंके प्रयोगपर ही आश्रित है तो लेखकके लिए शब्द-भण्डारका अधिकारी होना आवश्यक हो जाता है। शब्दोंकी जितनी उन्नत और पूर्ण निधि लेखकके पास होगी उतनी ही सरलतासे आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग करनेमे वह सफल होगा। शब्दोंका धनी होना भाषापर अधिकार स्थापित करना है। सक्षेपमें कह सकते हैं कि लेखकका शब्दकोष उन्नत हो और शब्दोंका प्रयोग उचित ढङ्गसे करना उसे ज्ञात हो तो वह सफल भाषाधिकारी कहा जायगा।

प्रश्न उठता है कि शब्दकोष किस प्रकार संग्रह किया जाय? इसका उत्तर यह है कि मनुष्य जिस प्रकार आरम्भसे शब्दका सञ्चय और ज्ञानकी प्राप्ति करता है उसी पथका अवलम्बन करके उपर्युक्त दोनों बातें पूरी की जा सकती हैं। शब्दोको सुनते-सुनते हम उन्हे अपना लेते हैं और उनका अर्थ समझ जाते हैं। आवश्यकता होनेपर पुनः स्वयं उनका प्रयोग करते हैं। सामान्य प्रकार यही रहा है। पर लेखक बननेके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। विशेष लिए विशेष साधन आवश्यक होता है, अतएव लेखक बननेके लिए

अध्ययनकी आवश्यकता है। अधिकसे अधिक पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, साहित्यिक ग्रन्थोंका अध्ययन कीजिये। सफल और प्रौढ तथा विख्यात लेखकोंकी रचनाओं और लेखोंका अध्ययन विशेष रूपसे करते चलिये। सफल पत्रकारों, सम्पादकोंके लेखों और विवरणोंको पढना कदापि न भूलिये। पढ़ते हुए ध्यानसे देखना चाहिये कि वे किस प्रकार रचना करते हैं, शब्दोंका प्रयोग, वाक्योंका निर्माण, भावोंकी अभिव्यक्ति कहाँ किस तरह करते हैं।

इस प्रकार नया पत्रकार धीरे-धीरे न केवल शब्दसञ्चय करता जायगा अपितु शब्दोंके सार्थक प्रयोगका ढङ्ग और शब्द तथा उसके अर्थके रहस्य और उसके चमत्कारको भी समझता जायगा। ये शब्द और वाक्य तथा प्रौढ लेखकी शैली धीरे-धीरे उसके मानसपटपर अपने संस्कार छोड़ती जायगी, शब्दोंमें बहनेवाली अर्थधारा, उनकी शक्ति और सामर्थ्यका अङ्कन होता जायगा। समय आयेगा जब वह स्वयं अपनेको अभिव्यक्त करनेमें समर्थ होगा। अध्ययन करनेवाला स्वयमेव बहुतसे लेखकोंमेसे एक दोको स्वभावतः चुन लेता है जिनकी रचना उसे सर्वोत्कृष्ट ज्ञात होती है, जिनकी लेखनी सर्वाधिक प्रभावित करती मालूम होती है और जिनकी भावधारा तथा अभिव्यक्तिकी प्रणाली उसे मुग्ध कर देती है। इस प्रकार जिसकी छाप आपके मनपर बैठ जाय उसका जहाँतक सम्भव हो अधिकसे अधिक गम्भीर आलोचनात्मक अध्ययन कीजिये। आप देखेंगे कि बिना प्रयास कालान्तरमें उसकी छाया आपकी लेखनीपर पड़ने लगी है। नये लेखकोंको कभी किसी पुराने लेखककी नकल करनेकी चेष्टा न करनी चाहिये। नकल करनेकी चेष्टा करके आप न अपनी शैलीका विकास कर सकते हैं और न अपनी रचनाको सप्राण बना सकते हैं। लेखककी अपनी स्वाभाविक अन्तःस्फूर्तिका विकसित होना आवश्यक है। उसकी रचनामें उसका अपना व्यक्तित्व होना चाहिये। अपने वाक्यों और शब्दोंमें वह अपने अन्तर्जगत्की, अपनी आत्माकी प्रतिच्छाया झलकने दे। इसी प्रकार वह लेखक बन सकता है। फलतः नकलकी चेष्टा करना कदापि वाञ्छनीय नहीं। हाँ, जो लेखक आपका आदर्श हो उसका अध्ययन पूर्णरूपेण अवश्य कीजिये और जब लिखिये स्वतन्त्र ढङ्गसे लिखनेकी चेष्टा कीजिये। आप देखेंगे कि अविज्ञात आपकी लेखनीसे प्रवाहित वाक्योंकी

धारामें, अभिव्यञ्जनके आपके तरीकेमें आपके आदर्श लेखककी छाया पड़ रही है।

शब्दोंका प्रयोग करते हुए कुछ सामान्य बातोंकी ओर विशेष रूपसे ध्यान देना चहिये। जो शब्द जिस भाव और अर्थका प्रतिनिधित्व अधिकसे अधिक करते हों उनका उचित स्थलपर प्रयोग ही लेखकके उद्देश्यको पूर्ण सफल कर सकता है। शब्दोंका प्रयोग करते समय देख लीजिये कि आप जिन शब्दोंका आशय ग्रहण कर रहे है वे अयुक्त शब्द तो नहीं है। जो शब्द प्रयोगमें नहीं आते उनका प्रयोग कर देनेसे आप पाठकके लिए अपने भावार्थको दुरूह बना देते हैं। इन्द्र शब्दके स्थानपर 'विडौजा' लिख देनेसे आप पाठकके लिए केवल क्लिष्टताका सर्जन करते हैं। इसी प्रकार जो आपके भावके प्रतीक न हों अथवा उसका स्पष्ट बोध न कराते हों ऐसे अयुक्त और शक्तिहीन शब्दोंका प्रयोग बचानेकी पूरी चेष्टा करनी चाहिये। शब्द नपे-तुले, स्फूर्ति और उत्प्रेरणा उत्पन्न करनेवाले, आपके भावको अभिव्यक्त करनेमें सफल, अपने अर्थका बोध करानेमें समर्थ, उचित स्थलपर अपनी उचित ध्वनि और प्रकृतिके अनुकूल प्रयुक्त होने चाहिये।

सञ्ज्ञा, विशेषण, क्रियापद आदिके भेदका मोटा ज्ञान भी लेखकको होना ही चाहिये। सञ्ज्ञा और क्रिया-पदके अनेक पर्यायवाची शब्द होते हैं पर उनके अर्थमे भेद होता है। अर्थोंको समझकर प्रयोग करनेसे ही अभीष्टकी प्राप्ति होगी। नक्षत्र और तारा एक ही अर्थ रखते हैं पर नक्षत्रसे बोध ज्योतिषशास्त्रकी राशियोंका होता है और तारा सामूहिक रूपसे आकाशमे चमकनेवाले सितारोंका आभास कराता है। 'कृत्तिका तारा आकाशमें चमक रहा था' अच्छा प्रयोग नहीं कहा जा सकता। उस समय 'कृत्तिका नक्षत्र' कहना ही उपयुक्त होगा। जलद, बादल, मेघ, सब पर्यायवाची हैं पर जलदसे बोध बरसातमे बरसनेवाले जलगर्भित मेघोंसे ही होगा। 'वसन्तका बाल रवि उदीयमान हो रहा था। आकाशमें इधर-उधर बादलोंके टुकड़े घूमते दिखाई दे जाते थे।' यहाँ आप 'बादल'का प्रयोग करते हैं पर 'जलद'का प्रयोग नहीं कर सकते। 'जलदों'के टुकड़े घूम रहे थे सो भी 'वसन्त'में अनुचित प्रयोग जायगा।

इसी प्रकार विशेषण या क्रियापदपर भी ध्यान देना होगा। विशेषणोंके द्वारा लेखक अपने भाव स्पष्ट करता है और पाठकोंके हृदयमें अभीष्ट अर्थ तथा भाव और विचारका उद्‌बोधन करना चाहता है। फलतः विशेषणके प्रयोगमें भी उपयुक्तताका, शब्दके अर्थका, जिस स्थलपर प्रयोग किया जा रहा हो उसकी आवश्यकताका ध्यान रखना चाहिये। 'माता'के लिए कोई सुन्दर विशेषणका प्रयोग न करेगा। 'मेरी सुन्दरी माता गङ्गा-स्नानको जा रही थीं' क्या कभी प्रयुक्त हो सकता है? वहाँ 'पूज्या', 'आदरणीया' आदिका ही प्रयोग होगा। क्रियापदके पर्याय भी अनेक होते हैं जिनमें अर्थकी विभिन्नता हो जाती है। भाषण करना, कहना, बोलना, बात करना आदि पर्यायवाची शब्द हैं पर भाषण करनेसे सभा-मञ्चपर खडे होकर बोलनेका, 'कहने'से किसीको सन्देश देनेका और 'बात करने'से व्यक्ति-विशेषसे बात करनेका बोध होता है। आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग करते हुए इनके अर्थोंके भेदको समझ रखना और इनकी उपयुक्ततापर ध्यान रखना उचित है।

शब्दोंके सम्बन्धमें इतना लिखनेकी आवश्यकता हमने इसलिए समझी कि वे ही लेखकके मुख्य साधन हैं जिनके द्वारा वह अपने हृदयके भावोंको मूर्त रूप दे सकता है, फलतः उनके सम्बन्धमें आवश्यक बातोंको लिख देना उचित था। पर लेखककी आवश्यकता इतनेसे ही पूरी नहीं होती, उसे कुछ और बातें अपेक्षित होती है जिनकी ओर ध्यान देना, जिनका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

शब्दोंकी जानकारी जितनी आवश्यक है उतनी ही सावधानी वाक्योंकी रचना करनेमें भी बरती जानी चाहिये। शब्दोंकी योजनासे ही वाक्योंका निर्माण होता है। शब्द पूर्ण भावको अकेले व्यक्त नहीं कर सकते। इसके लिए तो वाक्योंकी रचना करनी होगी, अतएव भाषामें वाक्यका सर्वाधिक महत्व है। लेखकके लिए भी वाक्य-रचनामे पटु होना आवश्यक है। अकेले शब्दसे आपका काम चल ही नहीं सकता। आपने लिख दिया 'गान्धीजी'; केवल इतनेसे कोई भाव स्पष्ट नही होता। 'गान्धीजी गिरफ्तार हो गये' यह पूर्ण वाक्य है और इसीसे आपके अभिप्रायका बोध होता है। फलतः शब्दोंका वह समूह जो एक योजनामें आयोजित होकर किसी पूरे अर्थका बोध कराये वाक्य कहा जायगा।

शब्द, वाक्य-खण्ड और मुहावरे ही वाक्यके अङ्ग होते हैं। वाक्यका निर्माण करते समय उन्हें इस प्रकार रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये कि वाक्य अधिकसे अधिक प्रभावोत्पादक और भावव्यञ्जक और हो जाय। ऐसे ही वाक्य शक्तिशाली और समर्थ कहे जायँगे जो पाठकके हृदयमें वही भाव-धारा वहा दें जो लेखकके अन्तस्तलमें लहराती रही है। वाक्यको पढ़ते ही पाठक यदि आपके विचारको समझ ले तो आपका श्रम सार्थक समझा जायगा। लेखकके लिए आवश्यकता इस बातकी है कि वह अपने वाक्योंको रचनामें स्पष्टता, अर्थबोधकता, भावाभिव्यक्ति और भाषाके प्रवाहको भर दे। वह वाक्यमें जिस भावको सामने लाना चाहता हो, जिस बातको प्रामुख्य प्रदान करना चाहता हो उसे प्रमुख स्थान देनेमें समर्थ होनेमें उसकी सफलता है। उपयुक्त और प्रचलित शब्दोंका प्रयोग तथा विशेषणों और मुहावरों तथा वाक्यखण्डोंको यथास्थान रखनेमें सफलता लेखकके अभिप्रायकी स्पष्टताके लिए आवश्यक है।

वाक्योंकी रचनामें उसकी सजीवताकी ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। यदि अपने लेखमें ओज और स्फूर्ति लाना है तो रचनाको सजीव बनानेकी चेष्टा करनी होगी। वाक्यमें सजीवता लानेके लिए कतिपय बातोंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। उपयुक्त शब्दोंका प्रयोग तो होना ही चाहिये पर इसके साथ वाक्यनिर्माणकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। वाक्यमें एक मुख्य अंश होता है जिसकी विशेषता प्रकाशित करनेके लिए, जिसे प्रामुख्य प्रदान करनेके लिए, जिसकी अर्थाभिव्यक्तिके लिए दूसरे एकाधिक सहायक वाक्य जुड़े रहते हैं। इन गौण वाक्य-खण्डों, विशेषण वाक्योंके द्वारा मुख्यांशको बल प्रदान किया जाता है। उत्तम वाक्य-रचना तभी सम्भव होती है जब सहायक वाक्य मुख्य वाक्यके जिस अंशको प्रकाशित करते हैं उसके निकट ही वे स्थापित किये जायँ। निर्जीव और निरर्थक शब्दोंके प्रयोगसे भी वाक्योंमें शिथिलता आ जाती है अतएव सावधान लेखक उनसे बचनेके लिए सदा उनकी ओर ध्यान रखे। वाक्योंकी रचनामे व्याकरणकी अशुद्धियोंकी ओर भी एक दृष्टि रखना आवश्यक है क्योंकि अशुद्ध पदोंसे कान या आँखको जो चोट पहुँचती है वह पाठकके लिए रचनाके सारे आनन्दको किरकिरा कर देती है। वाक्योंमें एक ही भावधारा, भावोंकी शृङ्खला, विचारोंकी परम्परा चलनी चाहिये। एक ही

वाक्यमें यदि दो परस्पर असङ्गत विचार प्रकट कर दिये गये तो पाठक लेखकको विक्षिप्त समझेगा।

लिखते समय लेखकको अपनी रचना सरल बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। आपके वाक्यको पढ़ते ही पाठक जितनी शीघ्रतासे आपके भावको समझ लेगा उतनी ही आपकी कृति सफल होगी। सरलताका यही अभिप्राय है कि आप तत्काल अपना अर्थ पाठकके हृदयमें बैठा दें। पत्रकारको इस ओर अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता है। वह लिखता है उन व्यापकवर्गीय पाठकोंके लिए जो बौद्धिक दृष्टिसे बच्चे हैं, जिन्हें न साहित्यका ज्ञान है और न जिनके पीछे उपाधियोंकी दुम लगी हुई है। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि उसी पत्रकार-की लेखनी सफल होगी, वही लोकप्रिय होगा, वही जनानुरञ्जन कर सकेगा जो सरलताका आश्रय ले अपनी रचना कर सकेगा। फलतः जो कुछ लिखना हो सीधे ढङ्गसे लिखिये। लेखमें रोचकता हो, आकर्षण हो, जीवन हो, ओज हो, अलङ्कार हो, प्रवाह हो; पर यह सब होते हुए भी दुरूहता और क्लिष्टता न हो। आपके मुहावरे ऐसे हों जो आसानीसे समझमें आते हों। शब्द ऐसे हों जो प्रचलित हों वाक्य सरल हों, और लिखनेके ढङ्गमें, अर्थकी स्पष्टतामें रुकावट न उत्पन्न होती हो।

पाठकोंके मस्तिष्कपर, उनकी कल्पनाशक्तिपर, उनके परिमित ज्ञान-भण्डारपर व्यर्थ ही अधिक बोझ लादकर पत्रकार अपने उद्देश्यकी सिद्धि नहीं कर सकता। यदि आप अपना पाण्डित्य दिखानेके लिए ऐसी बातें लिखते हैं जिन्हे समझना पाठककी शक्तिके बाहर है, यदि आपकी कल्पना इतनी दुरूह और क्लिष्ट है कि पाठक वहाँतक पहुँच ही नहीं सकता, यदि आपकी उपमाओं, विशेषणों अथवा मुहावरोंमे ऐसे अर्थ और ऐसी कल्पनाएँ छिपी हुई हैं जिन्हे साधारण पाठक समझ ही नहीं सकता तो विचार कीजिये कि आपके लेखनसे कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हुआ? आपकी अस्पष्ट, जटिल और क्लिष्ट शैली आपकी भावाभिव्यक्तिके लक्ष्यको ही नष्ट कर देगी। भावकी स्पष्ट अभिव्यक्तिमें ही रचनाकी प्रभावोत्पादकता है; आपकी लेखनी तभी सजीव कही जायगी जब उसमें दूसरोंके हृदयको प्रभावित करनेकी शक्ति हो। किसीके लेखमें हमें गहरा आकर्षण दिखाई दे जाता है, किसीमें

रोचकताका साक्षात्कार होता है, किसीके शब्द हृदयमें स्पन्दन उत्पन्न करते हैं, कभी आनन्दका अतिरेक होता है, कभी हम क्रोधसे क्षुब्ध हो जाते हैं, कभी करुणा आँखोंमें जल भर देती है—यह सब लेखककी लेखनीका ही प्रभाव तो है।

पर सोचिये तो सही कि यह प्रभाव किस प्रकार उत्पन्न किया जाता है। लेखक करता क्या है, कौन-सा जादू भर देता है जिससे हम आलोडित हो उठते हैं, उसकी रचनामें तल्लीन हो जाते हैं, और कभी-कभी अपनेको भी भूल जाते हैं? वास्तवमें यह जादू भावोंकी अभिव्यक्तिकी सफलतामें है जो जीवनको उसी प्रकार तरङ्गोंमें हिलोरने लगता है जिस प्रकार लेखक चाहता है। उसके भाव यदि जीवनकी वास्तविकताका, जीवनकी अनुभूतियोंका, जीवनके प्रवाह और उतार-चढावका प्रतिनिधित्व करते हैं, तो निस्सन्देह उसकी सफल अभिव्यक्ति प्रभावका सर्जन करेगी। पर अभिव्यक्तिकी सफलताके लिए सबसे बडी आवश्यकता होती है इस बातकी कि सरल और स्पष्ट रूपसे भावोंका प्रवाह समर्थ वाक्योंमें बहा हो जिसमें पाठकके हृदयमें लेखककी बातें बैठती जायँ, अर्थका बोध कराती जायँ और उन्हीं भावनाओंका उद्रेक करती जायँ जिन्हें उत्पन्न करना लेखकका लक्ष्य है। यही उपर्युक्त विशेषता लेखककी शैली कही जायगी। शैली वह प्रकार या साधन है जिसके द्वारा लेखक अपने विचारों, कल्पनाओं, भावनाओंको शब्दोंके परिधानसे सुसज्जित कर पंक्तिमें बैठाता चलता है और इस प्रकार अमूर्त अन्तर्लोकको समर्थ, सजीव और सबल वाक्योंके रूपमें चित्रित कर देता है। इसमें जब लेखक सफल होता है तब उसकी रचनामें उसके व्यक्तित्वका बिम्ब, उसकी आत्माकी छाया स्पष्ट झलकती दिखाई देती है। यही उसकी कलाका चरम विकास है। फिर तो उत्कृष्ट कलाकी कृति देखकर दर्शक जैसे मन्त्रमुग्ध हो जाता है, उसकी महिमा, सजीवता और उत्प्रेरक शक्तिसे अभिभूत हो उठता है, उसका प्रभाव उसपर छा जाता है और उसका ग्रहणशील हृदय उद्भूत भावनाओंमें तन्मय होकर अलौकिक रसका आस्वादन करने लगता है। उस समय पाठककी स्थिति वही हो जाती है जो लिखते समय लेखककी होती है।

यह न समझियेगा कि लेखकमें ये गुण सरलतासे समाविष्ट हो जाते हैं। जो साधक वर्षोंतक सरस्वतीकी आराधनामें रत रहते हैं, जो वाग्देवीकी पूजा नैष्ठिक भावसे करनेमें जीवनका अधिकांश व्यतीत कर देते हैं वे समय पाकर उसके वरदानके भागी हो जाते है। जो लेखनी उठाते ही लेखक बननेका दावा करनेके लिए अधीर होंगे, अपनी बार-बारकी असफलताओंसे घबडा जानेवाले होंगे वे कभी सफल लेखक न हो सकेंगे। नवागत मित्रोंको हृदयमें दृढ सङ्कल्प, उज्ज्वल आदर्श और पृथ्वी-सदृश धीरता लेकर इस कार्यमें संलग्न होना चाहिये, निरन्तर अध्ययन और सतत लेखनका अभ्यास कीजिये; साव-धानीके साथ, अध्यवसायके साथ अभ्यासमे रत रहिये। सफलताका यही एकमात्र उपाय है।

लेखनके सम्बन्धमें थोड़ी-सी बातें कही जा चुकी हैं। इस विषयके साहित्य-का अध्ययन करनेवाला विस्तारसे इसका ज्ञान प्राप्त कर सकता है पर एक बातका स्मरण सदा रखना आवश्यक है। लेखकको अपनी अन्तश्चेतना और आत्मशक्तिपर ही विश्वास करना चाहिये। कोई भी ग्रन्थ न किसीको लेखक बना सकता है और न किसी शास्त्रके अध्ययन मात्रसे आप आवश्यक गुणोंको प्राप्त कर सकते हैं। कभी-कभी इन विषयोंका अध्ययन बाधक भी हो जाता है। लेखकका कल्पना-जगत् विस्तृत और उसकी आन्तरिक उत्प्रेरणा उन्मुक्त है। अधिक अध्ययनके द्वारा कभी-कभी लोग अपनी शक्ति, अपने संस्कार और आन्तरिक ज्योतिको जगाने और विकसित करनेके बजाय उन्हे शास्त्रीय नियमों तथा परिधियोंमें बाँध देते हैं जिसके फलस्वरूप स्वयं फँसकर उलझ जाते हैं। जहाँ अपने प्रसुप्त हृदय और मस्तिष्कको जाग्रत् करनेकी आवश्यकता है वहाँ बन्धनोंमें बँधकर बाह्य उपकरणोंसे खेलने लगना हानिकारक हुए बिना न रहेगा। अतएव नये लेखकोको हमारी यह सलाह भी होगी कि वे जहाँसे जो सहायता मिले उसे आग्रहपूर्वक ग्रहण करते हुए भी अपनी नैसर्गिक वृत्तियोंकी उपेक्षा न होने दें।

अभ्यासके सम्बन्धमें भी दो बातें कह देना उचित प्रतीत होता है। नये लेखक छोटे-छोटे वाक्योंमें अपने भावोंको व्यक्त करना आरम्भ करें तो उनके लिए यह सरल भी होगा, अभ्यास भी बढेगा और वाक्य भी सजीव

होंगे। बडे वाक्योंकी रचना कठिन होती है। नया लेखक उन्हें जोडनेके प्रयासमें वहुधा अपनी भावधाराको सुसम्बद्ध रखनेमें असफल हो जाता है। भावकी अस्पष्टतासे वाक्य शिथिल हो जाते हैं। पत्रोंके स्तम्भोंमें तो छोटे, सुस्पष्ट और ओजस्वी वाक्योंकी श्रृङ्खला ही उनकी शोभा और प्रभावको वढाती है। ये वाक्य न केवल लेखकके लिए सरल होते हैं अपितु पाठकोंको भी प्रिय लगते हैं। वाक्य-रचना कई प्रकारकी होती है। एक ही वात कई प्रकारसे कही जा सकती है पर एक प्रकार जहाँ सरल है वहीं दूसरा प्रकार क्लिष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ हम कुछ वाक्य नमूनेके रूपमें उपस्थित कर सकते हैं। वाक्य-रचनाका एक ढङ्ग निम्नलिखित है—

'विशाल सभामण्डप शोभायमान हो रहा था। भव्य मुखद्वारपर विराट् जनसमूह एकत्र था। सबके मुखपर एक उत्कण्ठा झलक रही थी। सभी नेत्रोंमें उत्सुकताकी चञ्चलता थी। मालूम हो रहा था कि वे आँखें किसीके दर्शनके लिए लालायित हैं। उसी समय दूरसे गान्धीजीकी मोटर आती दिखाई पडी। जनसमुद्रमें उछाहकी लहरें लहराने लगीं। हजारों कण्ठोंसे निर्गत जयघोष आकाशमें गूँज उठा।'

ये वाक्य छोटे-छोटे, संयत और सरल हैं किन्तु उनमें भावुकता भरी है, भावोंकी अविराम धारा बह रही है और वाक्योंमें प्राण है। इन्हीं बातोंको दूसरे ढङ्गसे यों लिख सकते हैं—

'विशाल सभामण्डप शोभायमान था जिसके भव्य मुखद्वारपर एकत्र हुए विराट् जनसमूहके मुखपर उत्कण्ठा, आँखोंमें उत्सुकता इस प्रकार झलक रही थी मानो वे किसीके दर्शनके लिए लालायित हों। उसी समय दूरसे गान्धीजीकी मोटर आती दिखाई दी जिसके दर्शन मात्रसे जनसमुद्रमें उछाहकी तरङ्गें उठने लगीं और सहस्र कण्ठोंसे निकला जय-जय शब्द दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो उठा।' इन वाक्योंमें बातें वे ही हैं पर इनकी रचनाका प्रकार भिन्न है। लेखकको ऐसे वाक्योंकी रचनामें भावोंकी श्रृङ्खला बनाये रखनेके उत्तरदायित्वका निर्वाह करना पड़ता है। अगर लेखक अभ्यस्त और पटु न हो तो ऐसे वाक्योंकी रचनामें उलझकर भावाभिव्यक्तिको अस्पष्ट छोड सकता है।

एक और प्रकारसे भी आप इन्हीं बातोंको पंक्तिबद्ध कर सकते हैं—'शोभासम्पन्न विशाल सभामण्डपके भव्य मुखद्वारपर विराट् जनसमूह एकत्र था। उपस्थित नर-नारियोंके मुखपर उत्कण्ठा थी, आँखोंमें उत्सुकता झलक रही थी, वैसी ही जैसे कोई किसीके दर्शनकी लालसासे चञ्चल हो उठा हो। अधिक समय बीता भी न था कि गान्धीजीकी मोटरका आगमन हुआ, जनसमूहमें उछाहका पारावार उमड़ पड़ा, हर्षोल्लासकी उत्तुङ्ग तरङ्गें उठती दिखाई दीं और प्रचण्ड जय-निनादके रूपमें व्याप्त हो उठीं।'

तीनों ढङ्गोंके भेद स्पष्ट हैं। पिछले दो प्रकार ऐसे हैं जिनकी रचना करनेके लिए लेखककी लेखनीका प्रौढ़ होना आवश्यक है अन्यथा वाक्योंकी लम्बाई-चौड़ाईमें फँसकर भाव-श्रृङ्खला टूट जा सकती है। लेखक अपनी प्रतिभाके अनुकूल वाक्योंकी रचना करते हैं। नये लेखक यदि आरम्भमें उपर्युक्त प्रकारके संयत और छोटे वाक्य लिखें, उन्हींमें भाव भरनेकी, अलङ्कारों, विशेषणोंसे उन्हींको सजानेकी चेष्टा करें तो समय पाकर भाषा और लेखनीपर इतना प्रभाव स्थापित हो जायगा कि वे उसे मनमाना नचा सकेंगे।

पत्रकार लिखते समय कुछ और बातोंका भी ध्यान रखे। स्वतन्त्र पत्रकारके रूपमें और कोई लेख लिखना हो या अग्रलेख, आवश्यकता इस बातकी है कि लेखका आरम्भ आकर्षक ढङ्गसे किया जाय और उसका अन्त हो प्रभावकर। आदिका आकर्षण पाठकको अधिक नीचे उतरनेके लिए उत्सुक करेगा और अन्तकी प्रभावशालिता उसके हृदयमें अपना स्थान बना लेगी जो थोड़ी देरके लिए उसे स्पन्दित कर देगी। लेखके अनुच्छेदोंमें, और ऊपरसे नीचेतक उसके सारे कलेवरमें, सुसम्बद्ध भाव प्रवाहित होने चाहिये। ऐसा न हो कि चार अथवा छः अनुच्छेदोंके लेखमें ऊपर कुछ, मध्यमें दूसरी और और अन्तमें तीसरी बात कही गयी हो जिनका परस्पर सम्बन्ध न हो। अग्रलेख लिखनेके लिए किसी भी विषयका चयन करते हुए समयकी आवश्यकता, प्रस्तुत परिस्थितियों तथा ज्वलन्त समस्याओं और प्रश्नोंका विचार रखना आवश्यक है। पत्रकार अग्रलेखके सम्बन्धमें ही नहीं अपितु जब कभी कोई भी विषय लेखके लिए चुनने बैठे तो सामयिकताका विचार अवश्य रखे।

इसका यह अर्थ नहीं है कि असामयिक विषयोंकी चर्चा करनी ही नहीं चाहिये। उनकी चर्चा की जाती है और की जानी चाहिये पर चतुर लेखक उन्हें भी सामयिकताके रङ्गमें रँग देता है। उदाहरणार्थ किसी असामयिक विषयको ले लीजिये। 'प्राचीन हिन्दू राज्यशास्त्र' पर किसी लेखकको लिखना है। देशके सामने आज यह प्रश्न नहीं है और न उधर जनताका ध्यान है। पुरातत्व और प्राचीन इतिहासके विद्यार्थियों और अनुशीलकोंके लिए यह विषय सदा सामयिक है पर साधारण जनताका ध्यान उधर नहीं हो सकता। अब कोई लेखक इस विषयको लेना चाहता है। आवश्यकता इस बातकी है कि उसपर सामयिकताका रङ्ग चढ़ाया जाय। पत्रकार लेखको कुछ इस प्रकारसे आरम्भ करेगा 'भारतके सम्मुख आज स्वशासनकी योजना बनानेका, अपने शासन-विधानकी रचनाका प्रश्न ज्वलन्त रूपसे वर्तमान है। दुर्भाग्यसे हमारे मस्तिष्क और हमारी बुद्धिपर सम्प्रति पश्चिमका प्रभाव स्थापित हो गया है। हम पाश्चात्य आदर्श, पाश्चात्य दृष्टिकोणकी सीमासे बाहर जानेकी जैसे शक्ति ही नहीं रखते। हम अपने देशकी परम्परा और प्रतिभा भी भूल गये हैं। हम भूल गये हैं कि सहस्राब्दियोंतक इस देशने न केवल अपना अपितु अपनी भौगोलिक सीमाका उल्लङ्घन करके शासन किया है। उसने राजपरम्परा, समाजविधान और जीवन-व्यवस्थाके अपने आदर्शोंको जन्म दिया तथा उनकी स्थापना की थी। आज आवश्यकता इस बातकी है कि हम अपने अतीतपर भी दृष्टिपात करें, उस अतीतपर जिसका निर्माण राष्ट्रकी सहस्राब्दियोंकी साधना और संस्कारके फलस्वरूप हुआ था।' इस प्रकार आप असामयिक विषयको भी सामयिक बना सकते हैं और समस्त पुरातन भारतीय राजशास्त्रकी आलोचना आधुनिक राजशास्त्र और राजव्यवस्था, सङ्घटन तथा आदर्शके आलोकमें कर सकते हैं।

साधारण लेखकोंकी अपेक्षा पत्रकारमें कुछ और भी विशेषताओंकी आवश्यकता होती है। कोई लेखक उसी विषयपर लिखना चाहेगा जो उसके अध्ययनके क्षेत्रमें हो, जिधर उसकी रुचि हो, जिसके सम्बन्धमें उसे कुछ अभिनव बात कहनी हो। पर पत्रकारके लिए ऐसा कोई बन्धन नहीं हो सकता। ऐसा क्षण उपस्थित हो सकता है, होता है, जब पत्रकारको ऐसे विषयोंपर भी लेखनी

उठानी पड़ती है जिसकी ओर उसकी रुचि न हो, जिसका गम्भीर अध्ययन तो दूर रहा, साधारण ज्ञान भी उसे न हो। विडम्बना यह है कि ऐसे विषय-पर न केवल लेखनी चलानेकी आवश्यकता होती है प्रत्युत अपेक्षा की जाती है कि वह जो कुछ लिखे सत्य, साधार, सही और उचित लिखे तथा उसके विषयमें कोई अभिनव बात भी कहे। फलतः पत्रकारके लिए बहुविषयज्ञता अनिवार्य है। अधिकसे अधिक विषयोंका सामान्य ज्ञान, उनके सम्बन्धमें विभिन्न मत-मतान्तरोंका पता उसे होना ही चाहिये। उसके लिए दूसरा अनिवार्य गुण है लेखनी-लाघवका, जिसके अभावमें आधुनिक पत्रकार एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता।

घण्टों बैठकर, विचार कर-करके एक-एक शब्द जोड़ने और वाक्यकी रचना करनेका अवसर उसे कहाँ मिलता है? साप्ताहिक पत्रोंके लेखकोंको कुछ समय मिल भी जाता है, मासिक पत्र-पत्रिकाओंमें लिखनेवालोंको काफी अवकाश प्राप्त हो जाता है, पर दैनिक पत्रोंके उत्तरदायित्वका निर्वाह तथा उनकी आवश्यकताकी पूर्ति धीरे-धीरे काम करके नहीं की जा सकती। प्रतिक्षण जिस जगत्का पट परिवर्तित हो रहा है, जिसका वर्तमान भूतमें और भविष्य वर्त-मानमें पलक मारते पलटता चला जा रहा है उसका चित्रण करनेवालेकी लेखनीकी गति कैसी होनी चाहिये? वह चले, पत्रकारकी दृष्टि और मनके वेग-के साथ चले तभी वह सफलता प्राप्त कर सकता है। पर लेखनीके इस लाघव-में ओज हो, स्फूर्ति हो, जीवन-सञ्चार करनेकी शक्ति हो, भावोंको अभिव्यक्त करनेकी क्षमता हो और अपूर्व कल्पनाओं तथा गूढ़ विचारोंको उसी प्रकार शब्दोंमें चित्रित कर देनेकी सामर्थ्य हो जिस प्रकार चित्रकारकी तूलिकामें होती है। पत्रकार निराधार, अस्फुट, अस्पष्ट, असत्य और गलत बात लिखकर अपने अस्तित्वको खतरेमें डाल सकता है, फलतः उसका एक-एक शब्द नपा-तुला, साधार, प्रौढ़ और शिष्ट होना चाहिये। व्यर्थकी भूमिका और वितण्डाके लिए स्तम्भोंमें स्थान ही कहाँ है? जो कहना है वह तात्विक हो, मौलिक हो, अभिनव हो और मुख्य विषयके रूपमें अपना ही स्पष्टीकरण कर रहा हो।

पत्रकार आलोचक भी होता है। वह केवल पत्र-पत्रिकाओं या पुस्तकोंकी ही आलोचना नहीं करता और न केवल चित्रपटों, रङ्गमञ्चपर अभिनीत नाटकों

और नृत्योंकी ही आलोचना करता है, वह राष्ट्रीय जीवनकी धाराका आलोचक है। समाजके जीवनमें प्रस्तुत अनेक वाञ्छनीय और अवाञ्छनीय तत्त्वों, अन्धविश्वासों, रूढ़ियोंका भी आलोचक होता है। वह जगत्की गतिविधिको न केवल उसके प्रकृत रूपमें उपस्थित कर देता है वरन् उसकी आलोचना, समीक्षा, कार्य-कारण-शृंखलाका स्पष्टीकरण भी करता है। साथ ही वह भविष्यवक्ता भी है। जो है अथवा जो हो रहा है उसका परिणाम क्या होगा, इसपर प्रकाश डालना भी उसका काम होता है। जिस जनताका वह सेवक है उसे न केवल तमाम रहस्यों और तथ्योंका ज्ञान कराकर सन्तुष्ट होता है अपितु उसे परामर्श भी देता है कि प्रश्न-विशेष और स्थिति-विशेषके प्रति वह कैसा भाव ग्रहण करे तथा उसका आचरण कैसा हो। इस अर्थमें वह जनताका सहायक, मित्र, परामर्शदाता तथा कुछ सीमातक पथप्रदर्शक भी होता है। पर इतनेसे भी वह तुष्ट नहीं होता, एक पग और आगे बढ़कर जनहितकी रक्षामें भी संलग्न होता है। जब कभी साधारण जनवर्गका हित और अधिकार खतरेमें पड़ता है, जब शासकों, सत्ताधारियों, वर्गहितके पुजारियोंकी ओरसे सामूहिक हितका निर्दलन होने लगता है तब वह अपनी लेखनीके द्वारा उन्हें ललकारता है, उनका अवरोधन करता है और आवश्यक हो तो उनके कोप और आघातको अपने वक्ष:स्थलपर ग्रहण करनेके लिए आगे बढ़ता है। सामान्यतः वह न्यायका, सत्यका, मानवताका, शिष्टताका आराधक और अनाचार, शोषण, दासता और स्वार्थपरता तथा पाखण्डका शत्रु होता है।

विचार कीजिये कि जिस पत्रकारका धर्म इतना व्यापक होगा, जिसके कर्तव्यकी सीमा इतनी विस्तृत होगी, उसकी लेखनीपर कितना महान् उत्तरदायित्व होगा। हम उसी उत्तरदायित्वकी ओर लेखक बननेकी आकांक्षा करनेवालोंका ध्यान आकृष्ट करते हुए इस अध्यायको समाप्त करना चाहते हैं। लेखनीकी शक्तिकी सत्ता स्वीकार की गयी है। आज भी कहावत कही जाती है कि वह खड्गसे अधिक बलवती है। खड्गने मानव-जीवनके इतिहासकी धाराको सदा प्रभावित किया है। कभी-कभी वह अपनी रुचिके अनुकूल उसे मोड़ देनेमें भी समर्थ हुआ है। पर लेखनी तो खड्गधारियोंका बलक्षय करनेमें और कायरोंमें खड्ग धारण करनेकी शक्ति उत्पन्न करनेमें समर्थ होती रही है।

मस्तक नीचा करके प्रसुप्त प्रियतमके मुखकमलपर अपने अधरोंसे चुम्बन अङ्कित करनेवाली मुग्धाकी भाँति यह लेखनी कागजपर शब्दाङ्कन करके जीवनको क्या उससे कहीं अधिक प्रभावित नहीं करती रही है ? मानवजीवनका उत्त-मांश क्या लेखनीकी जिह्वासे प्रवाहित होकर मानवताका वरन नहीं करता रहा है ? जीवनके आदर्शोंकी प्रतिष्ठा मनुष्य सदासे करता आया है जिसकी भित्तिपर मानवताका भव्य भवन क्रमशः निर्मित होता गया है। पर विचार कीजिये कि उन आदर्शोंकी रूपरेखा खींचकर युग-युगके लिए उनको स्थायित्व प्रदान करनेका काम किसने किया है ? किसने उन्हे वह अविनश्वर ज्योतिःप्रदान की है जो सदासे एकके बाद दूसरी पीढियोंका पथप्रदर्शन करती रही है ? क्या यह कार्य लेखनीने ही नहीं किया है ?

मानव मस्तिष्कने समय-समयपर शाश्वत सत्योंका दर्शन पाया है। उसने अनन्त सौन्दर्यकी झलक यदाकदा देखी है। वह प्रकृतिके मूलमें गूढ और प्रच्छन्न रूपसे स्थित अविनश्वरका आभास न जाने किन दिव्य उत्प्रेरणाओंके वशीभूत होकर पाता रहा है। वह उनके आधारपर जीवनकी गुत्थियोंको समझनेके लिए, उसका मूल्याङ्कन करनेके लिए सनातन नैतिक नियमों और आदर्शोंकी स्थापना करनेमें सफल होता रहा है। यही उसके विकासका प्रवाह रहा है। मानवकी उन सफलताओं, साधनाओ और अनुभूतियोंको लेखनीने ही सदा मूर्त रूप प्रदान किया है। उसने मनुष्यकी ससीमता, दुर्बलता और असफलताको भी प्रकाशित करके उसे अपनेको समझनेमें साहाय्य प्रदान किया है। अनन्त काल प्रवाहमे बही चली आती यह विभूति, हमारी यह विरासत, लेखनीके द्वारा ही हमे मिलती रही है। पत्रकार इसी लेखनीको ग्रहण करनेका साहस करता है। उसके शब्द हजारों नर नारियोंके जीवनको प्रभावित करते हैं। वह प्रभाव बुरा भी हो सकता है और भला भी। यदि लेखनी मानवताके विकास-पथको प्रशस्त करनेके लिए चलती है, यदि जीवनको उसके वर्तमान स्तरसे उच्चतर स्तरकी ओर ले जाती है, यदि मानवको मानव बनानेमें सहायक होती है, यदि हमारे हृदयस्थ वन्य-पशु-भावोंको परिमार्जित, परिष्कृत और सन्तु-लित तथा संयमित करती है तो अपनी सनातन परम्पराका निर्वाह करती है। यदि वह विकल और पथ-भ्रष्ट मानवताका पद-निदर्शन करती है, अनाचार

और स्वार्थकी आगमें जलनेवाले उत्पीड़ित जनको आशा, उत्साह और शुभ भविष्यका सङ्केत प्रदान करती है तो उसने अपने अस्तित्वकी सार्थकता सिद्ध कर दी। पर यदि उसका उपयोग हेय और तुच्छ, लोलुप तथा वासनामय भावोंका प्रजनन करनेमें, मानवके विकृतांशको उत्तेजित करनेमें, सत्य, सौन्दर्य और आदर्शोंका मूलोच्छेद करनेमें होता है तो लेखक मानव-प्रगतिके मार्गको भ्रष्ट कर देनेका अक्षम्य अपराध करता है। वह अपने पवित्र कर्तव्यकी अवहेला और महान् उत्तरदायित्वका विसर्जन कर देता है। लेखनी उठानेवालेका ध्यान हम इसी कारण उसके आदर्श और उत्तरदायित्वकी ओर आकृष्ट करके मौनावलम्बन कर लेते हैं।

व्यवस्थापन

व्यवस्थापनका क्षेत्र यद्यपि पत्रकार-कलासे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखता पर पत्रके जीवनसे उसका निस्सन्देह घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्प्रति किसी पत्रका सञ्चालन बहुधनसाध्य व्यवसायके रूपमें ही सम्भव रह गया है। आधुनिक पत्रोंका, विशेषतः दैनिक पत्रोंका जो रूप हो गया है और उनके सफल सञ्चालनके लिए जिन साधनोंकी आवश्यकता उत्पन्न हो गयी है वे बिना अपार पूँजीके एकत्र नहीं किये जा सकते। पूर्वके पृष्ठोंमें पत्रोंके स्वरूप और उनके सञ्चालन के प्रकारपर हमने संक्षेपमें प्रकाश डाला है। पाठकोंको स्मरण होगा कि इंग्लैण्ड और अमेरिकाके पत्रोकी चर्चा करते हुए हमने लिखा है कि आज उनमें लाखोकी पूँजी लगी हुई है। पूँजीपतियोंने अपना धन केवल जन हित, देश-हित या समाज-सेवा और साहित्य-सेवाकी पुनीत भावनासे प्रेरित होकर नही लगाया है; उन्होंने वर्तमान जगत्के आधुनिक जीवनमें पत्रोको लाभकर व्यवसायके रूपमे देखा और धन कमानेके इस नये साधनका उपयोग किया। इसमें उन्हे कैसी विलक्षण और अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई इसका भी वर्णन हम कर चुके हैं। बड़ी-बड़ी कम्पनियोंने लगातार वर्षोंतक अपरिमित लाभ उठाया, अपने हिस्सेदारोंको मुनाफेकी गहरी रकमें बाँटीं और पत्रोको आयी हुई नयी कामधेनुके रूपमें पाकर उनका सम्पूर्ण व्यवसायीकरण कर डाला। धन कमाना उनका एकमात्र लक्ष्य बन गया। पत्रोंकी उपयोगिता और आदर्शकी उपेक्षा कर, जनहितके हिताहितको भूलकर, पत्रकारीके पवित्र लक्ष्यको भ्रष्ट करके भी धन कमानेका प्रयत्न किया जाने लगा।

क्रमशः आज पत्र उत्तम, लाभकर सम्पत्तिके रूपमें अवतीर्ण हो गये हैं। एक ओर तो यह हुआ और दूसरी ओर हमारा आधुनिक जीवन और उसकी आवश्यकताओंने भी पत्र-सञ्चालन-कार्यको व्यवसाय बननेके लिए बाध्य किया। पत्रोके बिना आजकी दुनिया चल नही सकती। वह समाजके जीवनमें मिलकर उसका एक अङ्ग बन गया है। सभ्यताके विकासने मनुष्यके जीवनमें इतने

कमानेका यत्न करेगा ही। फलतः पत्रसञ्चालनमें व्यवसायवादकी सृष्टि हो गयी। आज ये पूँजीपति अपने पत्रोंको अपनी सम्पत्तिके रूपमें देखते हैं अतएव उनकी व्यवस्था अपने हितकी दृष्टिसे करनेके लिए व्यवस्था-विभागकी स्थापना करनेको बाध्य हुए हैं। पत्रोंके जीवनमें इस व्यवस्था-विभागका अधिकार और प्रभाव दिन दिन बढ़ता जा रहा है। एक समय था जब पत्रकार और सम्पादकीय विभाग न केवल प्रमुख था अपितु पत्र-सञ्चालनका सारा अधिकार भी सम्पादकोंके हाथोंमें था। आज यह बात नहीं रह गयी है। सम्पादकीय विभागके हाथोंमें व्यवसायका अधिकार तो रहा ही नहीं उसकी प्रमुखता बाध्यरूपसे बनी रहनेपर भी वस्तुतः बाकी नहीं रही। आज पत्र-कार्यालयमें, पत्रके सञ्चालनाधिकारके क्षेत्रमें उसका स्थान गौण हो गया है। व्यवस्थापक ही सर्वेसर्वा हो गया है। इस व्यवसायवादने प्रबन्ध-सम्पादकके नामसे जिस पदकी रचना की है उसका मुख्य लक्ष्य व्यवस्था-विभागके अधीन सम्पादकीय विभागको भी ला पटकनेके सिवा और कुछ नहीं है। प्रबन्ध-सम्पादक सम्पाकीय विभाग और व्यवस्था-विभाग दोनोंका मुखिया होता है और दोनोंपर उसका अधिकार समानरूपसे स्थापित रहता है।

प्रबन्ध सम्पादककी व्यवस्थामें पत्रकार होनेके नाते हम जो दोष देखते हैं उसपर तो आगे विचार करेंगे पर यहाँ इतना स्वीकार करना ही होगा कि आधुनिक पत्रोंके सञ्चालन कार्यकी जटिलता अनिवार्य रूपसे व्यवस्था-विभाग और व्यवस्थापककी अपेक्षा करती है। पत्रके जीवनके समस्त अङ्गोंको सुचारु रूपसे सक्रिय बनाये रखनेके लिए यह विभाग और उसका एक अधिष्ठाता आवश्यक हो गया है। कोई सम्पादक सम्पादनका कार्य करते हुए न तमाम आवश्यक प्रबन्धोंकी तफसीलमें जा सकता है और न प्रकृत्या वह तरह तरहके असङ्गत कामोंमें पड़नेकी इच्छा करेगा। विज्ञापनकी दर क्या हो, कहाँसे विज्ञापन प्राप्त किये जायँ, आय व्ययका चिट्ठा ठीक है अथवा नहीं, हानिलाभका लेखा क्या है, कहाँ अधिक अपव्यय हो रहा है, कहाँ मितव्ययताकी आवश्यकता है, दिन प्रतिदिनकी बिक्रीसे आयी रकम ठीक जमा हो रही है या नहीं, कागज, स्याही आदिका स्टाक खत्म तो नहीं हुआ, समयमें नये स्टाकका आर्डर भेजा गया या नहीं, पत्रकी प्रतियोंको बेचनेकी व्यवस्था ठीक है या नहीं, ग्राहकसंख्या

कैसे बढायी जाय, प्रेस-विभाग, कम्पोजिङ्ग-विभाग, टाइपफाउण्ड्री-विभाग, विज्ञापन-विभाग, कमीशन-विभाग, बिक्री-विभाग आदि अनेक आवश्यक क्षेत्र सफलतापूर्वक काम कर रहे है या नहीं, व्यावसायिक दृष्टिसे पत्रमें किन बातोंका सुधार किया जाना चाहिये, अधिकसे अधिक लाभ किस प्रकार कमाया जा सकता है, आदि अनेक प्रश्न हैं जिनका निपटारा करनेके लिए विशेष विभाग और विशेष गुण सम्पन्न व्यक्तिकी आवश्यकता अनिवार्य है।

किसी सम्पादकको इन बातोंमें न रुचि हो सकती है, न इनका ज्ञान हो सकता है और न उसे अवकाश मिल सकता है कि अपना समय इधर लगाये। वह स्वयं पत्रके सम्पादकीय कार्यों तक ही सीमित रहना चाहेगा और उन्हींमें अपनी शक्ति लगायेगा। पर पत्रका जो व्यावसायिक अङ्ग है उसके लिए व्यवस्था-विभाग और योग्य व्यवस्थापक नितान्त आवश्यक है। इस युगमें जब पत्रोंकी परस्परकी प्रतियोगिता विकराल रूप धारण कर चुकी है, जब उसका व्यवसायवाद अपना स्थान जमा चुका है और जब बिना व्यावसायिकताको अपनाये पत्र अपने अस्तित्वकी रक्षा नहीं कर सकते तब व्यवस्था-विभागके बिना काम चल ही नहीं सकता। हम लिख चुके हैं कि पत्रोंके व्यवसायीकरणके नामसे भी हमें चिढ होती है। इससे हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि पत्रोंका सञ्चालन व्यावसायिक आधारपर होना ही नहीं चाहिये। जो आजकी स्थितिसे परिचित हैं वे आदर्शवादी होते हुए तथा पत्रोंमें व्यवसायवादके प्रवेशको अवाञ्छनीय मानते हुए भी इतना जानते हैं कि एक सीमा तक उसे अपनाये बिना पत्र जीवित ही नहीं रह सकते। फलतः व्यावसायिक ढङ्गसे पत्रका सञ्चालन हमारी दृष्टिमें आपत्तिजनक नहीं है। हमारा विरोध तो उस नग्न व्यवसायवादसे है जो पत्रोंको केवल धनलालसाकी पूर्तिका साधन बनाना चाहता है। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि पत्र मुख्यतः जनताके सेवक हैं, उनपर नैतिक उत्तरदायित्व है जिसका निर्वाह करना उनका प्रथम कर्तव्य है। ऐसा करते हुए आवश्यक व्यावसायिकताको अपनाना हो तो अपनाना ही चाहिये।

परिमित अर्थमें ही सही, जब पत्रका व्यावसायिक अङ्ग भी है तब सफलता व्यवस्थापकपर और उसके विभागकी उपयुक्तता, [illegible]

और सुचारु कार्यपद्धतिपर ही अवलम्बित है। अतएव यह स्पष्ट है कि किसी समाचारपत्रके व्यवस्थापकका पद कार्यगुरुता और उत्तरदायित्वकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है। केवल पूँजी या धनके व्ययसे पत्रका निर्माण नहीं किया जा सकता। सफल पत्रकी स्थापना दुरूह कार्य है जिसके लिए पूँजी तो आवश्यक होती ही है, पर उसकी व्यवस्था करनेवालेकी योग्यता अपेक्षाकृत उससे भी कहीं अधिक आवश्यक है। उपयुक्त और योग्य व्यवस्थापकके अभावमें, प्रबन्धकी कमीके कारण न जाने कितने पत्र पर्याप्त पूँजीका आधार रहते हुए भी कालके मुँहमें समा गये। निर्विवाद रूपसे यह सिद्ध है, और अनुभव भी इसका समर्थन करता है कि सफलताके साथ उपयुक्त प्रबन्धने डूबते हुए पत्रोंको पुनः उज्जीवित कर दिया है। फलतः व्यवस्थाके महत्त्वको देखते हुए हम कह सकते हैं कि उसके विषयमें लिखनेके लिए स्वतन्त्र ग्रन्थकी आवश्यकता होगी और लिखनेवाला भी ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जिसे पत्र व्यवस्थापनका अनुभव हो। पर इन पृष्ठोंमें विषयका पत्रके जीवनसे गहरा सम्बन्ध होनेके कारण उसकी सामान्य-रूपरेखा अङ्कित कर देनेका प्रयत्न किया जायगा।

पत्रके कार्यका क्षेत्र विविध-अङ्गी होता है। पूर्वके पृष्ठोंसे ज्ञात हो गया होगा कि छपाई, कम्पोजिङ्ग, टाइपकी ढलाई, समाचार-सङ्कलन, लेखन, सम्पादन, प्रूफ-संशोधन, विज्ञापन-सग्रह, पत्रकी बिक्री, विज्ञापन और बिक्रीसे होनेवाली आय और होनेवाले व्ययका लेखा, आदि अनेक विभाग मिलकर किसी पत्रका निर्माण करते हैं। उपयुक्त प्रबन्धका सफल आयोजन करनेके लिए आवश्यक हो जाता है कि विभिन्न विभाग पृथक् रहते हुए भी परस्पर सम्बद्ध रहे, एक दूसरेसे जुडे रहे और सामूहिक प्रबन्धकी दृष्टिसे सञ्चालित हो। व्यवस्थापक वास्तवमें वह केन्द्रविन्दु है जहाँसे विभिन्न कड़ियाँ आगेको बढ़ती हैं पर मूलत' एक स्थानपर ही मिली रहती हैं। सम्पादकीय विभागके विभिन्न विभागोंको एक स्थलपर मिलानेका काम जैसे सम्पादक करता है वैसे ही पत्रके जीवनके समस्त अङ्गोंका समावेश व्यवस्थापकमें होता है। कोई भी विभाग अपना कार्य कर अपनी जिम्मेदारी पूरी करता हुआ समझेगा पर केवल उसका कार्य पत्र-प्रकाशनके लिए पर्याप्त नहीं होता। उदाहरणार्थ सम्पादकीय विभागको ही ले लीजिये जो सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट विभाग माना जाता है—समाचारका

सङ्कलन, मतप्रकाश, सम्पादन और प्रकाशनीय लेखों आदिका संशोधन करके पत्रस्तम्भोंके लिए आवश्यक उपकरण तैयार कर देना, कापियाँ भेज देना, कम्पोज हुई कापियोंका प्रूफ-संशोधन करके पत्रका मेक-अप कर देना। क्रमबद्ध हुए स्तम्भोंका फर्मा बाँधकर जहाँ तैयार हुआ वहाँ सम्पादकीय विभागका कार्य और उत्तरदायित्व समाप्त हुआ।

तदनन्तर प्रेस-विभागका कार्य आरम्भ हुआ। पत्र छपकर बाहर आया, प्रेसविभागका कार्य समाप्त हुआ। अब 'सरकुलेशन-विभाग'—बिक्री-विभाग—का काम आरम्भ हो गया। इसी प्रकार एकके बाद दूसरे विभाग काम करते हैं पर ग्राहकके हाथमें पहुँचा हुआ पत्र अपने उस रूपको समस्त विभागोंके सम्मिलित कामके फलस्वरूप ही प्राप्त करता है। एक ऐसी कड़ीका होना आवश्यक है जो विभिन्न लड़ियोंको परस्पर मिलाये रखे और व्यवस्थित ढङ्गसे कामका सञ्चालन करे। व्यवस्थापक वस्तुतः यही कड़ी है। उसे सबपर दृष्टि रखनी होती है क्योंकि सबके लिए वही जिम्मेदार है। समयसे सब विभाग अपना काम पूरा न कर दें तो पत्र अपने निर्धारित समयपर प्रकाशित नहीं हो सकता। समयका मूल्य तो सर्वत्र होता है पर दैनिक पत्रोंके लिए उसका जितना महत्त्व है उतना कदाचित् ही किसीके लिए होगा। विलम्ब न केवल बुरा है पर पत्रोंके लिए तो स्पष्टतः खतरनाक है। दो, चार या दस मिनटके फेरफारसे हजारों रुपयेका नुकसान हो जा सकता है। डाक छूट जायगी, ग्राहकोंके हाथमें दूसरे पत्र पहुँचे दिखाई देंगे और पत्रकी प्रतिष्ठाको गहरी ठेस पहुँचेगी। दो-चार बार इसी प्रकार विलम्ब हुआ तो पत्रकी वह बदनामी हो जायगी जो उसे ही ले डूबेगी, क्योंकि कोई ऐसे पत्रका ग्राहक होना पसन्द न करेगा जो सदा देरसे मिलता है।

फलतः पत्रोंके जीवनके लिए समयका भारी मूल्य होता है और व्यवस्थापकका पहला काम यह होता है कि प्रत्येक विभागसे उसका पूरा काम निर्धारित अवधिके भीतर करा सके। एक-एक विभाग और एक-एक कार्यकर्तापर उसकी दृष्टि रहती है। किसके जिम्मे कौनसा काम है, कौन अपने काममें ढिलाई कर रहा है आदि तमाम बातोंपर वह निगाह रखता है। व्यवस्थापक स्वयं निर्धारित समयसे कार्यालयमें आ जाता है और अपने अधीन समस्त

कर्मचारियोंको समयसे आ जानेके लिए प्रोत्साहित करता है। उच्चाधिकारी यदि अपने कर्तव्यकी पूर्तिमें मुस्तैद है तो उसके अधीनस्थ भी कर्तव्यशील होंगे। लापरवाह और स्वयं कामकी अवहेलना करनेवाला अपने मातहतोंसे पूरा काम करानेमें कभी समर्थ नहीं होता। कार्यालयमें व्यवस्थापक अपना काम अपनी डाक देखनेसे आरम्भ करता है। दैनिक पत्रोंमें डाककी अवहेला कभी नहीं की जा सकती। न सम्पादक और न व्यवस्थापक ही डाक देखनेके कामको टाल सकते हैं। इतना भी नहीं टाल सकते कि 'दूसरे काम करनेके बाद अन्तमें देखेंगे।' पत्र सम्बन्धी वे तमाम बातें जो सम्पादकीय विभागके अलावा हैं व्यवस्थापकके नामसे ही डाक द्वारा भेजी जाती हैं। कहीं विज्ञापनकी छपाईका चेक आया है, कहीं पत्रके बिक्री-एजेण्टोंका आर्डर है, कहीं नये एजेण्टों-की दरखास्त है, कहीं नया विज्ञापन है, कहीं विज्ञापन प्राप्त करनेके लिए कनवेसिङ्ग करनेवालोंकी रिपोर्ट है जो कुछ बातोंमें व्यवस्थापकके आदेशकी प्रतीक्षा करते हो सकते हैं। ऐसी बातें हो सकती हैं जिनका आज ही सायङ्काल निकलनेवाले पत्रसे सम्बन्ध हो सकता है, ऐसे आदेश देने हो सकते हैं जिनमे विलम्ब हो जानेसे सैकड़ों रुपयेकी हानि हो जा सकती है। अतः व्यवस्थापक डाक देखनेसे ही काम आरम्भ करेगा। आयी हुई चिट्ठियोको छाँटेगा और उचित आदेशके साथ जिनका जिस विभागसे सम्बन्ध है उन्हे वहाँ भेज देगा।

जिसपर व्यवस्था-विभागका उत्तरदायित्व हो वह डाककी उपेक्षा न करनेका निश्चय दृढतापूर्वक कर ले। डाकका काम खत्म करनेके बाद व्यवस्थापकको तत्काल अपने विभिन्न विभागोंकी रिपोर्ट देखनी चाहिये। सुव्यवस्थित पत्रोंके कार्यालयोंमें चतुर व्यवस्थापक नियम बना देता है कि प्रत्येक विभागका अधिकारी गत दिवसकी अपने विभागकी रिपोर्ट लिखकर उसके टेबिलपर रख दे। प्रेसमें ठीक कितने बजे फर्मा पहुँचा और छपाईका काम सुचारु रूपसे ठीक किस समय समाप्त हो गया, यदि कोई गड़बड़ी या विलम्ब हुआ तो उसका कारण क्या है और कौन उत्तरदायी है, प्रेस-विभाग इसकी रिपोर्ट दे देगा। कम्पोजिङ्ग-विभाग भी अपनी रिपोर्ट देगा। ठीक किस समय सम्पादकीय विभागने कापियाँ पूरी कीं, फर्मा किस समय

प्रेसमें भेजा गया, विलम्ब तो नहीं हुआ, हुआ तो क्यों हुआ? इसी प्रकार प्रत्येक विभाग अपनी-अपनी रिपोर्ट तैयार करके व्यवस्थापकके टेबिलपर रख देता है। डाक समाप्त करके अब व्यवस्थापक उन रिपोर्टोंपर दृष्टि डालेगा। सब तफसीलकी बातें उसके सामने आ जायँगी। जहाँ जो गड़बड़ी हुई है या हो रही है उसकी जाँच की जायगी, जिससे भूल हुई है उससे जवाब तलब किया जायगा, प्रबन्धकी जो कमी दिखाई देगी पूरी की जायगी।

यह कार्य समाप्त करके व्यवस्थापक एक बार सारे कार्यालयका निरीक्षण कर आयेगा। कम्पोजिङ्ग-विभागसे लेकर सम्पादकीय विभाग तक क्रमशः घूमकर देख लेगा कि सब जगह काम आरम्भ हो गया है और सुचारुरूपसे चल रहा है। अब व्यवस्थापकको अपने खजान्चीकी ओर दृष्टि डालनी चाहिये। दैनिक पत्रोंमें प्रतिदिन काफी रकम आती है और खर्च होती है। खजान्चीके द्वारा लेन-देन होता है। आय-व्ययका लेखा, बचतकी रकम, सब उसीके पास रहती है। व्यवस्थापक उसके दिन-प्रतिदिनके कागजको देखनेमें कभी न चूके। सावधानी और सतर्कताके साथ व्यवस्थापकको देख लेना चाहिये कि उसका यह विभाग प्रतिदिनका सारा हिसाब-किताब साफ और कागज-पत्र पूरी तरह लिखकर तैयार रखता है या नहीं। जिन पत्रोंके सन्चालनमें लाखों रुपयेकी पूँजी लगी हुई है, जहाँ अपव्यय होनेकी सम्भावना भी कम नहीं है, जहाँ प्रतिदिन सहस्रों रुपयेका आय और व्यय हो रहा है वहाँ हिसाब-किताबके प्रति तनिक भी उपेक्षा भयावह हो जा सकती है। यह काम समाप्त करते-कराते पत्रके प्रकाशित होनेका समय आ जाता है। व्यवस्थापकको अब यह फिक्र होती है कि उसका पत्र समयसे प्रकाशित हो जाय, बाहरी डाकका बण्डल बँधकर निकल जाय और स्थानीय एजेण्टोंके पास बिक्रीके लिए कापियाँ समयसे पहुँच जायँ। सब विभाग अपने-अपने काममें संलग्न रहते है पर व्यवस्थापककी एक दृष्टि घड़ीपर और दूसरी समस्त विभागोंके कार्यपर रहती है। कहीं विलम्ब न हो जाय, कहीं कोई गड़बड़ी न हो जाय, कोई दुर्घटना न हो जाय, ऐन मौकेपर कहीं मशीनका कोई पुरजा जवाब न दे जाय, आदि बातोंकी चिन्ता उसे घेरे रहती है। जबतक डाक नहीं निकल जाती उसे चैन नहीं पड़ता।

अति संक्षेपमें व्यवस्थापकके वँधे-वँधाये कामकी चर्चा हमने कर दी। पर हमारा यह अर्थ नहीं है कि उसे इतनेसे ही छुट्टी मिल जाती है। ये काम तो साधारण हैं जिनके लिए किसी असाधारण योग्यताकी आवश्यकता नहीं है। निर्धारित पथ है और जिसे भी चलनेके लिए कह दीजिये साफ-सुथरे मार्गपर आँखें मूँदे चला जायगा। यदि व्यवस्थापकको इतना ही करना हो तो कोई वात नही है पर उसका महत्व और उसकी विशेषता कोल्हूका वैल होनेमें नहीं है। उसमें वह आन्तरिक चेतना, सूझ, प्रवन्ध करनेकी योग्यता तथा व्यावसायिक वुद्धि, कल्पनाशीलता और दूरदर्शिता होनेकी आवश्यकता है जो न किसीको केवल सफल व्यवसायी वनाती हो अपितु समर्थ प्रवन्धक भी वना सकती हो। किसी व्यवस्थापकमें व्यवसायी और प्रवन्धक होनेके दोनों गुणोंकी नितान्त आवश्यकता है। इसके साथ-साथ उसे यदि पत्रके आदर्श और उसके नैतिक कर्तव्य और उत्तरदायित्वका भान भी हो तो फिर क्या पूछना है। प्रवन्ध, व्यवसाय और पत्रादर्श तथा पत्रके उच्च कर्तव्यके ज्ञानसे समन्वित व्यवस्थापक किसी पत्रके लिए रत्न है, उसका प्राण है।

व्यवस्थापकके इन तीनों गुणोंकी विवेचना भी सक्षेपमे कर ली जाय। प्रवन्धक होनेका अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि कोई विभिन्न विभागोंकी रिपोर्टोंको देख लिया करे और आवश्यक उलट-फेर या जवावतलवीको इदमित्थं मान ले। सफल प्रवन्धकमें कोई ऐसी वात होती है, उसमें कोई ऐसी आन्तरिक ज्योति होती है जो उसके सारे विभागोंमे अमूर्त होते हुए भी चमकती दिखाई देती है। प्रत्येक कर्मचारी चाहे छोटा हो या वडा, उसके अस्तित्वका अनुभव अनजानते हुए, अप्रत्यक्ष रूपसे करता रहता है। सव भीतर-भीतर किसीके प्रभाव, किसीके रोब, किसीकी उपस्थिति और किसीकी दृष्टिका अनुभव करते रहते हैं और यह अनुभूति उन्हे योग्यता, सफलता और उपयुक्तताके साथ अपने कर्तव्यकी पूर्ति करनेके लिए उत्प्रेरित करती रहती है। प्रवन्धका यह अमूर्त व्यक्तित्व ही किसी कार्यालयकी कार्यक्षमता और सक्रियताका कारण होता है। किसी कार्यालयमें यदि आप पहुँच जायँ तो वहाँके वातावरण, वहाँकी कार्यपद्धति और कर्मचारियोके मुखकी मुद्रा तथा भाव-भङ्गियोंसे ही यह आभास पा जायँगे कि उसका व्यवस्थापक सफल प्रवन्धक

है अथवा नहीं। व्यवस्थापकका प्रथम कर्तव्य अपने इस व्यक्तित्वको सारे क्षेत्रोंपर स्थापित कर देनेकी चेष्टा करना है। चेष्टा करनेका अर्थ यह नहीं कि बात-बातमें शोर मचाकर, अधीनस्थ कर्मचारियोंसे कठोरतापूर्वक व्यवहार कर, अथवा अपना रोब जमानेके लिए विविध प्रकारके उपायोंका अवलम्बन कर आप अपना व्यक्तित्व स्थापित कर सकेंगे। व्यक्तित्व स्थापित होता है उसका जो अपने कार्यको अच्छी तरह जानता है, जिसकी योग्यताका लोहा उसके मातहत माननेको बाध्य होते हैं, जिसकी पैनी निगाहकी शक्तिका अनुभव सब करते हैं और जिसकी सक्रियता, कर्तव्यशीलता, ईमानदारी और परिश्रमशीलतामें कभी रञ्चमात्रकी कमी देखनेका अवसर किसीको नहीं मिलता।

ऐसे अधिकारीकी तूती बोलती है और उसकी आत्मा मानो उसके प्रत्येक मातहतके भीतर प्रविष्ट हो जाती है। 'व्यवस्थापकका काम इतना ही नहीं है कि वह रोज-रोजके कार्योंकी देखभाल मात्र करे अपितु अपने कार्यालयकी कार्यक्षमताको दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक उन्नत करते जानेके उपायोंको सोचना, खोजना और ढूँढकर कार्यान्वित करना भी है। इसके लिए सूझसे, गम्भीर चिन्तनसे, अन्य सुव्यवस्थित कार्यालयोंके उदाहरणोंसे काम लेना चाहिये और सदा इसके उपाय खोज निकालनेके लिए सोचते रहना चाहिये। विभिन्न विभागोंके तमाम विस्तारसे प्रबन्धकका परिचित होना आवश्यक है, यह भी आवश्यक है कि सारी तफसीलपर उसकी दृष्टि रहे पर यह आवश्यक नहीं है कि कार्यालयके सारे कामके बोझको स्वयं अपने ऊपर लादने और सब कुछ खुद करनेकी चेष्टा करे। ऐसी प्रकृतिके लोग जो सब स्वय करना चाहते हैं, किसीपर न विश्वास करते हैं और न किसीपर काम छोडनेकी हिम्मत, वे बुरी तरह असफल होते हैं। उनकी नेकनीयती और परिश्रमशीलताकी प्रशसा की जा सकती है पर उनकी प्रवृत्ति और कार्यपद्धतिको दोषपूर्ण ही मानना होगा। सर्वोच्च अधिकारी यदि अपनी सारी शक्ति और समयका अपव्यय तफसीलकी बातोंको स्वयं पूरा करनेमें कर देता है तो वह कल्पना, बुद्धि और सूझसे काम लेकर अभिनव उपायोंको कैसे खोज सकेगा और कैसे कार्यालयमें क्रमशः उन्नति करते जानेमें सफल होगा ?

अतः व्यवस्थापक अपने अधीनस्थ विभिन्न विभागोंको योग्य और अनुभवी कार्यकर्ताओंके अधीन कर दे ; इन विभाग-अधिष्ठाताओंपर अपने-अपने विभागको चलानेकी जिम्मेदारी डाल दे; सम्भव हो तो अपना भी एक ऐसा सहायक नियुक्त करे जो समयानुसार उसके कामको पूरा करनेका उत्तरदायित्व उठा सके। व्यवस्थापक अपने इन सहायकोंसे निकट सम्बन्ध रखे, उनके कार्योंको देखे, कार्यपद्धतिके विषयमें नीतिका निर्धारण करे, उनका पथ-प्रदर्शन करे और उनकी सहायता करे। इसका अर्थ यह नहीं है कि विभागोंके मुखियोंपर काम छोड़कर व्यवस्थापक निठल्ला बैठा रहे अथवा चैनकी नींद सोनेकी चेष्टा करे। जैसा कि कह चुके हैं, निकम्मे अफसरके मातहत कर्मचारी भी निकम्मे और निष्प्राण ही होते हैं, फलतः व्यवस्थापक स्वय आलसी या कामचोर होकर काम नहीं चला सकता। स्वयं सारी तफसीलकी बातोंसे परिचित होना चाहिये, मशीन और कम्पोजिंग-विभागकी छोटी बातोंसे लेकर सम्पादकीय विभाग तकके सारे कार्योंसे परिचय होना चाहिये। विभागोंके मुखियोंपर काम छोडिये पर सारे कामका तन्तु आपके हाथमें हो, सबपर दृष्टि रहे और आप उसी प्रकार अपने कार्यालयका सञ्चालन करते रहे जैसे पावर-हाउसमें बैठा हुआ व्यक्ति सारे नगरको, एक-एक गली और मकानको, बिजलीके बल्बोंसे प्रकाश पहुँचाता रहता है। वह चाहे तो सारा नगर अन्धकाराच्छन्न हो जाय और चाहे तो गली-गली प्रकाशमयी बनी रहे।

प्रबन्धकी सफलताके लिए व्यवस्थापकका जहाँ दबदबा और रोब होना चाहिये वहीं उसमें अपने सहयोगियोंका प्रेम और सद्भाव प्राप्त करनेकी योग्यताका होना भी आवश्यक है। केवल भयसे कराया गया कार्य कभी-कभी गहरा धोखा दे जाता है। व्यवस्थापक अपनी शिष्टतासे, व्यवहारकुशलतासे, सवेदनशीलता और स्नेहसे अपने कर्मचारियोंके हृदयको प्रभावित कर सकता है। उनके दुःख-सुखकी ओर आप यदि सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि रखें, उनकी भूलोंके लिए आवश्यकतानुसार दण्ड देते हुए भी उनके प्रति उदारताका भाव रखें तथा उनके हितकी रक्षाके विषयमें अपना सतर्क और उत्सुक भाव प्रकट करें तो निस्सन्देह मातहतोंका हार्दिक सहयोग और सक्रिय सहायता प्राप्त होगी। प्रसन्न और तुष्ट कर्मचारी कार्यके सफल सञ्चालनके लिए सदा आवश्यक

होते हैं। यह समझना भूल है कि उन्हें प्रसन्न और सन्तुष्ट करना असम्भव है क्योंकि वे सदा अधिकाधिक पारिश्रमिक पानेके इच्छुक रहते हैं जिसकी पूर्ति करना असम्भव होता है। उचित पारिश्रमिक प्रदान करना तो आवश्यक है ही पर यह कहना गलत है कि उपयुक्त वेतन देनेके बाद भी उन्हे प्रसन्न करनेका कोई मार्ग अधिकाधिक वेतन-वृद्धि करते जानेके सिवा और कुछ नहीं है। मनुष्य पैसेका आकांक्षी होते हुए भी कुछ/और बातोंका मूल्य भी समझता है। स्नेह और सौजन्य, सहानुभूति और सहयोग, उदारता तथा सवेदनशीलतासे काम लेना बिलकुल व्यर्थ ही है इसे वही स्वीकार करेगा जिसे मानव-मनका ज्ञान रत्ती भर भी नहीं है।

अनेक ब्रिटिश और अमेरिकन पत्रोंने अपने कर्मचारियोंकी सहायता और सुविधाके लिए तरह तरहकी योजनाएँ चलायी हैं। पत्रोंने अपने नगर बसा रखे हैं जहाँ कर्मचारियोंके रहनेके लिए मकान है; सिनेमा-भवन, टेनिसकोर्ट, क्लब, नृत्यगृह आदि मनोरञ्जनके साधन प्रस्तुत किये गये है। उनके बच्चोंकी शिक्षाके लिए पाठशालाएँ है, स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए अस्पताल है, उनकी वृद्धावस्थाके लिए अथवा असामयिक मृत्यु या किसी दुर्घटनाकी दशामे बाल-बच्चोंकी परवरिशकी व्यवस्था की गयी है। अधिकतर पत्रोंने बीमेकी योजनाएँ चलायी है जिनमें बीमेकी किस्तको एक-चौथाई अथवा एक-तिहाई रकम कर्मचारीके वेतनसे काट ली जाती है और बाकी कार्यालयकी ओरसे दी जाती है। कहीं-कही प्राविडेंट फंडकी व्यवस्था है। कर्मचारियोंकी तुष्टि और प्रसन्नता तथा उनकी हितरक्षाके लिए की गयी ये व्यवस्थाएँ उनकी कार्यक्षमताको बढानेमे बहुत कुछ सहायक होती हैं। दुर्भाग्यसे भारतीय पत्रोंके प्रभु अभी इधर ध्यान नहीं देते है। हिन्दी-पत्रोंके कर्मचारियोंकी अनवस्थाका हाल न पूछिये। बेचारे सम्पादक तक मौके बे-मौके जब दूधकी मक्खीकी तरह निकाल फेंके जाते है तो छोटे कर्मचारियोंका क्या कहना? हमारे कार्यालयोंमें जो उदासीनता, निष्प्राणता, अस्फूर्ति और अनुत्प्रेरणा दिखाई देती है उसका बहुत बड़ा कारण यह दशा भी है। कर्मचारियोंमे यह भाव उत्पन्न ही नहीं होता कि जिस कामको वे कर रहे हैं वह उन्हींका काम

है, फलतः वेगारमें पकडे गये मजदूरोंकी भाँति काम करते हैं। मुख देखिये तो अजीव मुर्दनी छायी दिखाई देती है।

आवश्यक है कि व्यवस्थापक सफल प्रवन्धके लिए इस जरूरी शर्तको भी अपने ध्यानमें रखे। यदि कर्मचारियोंकी आर्थिक आवश्यकताकी पूर्ति नहीं की जा सकती, उनके हितोंकी रक्षाके लिए कार्यालय उत्तरदायित्व नहीं ले सकता तो कमसे कम सहानुभूति और शिष्ट व्यवहारसे तो वञ्चित नही ही करना चाहिये। इसके लिए अतिरिक्त व्ययकी नहीं अपितु व्यवस्थापककी उचित मनोवृत्ति, व्यवहारकुशलता और इन्सानियत अपेक्षित है।

प्रवन्धकी वातको अब यहीं छोड दीजिये। व्यवस्थापकमें सफल व्यवसायी होनेका गुण भी नितान्त आवश्यक है। पत्रका मालिक व्यवस्थापककी नियुक्ति मुख्यतः अपनी पूँजी और लाभके लिए ही करता है। उसे ही वह अपना प्रतिनिधि समझता है और आशा करता है कि उसके आर्थिक हित और उसके रोजगारकी रक्षामे व्यवस्थापक कोई वात उठा न रखेगा। व्यवस्थापकोंकी दृष्टि भी व्यवसायकी ओर ही मुख्यतः रहती है। फलतः सफल व्यवसायी होनेके लिए उसमे दूरकी दृष्टि और कल्पनाशीलता होनी चाहिये। किस प्रकार पत्रकी विक्री वढे, विज्ञापनसे होनेवाली आय कैसे अधिकाधिक वढ़ती जाय, कैसे प्रतिद्वन्द्वियोंपर विजय प्राप्त की जाय, कैसे अपव्ययका मार्ग वन्द कर दिया जाय, मितव्ययिता किस प्रकार कार्यान्वित की जाय, आदि प्रश्न सतत उसके सामने रहते हैं। इनकी चिन्ता करना, नये-नये प्रभावकर उपाय खोज निकालना उसकी प्रमुख चेष्टा होती है।

पत्रोंकी आयके मुख्यतः दो ही मार्ग हैं—मुख्य आय विज्ञापनसे और फिर पत्रकी विक्रीसे। व्यवस्थापकके लिए आवश्यक होता है अधिकसे अधिक विज्ञापन प्राप्त करना, पर विज्ञापन मिलते है पत्रोंकी विक्रीके अनुसार। पत्रकी जितनी ही अधिक बिक्री होगी विज्ञापनदाता उतनी अधिक संख्यामें प्राप्त होंगे। इस स्थितिमे व्यवस्थापकका मुख्य ध्येय पत्रकी बिक्री बढाना हो जाता है। इसके लिए तरह-तरहके उपाय किये जाते हैं जिनमें कुछ तो स्पष्टतः अनुचित और अनैतिक होते है। 'पत्रोंका व्यवसायीकरण' शीर्षक अध्यायमें हम उपायोंका उल्लेख कर चुके है। पर अनुचित उपायोंके सिवा उचित

उपायोंका अवलम्बन भी किया जाता है। व्यवस्थापक जनताकी रुचि और आवश्यकताका अध्ययन करता है और समझ लेता है कि सम्प्रति वह अपने पत्रोंमें किस प्रकारके समाचार पढ़ना चाहती है, किन प्रश्नोंकी चर्चाका होना अभीष्ट समझती है। फिर सम्पादकीय विभागसे आग्रह करता है कि उन विशेष विषयोंपर ध्यान दे, तत्सम्बन्धी बातोंका प्रदर्शन मुख्य रूपसे करे। यदि व्यवस्थापककी कल्पना सही होती है तो पत्र लोकप्रिय बन जाते हैं और उनकी धूम मच जाती है, चारो ओर उन्हींकी चर्चा आरम्भ हो जाती है और बिक्री बढ़ने लगती है। बिक्रीके साथ साथ विज्ञापनकी आय भी दिन-दिन बढती जाती है।

पर जहाँ व्यवस्थापक आय बढानेमें समर्थ होता है वहाँ बहुधा सम्पादकीय विभागसे उसका सङ्घर्ष आरम्भ हो जाता है। सम्पादक अपने सामने धन कमानेकी प्रवृत्ति नहीं रखता ; वह पत्रकारके आदर्श, जनहितका विचार, उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिकका विवेक छोड़ना नहीं चाहता। व्यवस्थापककी माँग जबतक इन बातोंके प्रतिकूल नही होती तबतक सम्पादक उसके हस्तक्षेपको अवाञ्छनीय अनुभव करते हुए भी पूरी करता चलता है, पर जब बातें इससे आगे बढ़ जाती है तब दोनोंमें खीचातानी आरम्भ हो जाती है। इस आन्तरिक सङ्घर्षका परिणाम अच्छा नहीं होता। सावधान और चतुर व्यवस्थापक तथा बुद्धिमान सम्पादक, दोनों ही इस स्थितिको बचावें, इसीमें पत्रका कल्याण है। व्यवस्थापकको चाहिये कि अपनी व्यावसायिकताका अतिरेक इस सीमा तक न होने दे कि पत्रका कलेवर और लक्ष्य ही भ्रष्ट हो जाय।

बिक्री बढानेके लिए दूसरे उपाय चाहे जितने ढूँढ़ निकाले जायँ पर पाठकोंको प्रलोभन देना, उपहार बाँटना, वासनामयी काम-लिप्सा तथा अन्य कुत्सित भावों और उत्सुकताओंकी शान्तिके लिए तरह-तरहके भ्रष्ट समाचारों, नग्न चित्रों और कहानियों आदिका प्रकाशन करना किसी एककी जेब भले ही भर दें पर जनहितका तो सर्वनाश ही कर देंगे।

बिक्री बढानेके लिए पत्रके वितरणका अच्छा आयोजन भी आवश्यक बात है। समयसे पत्रका पहुँचना और योग्य एजेण्टोंकी नियुक्ति ऐसी बातें है जो बिक्री बढ़ा देती हैं। विदेशोंमे पत्रवितरणके लिए पत्रोंने अपने व्यापक प्रबन्ध

कर रखे हैं। उनकी अपनी मोटरें, मोटर-साइकिलें, ट्रेन, और अब तो हवाई-जहाज तक चलते है जो वण्डलके वण्डल पत्र अनेक एजेण्टों तक पहुँचाते हैं। जहाँ रेलकी सुविधा नहीं है, डाक ठीक समयसे नहीं पहुँचती वहाँ पत्रके कार्यालय अपना प्रबन्ध रखते हैं। इस देशमें अभी इतनी शक्ति नहीं आयी है फिर भी समयसे डाक पकड़ना, विभिन्न जिलोंमें उपयुक्त एजेण्टोंको नियुक्त करना, उन्हे अच्छा कमीशन देना, उनको सुविधाओंका ध्यान रखना, अपने पत्रका प्रचार करना, पत्रकारकलाके स्तरको ऊँचा उठाना, आदि ऐसी वातें हैं जो विक्री बढ़ानेमे सहायक हो सकती हैं। व्यवस्थापक इन वातोंमें अपनी व्यावसायिक बुद्धि लगावे, आदमियोंका चुनाव ठीकसे करे, ऐसे स्थानोंको चुने जहाँ पत्रकी खपत हो सकती हो, कनवेसरों द्वारा कनवेसिंग करावे। दिन-प्रतिदिनके दफ्तरके कार्योंको करते हुए भी उसका मुख्य कर्तव्य इस दिशामें है जिसके लिए सोचने, चिन्तन करने और योजना वनाने तथा उसे कार्यान्वित करनेमें अपना समय लगाना चाहिये।

देशकी जनताकी आवश्यकताओं तथा प्रस्तुत प्रश्नोंको समझनेकी शक्ति और योग्यता यदि हो तो व्यवस्थापक अपने पत्रको लोकप्रिय बनानेमें सफल हो सकता है। उन प्रश्नोंको उठाकर पत्र जनताके सामने आ सकते हैं। देशमें खाद्य-समस्या जटिल हो गयी हो, कहीं भयावनी बाढ़ अथवा प्राकृतिक विपत्तिसे लोग पीडित हों, किसी सरकारी दुर्नीतिके कारण देशके वाजारोंपर सङ्कट आ गया हो तो पत्र इन प्रश्नोंको लेकर आन्दोलन खडा कर दे सकते हैं। व्यवस्थापक यदि जन-जीवनकी गतिका अच्छा ज्ञाता हो, अपने पत्रके स्तम्भोंका अध्ययन सावधानीके साथ करता जाता हो तो ऐसी समस्याएँ झटसे उसकी दृष्टिमें आ जायँगी। सम्पादकीय विभागसे अनुरोध किया जा सकता है कि तत्सम्बन्धी समाचारोंका प्रदर्शन किया जाय और सम्पादकीय स्तम्भ तद्विषयक अपने विचारको दृढता तथा वलके साथ सामने रखनेकी चेष्टा करें। बिक्री बढ़ानेके ये सब उचित प्रकार हैं। शिष्ट मनोरञ्जन, व्यङ्गचित्र, आकर्षक चित्र, संवादोंका समीचीन और समयानुकूल प्रकाशन आदि अनेक प्रकारकी विशेष वातोंका समावेश करके आप अपने पत्रको लोकप्रिय बनानेमे सफल होंगे। दल्लीके 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की विशेषता शङ्करके व्यङ्गचित्र हैं इसे कौन नहीं

जानता ? शङ्कर ऐसा कलाकार जिस पत्रको प्राप्त हो जाय उसके जनप्रिय होनेमें क्या सन्देह है ? हमारे पत्र पत्रकार-कलाकी समस्त आधुनिक विशेषताओंको न जानते हैं और न उन्हे अपनानेके लिए उत्सुक हैं। लकीरका फकीर बने रहना हमारे रक्तमे ही मानो घुल-मिल गया है।

विक्रीके प्रश्नके सिवा विज्ञापनका मामला है। उसकी प्राप्तिके लिए किन उपायोंका अवलम्बन किया जा सकता है यह देखना भी व्यवस्थापकका काम है। अच्छे कनवेसरोंकी नियुक्ति तथा विज्ञापन प्राप्त करनेके बाजार चुनना उसीकी बुद्धिपर निर्भर है। किस प्रकारके और किन पदार्थोंके व्यापारी आपके पत्रमें विज्ञापन छपाना चाहेंगे यह सोच निकालना भी व्यवस्थापकका ही काम है। हिन्दीके दैनिक पत्रोंमें, जिनके ग्राहक अधिकतर मध्यमवर्गके लोग होते है, बहुमूल्य मोटरोंका व्यापारी अपना विज्ञापन प्रकाशित न करायेगा। यदि कोई व्यवस्थापक इस प्रकारके विज्ञापनोंकी प्राप्तिकी चेष्टामें समय और शक्तिका अपव्यय करता है तो हम उसकी बुद्धिको क्या कहें ? तात्पर्य यह कि व्यवस्थापकके लिए विज्ञापनदाताओंकी श्रेणीका निर्वाचन कर लेना मुख्य काम है। फिर उनसे काम पानेके लिए उपयुक्त, योग्य और सफल कनवेसरोंकी नियुक्ति की जाय, उन्हें अच्छा कमीशन दिया जाय और उनकी सुविधाओंकी ओर ध्यान दिया जाय। अपने पत्रका विज्ञापन-विभाग योग्य और समझदार, व्यवसायमें निपुण व्यक्तिके अधीन कर दिया जाय। उसका विभाग सुसङ्घटित हो क्योंकि काम यदि उपयुक्त ढङ्गसे न हो सकेगा तो विज्ञापन देनेवाले भी देना बन्द कर देंगे।

जिस अङ्कके लिए जो विज्ञापन स्वीकार किया जाय वह उसी दिन प्रकाशित हो, वह अङ्क विज्ञापनदाताके यहाँ भेजा जाय, विज्ञापनकी रेट समान हो, एक ही स्थानके लिए किसीसे कम और किसीसे अधिक न वसूल किया जाय, हिसाब-किताब ठीक हो, काममें चुस्ती हो। कनवेसरोंके कमीशनकी अदायगीमें भी दिक्कत न हो, जो शर्तें की जायँ उनका पालन हो। ये बातें ऐसी हैं जो कार्यालयकी कार्यक्षमता ही प्रकट नहीं करतीं अपितु लोगोंके हृदयमें विश्वास भी उत्पन्न करती हैं। कनवेसरोंने क्या काम किया, आगे क्या करें, यह देखना और बताना व्यवस्थापकका ही उत्तरदायित्व है। प्रतिदिन अपने

एजेण्टोंकी रिपोर्ट उसे मिलनी चाहिये और सावधानीके साथ उन्हें उसे आदेश देना चाहिये। जिन व्यापारियोंसे विज्ञापन प्राप्त करनेकी कोशिश की जा रही हो उनके व्यापारकी बातोंको कनवेसर यदि समझ ले तो काममें सफलता प्राप्त होना सरल हो जाता है। अमुक व्यापारी जिन पदार्थोंको बेचता या बनाता है वे किस बाजारमें खपते हैं, उनके खरीदार किस वर्गके लोग हैं, उनके व्यापारकी हालत कैसी है आदि बातोंकी जानकारी होनेपर कनवेसर विज्ञापनदाताको अधिक सरलतासे समझा सकेगा कि उसके पत्रमें विज्ञापन छपानेमें उसका कौनसा विशेष लाभ है। अच्छे व्यवस्थापक विज्ञापनका मसविदा तक तैयार कराकर कनवेसरको दे देते हैं। वे कनवेसर जब विज्ञापन-दाताको नीमराजी कर लेते हैं तब वह मसविदा भी सामने रख देते हैं और अनुरोध करते हैं कि इस ढङ्गके विज्ञापनसे उसका लाभ होनेकी सम्भावना है।

विज्ञापनका मसविदा तैयार करना आसान काम नहीं है। किस प्रकार अधिकसे अधिक आकर्षक और प्रभावकर विज्ञापन बनाया जाय तथा खरीदार सामान खरीदनेके लिए कैसे प्रोत्साहित किया जाय, इन बातोंको जो मसविदा पूरा करता होगा वही अच्छा समझा जायगा। इसकी रचनाके लिए व्यवस्थापक योग्य व्यक्तियोंको नियुक्त कर सकता है। विज्ञापनदाता जब यह देखता है कि विज्ञापनकी सुन्दरतम रचना भी अमुक पत्रका कार्यालय कर देता है और उसे सिवा बिल चुका देनेके और कोई झंझट नहा उठाना है तब वह स्वभावतः अपना विज्ञापन प्रकाशित करनेके लिए अधिक सरलतासे राजी हो जाता है। बहुधा विज्ञापनदाता महीने-महीनेके लिए विज्ञापन दे देते हैं। इन्हें 'सीज़न एड-वर्टाइजमेण्ट' कहते हैं। पत्रोंमें 'चाय'के अथवा 'बीमेकी कम्पनियों'के ऐसे ही विज्ञापन छपते हैं। पत्र भी ऐसे विज्ञापनोंको पसन्द करते हैं क्योंकि एक तो बँधी आय हो जाती है और दूसरे बँधे विज्ञापनोंका ब्लाक बना लेते हैं जिसके फलस्वरूप बार-बारके कम्पोजिंगका व्यय और श्रम बच जाता है। पर चतुर व्यवस्थापक विज्ञापनदाताको प्रसन्न करनेके लिए एक ही विज्ञापनको विभिन्न प्रकारसे प्रकाशित करता है। महीनों तक एक ही ढङ्गकी बातको छापना उसके सारे आकर्षणको खो देता है ; भले ही व्यवस्थापकका खर्च कुछ बच जाय, कुछ सुविधा हो जाय पर विज्ञापनदाताका लक्ष्य उससे पूरा नहीं होता। अगर

अवधि-विज्ञापनोंको दो-दो सप्ताह बाद नये ढङ्ग और रूपरेखाके साथ प्रकाशित किया जाय तो उनकी रोचकता, नवीनता और आकर्षण बना रहता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकारकी बातोंको सोचना, योजनाएँ बनाना और उन्हें कार्यान्वित करके पत्रकी आर्थिक उन्नति करना व्यवस्थापकका कर्तव्य है।

आरम्भमें हमने लिखा है कि व्यवस्थापकका प्रबन्धक होना जितना आवश्यक है उतनी ही आवश्यकता व्यवसायीके गुणोंसे विभूषित होनेकी भी है। इसके साथ ही यदि उसमें आदर्शवादिता और जनसेवा तथा उसकी हित-रक्षाकी भी भावना हो तो इसे सोनेमें सुगन्ध समझना चाहिये। यह सच है कि व्यवस्थापककी नियुक्ति पत्र प्रभु अपने शुद्ध आर्थिक लाभकी दृष्टिसे ही करता है। जो व्यवस्थापक-पदपर प्रतिष्ठित होता है वह अपने मालिकके सामने उत्तरदायी होता है अतएव उसे उसके हित, आज्ञा और आदेश तथा मनके अनुकूल ही चलना पड़ता है। इस स्थितिके कारण पत्रोंके कार्यालयोंमें बहुधा वांछित स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

अधिकारका दावा करता है। वह चाहता है और उचित ही चाहता है कि उसके स्तम्भमें जो प्रकाशित हो वह उसकी स्वीकृतिसे प्रकाशित हो। प्रकाशनीय और अप्रकाशनीयके निर्णय करनेका पूरा अधिकार उसका है। व्यवस्थापक स्तम्भोंमें अपना अधिकार घुसेड़ता है। वह चाहता है कि आर्थिक लाभके लिए जो आवश्यक हो वह अवश्य प्रकाशित हो और उस सम्बन्धमें उसका निर्णय सर्वमान्य हो। पत्रके कार्यालयका यह अन्तःसङ्घर्ष अत्यन्त हानिकारक होता है पर दुर्भाग्यसे यही स्थिति व्यापक रूपसे प्रचलित है। पत्र-मालिकोंका झुकाव स्वभावतः व्यवस्थापकके अधिकारोंका समर्थन करनेके लिए ही होता है। सम्पादक इसे पसन्द नहीं करता। इस सङ्कटसे निकलनेके लिए एक नया उपाय ढूँढ निकाला गया है जो प्रबन्ध-सम्पादकके नामसे विख्यात है। पत्रके मालिकोंने प्रबन्ध और सम्पादन, दोनोंको एक व्यक्तिमें केन्द्रित कर दिया जिसके फलस्वरूप सम्पादकीय और व्यवस्थापन-विभाग एकके ही अधीन हो गये। अब सम्पादकको यह कहनेका मौका नहीं रह गया कि वह व्यवस्थापकके अधीन नहीं है और स्तम्भपर सम्पादकीय विभागका ही अधिकार है। प्रबन्ध-सम्पादक सम्पादक भी है, सारे सम्पादकीय विभागका उच्चाधिकारी है अतएव स्तम्भपर सम्पादकका ही अधिकार बना रहा।

विचारपूर्वक देखिये तो ज्ञात हो जायगा कि सम्पादकीय विभागको अपने अधीन कर देनेके लिए यह एक प्रकारसे पत्र-मालिकोंका षड्यन्त्र है। आज पत्रकारोंके सामने यह अवस्था एक समस्याके रूपमें उपस्थित है और जहाँका व्यवस्थापक अखण्ड मण्डलाकार रजतमुद्राको छोड़ और कुछ देखना नहीं चाहता वहाँ सदा सङ्घर्ष चलता रहता है। परन्तु व्यवस्थापक यदि आदर्शवादी मिल जाय, यदि पत्रोंके लक्ष्यको, उनके नैतिक उत्तरदायित्वको और पत्रकार-जीवनकी पवित्रताको समझनेवाला हो तो स्थितिकी जटिलता बहुत कुछ सुलझ जाती है। वह अपने मालिककी धनपिपासा, अपने व्यवसायवाद और सम्पादकके आदर्शवादमें समुचित सामञ्जस्य स्थापित कर लेनेमें समर्थ होता है। इन सब बातोंकी एक सीमा अपनी समझमें बाँध लेता है और किसीके 'वाद' का अतिरेक होने नहीं देता। फिर वह न केवल प्रबन्ध करनेमें तथा मालिकके आर्थिक हितकी रक्षा करनेमें समर्थ होता है अपितु पत्रकारीको उज्ज्वलता

और परम्पराकी रक्षामें भी सहायक होता है। जिन पत्रोंको सौभाग्यसे ऐसे व्यवस्थापक मिल जाते हैं उनकी सफलता असन्दिग्ध हो जाती है। हमारी कामना है कि भारतका पत्रीय क्षेत्र ऐसे ही आदरणीय व्यवस्थापकोंको अधिकाधिक संख्या पा सके जिसमें हम यूरोपके व्यवसायवाद और धनलोलुपता-वादकी पतित और निकृष्टतम विभीषिकासे अपने पत्रोंकी रक्षा करते हुए मानवताकी सेवा कर सकें।

पत्र और रेडियो

पत्रके महत्व, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनमें उसके स्थान तथा व्यक्तिगत जीवनपर उसके प्रभावके सम्बन्धमें पूर्व पृष्ठोंमें हम बहुत कुछ लिख चुके हैं। जनमतका निर्माण करनेमें और उसे व्यक्त करनेमें पत्रोंका स्थान अक्षुण्ण समझा जाता है और यही कारण है कि आधुनिक सभ्य समाज उसकी उपयोगिता स्वीकार करता है और उसके अस्तित्वका आकांक्षी तथा समर्थक होता है। समाचारोंका संकलन और प्रसार करने, जगत्की घटनाओंपर मत प्रकट करने और विज्ञापनदाताओंको विज्ञापनके लिए स्थान देनेका कार्य आजके दैनिक और साप्ताहिक पत्र विशेष रूपसे करते रहे हैं। प्रस्तुत राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंको देशके सामने रखना और जनहितकी दृष्टिसे उपयुक्त जनमतका निर्माण करना उनके प्रकाशनका मुख्य प्रयोजन रहा है। शासकों तथा सत्ताधारियोंकी रहस्यमय नीति और गूढ़ कुचालोंका परदा फाश करना तथा तद्विषयक बातोंको प्रकाशमें लाकर प्रचार करना भी उनके कार्यक्षेत्रकी परिधिमें रहा है। इन सब बातोंके अलावा जनताका मनोरञ्जन करना, उसे विविध विषयोंका ज्ञान प्रदान करना भी वे अपना ध्येय समझते रहे हैं। इस व्यापक क्षेत्रमे अबतक कोई उनका प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। पत्रोंकी प्रतिस्पर्धा अपने सहयोगी पत्रोंसे भले ही रही हो पर कोई दूसरा साधन नहीं था जो पत्रोसे भिन्न रूप-रङ्ग रखते हुए भी उनका सामना करता।

पर आज इस स्थितिमे परिवर्तन हो रहा है। ऐसे साधन उत्पन्न हो गये हैं जो पत्रोंके का स्वय बहुत कुछ करने लगे हैं। उनकी उपयुक्तता, समर्थता और उनके रोचक स्वरूपको देखकर कहा जा सकता है कि वे क्रमशः उन्नत होते चलेगे और पत्रोंसे उनकी प्रतिद्वन्द्विता अधिकाधिक बढ़ती चलेगी। हमारा तात्पर्य रेडियोसे है। पत्रके प्रतिद्वन्द्वियोमें गणना तो चित्रपटकी भी की जाती है। सिनेमाके द्वारा यूरोप और अमेरिकामें संवाद दिये जाते हैं,

मनोरञ्जन किया जाता है, प्रचार होता है, विज्ञापनदाताओंका विज्ञापन किया जाता है, जनताको विविध-विषयक ज्ञान प्रदान किया जाता है। राजनीतिक दल अपना-अपना प्रचार भी चित्रपटोंके द्वारा करते हैं। एक समय था जब सरकारें या राजनीतिक दल अपने प्रचार और जनतासे अपना समर्थन पानेके लिए सिर्फ पत्रोंपर निर्भर रहते थे परन्तु आज फिल्म बनानेवाली कम्पनियाँ उनकी सहायता करने लगी हैं। कुछ वर्ष पूर्व, जब ब्रिटेनमें सब दलोंकी सम्मिलित सरकार स्थापित हुई थी उस समय एक फिल्म-कम्पनी द्वारा 'राष्ट्रीय सरकार' ने एक चित्र तैयार कराया। उस चित्र द्वारा प्रचार यह कराया जा रहा था कि 'राष्ट्रीय सरकार' के अधीन ब्रिटेनकी आर्थिक उन्नति अकल्पित ढङ्गसे हुई है। फिल्मकी समाप्तिपर बडे-बडे समर्थक राजनीतिज्ञ परदेपर आये और अपनी सफलता, सुनीति और सत्कार्यकी प्रशंसा करते हुए लम्बे-लम्बे व्याख्यान दे गये।

इस प्रकार यद्यपि चित्रपट भी पत्रोका प्रतिद्वन्द्वी हो गया है फिर भी उसे हम अधिक महत्व नहीं दे सकते। चित्रोंके निर्माणमें कुछ कठिनाई होती ही है। देखनेवालोको भी कुछ अधिक व्यय करना पडता है। सब जगह चित्र दिखाये भी नही जा सकते। इन कारणोंसे उनका क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं हो पाता कि पत्रोंपर अधिक प्रभाव पड सके परन्तु रेडियोके आविष्कारने ऐसा नवीन साधन उपस्थित कर दिया है जो आज दैनिक पत्रोंके प्रचण्ड प्रतिस्पर्धीके रूपमे विकसित होता दिखाई दे रहा है। सचेत पत्रकार और पत्र कम्पनियोंके मालिक, दोनों ही रेडियोको आशङ्काकी दृष्टिसे देखते हैं और अपने भविष्यके सम्बन्धमें सशङ्क होने लगे हैं। यूरोप और अमेरिकाके पूँजीपति जो अबतक लाखों रुपया प्रतिवर्ष पत्रोंसे कमाते रहे है और पत्रव्यवसायपर जिनका एकाधिपत्यसा स्थापित हो गया था, आज विशेप रूपसे सचिन्त हो गये हैं। समाचारके सङ्कलन, प्रकाशन और उसपर टीका-टिप्पणी करनेका एकाधिकार जहाँ पत्रोंको प्राप्त था वहीं आज घर घरमें होनेवाली आकाशवाणी उन्हें परेशान कर रही है। वहाँके पत्रोंमें चर्चा होने लगी है, गहरी चिन्ता प्रकट की जाने लगी है और पत्रोंके भविष्य और उनकी रक्षाके लिए अभीसे प्रबन्ध करनेका प्रस्ताव किया जाने लगा है।

रेडियोका क्षेत्र क्रमशः व्यापक होता जा रहा है। एक समय था जब रेडियो केवल सङ्गीतकी कलाका आनन्द सुदूर बैठे व्यक्तिको प्रदान करता था। आज 'ब्राडकास्टिङ्ग' का क्षेत्र बड़ा व्यापक हो गया है। अब तक पत्र जो कुछ छपाईके पत्रोंसे छापकर लिपिबद्ध और पंक्तिबद्ध रूपमें पत्रके स्तम्भो द्वारा पाठकोंको प्रदान करते थे वह सब रेडियो ध्वनि-लहरियोंके द्वारा शून्य नभ-मण्डलका आधार ग्रहण कर आपके कानोंको पिला देता है। पत्र समाचार प्रकाशित किया करते हैं और रेडियो दिनमें एक नहीं, दो नहीं, चार चार, पाँच-पाँच बार सारे जगत्के समाचार सुनाता है। पत्रोंके दो संस्करण होते हैं। भारतके अधिकतर पत्रोंका प्रकाशन एक ही बार होता है। आज प्रात. काल आपने पत्रमें समाचार पढ़ा तो अब चौबीस घण्टे तक धैर्य रखना होगा और कल पुन. इसी समय आपको नये समाचार मिलेंगे। रेडियोने न केवल समाचार सुनाना आरम्भ किया है अपितु जहाँ आप चौबीस घण्टे तक रुकनेको बाध्य होते थे वहाँ वह कुछ घण्टोंमें ही नये नये संवाद देने लगा। पत्रोंका दूसरा काम टीका-टिप्पणी करनेका है। जगत्की घटनाओंकी व्याख्या करना, उनके रहस्यपर प्रकाश डालना, उनके विषयमें अपना मत व्यक्त करना उनकी विशेषता है। रेडियो इस कामको भी करने लगा है। विशेष घटनाओंपर उसके व्याख्याता रेडियोसे सम्भाषण करते हैं, उनकी व्याख्या करते हैं, रहस्यका उद्घाटन करते है और अपनी टीका-टिप्पणीके द्वारा मत प्रकट करते हैं।

पत्र विविध विषयोंके सम्बन्धमें लेखादि छापकर जनताको ज्ञान प्रदान करते थे, रेडियोपर विशेषज्ञ आमन्त्रित किये जाते हैं जो अपने-अपने विषयोंपर लिखे लेख पढ़ते हैं और घर बैठे लोग उनकी वाणी, भाषा और ध्वनिमें उनके मन्तव्यको सुन लेते हैं; पत्र मनोरञ्जनके लिए कहानी, कविता या रङ्गमञ्च तथा चित्रपटकी आलोचनाएँ छापा करते थे; रेडियोने कविता और कहानीको कौन कहे सङ्गीतकी विमोहक स्वर-लहरीके द्वारा हमें अभिभूत करना आरम्भ कर दिया है; घर बैठे आप अच्छेसे अच्छे गायक और गायिकाओंकी कलाका मधुर आनन्द ले सकते हैं, उत्तम कोटिके वाद्यका सुख लूट सकते हैं। रङ्गमञ्चपर होनेवाले अभिनय और चित्रपटकी आलोचना और

विवरणको कौन पूछेगा जब रेडियोके द्वारा सुन्दर फिल्मो तथा अभिनीत हुए नाटकोंके अङ्क उन्हीं अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियोंके स्वरमें आप अपने शयनागारमें लेटे-लेटे सुन लेते हैं। बटन दबा दीजिये और खूँटी घुमा दीजिये। आपका रेडियो काननबाला और स्नेहप्रभा, देविकारानी और अशोककुमार तथा सहगलको आपके शयनमन्दिरमें गानेके लिए वाध्य कर देता है।

घुड़दौड और टेनिसके टूर्नामेण्ट तथा क्रिकेटके मैचकी रिपोर्ट आप पढते थे पर रेडियो दौड़ते हुए घोडोंकी टापकी आवाज तथा क्रिकेटके मैदानमें एकत्र हुए लोगोंके हर्षोल्लासकी ध्वनि तक सुना देता है। छठें जार्ज ब्रिटेनके राजसिंहासनपर बैठे। उनका जलूस लन्दनमें निकला और लन्दनकी सड़कोंपर एकत्र जनसमूहका कलरव तथा जयघोष हम काशी और प्रयाग में सुन रहे थे।

पत्र बाजारका भाव बताते है। व्यापारी उनसे लाभ उठाते हैं। रेडियो भूमण्डलभरकी मण्डियोंमें विविध पदार्थोंके भावोंमें होनेवाले उतार-चढावको प्रति चार घण्टे बाद उन्हे बता देता है। पत्र विज्ञापनदाताको स्थान प्रदान करते थे और रेडियो आज उनके विज्ञापन सुनाता फिरता है। पत्र उन्हींके काम आते हैं जो साक्षर हैं, पढ सकते है और रेडियोकी दृष्टि सम है, साक्षर-निरक्षर सब उससे लाभ उठाते और उसका रस लूटते हैं। चार पैसे या एक पेनी खर्च करके ही पत्र पढा जा सकता है पर इधर प्रमुख नगरियोंके चौराहोंपर, उपवनों और विश्रामगृहोंमें, होटलों और जलपान-गृहोंमें, ट्रेनों और ट्रामवेमें रेडियो बोला करता है और जनता बिना कुछ व्यय किये सार्वजनिकरूपसे सब कुछ सुनती और जानती है। वह समय दूर नहीं है जब जेबी रेडियोके दर्शन होंगे। घड़ीकी भाँति यह यन्त्र लोगोंकी जेबमें पडा रहेगा और चलते-फिरते जब जहाँ जी चाहेगा निकालकर कानोंमें लगा लेंगे और कहीं किसी भारतीय गाँवकी कुटियामें बैठे बैठे लन्दन, न्यूयार्क टोकियो और मास्कोकी बात सुन लेंगे।

अब विचार कीजिये कि जो कार्य पत्र कर रहे थे, जिन्हे करना उनका एकाधिकारसा हो गया था वह सब रेडियो कर रहा है या नहीं? रेडियोका आयोजन पत्रोंसे कहीं अधिक सुविधा प्रदान करनेवाला, कम परिश्रमसे सिद्ध हो जानेवाला, शीघ्रतासे ज्ञातव्य बातोंको बतानेमें सफल है या नहीं? पढनेमें

जो आयास पड़ता है वह सुननेमें नहीं होता और मनुष्य प्रकृत्या अधिकसे अधिक सुविधाकी खोजमें रहता है। इस स्थितिमें कौन कह सकता है कि रेडियो हमारे पत्रोंका भयावना प्रतिस्पर्धी नहीं है? कौन दावा करेगा कि एक दिन इस प्रतिद्वन्द्विता में पत्र लुप्त न हो जायँगे और उनके रिक्त सिंहासन-पर रेडियो आसीन न हो जायगा? अतः पत्रोंके मालिकोंके हृदयोंमें भविष्य सम्बन्धी आशङ्का और भय उत्पन्न हो गया हो तो स्वाभाविक है। वे पत्रकार जो आज पत्रकारीसे ही जीवनोपार्जन करते हैं आगत आशङ्काकी कल्पना कर चिन्ताग्रस्त हो जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं है।

ऐसी दशामें हमारे सामने दो प्रश्न उपस्थित होते हैं। एक तो यह कि क्या रेडियो सचमुच पत्रोंका प्रतिद्वन्द्वी है और क्या इस प्रतिद्वन्द्विताके फलस्वरूप पत्रोंका लोप हो जाना सम्भव है? दूसरा यह कि यदि है तो उस स्थितिमें पत्रोंको क्या करना चाहिये और किन उपायोंका अवलम्बन कर अपने जीवनकी रक्षा करना सम्भव होगा।

पाठक देखेंगे कि पहले प्रश्नके उत्तरपर ही दूसरेका अस्तित्व या अनस्तित्व निर्भर है। यदि पहलेका उत्तर 'हाँ' है तो दूसरा सवाल भी उठता है, पर यदि पहलेका उत्तर 'नहीं' है तो दूसरा उठता ही नहीं। फलतः पहले प्रश्नको ही ले लीजिये। पत्र और रेडियोके कार्यक्षेत्रकी समीक्षा पूर्वके पृष्ठोंमें की गयी है। सभी स्वीकार करेंगे कि दोनोंका क्षेत्र एक ही है और अबतक समाचार सम्बन्धी जगत्पर पत्रका जो एकाधिपत्य स्थापित था वह अब नहीं रहा। परन्तु केवल इतनेसे ही यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि रेडियो वास्तवमें पत्रका प्रतिद्वन्द्वी होकर अवतीर्ण हुआ है। रेडियो और पत्रका कार्यक्षेत्र एक होते हुए भी दोनोंके स्वरूप और दोनोंकी उपयोगिताकी समीक्षा किये बिना हम नहीं कह सकते कि दोनों परस्पर प्रतिस्पर्धी ही हैं।

इस समीक्षाके लिए यह आवश्यक है कि जहाँ पत्र और रेडियोकी समता-पर विचार किया गया वहीं दोनोंमें परस्पर जो भेद है उसपर भी दृष्टिपात कर लिया जाय। दोनोंका सबसे बड़ा भेद तो यह है कि रेडियोका सम्बन्ध कानसे है और पत्रका हमारी आँखसे। समाचार, व्याख्यान, सङ्गीत आदि रेडियोसे हमें मिलते हैं पर हम उन्हें कानसे सुनकर ग्रहण करते हैं। ये ही

सब बातें हमें पत्रसे भी मिलती हैं पर हम उन्हें आँखसे हृदयङ्गम करते हैं। दोनोंके इस स्वरूप-भेदसे उनकी उपयोगितामें भी भेद हो जाता है। मनुष्य कानसे बातोंको सुनना चाहता है और उसकी इस प्रवृत्तिको रेडियो शान्ति प्रदान करता है; पर जरा गहराईमे उतरकर देखिये तो आप यह पायेंगे कि मनुष्य जिन बातोंको कानसे सुनता है उन्हें भी आँखसे पढ़नेकी प्रवृत्ति उसमें उसी प्रकार जागरूक और प्रबल होती है जिस प्रकार कानसे सुननेकी। युग-युगके हमारे संस्कारोंने हमारे हृदयमें एक अद्भुत भावका सर्जन कर दिया है। हम प्रकृत्या लिखी हुई बातोंपर अधिक विश्वास करते हैं। अनजानमें हमारे मनमें कानसे सुनी बातोंकी अपेक्षा लिखी बातोंपर अधिक विश्वास करनेकी और उन्हें ही सत्य मान लेनेकी इच्छा जागती रहती है। भले ही कान और आँखके इस भेदकी पहेलीको सुलझाया न जा सकता हो और न हम उक्त-प्रवृत्तिका कारण ही उपस्थित कर सकते हों पर वास्तविकता यही है इसे तो स्वीकार करेंगे ही।

दूसरी बात भी इस सम्बन्धमें विचारणीय है। कानमें आनेवाली बातोंका प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है। अच्छेसे अच्छे विद्वान्‌का लेखपाठन हम रेडियोसे सुनते हैं पर वे ध्वनि-लहरियाँ आती है, कानमें प्रविष्ट होती हैं और मस्तिष्कमें वक्ताके कुछ भावोंको बिठाकर चली जाती हैं। हम जो सुनते हैं उसकी अधिकतर बातें समझमें नही आती क्योंकि बोलनेवालेकी वाणी एकके बाद दूसरे भाव प्रवाहित करती चलती है और हमें इतना अवकाश नहीं मिलता कि उसकी सब बातोंको समझ-समझकर मनमें बैठाते चलें। जो थोडी-बहुत बातें बच रहती हैं वे स्मृतिपटपर अङ्कित हो जाती हैं पर उनसे विषय-ज्ञानमें वह पूर्णता प्राप्त नहीं होती जिसे आप प्राप्त करना चाहते हैं। लिखी बातोंपर मनुष्य अधिक गम्भीरतासे विचार कर सकता है, अपनी सुविधाके अनुसार समयसे उसका अध्ययन और मनन कर सकता है।

यही कारण है कि हम जो बातें रेडियोमें सुनते है और जिन समाचरोंको प्राप्त करते हैं उन्हींको दूसरे दिन पुनः पत्रमें खोजते हैं। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं है कि पत्र और रेडियो समान-कर्मी होते हुए भी सम-धर्मी नही हैं? दोनोंके स्वरूपमें भेद है फलतः दोनोंकी उपयोगिता मनुष्यके लिए दो भिन्न

प्रकारसे दिखाई देती है। यह विभिन्नता परस्पर प्रतिस्पर्धाका सर्जन न कर सकेगी। विचारपूर्वक देखा जाय तो पत्र रेडियोका और रेडियो पत्रका पूरक हो रहा है। आज जो लोग यह समझते हैं कि रेडियोके कारण पत्रका भविष्य खतरेमें पड़ रहा है उनसे हम एक प्रश्न करना चाहते हैं। यूरोप-अमेरिकामें घर-घर रेडियो पहुँच रहा है। अमेरिकामें विज्ञापनबाजी करनेमें रेडियो अपना सानी नही रखता। उसके द्वारा समाचार भी दिनमे एकाधिक बार सुनाये जाते हैं। वर्षोंसे यह क्रिया हो रही है पर क्या इसका कुछ भी प्रभाव पत्रोंकी विक्रीपर पड़ा है? क्या रेडियोके कारण पत्रोंकी खपतमें एक प्रतिकी भी कमी हुई है? यदि नहीं तो इसका कारण क्या है? क्यों यह समझ ही लिया जाय कि आज तक यदि फर्क न पड़ा, कोई प्रभाव नहीं हुआ तो आगे अवश्य ही होगा? हमारी तो धारणा है कि पत्र और रेडियोमें न कोई प्रतिस्पर्धा है और न एक दूसरेको कभी पदच्युत करके स्वयं उसका स्थान ग्रहण करनेमें समर्थ होगा।

रेडियोके स्वरूपमें आज एक बात और है जिसके कारण कभी वह पत्रका स्थान ग्रहण करनेमें समर्थ न होगा। 'ब्राडकास्टिङ्ग' अमेरिकाको छोड़कर सारे जगत्में सरकारी नियन्त्रणमें ही परिचालित होता है। अमेरिकामें ब्राडकास्टिङ्ग अबतक निजी है पर उसके सिवा सारी दुनियाकी सरकारें आज इस अद्भुत यन्त्रको अपने अधीन रखे हुए हैं और सम्भवतः सदा अधीन रखनेकी चेष्टा करेंगी। सरकारोंके पास अपना प्रचार करनेका कोई साधन नहीं था। इसके लिए वे सदा पत्रोंका मुख देखा करती थीं। पत्र जनमतका निर्माण करते हैं और उनका प्रतिनिधित्व भी करते हैं। उस युगमें जब लोकमतके समर्थनके बिना सरकारोंका टिकना असम्भव होने लगा उन्हें यह आवश्यक जान पड़ा कि पत्रोंकी सहायता और समर्थनकी अपेक्षा करें। अधिनायकवादी निरंकुश सरकारें भी पत्रकी उपेक्षा करनेमें समर्थ न हुईं क्योंकि उनका सामाजिक जीवनपर इतना प्रभाव था और है कि उन्हें अपने रास्ते छोड़ देना भयावह होता। इसके अलावा अधिनायक भी अपनी सारी निरङ्कुशताके सहित प्रचारकी अपेक्षा तो करता ही रहता है। जनतामें उसके गुणोंका प्रचार हो, उन सिद्धान्तों और आदर्शोंका प्रचार हो जिनपर स्वच्छन्द सरकारें निर्मित होती हैं तथा

लोक-हृदयमें यह विश्वास बैठा दिया जाय कि उनका कल्याण ऐसी ही सरकारके द्वारा हो सकता है। इन प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिए वाञ्छनीय प्रचारके साधन-रूपमें पत्रके सिवा और क्या उपलब्ध हो सकता था ?

तात्पर्य यह कि भूमण्डलमात्रकी शासक-मण्डलियाँ पत्रसे सहायता, समर्थन और प्रशंसा प्राप्त करने तथा उनसे अपना प्रचार करानेके लिए उत्सुक रहा करती थीं। परन्तु सौभाग्यसे वे कभी इसमें सफल न हुईं। अधिनायकवादी देशोंने तो पत्रकी स्वतन्त्रताका अपहरण खड्गके जोरसे किया और अपना काम साधनेकी चेष्टा की। लोकतन्त्रवादी देशोंके शासक यह न कर सके यद्यपि अप्रत्यक्ष रूपसे सदा इसकी चेष्टा सर्वत्र होती रही है। कारण यह था कि पत्रोंपर नियन्त्रण जनताका रहा है। गैर-सरकारी लोगोंके पैसेसे पत्र निर्मित हुए और पत्रकारोंने अपना आदर्श जनताकी सेवा और उसके हितोंकी रक्षा करना बनाया। किसी सरकारके सामने उन्होंने अपनेको उत्तरदायी नहीं समझा। जनाधिकारपर जब जिधरसे आघात हुआ, सत्य, न्याय और मानवताका जब जिसने निर्दलन करनेकी चेष्टा की और प्रगतिशील विचारों तथा आदर्शोंके लिए जब खतरा उत्पन्न हुआ भी उन्होंने अपनी आवाज उठायी। आवश्यक हुआ तो सरकार पर शासकों अथवा स्थिर-स्वार्थी सत्ताधारियोंके क्रोधकी भभकती आगमें भी प्रवेश किया। फलतः पत्रोंके प्रचार, टीका-टिप्पणी और मतप्रकाशसे सरकारें सदा घबड़ाती रहीं और अपना दृष्टिकोण तथा अपने पक्षका समर्थन करनेके लिए उपयुक्त साधन ढूँढ़ती रहीं।

आज रेडियोके रूपमें उनके सामने वह साधन प्रस्तुत हो गया है। प्रचारके लिए तो यह उपाय अपेक्षाकृत पत्रसे कहीं अधिक व्यापक और सरल तथा प्रभावकर ज्ञात होता है। यदि 'ब्राडकास्टिङ्ग' के सम्बन्धमें भी जनताको वही स्वतन्त्रता होती जो पत्र निकालनेमें है तो सरकारकी परेशानियाँ बढ़ जातीं। जो जितना चाहता, साधारण कानूनोंकी परिधिमें रहते हुए सरकारी टीका-टिप्पणी करनेमें स्वच्छन्द होता। स्पष्ट है कि सरकारें इसे कभी अभीष्ट नहीं समझ सकती थीं अतएव उन्होंने डाक-तारकी भाँति इसे एक अपना विभाग बना डाला। इससे उनका दोहरा कार्य सिद्ध हुआ। न केवल जनमतके प्रकटी-करणके इस साधनका क्षेत्र नियन्त्रित और परिमित कर डाला अपितु अपने

प्रचारके लिए प्रचण्ड साधन प्राप्त कर लिया। रेडियोमें जो कुछ कहा जायगा वह वही होगा जिसपर सरकारी रङ्ग हो, जिसे कहना सरकार पसन्द करती हो। प्रचार करते हुए भी सरकारी मत ही व्यक्त होगा और आवश्यकता पडने-पर सरकार जनतासे अपना पक्ष-समर्थन करानेके लिए स्व-पक्षीय बात कह सकेगी। युद्धकालमें रेडियोकी महिमा और उपयुक्तता तथा आवश्यकता सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो गयी है। आज तो यह यन्त्र-युद्धका बहुत बडा अङ्ग हो गया है। अन्य शस्त्रों तथा सैन्य-सञ्चारों और उपकरणोंमें उसकी गिनती की जाती है। शत्रु-देशकी जनतामें भी वहाँकी सरकारके विरुद्ध प्रचार करना, उसे धमकाना, भयभीत करना और प्रलोभन देना सम्भव होने लगा है।

रेडियोकी इस महिमाके फलस्वरूप आज युद्धलिप्त राष्ट्र एक दूसरेके देशोंपर बमवर्षा करते समय पहले 'ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन' को ही अपना लक्ष्य बनानेकी चेष्टा करते हैं और अथक प्रयत्न करते हैं उसे समूल उद्ध्वस्त कर देनेके लिए। आज जिस देशमे क्रान्ति होती है वहाँके क्रान्तिकारी पहली चेष्टा 'ब्राडकास्टिङ्ग भवन' पर अधिकार जमानेके निमित्त ही करते हैं। वे जानते हैं कि इस यन्त्रपर अधिकार करते ही वे अपना प्रचार करने और अपनी घोषणा सारे जगत्को सुनानेमें समर्थ हो सकेंगे। हिटलरने जिन-जिन देशोंपर अधिकार स्थापित किया, जहाँ-जहाँ नाजी सैनिक प्रविष्ट हुए वहाँ पहला काम इस यन्त्रपर अपनी सत्ता जमानेका ही किया। अब तो यह निश्चित ही समझिये कि भविष्यमें संसारभरकी सरकारें अधिकाधिक इसे अपने अधिकारमें रखनेका ही प्रयत्न करेंगी। युद्धने इसकी उपयोगिता अतर्क्य और असन्दिग्ध रूपसे सिद्ध करदी है। सरकारे आकाशपर अपना प्रभुत्व स्थापित रखेंगी यह निर्विवाद है। वायुयानोंकी महिमा जैसे सिद्ध हुई वैसे ही रेडियोकी भी स्पष्ट हो गयी। रेडियो उनके एकाधिकारमें ही रहेगा इसमें तनिक भी सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं है।

फलतः रेडियोका सरकारी साधन बन जाना ही क्या उसे लघुता प्रदान नहीं कर देता? क्या यही लघुता उसे सदाके लिए पत्रोंके प्रतिस्पर्धी होनेकी अयोग्यता प्रदान नहीं कर देती? सब जानते और मानते हैं कि रेडियो सरकारी पक्षका प्रवक्ता, समर्थक और प्रचारक है। जनता प्रकृत्या सरकारी मतको

सन्देहकी दृष्टिसे देखती है और स्वतन्त्र जनमतके निर्माणके लिए सरकारी नियन्त्रणसे मुक्त स्वाधीन टीका-टिप्पणी करनेवालोंकी खोज करती है। जनताकी दृष्टिसे किसी प्रश्नका पहलू क्या है इसे जाननेकी उसकी चाह गहरी हो उठती है। रेडियो इस कार्यमें असमर्थ है और पत्र निष्पक्ष, निर्भीक तथा जन-पक्षीय बातें कह सकते हैं। रेडियोपर सरकारी नियन्त्रण जितना बढ़ता जायगा उसके प्रति देशका अविश्वास भी उसी मात्रामें वृद्धि पाता जायगा और उसी मात्रामें पत्रोंकी आवश्यकता और उपयोगिता अनिवार्यतः बढ़ती जायगी। यह सच है कि लोकतन्त्रात्मक देशोंमें पार्लमेण्टोंका अधिकार भी रेडियोपर होगा, उसके आयोजन और प्रबन्धके सम्बन्धमें जन-प्रतिनिधि प्रश्न उठाते और बोलते रहेंगे, फलतः रेडियोका दुरुपयोग भी सरकारें कदाचित् कम कर सकेंगी, पर यह सब होते हुए भी उनसे स्वतन्त्र मत-प्रदर्शनकी न आशा की जा सकती है और न जनताको केवल उनकी बातें सुन लेनेमें सन्तोष ही होगा।

भारत ऐसे देशमें तो यह अविश्वास उत्तुङ्ग गिरि-शृङ्गकी भाँति अटल और ऊँचा उपस्थित है। निरंकुश नौकरशाही द्वारा सञ्चालित भारतीय ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन, नई दिल्लीसे होनेवाले प्रचारपर इस देशकी जनता कितना विश्वास करती है इसे वे सब लोग जानते हैं जो जन-सम्पर्कमें आते हैं। हमारे देशमें तो जनाधिकार, जनहित और चालीस करोड़ नर-नारियोंकी स्वतन्त्रताका प्रश्न इतने विकट किन्तु सजीव रूपमें उपस्थित है और सरकारी निरंकुशताका नृत्य इतना घृणित और नग्न है कि हम पत्रोंके अस्तित्वके सम्बन्धमें उठनेवाली किसी भी शङ्काको स्थान नहीं दे सकते। यदि कभी कोई ऐसा समय आ भी जाय जब सचमुच दुनिया पत्रकी उपयोगिताको समाप्त हुई समझे और जब रेडियो वास्तविक प्रतिद्वन्द्वी होकर उसे समाप्त करनेमें सफल हो जाय उस समय भी हम भारतके पराधीनोंके लिए वर्षोंतक पत्रोंका स्थान अक्षुण्ण रहेगा। वे ही इस देशके पुनरुद्धार और भविष्यके सन्देशवाहक तथा अग्रदूतका काम करते रहेंगे। हम तो रेडियोके विकृत रूपका भी कठोर अनुभव कर रहे हैं। समस्त जगत्के लिए वह जहाँ ज्ञान और मनोरञ्जनका साधन हो गया है वहाँ इस देशकी अनुत्तरदायी सरकारके हाथका शस्त्र बनकर हमारे हृदयमें भालेकी तरह चुभनेका कारण बन रहा है। भारतीय आकांक्षाका

हनन करनेवाले मिथ्या प्रचारसे वह हमें संसारकी दृष्टिमें गिरा रहा है। जगत्‌को बताया जाता है कि भारतीय निकम्मे हैं, असभ्य हैं और ब्रिटिश प्रभुओंकी सत्ताकी कृपासे ही जीवित हैं। सन् १९४२ ईसवीके जनान्दोलनके समय तो आदरणीय और पूज्य भारतीय नेताओंको देश-विदेशमें बदनाम करनेमें कुछ उठा नहीं रखा गया। देशकी जनताका नैतिक अधःपात करनेमें उसने सारी शक्ति लगा दी। किसी सरकारके अधीन होकर रेडियो कितनी हानि भी पहुँचा सकता है इसका स्पष्ट प्रमाण भारतमें है। कितना मिथ्या, निराधार और अनुचित प्रचार किया जा सकता है इसका ज्वलन्त उदाहरण भी इस देशमे मौजूद है।

इस स्थितिमें हमारे यहाँ तो रेडियो कभी पत्रका प्रतिद्वन्द्वी हो ही नहीं सकता पर जगत्‌में भी विभिन्न देशोंकी जागरूक जनता उसे कभी उस स्थान-पर नहीं बिठायेगी जहाँ पत्र आसीन हैं। फलतः हम कह सकते हैं कि पत्र और रेडियोकी प्रतिस्पर्धाकी आशङ्का भ्रान्त और निर्मूल है। हमने जो प्रश्न पूर्व पृष्ठमें उपस्थित किया है उसका यही उत्तर है। हाँ, यदि कभी संसारमें उन्नत मानवताकी स्थापना हो सकी, यदि कभी मानवाधिकार प्रकृति द्वारा मिले वरदान तथा मनुष्यकी नैसर्गिक विभूतिके रूपमें पूजित और आदरणीय हो सका, यदि मनुष्यने अपने हृदयस्थ दानवका दमन कर अपने उत्तमांशको विकसित होने दिया और यदि यह धरातल रक्तपात, शोषण,दासता, दैन्य तथा अहम्मन्यता और जाति-विद्वेषके घृणित पङ्कमेंसे निकलकर अधिक सुखप्रद, शिष्ट, सुन्दर तथा श्रेयस्प्रद साधन बन सका तो उस समय रेडियो और पत्र परस्पर एक दूसरेके पूरक हो सकेंगे। एकका अधिकार कानोंपर होगा तो दूसरेका आँखोंपर। उस समय रेडियोमें सरकारी नियन्त्रणका जो दोष आज आ गया है वह पत्रोंके प्रभावसे दूर हो जायगा और पत्रोंमें व्यवसायवाद तथा पूँजीवादके समावेशसे जो दुर्गुण उत्पन्न हो गये हैं वे रेडियोके प्रभावसे दूर होंगे।

आज ब्रिटेन और अमेरिका ऐसे लोकतन्त्रात्मक देशोंके पत्र यद्यपि सरकारी नियन्त्रणसे मुक्त हैं तो भी क्या वे स्वतन्त्र कहे जा सकते हैं? क्या थोडेसे पूँजीपतियोंकी मुट्ठीमे पडे ये पत्र जनमतके निर्माणपर एकाधिकार स्थापित किये हुए नहीं हैं? क्या वे अपने स्वार्थी और धनलोलुप मालिकोंके मतको ही

प्रकट करके उसे जनमतका नाम प्रदान किये हुए नहीं है ? क्या वे जनताको बहकाकर अपने प्रभावसे अनुचित लाभ उठानेमें और उसे पूँजीवादी व्यवस्थाको बनाये रखनेके लिए फुसलानेमें समर्थ नहीं हो रहे हैं ? सत्यको छिपानेमें, अन्यायका समर्थन करनेमें और जनाधिकारकी अवहेलना करनेमें भी वे उस समय सङ्कोच नहीं करते जब पत्रके मालिकका स्वार्थ ऐसा करनेके लिए बाध्य करता है । धन कमानेके लिए मनुष्यकी कमजोरियोंसे लाभ उठानेमें लज्जाका अनुभव नहीं किया जाता । प्रसुप्त काम-प्रवृत्तिको भड़काने तकमें कोई शर्म नहीं है यदि उसके फलस्वरूप बिक्री बढ़े और विज्ञापनकी आयसे मालिककी जेब खनखनाये ।

ये दुर्गुण उन देशोंके पत्रोंमें पैदा हो गये हैं जो अपने पत्रोंकी स्वतन्त्रतापर गर्व करते हैं । भारतमें व्यवसायवाद जैसे-जैसे बढ़ रहा है वैसे-वैसे ये दोष यहाँ भी उत्पन्न होंगे । यूरोपके पत्रकार धनके गुलाम हो रहे हैं पर भारत अपने पत्रकारोंकी तपस्यासे इस विभीषिकासे बचेगा, इसमें हमें तनिक भी सन्देह नहीं । रेडियो पत्रोंको इस दोषसे मुक्त करनेमें सहायक होगा । जनतामें उसके द्वारा उस चरित्र, ज्ञान और नैतिकताका उद्बोधन करना सम्भव हो सकेगा जो पत्रोंकी भ्रष्टताको जाग्रत् और प्रचण्ड सामूहिक जनमतसे नष्ट कर देगा। उस समय पत्र जैसे भी हो केवल बिक्री बढ़ाकर विज्ञापनकी आय कमानेके लिए ही न निकलेंगे, अपितु उनके सम्मुख कहीं अधिक उन्नत और उज्ज्वल आदर्श भी होगा। वे जनताके सेवक होकर, उसके मित्र, सहायक और सलाहकार तथा पथप्रदर्शक बनकर समाजमें प्रवेश करेंगे । मानवता उनकी सहायतासे पग-पग आगे बढ़ती जायगी ।

पत्रकारोंकी कठिनाइयाँ और समस्याएँ

इसके पूर्वकी यह ग्रन्थ समाप्त किया जाय हमें भारतीय पत्रकारोंकी वर्तमान स्थिति और उनकी कठिनाइयोंके सम्बन्धमे विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। पत्रकारके आदर्शका उल्लेख हम बार-बार करते रहे हैं और उसकी ओर पत्रकार-बन्धुओंका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट करना इस ग्रन्थका लक्ष्य रहा है। आदर्शके विना मानवजीवन शून्य है और पत्रकार तो उसके अभावमें समाजके लिए भयावने विषाक्त फोडेसे कम नहीं है। पर जहाँ पत्र-कारोंके आदर्शकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है वहीं उनकी निजी समस्याओं और कठिनाइयोंपर भी विचार करना अपेक्षित है। मनुष्य अपने जीवनकी गुत्थियोंसे योहीं परेशान और त्रस्त रहता है। उसकी अपनी आवश्यकताएँ, प्रकृति, प्रवृत्ति और लालसाएँ विचित्र परिस्थितियोंको जन्म देती रहती हैं जिनमें उलझकर मानव आकुल हो जाता है। पत्रकार भी मनुष्य है और उन समस्त भौतिक तथा अभौतिक स्थितियोके घात-प्रतिघातसे विताड़ित होता रहता है जिनसे साधारण मानवका जीवन क्षत-विक्षत होता है। मान लेते हैं कि पत्रकारके सम्मुख उज्ज्वल आदर्श है, उसका जीवन त्याग और तपके लिए, उत्सर्ग और सेवाके लिए, सत्याराधन और न्याय-पूजाके लिए है पर इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि उसके जीवनके मूलमें वे लहरियाँ नहीं लह-रातीं जो निसर्गतः मनुष्य-हृदयको आलोड़ित करती रहती हैं। आदर्शवादी होते हुए भी वह भूखकी ज्वालासे विदग्ध होगा, बालबच्चोंके सुखकी चिन्तामें मग्न होगा, अपने पद और प्रतिष्ठाका आकांक्षी होगा तथा जीवनकी साधारण आवश्यकताओंकी पूर्तिकी इच्छा करेगा।

उसकी आदर्शवादिता उसे न्यायपथसे विचलित होने न देगी, सत्यके लिए कठोर क्लेश-सहन करनेके लिए उत्प्रेरित करेगी और रुपयेके प्रलोभन अथवा प्रभुताकी विमोहकतासे उसका हृदय कलुषित होने न देगी पर इसका यह

अर्थ नहीं है कि वह सदा दरिद्रताकी पूजामें रत रहे, उसकी प्रतिभाका शोषण करके दूसरे अपनी जेब भरें और जब मौका पावें तो दूधकी मक्खीकी तरह निकालकर असहाय फेंक दें। उपयुक्त बात तो यह है कि आदर्शकी अविचल पूजा करनेमें पत्रकार तभी समर्थ और सफल हो सकता है जब उसे आवश्यक और उचित सुविधाएँ प्रदान की जायँ। जब समाजकी सेवाके लिए पत्रकारका जीवन है तब समाजका भी कर्तव्य है कि वह उसे अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें समर्थ होनेके लिए सहायता प्रदान करे। इससे पत्रकारके ऊपर वह कोई एहसान न करेगा पर अपने ही हितकी पूर्ति और अपने ही स्वार्थका साधन करेगा। पर आधुनिक जगतकी पूँजीवादी व्यवस्थाकी दृष्टिमें सब बातोंके मूल्याङ्कनका एक ही मापदण्ड है, और वह है पैसा। मनुष्यकी योग्यता, सच्चरित्रता और विद्वत्ता तथा नैतिकता सबको मनुष्य पैसेसे तौलनेकी इच्छा रखता है। पत्रकारकी समाजसेवा और समाजके लिए उसकी उपयोगिताकी ओर कौन विचार करता है जब एकमात्र दृष्टि यह है कि पत्रसञ्चालक कमसे कम खर्चमें किसी पत्रकारकी अधिकसे अधिक प्रतिभा और आदर्शवादितासे लाभ उठाकर अपनी जेब भरनेमें अधिकसे अधिक सफल हो।

कामको छोडा जा सकता है? आज तो पत्रकारको ही इस बोझेको भी उठाना है। जैसे उसे अपने उज्ज्वल आदर्शकी रक्षामें स्थिरचित्तसे बद्धपरिकर रहना है, जैसे सरकारकी टेढ़ी भृकुटी, कानूनोंकी लम्बी भुजा, सत्ताधारियोंका कोप, पूँजीपतियोका स्वार्थ, धनलोलुप मालिकोंका लोभ, जनताका अज्ञान और उसके उपेक्षाभावका सामना करते हुए भी निर्भय, एकाकी, मस्त अपने निर्धारित पथपर दृढ़ता और सउत्साहसके साथ बढ़ते जाना है वैसे ही उसे अपने हितों और अधिकारोंकी रक्षाके लिए तथा शोषकोंकी कुचेष्टाओंसे अपनेको बचानेके लिए भी स्वय कमर कसकर यत्नशील होना है।

संक्षेपमें हम उन समस्याओंकी विवेचना करें जो इस दिशामें आज पत्रकारोके सम्मुख उपस्थित हैं। लिखने और मत प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता तथा सरकार द्वारा उसके अपहरणका प्रश्न भी पत्रकारोंके सम्मुख है पर इस सम्बन्धमें हम पिछले पृष्ठोंमें विचार कर चुके हैं। यह प्रश्न व्यापक है और मानवताके भविष्य तथा अभ्युत्थानसे सम्बन्ध रखता है। स्वतन्त्रता मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार है और समाज तथा सरकारकी उपयोगिता उसके इस अधिकारकी रक्षा करनेमें ही है। लोकतन्त्रवादका आधार यही उपर्युक्त सिद्धान्त है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मनुष्यकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता निरकुश है। अपनी ही स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिए मनुष्यने अपने अधिकारको एकसीमातक समाजके चरणोंमें अर्पित कर दिया है। एक व्यक्ति स्वय जीवित रहना चाहता है पर उसकी इस चाहकी पूर्ति तभी होगी जब वह दूसरेको जीवित रहने दे। अपने जीवनकी रक्षाके लिए ही उसने दूसरेके प्राण ले लेनेकी स्वतन्त्रताका समर्पण कर दिया है। इस प्रकार अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिए मनुष्यने अपनी ही स्वतन्त्रताको परिधिमें परिसीमित कर दिया है पर उस परिधिके भीतर उसके अधिकारोंपर कुठाराघात करना मानवतापर आघात करना है।

युग-युगसे विकासका पथिक मानव आज जिस स्तरपर पहुँचा है वहाँ उसने इसी स्वतन्त्रताको अपनी उन्नति, संस्कृति और आदर्शका मापदण्ड माना है। लोकतन्त्रवाद उसकी इसी भावनाका प्रतीक है। मनुष्यको सब कुछ करनेकी स्वतन्त्रता नहीं है पर विचार करने और मत व्यक्त करनेका उसका

अधिकार अपेक्षाकृत विस्तृत है। सोचने, बोलने, लिखनेकी स्वतन्त्रताको वह आरम्भिक और अनिवार्य अधिकार मानता है। पत्रोंकी स्वतन्त्रता इस जनाधिकारकी कल्पनाके आधारपर आश्रित है, उसी सर्वमान्य सिद्धान्तके गर्भसे उद्भूत हुई है। पत्र स्वयं अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करके पुनीत जनस्वातन्त्र्य की रक्षा करते हैं। संसारमें सदा शासक इस अधिकारका निर्दलन करनेकी चेष्टा करता रहा है। युरोपमें अधिनायकवादी और फासिस्टी तथा नाजी व्यवस्थाएँ मानवताके अभिशापरूपमें अवतीर्ण होकर मनुष्यकी सहस्राब्दियोंकी साधना और तपश्चर्याके फलस्वरूप उपलब्ध इस विभूतिका संहार करनेमें लगी हुई हैं। पूँजीवादी वर्ग लोकतन्त्रके आवरणमे यही पाप कर रहा है। भारत साम्राज्यवादियोंकी निरङ्कुशता और लिप्साकी आगमें जल रहा है। इस देशमे जन स्वातन्त्र्यका घृणित और क्रूर हनन किस प्रकार होता है इसे क्या पत्रकारोंको बतानेकी आवश्यकता है? उनसे अधिक इस स्थितिसे कौन परिचित है?

फलत. जगत्के स्वतन्त्रताप्रेमी और मानवताके पुजारी वर्गोंके समान भारतीय पत्रकारोंके सामने भी यह समस्या प्रस्तुत है। न जाने कितने पत्र प्रतिवर्ष इसके शिकार होकर लुप्त हो जाते हैं और न-जाने कितने पत्रकार जेलोंकी हवा खाते रहते हैं। पर जहाँ एक ओर यह स्थिति है वहाँ दूसरी ओर पत्रकारोंकी उन कठिनाइयोंकी ओर ध्यान दीजिये जो उनके पेशेमें उनके मालिकोंकी ओरसे उपस्थित कर दी गयी है। पत्रोंका सञ्चालन वे करते हैं जो धन सम्पन्न हैं। कभी एक या दो धनवान व्यक्ति और कभी-कभी कम्पनियोंके रूपमें संयुक्त होकर कतिपय व्यवसायी वहुधा व्यवसायकी दृष्टिसे पत्र निकालते है। पत्रकार उनका वेतनभोगी कर्मचारी होता है और मालिक लोग उसके साथ कर्मचारीसा ही व्यवहार करनेकी चेष्टा करते हैं। आज यह स्थिति पत्रकारके लिए जटिल समस्या बन गयी है। यह सच है कि पत्र-सञ्चालकसे वेतन पाते हुए भी वह बडी सीमातक साधारण जनताके प्रति उत्तरदायी है। समाजके जीवनके साथ, उसकी नैतिकता, आचरण और हृदय तथा मस्तिष्कके साथ, उसके विवेक और प्रवृत्तियोंके साथ, उसके वर्तमान और भविष्यके साथ पत्रकार अपना सम्बन्ध जोडता है। उसके एक-एक वाक्य समाजका हित भी कर सकते हैं और अहित भी। हजारों, लाखोंके योगक्षेमके लिये वह अपनेको

जिम्मेदार समझता है। ऐसे कर्मचारीको क्या कोई साधारण वेतनभोगी नौकर कह सकता है?

क्या यह उचित होगा कि पत्र-सञ्चालनकी सनकपर, उसकी इच्छा-अनिच्छापर, उसकी भ्रूभङ्गिमापर पत्रकारका भविष्य निर्भर करे? क्या पत्रकारके लिए उचित होगा कि अपने मालिकके इशारेपर नाचे, जनताके प्रति अपने उत्तरदायित्वको भूलकर केवल उसीके सन्तोष, असन्तोष या प्रसन्नता-अप्रसन्नताके विचारसे अपने कर्तव्य-पथका निर्धारण करे? यदि यह सिद्धान्त मान्य नहीं है तो कैसे कोई कह सकता है कि पत्रकार साधारण कर्मचारी ही है? आज तो कानून भी पत्रकारकी वही स्थिति नहीं मानता जो साधारण कर्मचारीको प्राप्त है। सन् १८६७ ईसवीके कानूनमें उसके कार्यक्षेत्रकी व्याख्या की गयी है जिसके अनुसार सम्पादक स्वय सरकारके प्रति उत्तरदायी है। वह उस उत्तरदायित्वको किसी दूसरेपर फेंक नहीं सकता। यदि किसी पत्रमें राजविद्रोहात्मक बातें छप जायँ अथवा कानूनन आपत्तिजनक कोई अश्लील विज्ञापन प्रकाशित हो जाय तो सम्पादक व्यक्तिगत रूपसे अपराधी माना जायगा। सम्पादक यह कहकर छुट्टी नहीं पा सकता कि मालिककी आज्ञासे अमुक बात प्रकाशित हुई है अतएव जिम्मेदारी उसकी नहीं है। किसी मालिकके कहनेपर भी उपर्युक्त बातोंके प्रकाशनके लिए वह जिम्मेदार है, कानून सम्पादकको मुक्त नहीं कर सकता। कानून सम्पादकको स्वय अक्षुण्ण और अपनेमें ही पूर्ण समझता है, जिसके उत्तरदायित्वको वह अविभक्त तथा अविच्छेद्यरूपमें मानता है। ये बातें स्पष्ट प्रमाण हैं इस बातकी कि पत्रकार अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्वके विशेष स्वरूपके कारण साधारण कर्मचारीसे भिन्न है अतएव उसका अधिकार भी भिन्न होना चाहिए।

पर अवस्था बिलकुल इसके विपरीत है। पत्रकारकी स्थिति साधारण कर्मचारीसे भी गयी बीती है। कल कारखानोंमें काम करनेवाले साधारण मजदूरोंके जो अधिकार हैं, जो सुविधाएँ हैं वे भी पत्रकारोंको नसीब नहीं। साधारण मजदूरकी मज़दूरी, उसकी छुट्टी, उसकी तरक्की, उसके कामके घण्टे, उसके स्वास्थ्यका विचार, काम करते हुए दुर्घटनाओंसे अहित होनेपर उसके मुआवजे आदिकी व्यवस्था चाहे वह कितनी भी असन्तोषजनक क्यों न हो—क़ानून

करता है। मजदूरोंके मजदूर सङ्घ, सङ्घटित होनेका उनका अधिकार भी कानून द्वारा स्वीकृत है। किसी मजदूरके साथ यदि दुर्व्यवहार हो अथवा अनुचित ढङ्गसे उसे बर्खास्त किया जाय अथवा उसके हितों और अधिकारोंके विरुद्ध कोई नीति वर्ती जाय तो मजदूरसंघ विरोधमें आन्दोलन खड़ा कर सकते हैं। संप्रति साधारण मजदूरकी स्थिति पत्रकारोंकी अपेक्षा अधिक सुरक्षित है क्योंकि सम्पादकके लिए किसी बातमें कोई व्यवस्था नहीं है। पत्रकीय कार्य करते हुए अथवा सम्पादककी हैसियतमें अपने कर्तव्यका निर्वाह करते हुए किसी पत्रकारको जेल जाना पड़े तो उसके परिवारके पालन-पोषणका उत्तरदायित्व भी कोई नहीं उठाता। उचित यह होता कि पत्र-सञ्चालक अपने पत्रकारोंके परिवारके भरण-पोषणका उत्तरदायित्व उस क्षण अवश्य उठाते जब उनका सम्पादक अपने कर्तव्यकी पूर्ति करते हुए कानूनसे दण्डित होकर जेलकी हवा खाता रहता है। औचित्य, न्याय, साधारण मनुष्यता और देशभक्तिकी यही माँग है कि पत्रकी सेवा करते हुए दण्ड पानेकी स्थितिमें पत्र-सञ्चालक पत्रकारके बालबच्चोंकी परवरिश की फिक्र करता परन्तु आज पत्रकारोंके साथ इतनी साधारण भल-मसी भी बरतनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती।

पत्रकारके लिए स्थायित्वकी भी कोई व्यवस्था नहीं है। किसी भी समय किसी भी पत्रकारको पत्र मालिककी ओर से व्यवस्थापक का एक पत्र मिल जा सकता है कि अगले महीनेकी पहली तारीखसे 'कार्यालयको आपकी सेवाओं'की आवश्यकता नहीं है। भले ही अभागे पत्रकारका कोई दोष न हो, भलेही उसने अपनी नींद हराम करके वर्षों पत्रकी सेवा की हो और अपने स्वास्थ्यकी बलि चढ़ाकर मालिककी जेब भरनेमें खून सुखाया हो पर कार्यालयमें उसका अस्तित्व मालिककी इच्छापर ही निर्भर है। हमारा अनुभव है कि योग्य पत्रकार वर्षोंकी सेवाके बाद भी इसलिए निकाल बाहर कर दिया गया कि उससे कम वेतनमें काम करनेवाला नौसिखुआ मिल गया। सहायक सम्पादकों और रिपोर्टरों की कीमत यदि गिरी होती है और बाजार भावसे कम वेतनमें वे यदि प्राप्त हो जाते हैं तो पुराना व्यक्ति एक दिन अनायास बैठे-बैठे रक्तशोषक मालिकके निष्ठुर अर्द्धचन्द्रका अनुभव अपनी ग्रीवामें करने लगता है। 'हमने अच्छे और विख्यात पत्रकारोंको इसी प्रकार

धक्के खाकर निकलते देखा है, जिसने पत्रका निर्माण किया, अपनी, योग्यता अनुभव, तप और अध्यवसायके द्वारा पत्रमालिकके पत्रको प्रतिष्ठा प्रदान किया, उसे लोकप्रिय बनाया, उसका सुयश फैलाया, उसे उस पद और उस स्थितिमें पहुँचाया जहाँ पहुँचकर वह मालिकके आर्थिक लाभका कारण हो रहा है उसीको गर्दनिया खाकर बाहर होते देखा है। वर्षोंकी उसकी साधना और उसके कठिन परिश्रमका कोई मूल्य न था, पत्र और पत्रमालिक भी उसके ऋणसे मुक्त नहीं हो सकते थे पर इन बातोंको कौन देखता है? पत्रकारकी वृद्धावस्था, उसकी योग्यता और उसके कार्यकी भी चिन्ता नहीं की जाती। जमेजमाये पत्रसे उसके बिना भी धन जुटना यदि सम्भव होनेवाला है तो उसे नारियल सुपाड़ी देकर विदा कर देनेमें सङ्कोच कैसा? खून चूस लिया गया, सारा रस निकाल लिया गया और अब सिट्ठीको बाहर फेंक देनेमें ही न्याय दिखाई पड़ा।

इस कृतघ्नता और न्यायके निष्ठुर निर्दलनकी सीमा नहीं है पर आज इसे रोकनेवाला कौन है? जिन पत्रकारोंने बड़े-बड़े शासकों और बलवती सरकारोंको अपनी लेखनीसे कँपाया है, जो अन्यायियों और अत्याचारियोंकी सारी कलई खोल देनेमें समर्थ होते हैं वे भी अपने ही वक्षस्थलपर होनेवाले इस अनर्थका अवरोधन करनेमें सफल नहीं हुए हैं। देखा है कि कागजोंकी कमीसे पत्रका कलेवर छोटा किया गया पर बेकारी मढ़ दी गयी बेचारे निर्दोष पत्रकारके सिर! यदि कागज नहीं मिलता तो पत्रकारका कौनसा दोष है? यदि काम कम हो गया तो उसके लिए वह कैसे जिम्मेदार है? उसने तो वर्षों तक अपने रक्तसे पत्राङ्कुरका सिञ्चन किया है। उसकी कमाईसे मालिकने प्रतिष्ठा पायी और धन कमाया है पर आज यदि किसी औरके दोष से अथवा अन्य कारणोंसे कागज कम हो गया और पत्रका कलेवर छोटा हो गया तो क्या उसके लिए पत्रकारको दण्ड देना न्याय है? किस सिद्धान्तसे उसे बेकारीकी आगमें झोंककर भस्म होनेके लिए छोड़ देना उचित कहा जा सकता है? यदि किसी पत्रकी आर्थिक स्थिति गिर जाय तो बात समझमें आ सकती है। पत्रके जीवनकी रक्षाके लिए आदमी कम करना अथवा उनके वेतन घटा देना अनि-र्य हो सकता है पर जब तक यह अवस्था उत्पन्न नहीं हुई है किसी

पत्रकारको स्थान भ्रष्ट करना घोर स्वार्थपरता और कृतघ्नता का द्योतक है। यह सम्भव होता है इसलिए कि पत्रकारकी नौकरीके सम्बन्धमें कोई नियम नहीं है और न उसकी स्थितिको स्थायी तथा सुरक्षित रखनेकी कोई व्यवस्था अब तक हो सकी है।

वेतन के सम्बन्धमें भी घोर अव्यवस्था फैली हुई है। पत्रकारके वेतनके लिए न कोई आधार निश्चित है और न कोई सीमा। बेकारीसे लाभ उठाकर, व्यापक दरिद्रतासे लाभ उठाकर, कमसे कम वेतन देकर किसीकी नियुक्ति करनेकी एकमात्र दृष्टि अपना ली गयी है। वेतन वृद्धिकी भी कोई क्रमबद्ध निश्चित योजना नहीं होती। शिक्षितवर्गमें फैली हुई बेकारी युवकोंको इस दिशामें आनेके लिए अग्रसर करती है और काम खोजनेकी गहरी प्रतिस्पर्धा उन्हें कमसे कम वेतनपर नियुक्ति स्वीकार कर लेनेके लिए बाध्य करती है। पन्द्रह, बीस और पचीस रुपये मासिक वेतनपर सहायक सम्पादकोंकी नियुक्ति होते देखा है। इतने अकिञ्चन पारिश्रमिकपर नवागन्तुकोंकी भीड़ मिलती देखकर पत्रोंके मालिक अनुभवी सहायक सम्पादकोंका भी शोषण करते हैं। कोई सहायक सम्पादक इसी वेतनपर काम करना स्वीकार न करे तो बेकारीकी विभीषिका भोगे क्योंकि पत्र सञ्चालक नये आदमियोंसे काम लेनेमें न चूकेगा। बहुधा कार्यालयोंमें एक चाल और चली जाती है। नये आदमी काम सिखानेके नामपर रख लिये जाते हैं और कुछ महीने बाद थोड़े वेतनपर नियुक्त हो जाते हैं और पुराने धक्के खाकर बाहर हो जाते हैं। पत्रका कार्यालयोंमें तरक्कीकी भी कोई व्यवस्था नहीं है। पचास या पचहत्तर रुपये मासिकपर हिन्दी दैनिक पत्रोंके सम्पादकोंको उस दिनसे लेकर बारह-बारह वर्षों तक लगातार काम करते देखा है जब उनकी इसी वेतनपर नियुक्ति की गयी थी। आश्चर्य तब होता है जब कम वेतन स्वीकार करनेके लिये पत्रकारोंसे देशभक्ति और समाज-सेवाके नामपर अनुरोध किया जाता है। पत्र सञ्चालक धन कमानेपर पत्रकारकी वेतन-वृद्धिकी माँगपर आदर्शवादकी दुहाई दी जाती है।

सस्ती, मँहगी किसीकी चिन्ता नहीं की जाती। जिसे अपना दोहनन कराना हो वह काम छोड़कर चला जाय पर बेचारा जाय कहाँ? परिणाम स्वरूप यह दुर्दशा बाध्य होकर भोगनी पड़ती है। बेटनके फ्लीटस्ट्रीटमें जो

एप्रेंटिस सम्पादकीय विभागमें काम करते हैं वे छ पाउण्ड प्रति सप्ताह पाते हैं। नियमतः इससे कममें कोई नवागन्तुक भी नियुक्त नहीं किया जाता। अमेरिकामें सम्पादकोंके साथ ठेका होता है। वेतनकी दर कमसे कम निर्धारित कर दी गई है। न अवधि पूरी होनेके पहले किसीको वर्खास्त किया जा सकता है और न निर्धारित्त रकमसे किसीका वेतन कम हो सकता है। वेतन वृद्धिका भी क्रम होता है। काम सीखनेवालोंकी अवधि निश्चित होती है। जिसकी पूर्ति होते ही वे नियमित रूपसे कर्मचारी हो जाते हैं। पर इस देशकी अवस्था ऐसी दयनीय है कि सम्पादक बुद्धिजीवी वर्गका व्यक्ति होते हुए भी वेतनकी दृष्टिसे अपने पेशेको प्रतिष्ठित बनानेमे समर्थ नहीं हुआ है। यह सच है कि लखपती बननेकी लालसा लेकर किसीको पत्रकार होनेकी आकांक्षा नहीं करनी चाहिये। विलासकी गोद और भोगके झूलेमें झूलनेकी चाह रखनेवाला ऐश्वर्य और लक्ष्मीका पुजारी इधर आनेकी इच्छा न करे। पत्रकारके सामने तो अतीत भारतके उन तपस्वी और निर्मम ब्राह्मणोंका आदर्श होना चाहिये जो जनसेवा तथा सरस्वतीकी आराधना और सत्यके अनुशीलनको ही जीवनका लक्ष्य बनाये हुए थे। पर यह सब होते हुए भी उनका पेट साथ है जिसकी उपेक्षा की ही नहीं जा सकती। जीवनके अस्तित्वके लिये उन आरम्भिक अनिवार्य उपादानोंकी आवश्यकता होगी ही जिनके बिना हाड-मांसकी यह काया चल ही नही सकती। आदर्शको पूर्तिके लिए भी तो यह शरीर ही साधन है फलतः उसकी रक्षा तो करनी ही होगी। यही कारण है कि त्यागी ब्राह्मणोंके योगक्षेम और उनकी रक्षा की जिम्मेदारी समाजने ले रखी थी। पत्रकार लखपती होना नहीं चाहता पर अपने और अपने बच्चोंके लिये रोटी कपडा तो चाहता ही है। उन आवश्यक वस्तुओंकी जरूरत तो है ही जिनसे जीवनयात्रा संचालित रह सके। यह उत्तरदायित्व न्यायतः उस समाज और उस पत्र सञ्चालकपर है जिसकी सेवाके लिये उसने जीवन उत्सर्ग कर दिया है।

हमारे देशमें पत्रकारोंके लिए छुट्टीकी भी उचित व्यवस्था नहीं है। साधारण मजदूरों और क्लर्कोको भी पत्रकारकी अपेक्षा इस सम्बन्धमें अधिक सुविधायें प्राप्त हैं। दैनिक पत्रोंका कार्य तो योंही ऐसा है जिसमें छुट्टी कम मिलती है। उन त्योहारों और पर्वों पर भी हम पत्रका प्रकाशन नहीं रोकते जब दूसरे

तमाम कार्यालय और काम काज बन्द रहते हैं। गरमी, सरदी और बरसात का हमारे कामपर कोई असर नहीं होता। दिनरातकी भी हम कोई चिन्ता नहीं कर सकते। घरके बच्चोंकी बीमारी, अपने स्वास्थ्य और बहुधा खुशी तथा गमीकी भी अपेक्षा करके काम करना पडता है। काम भी उत्तेजक तथा गम्भीर होता है कि उसका बोझ स्नायु तन्तुओंको प्रभावित करता रहता है। ये बातें स्वयं ही अपेक्षा करती हैं कि पत्रकारको विश्रामके लिए पर्याप्त अवकाश प्रदान किया जाय। न केवल पत्रकारके हितकी दृष्टिसे बल्कि कामके हितकी दृष्टिसे भी यह आवश्यक है। विश्राम, मनोरञ्जन तथा अवकाशसे प्राप्त परिवर्तन मनुष्यकी कार्यशक्तिको बढा देता है, उसमें नए बल और जीवनका सञ्चार कर देता है। पर जहाँ आवश्यकता है अवकाशकी वहाँ पत्रकार उन छुट्टियोंसे भी वञ्चित होता है जो साधारणतः सब काम करनेवालोंको मिला करती हैं।

रुग्णावकाश तथा आकस्मिकावकाशका आयोजन सर्वत्र रहता है पर पत्रके कार्यालयमें बहुधा इसका कोई आयोजन नही रहता। यदि पत्रकार रोगशैय्याका आश्रित हुआ और दुर्भाग्यसे आरोग्य लाभमे समय लग गया तो निश्चय जानिए कि उसे क्षुधारोगसे भी पीडित होना पड़ेगा। मासमें दो दिन सवेतन छुट्टी जिस पत्र-कार्यालयमें प्राप्त हो वहाँकी व्यवस्थाको उदार समझिए। कल्पना कीजिए कि वर्ष पर्यन्तमें यही २४ दिनकी छुट्टी है जिसका उपयोग पत्रकार कर सकता है। इसीमें अपनी बीमारी, आकस्मिक आ जानेवाले कार्य, पर्यटन, विश्राम सब पूरा कर ले। यदि किसी मासमें दो दिनसे अधिक छुट्टी ले ली तो तीसरे दिनसे वेतन कटने लगेगा। वेतनकी अपर्याप्तता एक ओर और दूसरी ओर कटौतीकी यह मार! रोगी-पत्रकार रुग्णावस्थामें जहाँ कुछ और अधिक व्ययकी आवश्यकता समझता है, वहाँ उसे यह पुरस्कार मिलता है। कहाँसे डाक्टरकी फीस दे, पथ्यका प्रबन्ध करे और बच्चोंकी क्षुधाका निवारण करे? कार्य शक्ति बढ़ानेके लिए विश्राम देनेका सिद्धान्त तो भाडमे गया जीवनकी रक्षाके लिए भी उसकी आवश्यकता नहीं समझी जाती! क्या कहीं भी ऐसा अन्धेर देखनेको मिलेगा? पर यहाँ तो यह व्यवहार है उस वर्गके साथ जो आदर्शकी पूजा और जनकल्याणके लिए वलि चढ़ जानेको प्रस्तुत समझा जाता है।

इन सब सङ्कटोंसे पार होता हुआ यदि बेचारा पत्रकार अपने जीवनके उत्तम वर्षोंको पत्रकार-कलाकी सेवामें अर्पण करके जीवनकी संध्या वेलामें पहुँचा तो उसकी स्थिति वर्णनातीत हो जाती है। वृद्धावस्थामें पत्रकारिताके गुरुकार्यका भार उठाना संभव नहीं होता अतः निश्चय समझिये कि दफ्तरसे उसका निर्वासन हो जायगा। वृद्धा वेश्याकी भांति उसकी कोई उपयोगिता धनलोलुपोंकी दृष्टिमें नहीं रह जाती। जीवन पर्यन्त उसने जिनकी सेवा की है वे यह भी नहीं सोचते इस स्थितिमें वह करेगा क्या ? न कोई प्राविडेण्टफंड रखा जाता है और न उस कालमें सहायता प्रदान करनेका कोई प्रबंध। आरंभसे वेतन इतना न्यून होता है कि दिन प्रतिदिनका काम चलाना कठिन हो जाता है फिर यह आशा भी नहीं की जा सकती कि वह अपनी कमाईमें से बचाकर वृद्धावस्था या आपत्-कालके निमित्त कुछ रख सकेगा।

ये तमाम समस्याएँ जो भारतीय पत्रकारोंके सामने हैं। अंगरेजी भाषाके पत्रकारोंके सम्मुख इनकी भयानकता कुछ कम है, हिन्दीकी आपेक्षा बँगला, गुजराती तथा मराठी पत्रोंके पत्रकार भी अपेक्षाकृत कुछ अच्छे हैं पर राष्ट्र भाषा हिन्दीके पत्रकार चतुर्दिकसे आक्रान्त हैं। उनकी जो दुर्दशा है उसे देखकर लज्जासे मस्तक झुक जाता है। अनाथ बच्चोंकी भांति उनकी दशा है जिनकी ओर देखनेवाला भी कोई नहीं है। न सरकार सुनती है न समाजका ध्यान है। सरकार तो पत्रकारोंको मानो जरायम पेशेकी जातिका समझती है जिनसे केवल इतना ही मतलब रखती है कि उन्हे मौके बेमौके दंडका भागी बना दें। समाजकी दृष्टिमें ये पत्रकार उन अन्त्यजोंसे भी गये बीते हैं जो चारो ओरसे निर्दलित हैं। अन्त्यजोंके उद्धारके लिये तो आन्दोलन भी होता है पर इन अभागोंसे किसीको सहानुभूति नहीं। जब हम युरोप और अमेरिकाके पत्रकारोंकी स्थितिपर दृष्टिपात करते हैं और उनसे अपनी तुलना करते है तो अपनी दुर्दशा'के निकृष्टतम रूपका अनुमान करते हैं। वे अर्धगोरे पत्र भी जिनकी निन्दा करते हम नहीं अघाते, अपने कर्मचारियो और पत्रकारोंके साथ जो व्यवहार करते हैं तथा उनके लिए वेतन आदिका जो स्तर स्थापित कर दिया है उसकी ओर देखिये। इस सम्बन्धमे उनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोडी है। 'स्टेट्समेन' और 'टाइम्स आफ इण्डिया'के कार्यालयोंमें काम करनेवाले सहायक

सम्पादक हमारे बड़ेसे बडे अंगरेजी पत्रके सम्पादकोंसे कहीं अच्छी तथा सन्मानित स्थितिमें हैं। उनके संवाददाताओंका जो पुरस्कार है उतनेमें अधिकतर पत्र अपने सारे सम्पादकीय विभागको तनख्वाह बाँटते होंगे। हिन्दीके अच्छेसे अच्छे दैनिक-पत्रके सारे सम्पादकीय विभागको तो उतनी रकममें तीन-तीन महीनेतक वेतन दिया जा सकेगा।

इंग्लैण्ड और अमेरिकाके प्रतिष्ठित पत्रोंके सम्पादक तो उस देशके बड़ेसे बडे शासनाधिकारीके वेतनसे कम वेतन नही पाते। कहते हैं कि लन्दनके 'टाइम्स' का सम्पादक ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीके वेतनसे कम पारिश्रमिक नही पाता। सम्पादकीय विभागमें काम करनेवालोंके सुख, सुविधा और आरामके लिए व्यापक प्रबन्ध किये गये हैं। कार्यालयके आस पास रहनेके लिए मकान, विश्रामगृह, भोजनके लिए होटल, उनके बच्चोंके लिए शिक्षालय, व्यायामके लिए व्यायामशालय, खेलकूदके लिए मैदान, मनोरञ्जनके लिए सिनेमागृह, नृत्यभवन, अध्ययनके लिए विशाल पुस्तकालय, स्वास्थ्यके लिए अस्पताल आदि स्थापित किये गये है। 'टाइम्स', 'डेलीमेल' तथा 'मैन्चेस्टर गार्जियन' आदि पत्रोंके व्यापक प्रबन्धको देखिये। वेतन अच्छा तो मिलता ही है साथ-साथ वृद्धावस्थाके लिए बीमे और प्राविडेण्ट फण्डकी सुन्दर और उदार व्यवस्थायें परिचालित है। कोई भी कर्मचारी न होगा जिसका बीमा कार्यालय न करा दे और बीमेकी किश्त यदि एक तिहाई उक्त कर्मचारीके वेतनसे ली जाती है तो दो तिहाई कार्यालय अपनी ओरसे देता है। छुट्टियोकी व्यवस्था उदार है। यह सम्भव नही है कि किसी सम्पादकको अकारण निकाल बाहर किया जा सके। सबसे इकरारनामा होता है, नियुक्तिकी अवधि होती है और अवधिके पहले यदि किसीको हटाना हो तो अवधि पर्यन्तका पूरा पुरस्कार अदा कर देना पड़ता है। काम सीखनेके लिए आये हुए नये लोग भी वेतन पाते हैं और शिक्षाकालकी अवधि समाप्त होनेपर नियुक्त किये जाते है। पत्रका कार्यालय उनका भी न निरादर कर सकता है और न उन्हे चकमा दे सकता है।

संवाददाताओंपर अपार रुपए खर्च किये जाते हैं। पत्रसञ्चालक तथा पत्र-कम्पनियाँ पत्रकारोंके गौरवमें अपना गौरव समझती है। धनाभावके कारण उनका सम्वाददाता यदि रहन सहनका समुचित स्तर नहीं रख पाता, यदि

आवश्यक शान शौकतकी कमी रह जाय और यदि उसके कारण वह छोटा या तुच्छ दिखाई दे तो इसे पत्र कम्पनियाँ अपने गौरव, अपनी प्रतिष्ठा और अपनी शानके विरुद्ध समझती है। इस मनोवृत्तिपर प्रकाश डालनेवाली एक कहानी डाक्टर मारिसनने लिखी है। डाक्टर मारिसन चीनमें 'लन्दन टाइम्स' के सम्वाददाता थे। कुछ समय चीनमे काम करनेके बाद वे इंग्लैण्ड वापस आये। एक दिन 'टाइम्स' के मालिकोमें से एकने उन्हे अपने यहाँ भोजनके लिए आमन्त्रित किया। भोजन करते हुए मालिकने मारिसनसे चीनके सम्बन्धमें बातचीत शुरू की और उनसे पूछा कि—"अच्छा मारिसन! यह तो बताओ कि तुमने लीहुँग-चाँगसे भी बात-चीत की थी।" डाक्टर मारिसनने उत्तरमें कहा 'हाँ' कई बार उनसे भेंट हुई और बातचीत भी हुई।

मालिक—उनसे क्या बातचीत हुई?

मारिसन—वे कुछ विचित्र सज्जन जान पडे। एकदिन बातचीत करते हुए उन्होने मुझसे पूछा कि तुम कितनी तनखाह पाते हो?

मालिक—अच्छा! ऐसा सवाल। खैर, तुमने क्या उत्तर दिया। क्या पुरस्कारकी रकम बतायी।

मारिसन—नहीं नहीं! मैंने उनसे कहा, 'हजूर आपके सम्मुख अपने छोटेसे पुरस्कारकी चर्चा करना गुस्ताखी होगी।'

बात यहीं समाप्त होगयी। मारिसन लिखते हैं कि "इस बातचीतका मालिकपर विचित्र प्रभाव हुआ। भोज समाप्त होनेपर जब मैं बिदा होने लगा तो मालिकने झुककर धीरेसे पूछा 'अच्छा मारिसन यह तो बताओ हम तुम्हे क्या तनखाह देते हैं। मेरे बता देनेपर वे बोल उठे 'रकम पर्याप्त नही है। अच्छा हम इस मामलेको देखेंगे। दूसरे दिन वेतन बढ़ा दिया गया।' यह मनोरञ्जक कहानी वहाँके पत्र सञ्चालकोंकी मनोवृत्तिपर प्रकाश डालती हैं जो अपने पत्रकारोंकी दयनीय वेशभूषा और दरिद्र रहन-सहनमें अपनी ही शानको बट्टा लगते देखते हैं।

इस देशमें हम न इतनी उदारताकी कल्पना कर सकते हैं और न पत्र-सञ्चालकोंके हृदयकी विशालतामें विश्वास। हम अंग्रेजोंकी नकल करनेमे सिद्ध हस्त हैं पर उनकी बुराइयोंको अपना लेते हैं और भलाइयोंकी उपेक्षा करते है।

पूञ्जीवादके सारे दुर्गुण भी हम अपना रहे है पर उसके गुणको सतर्कताके साथ अलग छोडते जा रहे है। इस स्थितिमें पत्रकारके सम्मुख कर्तव्यका प्रश्न है? इन समस्याओंके सम्बन्धमें वह क्या करे? इस प्रश्नका उत्तर भी पत्रकारको स्वयं देना होगा। किसीसे इस बातकी आशा करना कि वह पत्रकारोंकी सहायता करने तथा उसकी समस्याओंको हल करनेके लिये अग्रसर होगा विशुद्ध आत्मवञ्चनके सिवा और कुछ नही है। आवश्यकता इस बात की है कि पत्रकार स्वयं उठें और इस दयनीय स्थितिको बदल देनेके लिये विवेक तथा विचारशीलता और बुद्धिका आश्रय लेकर दृढतापूर्वक यत्न करें। विवेक तथा बुद्धिका आश्रय लेकर यत्न करनेकी शर्त हमने जानबूझकर लगायी है। पत्रकारोको अपनी स्थिति सुधारनेके लिये, अपने हितों और स्वत्वोंको सुरक्षित रखनेके लिये तथा आदर्शोंको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये यत्नशील होना पडेगा पर ऐसा करते हुए कुछ बातें हैं जिन्हे सदा ध्यान में रखना पड़ेगा।

हम कह चुके हैं कि पत्रकार निरा नौकर या मजदूरकी स्थिति नहीं रखता। उसके कर्तव्यका स्वरूप ही ऐसा है कि किसीका वेतन भोगी कर्मचारी होते हुए भी विशुद्ध सेवकसे उसकी मौलिक और गहरी भिन्नता है। फलतः अपनी समस्याओंपर केवल मजदूरसङ्घोंके दृष्टिकोणसे विचार करना भी उसके लिये उसी प्रकार सम्भव नहीं जिस प्रकार अपने प्रति नौकरोंसा व्यवहार सहन करना सम्भव नहीं है। यह बात सदा उसे स्मरण रखनी होगी। पत्रकार और पत्रसञ्चालकके हित एक सीमातक परस्पर भिन्न हो सकते हैं पर एक सीमा आती है जब दोनोंके हित समान हो जाते हैं। एक प्रश्नको उदाहरण स्वरूप ले लीजिये। पत्रका प्रकाशन जारी रहे यह बात पत्रकार और सञ्चालक दोनोंको वाञ्छनीय होगी। इसमें दोनोंका हित समान रूपसे है। यह सच है कि दोनों इस प्रश्नको भी दो भिन्न दृष्टिकोणोंसे वाञ्छनीय समझ सकते हैं। पत्रसञ्चालककी दृष्टिमें पत्रका जारी रहना उसके व्यापार, लाभ और धनकी दृष्टिसे वाञ्छनीय होगा पर पत्रकी दृष्टिमें उसके जीवनोपायके साथ-साथ देशकी, समाजकी सेवाके लिये पत्रका जीवित रहना वाञ्छनीय ज्ञात हो सकता है। दो भिन्न होते हुए भी एक विन्दुपर दोनों मिल जाते हैं। पत्रकारके सामने केवल वेतन नहीं अपितु नेअप आदर्श तथा अपनी सेवाभावनाका प्रश्न भी होता है। अतएव पत्रका

अस्तित्व बनाये रखनेकी आवश्यकता उत्पन्न होनेपर वह त्याग करनेके लिये भी तैयार हो जा सकता है। अपने आर्थिक लाभको भूलकर वह चेष्टा करेगा कि उसका पत्र चलता रहे। किसी मजदूरका लक्ष्य केवल मजदूरी कमाना होता है पर पत्रकार केवल पैसेको देख नहीं सकता।

उसके हित और स्वार्थ भी सङ्कुचित नहीं है। हम नहीं कह सकते कि पत्रकारका स्वार्थ केवल इतना है कि वह कमसे कम काम करके अधिकसे अधिक वेतन प्राप्त करे। वह अपने पत्रका प्रतिनिधि है। पत्रके सुयश और उसकी प्रतिष्ठापर उसका सुयश और उसका गौरव निर्भर करता है। पत्र उसकी त्याग-वृत्ति और सेवाभावकी पूर्तिका साधन है। पत्रमें वह अपने उत्तमांशको, अपनी आत्माको अभिव्यक्त करता है। इसमें उसे जो सन्तोष और शान्ति मिलती है उसकी तुलनामे जगत्की कोई सम्पदा टिक नहीं सकती। फलतः उसके स्वार्थकी सीमा केवल वेतनतक परिमित नहीं है। 'वर मरे चाहे कन्या, दक्षिणासे काम' वाला सिद्धान्त कोई मजदूर अपनाना चाहे तो अपना सकता है पर वह पत्रकारके स्वभाव स्वरूप, धर्म और कर्तव्यके अनुकूल पड ही नहीं सकता।

फलत. पत्रकार अपने निजी स्वार्थोंकी रक्षा करते हुए भी पत्र सञ्चालकको विशुद्ध रूपसे अपने विरोधीके रूपमें ग्रहण नहीं कर सकता। दोनोंका सम्बन्ध चूहे-बिल्लीका सम्बन्ध नहीं बनाया जा सकता। पत्रकारके लिये आवश्यक होगा कि अपनी समस्याओंको सुलझानेके लिए दृढ़ और कठिन संघटित प्रयत्न करते हुए भी पत्र सञ्चालककी कठिनाइयोंका ध्यान रखें। अपना कार्यक्रम निश्चित करते हुए वह सञ्चालककी कठिनाइयोंके प्रश्नकी सम्पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सकता। फिर सब पत्र सञ्चालक एकसे होते भी नहीं। भारतमें जहाँ पूँजी-वादका रूप उग्र नहीं हुआ है और पत्र-व्यवसाय उस प्रकार अभी धन कमानेका एकमात्र साधन नहीं बन पाया है जैसा युरोपमें बन गया है, पत्र सञ्चालनमें घृणित व्यवसायवाद पूरी तरह प्रवेश नहीं कर सका है। बहुतसे हमारे पत्र लखपती हैं पर बहुतसे ऐसे भी है जिसके सम्पादकही उसके सञ्चालक हैं। हिन्दीके कतिपय पत्र लखपती सञ्चालकोंके अधीन हैं पर अधिकतर ऐसे ही हैं जिनके सञ्चालक पत्रकार ही रहे हैं और अपने रक्तसे अपने पत्रका सिञ्चन करते रहे हैं। आज पत्रकारोंको इन दोनो प्रकारके पत्रों और पत्र सञ्चालकोंमें

भी भेद करना होगा। 'सब धान बाइस पसेरी'का सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता।

फिर लखपतीका पत्र हो या किसी पत्रकारका, ऐसी अवस्था दोनोंके सामने आ सकती है जब पत्रका सञ्चालन करना कठिन हो जाय। हिन्दी पत्रोंका भविष्य उज्ज्वल होते हुए भी वर्तमान शुभ्र नहीं है। आज भी जब हिन्दी पत्रोंकी माँग बढ़ती जा रही है, वे बहुधा आर्थिक सङ्कटसे गुजरते रहते है। पाठकोंकी उपेक्षा, हिन्दी-भाषा-भाषियोंका अँगरेजीके प्रति प्रेम, देशकी जनताकी गरीबी, देहातोंमें यातायात तथा डाँकके साधनोंकी कमी, हिन्दी-पत्रकार-कलाका स्तर ऊँचा न होना, व्यवस्थापनके समुचित प्रबन्धकी कमी सरकारका कोप, आदि अनेक कारण है जो आर्थिक दृष्ट्या हिन्दीके पत्रोंको उन्नतिमें बाधक हैं। फलतः हिन्दी पत्रोंका पत्रकार अपने पत्रकी आर्थिक स्थितिकी उपेक्षा नहीं कर सकता। यदि सचमुच वे संकटसे गुजर रहे होंगे तो उसे त्याग करना पडेगा। सञ्चालक व्यापक लाभ उठानेमें समर्थ होते हुए यदि हमारे शोषणकी चेष्टा करे तो उससे मुक्त होनेका उपाय करना जैसे हम अपना कर्तव्य समझेंगे वैसे ही यदि पत्रका अस्तित्व अर्थ संकटके कारण खतरेमें पड़ जाय तो उसकी रक्षाके लिए भी आवश्यक त्याग करना उचित ज्ञात हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि ये तमाम बातें ऐसी हैं जिनको ध्यानमें रखकर ही हमे अपने कर्तव्यका निर्धारण करना पडता है। इसी दृष्टिसे हमने विवेक और बुद्धिकी शर्त लगायी है। पत्रकार व्यापक दृष्टिकोण लेकर, प्रश्नके प्रत्येक पहलू और उसके स्वरूपकी विवेचना करके, अपनी समस्याओंको सुलझानेके लिए दृढता पूर्वक स्वयं बद्ध परिकर हों तभी अपनी कठिनाइयों और बाधाओंका निराकरण करनेमे समर्थ होंगे। खेदकी बात है कि इस दिशामें पत्रकारोंने अब-तक क्षोभकारक और निन्दनीय उपेक्षा दिखाई है। आलस्य, असंघटन, मिथ्या-भिमान तथा अदूरदर्शिताका घृणित उदाहरण उपस्थित करनेमें हम पत्रकारोंने कुछ उठा नहीं रखा। अपनी दुःखभरी और हृदयद्रावक गाथा सुनानेमें हम किसीसे पीछे नहीं रहे। व्याख्यान मंचोंसे लम्बे-लम्बे व्याख्यान दिये गये, पत्र पत्रिकाओंके पृष्ठोंमें बहुत कुछ लिखा और पढ़ा गया, सम्मेलनोंका आयो-

जन करके विस्तृत प्रस्ताव स्वीकार किये गये, बड़े-बड़े लक्ष्य और उद्देश्य सामने उपस्थित किये गये, पर हमारी सारी तेजस्विता इसी सीमा तक परिमित रही। किया कुछ नहीं गया पर बातें बहुत बनायी गयीं।

अब तक पत्रकारोंका अच्छा सङ्घटन भी नहीं हो पाया है यद्यपि इसकी चेष्टा कई दशक पूर्वसे बराबर होती रही है। सन् १९०७ ईसवीमें श्रद्धेय श्रीपुरुषोत्तम दास टण्डनके निरीक्षणमें 'सम्पादक समिति' नामक संस्था स्थापित की गयी। कुछ वर्ष बाद यह संस्था लुप्त हो गयी। सन् १९१० ईसवीमें साहित्य-सम्मेलनकी स्थापना हुई। उसके वार्षिक अधिवेशनोंके साथ उसीके तत्वावधानमें सम्पादक सम्मेलन होने लगा पर तीन वर्ष बाद यह भी लुप्त हो गया। फिर सन् १९२६ ईसवीमें आदरणीय पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकरकी अध्यक्षतामें वृन्दावनमें पुनः सम्पादक-सम्मेलनका आयोजन साहित्य सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर हुआ। तबसे कई वर्षोंतक यह सम्मेलन बराबर होता रहा है। बीचमें एकबार इसे इन्दौरमें साहित्य सम्मेलनसे अलग किया गया पर अलग क्या हुआ कि लुप्त ही होगया। इन सम्मेलनोंमें सदा प्रस्ताव स्वीकार किये जाते रहे और सभामञ्चसे तेजस्वी भाषण होते रहे। काशीमें सन् १९३८में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर पण्डित माखनलाल चतुर्वेदीकी अध्यक्षतामें यह सम्मेलन हुआ था। सम्मेलनके पूर्व और अनन्तर हम पत्रकारोंने जो उपेक्षा दिखाई उसका कुछ अनुभव इन पंक्तियोंके लेखकको भी है। सम्मेलनमें जो सुन्दर और प्रभावकर भाषण हुए उनका भी कुछ स्मरण है। पर यह सब होता रहा किन्तु गाड़ी आगे कभी न बढ़ी।

अब हिन्दी-पत्रकार-संघकी स्थापना हो गयी है जिसके अधिवेशन गत तीन वर्षोंसे हो रहे हैं। युद्धने हमारे देशके पत्रों और पत्रकारोंको जो चोट दी है उससे कदाचित उनकी निद्रा भङ्ग होने लगी है। हिन्दी-पत्रकार संघके सिवा कुछ और संस्थायें भी उद्भूत हो गयी हैं। अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन का नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। यह संस्था सम्पत्तिशील समाचार पत्रोंकी है जिसने युद्धकालमें भारतीयपत्रोंकी रक्षाके लिए कुछ करनेकी चेष्टा की है और जिसके फलस्वरूप ख्याति लाभ कर चुकी है। युद्धके बहाने भारतीय जनताकी स्वतन्त्रता हरण करनेके लिए जिन अनेक निरङ्कुश और काले कानूनोंकी

सृष्टि की गयी है उन्होंने गत वर्षोंमें अनेक पत्रोंको उदरस्थ कर लिया। अनेक पत्रकार उसके आघातसे आहत हुए। यह विपत्ति तो थी ही, कागजकी समस्याने वह विकराल रूप धारण किया कि भारतीय पत्रोंका सामूहिक रूपसे अस्तित्व खतरे में पड़ गया। दमन और कागजका अभाव दिन-दिन उग्र होने लगा। फलतः सदा अपनी समस्याओंकी उपेक्षा करनेवाले असंघटित भारतीय पत्रकार भी जागने लगे। आवश्यकता सब कुछ करा देती है। वही आविष्कारोंकी जननी भी होती है। फलतः अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन हिन्दी-पत्रकार सङ्घ, ईस्टर्नन्यूज़ पेपर्स सोसायटी, देशी भाषा पत्र सङ्घ नामक कतिपय संस्थायें आविर्भूत हो गयीं।

अखिल भारतीय संपादक सम्मेलनके अध्यापकने मद्रासके प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दू'के संपादक श्री श्रीनिवासन है। इसमें भारतके अधगोरे पत्रोंके प्रतिनिधि भी सम्मिलित है। इसने भारतीय पत्रोंकी दमनसे रक्षा करनेके लिए और कागजकी समस्याको हल करनेके लिए चेष्टा भी की और इसी कारण विख्यात भी हुई।' 'ईस्टर्नन्यूज पेपर्स सोसाइटी' लखपती पत्रोंकी संस्था है। देशी भाषा पत्र संघका कार्यालय भी बम्बईमें है। हिन्दी पत्रकार संघ हिन्दी भाषाके पत्रकारोंके सङ्घटनके रुपमें प्रकट हुआ है। द्वितीय अधिवेशनके सभापति श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल थे जिसका अधिवेशन दिल्लीमें हुआ था। इस वर्ष सन् १९४३ में कलकत्तेमें तृतीय अधिवेशन हुआ है जिसके अध्यक्ष श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति रहे हैं। इन सम्मेलनोंमें जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं, जैसे भाषण किये गये हैं उन्हे उद्धृत करके हम ग्रन्थका कलेवर बढाना नही चाहते। इतना कह देना पर्याप्त होगा कि पत्रकारोने उन सब समस्याओंपर विचार किया है जो उनके सामने हैं। समस्यामें क्या हैं, और उनको हल करनेके उपाय क्या हैं, इनपर तो सम्मेलनमें हुए निर्णय तथा भाषण सुन्दर प्रकाश डालते है। उन उपायोंको कार्यान्वित करनेके लिए यत्नशील होना चाहिये यह उलाहना भी सब देते हैं। पत्रकारोंमें दृढ़ताके साथ अपनेको सघटित करके अपने निर्वाचोंको कार्यान्वित करनेके उत्साहकी कमी है यह स्वीकार करते हुए सब आँसू भी बहाते। पर इससे अधिक अभी और कुछ नहीं किया गया।

हममें सघटनका अभाव था और है यह स्पष्ट है। पत्रकारसंघ यदि इस अभावकी पूर्ति कर दे तो बड़ा भारी काम हुआ मानना चाहिये। पर किसी सङ्घटनमें सजीवता लानेके लिए उसके सदस्योंमें सक्रियताका होना आवश्यक है। सदस्योंकी चेष्टा कर्त्तव्य-निष्ठा और सोत्साह कामको आगे बढ़ाना ही, किसी सङ्घटनको अनुप्राणित कर सकते हैं। यह सक्रियता कदाचित् अभी उत्पन्न नहीं हुई है। और जबतक उत्पन्न न होगी तबतक केवल सम्मेलनोंमें भाषण करने अथवा उग्र व्याख्यान दे देनेसे काम नहीं चल सकता। इसका भी परिणाम वही होगा जो अबतक होता रहा है। आश्चर्य होता है कि जो पत्रकार दूसरोंको उज्जीवित करनेकी चेष्टा करता है, दूसरोंके आलस्य, प्रमाद, दम्भ और निश्चेष्टताका कठोर आलोचक और विरोधी होता है, सारे राष्ट्रको जगानेमें अपनी शक्ति और समय लगाता है वह स्वय कैसे जड हो गया है? यह विचित्र विडम्बना है जिसपर स्वयं पत्रकारोंको विचार करना चाहिये।

उन्हें देखना चाहिये कि बार-बार चेष्टा करनेपर भी अबतक प्रभावकर सङ्घटनकी स्थापनामें वे क्यो सफल नहीं हुए। इसमें कौनसी उनकी दुर्बलतायें बाधक होती रहीं और उन दुर्बलताओंका निराकरण कैसे किया जा सकता है। हम समझते हैं कि परस्पर पत्रकारोंमे सक्रिय सहानुभूतिका अभाव तथा आपस में बन्धुत्वकी बडी भारी कमी वर्तमान है जिसने इसमें बाधा डाली है। अपने हितों, स्वत्वों और आदर्शके सम्बन्धमें हमारा अज्ञान भी बाधक रहा है। जो भी अवस्था हो उसीमें अपनेको घसीटते ले चलनेका हमारा स्वभाव भी बाधक होता रहा है। मिथ्याभिमान और दम्भ भी हमें परस्पर एक सूत्रमें बँधनेसे रोकता रहा है। इन सारी दुर्बलवृत्तियोंसे अपना छुटकारा करना होगा। दृढ़ताके साथ सचेष्ट और सक्रिय होनेका सङ्कल्प भी करना होगा। योजनाओंका निर्माण करना, लम्बे लम्बे प्रस्ताव स्वीकार करना एक बात है और उन्हे कार्य रूपमे परिणत करना बिलकुल दूसरी चीज है। कागजपर निर्णयमात्र लिख देनेसे कभी काम नहीं चल सकता। योजनायें बहुत बनीं पर आजतक कभी उन्हे काममें लानेका प्रयत्न नहीं किया गया। पत्रकार सङ्घके दूसरे अधि-

" यह निश्चय हुआ था कि किसी काम सीखनेवाले उम्मेदवारको २५)

मासिक और स्थिर नियुक्ति हो जानेपर ४०) मासिकसे कम न दिया जाय। काम सीखनेकी अवधि दोवर्षसे अधिक न हो और न एक समय दोसे अधिक उम्मेदवार रखे जायँ।'

प्रस्ताव अच्छा था पर प्रश्न यह कि क्या इसे व्यवहारिक रूप भी दिया गया? पत्रकार सङ्घने व्यावहारिक रूप देनेके लिये कौनसी चेष्टा की? क्या उसके पास उन पत्रोंकी सूची है जिन्होंने इसे माना और जिन्होंने नहीं माना क्या उनकी तालिका भी है? इन प्रश्नोंका उत्तर नकरात्मक है। तृतीय अधिवेशनके अध्यक्ष श्री इन्दुजीने अपने अभिभाषणमें स्वयं सघकी अकर्मण्यता-पर खेद प्रकट करते हुए कहा है कि हम लोगोंने अपने उत्तरदायित्वका निर्वाह नहीं किया। फलतः जहाँ बहुतसी समस्याएँ पत्रकारोंके सामने हैं वहाँ सबसे मुख्य, मौलिक तथा तात्विक समस्या यही है कि क्या वे 'उठने, जागने और लक्ष्य प्राप्त करनेके लिए' कृतसंकल्प हैं? यदि हैं तो धीरे-धीरे सारी बातें समयानुसार हल हो जायँगी। यदि नहीं हैं तो योजनाओंकी रचना सम्मेलनोंके अधिवेशन और 'स्वत्व स्वत्व' चिल्लानेसे कुछ होने वाला नहीं है।

इङ्गलैण्ड और अमेरिकाके पत्रकारोंसे हमें इस दिशामें भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उन्होंने अपने सङ्घटनके बलपर न केवल पत्रकारोके हितोंकी रक्षा की है अपितु अपने पेशेको सम्मानित स्थान प्रदान कर दिया है। वहाँके पत्रकारोंका पेशा वैसे ही आदरणीय बुद्धिजीवियोंका पेशा समझा जाता है जैसे किसी विश्वविद्यालयके अध्यापकका समझा जाता है। प्रचण्ड व्यवसायवादके रहते, धन-लोलुपताके नग्न नर्तनमें भी उन्होंने अपने वर्गकी रक्षा करनेमें सफलता पायी है। यह सब परिणाम है उनकी सङ्घटन शक्तितथा सक्रियताका। हमे भी अपने प्रश्नोंको हल करनेके लिये उसी मार्गका अवलम्बन करना होगा।

पत्रकार सङ्घको चेष्टा करनी चाहिये कि अपनी परिधिके भीतर समस्त हिन्दी दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रोंको ले ले। हमारे किसी भी सङ्घको हिन्दी पत्रकारोंका सजीव प्रतिनिधि होना ही चाहिये। परस्पर सहयोग, सहानुभूति और बन्धुत्वका भाव उदीयमान हो। सङ्घका नियन्त्रण प्रत्येक पर स्थापित हो और उसके निर्णयोंकी उपेक्षा कोई पत्रकार न कर सके। सजीव सङ्घटन और सच्चा प्रतिनिधित्व करनेके लिए किसी भी सङ्घको यह पद प्रदान करना

आवश्यक है। सामूहिक रूपसे तभी हम दूसरोंको प्रभावित कर सकेंगे। कोई पत्र-सञ्चालक किसी पत्रकारके साथ अन्याय करता है, उसका शोषण करता है और काम निकल जानेपर उसे बेकारीकी भट्टीमें झोंक देता है। इस नङ्गे अनाचारको देखते हुए भी दूसरा पत्रकार अवसर पाकर उसी पदको ग्रहण करनेके लिए तैयार हो जाता है। कम वेतनपर, अपनी स्वतन्त्रता और अपने आदर्शको धूमिल करके भी काम करनेके लिए तैयार हो जाता है। फिर भला कैसे होगा परस्परका सङ्गठन और कैसे दूर कर सकेंगे आप अनाचार? सामूहिक चेतनाकी भावनाका जाग्रत होना, बन्धुत्व और सङ्घका नियन्त्रण इसीलिए आवश्यक है!

यह पद प्राप्त कर लेनेपर संघ विभिन्न प्रश्नोंको हाथमें ले और उसे सुलझानेकी योजना बनाये। हमारे देशके प्रायः सभी प्रान्तोंसे हिन्दी भाषाके पत्र निकलने लगे हैं। इन पत्रोंकी तालिका बनायी जाय! किस पत्रमें कितने पत्रकार काम करते हैं, उनका कमसे कम वेतन क्या है, अधिकसे अधिक पारिश्रमिक कितना मिलता है, छुट्टियोंकी व्यवस्था कैसी है, कितनी छुट्टियाँ मिलती हैं, पत्रकारोंके प्रति सञ्चालकोंका व्यवहार कैसा है, नियुक्ति करते हुए पत्रकारसे कोई एकरारनामा किया जाता है या नहीं, बिना किसी कारण केवल इसलिए कि सस्तेमें काम करनेवाला कोई नया आदमी मिल जाता है, पुराने और अनुभवी पत्रकारोंके साथ अन्याय तो नहीं होता, वृद्धावस्थाके लिए प्राविडेण्ट फण्ड या बीमे आदिकी कोई व्यवस्था है या नहीं आदि बातोंकी पूरी जानकारी प्राप्त की जाय। किन पत्रोंकी आर्थिक स्थिति अच्छी है, कौन कम्पनियों तथा व्यवसायियोंके अधीन हैं, कितनोंकी स्थिति अच्छी नहीं है, किनके सञ्चालक स्वयं पत्रकार हैं आदि बातोंका लेखा तैयार कर लिया जाय।

सारे मसालेको जुटाकर संघ एक-एक प्रश्नके सम्बन्धमें पत्रकारोंकी उचित माँग उपस्थित करे। माँग जैसा कि कह चुका हूँ विवेकपूर्ण, बुद्धिसम्मत तथा सब प्रश्नोंके बाह्याभ्यान्तरिक स्वरूपको समझ लेनेके बाद उपस्थित की जाय। निर्णय कर लेनेपर उसे कार्यान्वित करानेकी चेष्टा की जाय। सञ्चालकोंको समझा-बुझाकर, उनसे अनुरोध-आग्रह करके, उनके हितसे अपने हितका सामञ्जस्य स्थापित करके उसे पूरा करानेकी कोशिश की जाय। जब इतनेसे भी

काम न चले और आवश्यक हो तो अपेक्षित दबाव डालनेके उचित उपाय भी निकाले जायँ। दूसरी ओर पत्रकारोंको सङ्घका निर्णय माननेके लिए बाध्य कर दिया जाय। परस्परकी प्रतिस्पर्धामें हम सामूहिक हितको न भूलें और न अन्यायके समर्थक बन जायँ। कहीं किसी कार्यालयमें यदि किसी पत्रकारके साथ गहरा अन्याय हो तो उस प्रश्नको सङ्घ अपने हाथमें ले।

इस प्रकार पत्रकारोंकी कठिनाइयोंको हल करनेकी चेष्टा करनी होगी। इसी सिलसिलेमें एक आवश्यक बातकी ओर ध्यान आकृष्ट कर देना उचित होगा। प्रसन्नताकी बात है कि हिन्दी पत्रकार-सङ्घका ध्यान इधर जा चुका है, यद्यपि दुःख यह है कि सदाकी भाँति इस दिशामें भी कुछ किया न जा सका। पत्रकारोंके ऊपर कानूनी विपत्तिका पहाड़ बहुधा टूटा करता है। इस अभागे पराधीन देशमे तो आये दिन सरकारके क्रोध और उसकी निरङ्कुशताकी आग उन्हे और उनके पत्रोंको भस्म करती रहती है। ऐसे पत्रों और पत्रकारोंकी सहायताका प्रश्न बड़ा गम्भीर है। जैसा कि कह चुके हैं, न्याय और मनुष्यताकी माँग तो यह थी कि जो पत्रकार पत्रकी सेवा करते हुए सरकारी कानूनोंका शिकार हो उसके परिवारका भरण-पोषण पत्र-सञ्चालकको ही करना चाहिये। पर सञ्चालकोंसे इसकी आशा करना व्यर्थ है। इसके लिए संघ माँग अवश्य उपस्थित करे पर सञ्चालकोंके ऊपर आश्रित रहना अथवा जबतक वे स्वीकार न कर लें हाथपर हाथ धरे बैठे रहना उचित न होगा। स्वयं पत्रकारोंको अपने लिए कुछ न कुछ करना आवश्यक है। पत्रकार संघने सन् १९४२ ईसवीके अपने अधिवेशनमें ऐसे कोषकी स्थापनाका निश्चय किया था जिसके द्वारा उन पत्रोंको, जो निर्धन हैं तथा उन पत्रकारोंको जिन्हे आवश्यकता है कानूनी सङ्कटमें फँसनेपर सहायता दी जाती। कलकत्तेवाले तृतीयाधिवेशनमें भी इस निर्णयको दुहराया गया है। पत्रकार-संघ जितना शीघ्र इस कार्यको पूरा कर सके उतना ही अच्छा है।

सभी स्वीकार करेंगे कि ऐसी निधिकी स्थापना करनेके लिए पर्याप्त धनकी प्राप्ति सरल नहीं है। वर्गविशेषकी सहायताके लिए लोग उत्साहपूर्वक धन देंगे इसे वही स्वीकार करेगा जिसे चन्दा संग्रह करनेका अनुभव नहीं है। चन्दा दिया जाता है वहाँ जहाँ दान करनेपर दाताको यश प्राप्त हो,

उसका नाम बढ़े, उसे नेताओंका धन्यवाद मिले और उसके बगलमें बैठनेको स्थान मिल जाय। अथवा चन्दा तब मिलता है जब किसी तात्कालिक विपत्ति अथवा समस्याके उत्पन्न हो जानेपर लोगोंका हृदय द्रवीभूत हो जाता है या उत्तेजना फैल उठती है। इस निधिमें उपर्युक्त कोई बात नहीं है फिर धनसंग्रह सरल कैसे हो सकता है? पर इससे निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रयत्न होना चाहिये और हम आशा कर सकते हैं कि 'जलबिन्दु-निपातेन क्रमशः पूर्यते घटः' के सिद्धान्तानुसार धीरे-धीरे कुछ न कुछ हो ही जायगा।

पत्रकारोंकी एक और प्रमुख श्रेणी है जिसकी ओर पत्रकार संघको विशेष ध्यान देना चाहिये। हमारा तात्पर्य स्वतन्त्र पत्रकारों (फ्री लांसजर्नलिस्ट) से है। अमेरिका और यूरोपमें इस वर्गकी बड़ी महिमा और प्रतिष्ठा है। ये विविध पत्रोंका लेख, समाचार, घटनाओंके विवरण, विविध विषयक आलोचनाएँ भेजा करते हैं और इनमेंसे ख्यातनामा पत्रकार पर्याप्त धन प्राप्त करते हैं। हमारे देशमें भी इनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ रही है। अंग्रेजी भाषाके स्वतन्त्र पत्रकार तो फिर भी अच्छे हैं पर हिन्दीवालोंकी दुर्दशा काफी है। लेख, कहानियाँ अथवा घटनाओंके विवरण भेजनेवाले स्वतन्त्र पत्रकारोंको पत्र-सञ्चालक उनका उचित पारिश्रमिक देनेके लिए बाध्य किये जायँ। हमारा अनुभव है कि बहुधा ऐसे पत्रकार बुरी तरह ठगे जाते हैं और उन्हें जितना देनेका वचन दिया जाता है वह भी नहीं दिया जाता। बेचारे अपने पैसेके लिए तकाजा करनेमें अपनी सारी प्रतिभा खो देते हैं फिर भी उतना नहीं मिल पाता जितना डाकमें खर्च कर देते हैं। यह स्थिति तो उनकी है जो लब्धप्रतिष्ठ हैं। साधारण लेखकोंके लेख छाप देनेमें ही पत्र बहुधा उनका पुरस्कार समझते हैं। जिसमें उनका लेख प्रकाशित हुआ है, उस अङ्ककी एक प्रति बिना मूल्य दे दी गयी तो बहुत समझिये।

इस स्थितिसे स्वतन्त्र पत्रकार तो उत्पीडित होता ही है पत्रोंके सुनामको भी धक्का लगता है। इससे भी बडी हानि तो पत्रकार कलाकी हो रही है। ऐसे लेखक जिनमें प्रतिभा है, जो एक दिन चलकर हिन्दी पत्रकार कलाके क्षेत्रको शोभित कर सकते हैं, जो इसे कुछ प्रदान करते वे निराश होकर बैठ

रहते हैं। यदि दूसरी भाषाका आश्रय ले सकते हैं तो ऊपर चले जाते हैं अन्यथा कोई दूसरा जीवनोपाय ढूँढ़ते है। हमारे संघको ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि इन पत्रकारोंका पारिश्रमिक उन्हे मिले तो और जो पत्र-व्यवस्थापक इसमें व्याघात पहुँचायें उनका नाम छापकर, या निन्दा करके उनकी भर्त्सना की जाय।

पत्रकार संघका यह भी कर्तव्य होगा कि दूसरी भारतीय भाषाओंके पत्रों और पत्रकारोंसे भी मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करें। पत्रकारोंकी कोई अखिल भारतीय संस्था हो तो उसमें अपने लिए उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त करें तथा बँगला, गुजराती तथा मराठी और उर्दू आदि भाषाके पत्रकारों से या पत्रकार संघोंसे मेल-मिलाप करें। गुजराती, बँगला आदि भाषाके पत्रकारोंकी पत्रकार-कला तथा स्थिति हम हिन्दी पत्रकारोंसे उन्नत है। उनसे सम्बन्ध स्थापित करके हम न केवल कुछ सीख सकेंगे अपितु हमारा संघ बल ग्रहण करेगा। दृष्टिकोणकी व्यापकता तथा सार्वदेशिक भ्रातृ-भाव और सामूहिक चेतना हमें अनुप्राणित करेगी और हम अपने स्तरको ऊँचा उठानेमें सफल होंगे।

यहाँ तक तो हमने पत्रकारोंके आर्थिक हितके सम्बन्धमें विचार किया पर एक अत्यन्त आवश्यक प्रश्न है जिसकी ओर पत्रकार संघको अपेक्षाकृत सबसे अधिक ध्यान देना होगा। हिन्दी पत्रकार-कलाके धरातलको ऊँचा उठानेकी नितान्त आवश्यकता है। युरोप, इङ्गलैण्ड या अमेरिकाकी पत्रकारकलाकी तो बात ही करना व्यर्थ है, इस देशके अंगरेजी भाषाके पत्रकारों तथा बँगला, गुजराती आदि भारतीय भाषाओंके पत्रकारोंकी तुलनामें हम अपनी पत्रकार कलाको देखते हैं तो हमारा मस्तक लज्जासे झुक जाता है। यह सच है कि हमारे पत्रकार आदर्शवादमें, सेवा और त्यागकी भावनामें किसीसे कम नहीं हैं। थोड़ेसे पथभ्रष्ट अवसरवादी पत्रकारोंको छोड़ दीजिये जो केवल धनको ही अपना ईश्वर मानते हैं। वे उचित अनुचितका विवेक छोड़कर, पत्रकारके आदर्शका निर्दलन करके तरह तरहकी भ्रष्टताका आश्रय ग्रहण करते हैं और अपना स्वार्थ साधन करते हैं। प्रसन्नताकी बात है कि इनकी संख्या कम है और यदि हमारा प्रबल संघटन होगा तो इनका समुचित दमन कर देना भी

असम्भव न होगा। पर इनके सिवा हमारे अधिकतर पत्रकार, पत्रकारकी दृष्टि-से चरित्र तथा आदर्शवादमें किसीसे कम नहीं है। इतना सब होते हुए भी पत्रकारकलाके सम्बन्धमें उनका अज्ञान और अयोग्यताकी उनकी मात्रा कदाचित् सबसे अधिक है। उनकी न्यूनता और त्रुटियोंके सम्बन्धमें हम पिछले अध्यायोंमें विचार कर चुके हैं अतएव उनकी पुनरावृत्ति करनेकी आवश्यकता नहीं है।

यहाँ हम केवल इस बातपर ध्यान आकृष्ट कराना चाहते हैं कि साधारणतः सारे भारतीय पत्रकारोंका और विशेषतः हिन्दी भाषी पत्रकारका कला सम्बन्धी स्तर ऊँचा करनेके लिए आवश्यक प्रयत्न होना चाहिये। हमारे विश्व-विद्यालयों और कालेजोंसे उपाधि विभूषित होकर बाहर आनेवाले छात्र बहुधा विद्यालयसे सीधे निकलकर आते हैं पर हमारा अनुभव बताता है कि उनमें अधिकतर हमारे कार्यके योग्य नहीं होते। इसमें दोष उन नवयुवकोंका नहीं है और न उनमें किसी ऐसे नैसर्गिक गुणका अभाव है जो उन्हें योग्य बनने नहीं देता। दोष है उस शिक्षा-पद्धतिका जिसके द्वारा वे निर्मित होते हैं। हमारे विश्वविद्यालयोंमें छात्रोंको पुस्तक ज्ञान चाहे जितना करा दिया जाय पर उनमें सामान्य ज्ञान और साधारण बुद्धिका गहरा अभाव होता है। मनुष्यकी आन्तरिक चेतना और नैसर्गिक जिज्ञासाकी प्रवृत्तिको जब स्वतन्त्र रूपसे विकसित होनेका अवसर प्रदान किया जाता है तभी साधारण बुद्धि और सामान्य ज्ञानका प्रादुर्भाव होता है। इस देशकी शिक्षा-पद्धति सर्वथा इसके प्रतिकूल है। विविध विषयोंकी पुस्तकोंसे लदा रखकर विद्यार्थी परीक्षा भले ही पास कर ले पर बुद्धिकी वह स्फूर्ति कुण्ठित हो जाती है जो मनुष्यको जगत्का द्रष्टा होने, उसका स्वरूप समझने और उसे व्यक्त करनेकी क्षमता प्रदान करती है।

आशय यह है कि केवल विश्वविद्यालयकी शिक्षासे कोई पत्रकार नहीं बन सकता। यही कारण है कि भारतीय पत्रकारोंका धरातल गिरा हुआ है। हिन्दीके पत्रकारोंका स्तर और भी गिरा हुआ है। इसका कारण यह है कि जो थोड़ी भी योग्यता रखते हैं वे इधर आते ही नहीं। हिन्दी पत्रकारोंकी गिरी हुई आर्थिक स्थिति, उनके प्रति होनेवाला दुर्व्यवहार, भविष्यमें उन्नतिके अव-

अभाव आदि बातोंके रहते ऐसा व्यक्ति आये ही क्यों जो दूसरे क्षेत्रमें

सफलता प्राप्त कर सकता है ? जो योग्य होंगे वे या तो अंग्रेजी पत्रकार बननेकी चेष्टा करेंगे या किसी अधिक लाभप्रद पेशेको अपनावेंगे। फलतः आज तो स्थिति यह है कि जिन्हे कहीं गुञ्जाइश नहीं है वे ही इधर झुकते हैं और जो कुछ हासिल होता है उसीमें सन्तोष करते हैं। यह स्थिति भारतीय पत्रकार कलाके सारे भविष्यको विनष्ट कर रही है। हिन्दी राष्ट्रभाषा होने जा रही है। देशभक्ति और राष्ट्रीयताकी लहर देशको अधिकाधिक राष्ट्रभाषाकी आराधनाके लिए उत्प्रेरित कर रही है। फिर क्या यह उचित है कि हमारी पत्रकार कला इस प्रकार पतित और अनुन्नत अवस्थामे रहे ? यह क्या हमारे लिए लज्जाका विषय न होगा ?

हमारा पत्रकार संघ इस स्थितिको सहन नही कर सकता। उसे पत्रकारीको अधिकाधिक उन्नत करनेके लिए सचेष्ट होना ही होगा। इस स्थितिको सुधारनेके लिए सबसे प्रथम और आवश्यक कर्तव्य यह है कि हम पत्रकार-कला सम्बन्धी शिक्षाका आयोजन करनेके लिए देशमें प्रबल जनमत जाग्रत करें। इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशोंमें इसके लिए बृहदायोजन किया गया है। लन्दन विश्वविद्यालयमें पत्रकार कलाकी शिक्षा देनेके लिए सुन्दर व्यवस्था की गयी है। दो वर्षका पाठक्रम पूरा कर लेनेपर छात्रको पत्रकारकी उपाधि प्रदान कर दी जाती है। इसके अलावा अनेक व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक संस्थाएँ हैं जो पत्रकारीकी शिक्षा देती हैं। अमेरिका जैसे सब मामलोंमें बढ़ा-चढ़ा है वैसे ही पत्रकारकलाकी शिक्षा प्रदान करनेमें भी सबसे अग्रसर है। मिसूरी विश्वविद्यालय इस विषयकी शिक्षा देनेके लिए विशेष रूपसे प्रसिद्ध है। इसके सिवा सैकड़ों शिक्षालयोंमें भी इस विषयकी शिक्षा दी जाती है। तीसके ऊपर सरकारी युनिवर्सिटियाँ और कालेज हैं जिनके पाठ्य-विषयों में पत्रकार-कलाको स्थान दिया गया है। अनेक शिक्षालय स्वतन्त्र रूपसे सार्वजनिक सहायता अथवा स्थानीय स्वशासन विभागके नियन्त्रणमें परिचालित है। इन शिक्षालयोंमे छात्रोंको न केवल पत्रकार-कलाकी सैद्धान्तिक बातें सिखाई जाती हैं अपितु उन्हे व्यावहारिक शिक्षा भी प्रदान की जाती है। विद्यार्थी स्वयं अपने अच्छे दैनिक और साप्ताहिक पत्र निकालते हैं और वे ही प्रूफ़रीडरसे लेकर अग्रलेख लिखने तकका काम करते हैं। पत्रकार-कलाकी साङ्गोपाङ्ग शिक्षाकी पूरी व्यवस्था की जाती है।

किसी किसी विद्यालयमें बालकोंको चित्रपटसे शिक्षा दी जाती है। युद्ध अथवा व्याख्यान अथवा किसी उत्सवका चित्र दिखा दिया जाता है और फिर छात्रोंसे कहा जाता है कि उसके विवरण लिखें। पत्रकार कलाकी शिक्षा केवल सैद्धान्तिक दृष्टिसे दे देना बिलकुल अधूरी शिक्षा होती है। कोई वकील या डाक्टर जैसे केवल परीक्षा पास कर लेनेसे वकील या डाक्टर नहीं हो सकता वैसे ही केवल परीक्षा पास कर लेनेसे कोई पत्रकार भी नहीं हो सकता। यह धारणा भ्रांत है कि इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र तथा साहित्यके अध्ययनमात्रसे अथवा इस विषयका पण्डित होनेसे ही कोई अच्छा पत्रकार हो जाता है। किसी पत्रकारके लिए इन विषयोंका ज्ञान आवश्यक है पर साथ ही साथ उसमें कुछ और विशेषतायें भी होनी चाहियें। हमारे विश्वविद्यालय भी तो इन विषयोंकी शिक्षा प्रदान करते हैं फिर भी प्रत्येक शिक्षित छात्र पत्रकार नहीं हो पाता। कारण यह है कि पत्रकार होनेके लिये जीवनके प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होनेकी आवश्यकता है और शिक्षा उसी दृष्टिकोणको उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे दी जानी चाहिये। पत्रकार होनेके लिये मस्तिष्कका झुकाव एक विशेष दिशाकी ओर हो जाना चाहिये। पारदर्शी दृष्टि, जिज्ञासा, कुतूहल, औत्सुक्य, तत्त्वतक शीघ्र पहुँच जानेकी चाह, कल्पनाशीलता, कारण-कार्यकी विवेचना, अपने विचारों और अनुभूतियोंको व्यक्त करनेकी शक्ति आदि ऐसी बातें हैं जो अन्तःप्रेरणा और स्फूर्तिसे ही उत्पन्न होती हैं। शिक्षाका क्रम यदि उन आन्तरिक भावोंको विकसित और उत्तेजित करनेके लिये न होगा तो केवल विविध शास्त्रोंके अध्ययनसे कोई पत्रकार नही हो पाता।

फलतः हम कह सकते हैं कि विश्वविद्यालयोंकी आधुनिक शिक्षा पत्रकार बनानेके लिये पर्याप्त नहीं है। उसके लिए इस शिक्षाके साथ-साथ विशेष आयोजन करना होगा। युरोप-अमेरिकामें वहाँके विश्वविद्यालय, अथवा कालेज तथा अन्य इसी कार्यके लिये संघटित संस्थायें उसी विशेष आवश्यकताकी पूर्तिके लिये ही स्थापित हैं। हमारे देशमें दुर्भाग्यसे पत्रकार बननेकी इच्छा रखने वालोंको ऐसी शिक्षा देनेकी व्यवस्था नहीं है इसी कारण हमारा स्तर भी गिरा हुआ है। हालमें मद्रास तथा अन्य मलाई विश्वविद्यालयोंमें इसका प्रबन्ध किया गया है। लाहौरमें भी एक विद्यालयकी स्थापनाका बीजारोपण

किया गया है। पर इतना पर्याप्त नहीं है। अपने देशके अन्य विश्वविद्यालयोंको भी इधर अग्रसर करनेकी चेष्टा होनी चाहिये। युक्तप्रान्तमें जो मुख्यतः हिन्दी भाषाभाषी है और जहाँ पाँच-पाँच विश्वविद्यालय हैं इसके लिये विशेष प्रचार करना वाञ्छनीय है।

इनके सिवा हमें अपनी राष्ट्रीय संस्थाओंको विशेष रूपसे इस दिशामें बढ़नेके लिये सहमत करना चाहिये। काशी विद्यापीठ, नागरीप्रचारिणी सभा, साहित्य सम्मेलन और हिन्दू विश्वविद्यालय आदि संस्थायें राष्ट्रीय-संस्थायें हैं जिनको प्रभावित करना जनमतके लिये असम्भव नहीं है। पत्रकार-संघ यदि दृढ़ता और आग्रहके साथ इस कार्यको उठावे तो उसे सफलता मिल सकती है। पत्रकार संघको ऐसे विद्यालयोंके सम्मुख जहाँ पत्रकार-कलाकी शिक्षा प्रदान करनेका आयोजन हो जाय सुविचारित पाठ-क्रमकी योजना भी रखनी चाहिये। अच्छे पत्रकारोंकी समिति विचार करनेके लिये और समुचित क्रम उपस्थित करनेके लिये बनायी जाय जो इग्लैंड अमेरिका आदि देशोंकी योजनाओंका अध्ययन करके, अपने देशकी आवश्यकतापर ध्यान दे और समझ-बूझकर विषयोका निर्धारण करे। हिन्दी-साहित्यका इतिहास, लेखनकला, आलोचनाके सिद्धान्त, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास, आधुनिक इतिहास, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, वैज्ञानिक उन्नति तथा विज्ञानका साधारण ज्ञान, हिन्दीके सिवा एक दो अन्य आधुनिक भाषाओंका ज्ञान तथा इतिहास, भूगोल आदि ऐसे विषय हैं जिनका सामान्य ज्ञान होना चाहिये। आधुनिक राजनीतिक विचारों तथा जगत्की विविध शासन-पद्धतियोंसे परिचित होना चाहिये। पत्रकार-कलाके इतिहासका तथा जगत्के विविध भूखण्डोंकी पत्रकारी और तद्विषयक उनकी सफलता और उन्नतिका ज्ञान होना चाहिये। इन सैद्धान्तिक विषयोंकी अपेक्षा व्यावहारिक पत्रकार-कलामें कुछ आरम्भिक अभ्यास कम आवश्यक नहीं है। घटनाओंको कैसे उपस्थित करना, उन्हें कब वर्णनात्मक रङ्ग देना, कब विवेचनात्मक स्वरूप प्रदान करना, कब उनमें कहानी और काव्यका पुटप्रदान करना और कब ठोस वस्तुस्थितिके रूपमें उपस्थित करना आदि ऐसी बाते हैं जिनके लिये छात्रोंको विशेष बौद्धिक स्फूर्ति प्रदान करनी होगी। एक ही घटनाको अपने पत्रकी नीतिके अनुसार कैसे उपस्थित किया जा सकता

है, अपने भावोंकी छाया उनपर कैसे डाली जा सकती है। कैसे उपस्थित करनेके ढंगमें ही कभी विरोध, कभी समर्थन, कभी टीका, कभी चोट, कभी व्यंग, कभी उपहासका भाव भरा जा सकता है आदि बातें ऐसी हैं जो किसी पुस्तकके द्वारा नहीं बतायी जा सकतीं। इसके लिये तो छात्रोंसे काम कराना होगा और उन्हें अपना अन्तर्लोक अभिव्यक्त करनेकी शक्ति स्वयं उपार्जित करनेमें साहाय्य प्रदान करना होगा।

ऐसी सुविचारित पाठ्य-योजना लेकर यदि पत्रकारीकी शिक्षाकी व्यवस्था हो जाय तो हम अपनी कलाको उत्तरोत्तर उन्नत होते पावेंगे। कोई कारण नहीं है कि ऋषियों और तत्वदर्शियों, मनीषियों और प्रकाण्ड पण्डितों तथा कवियों और लेखकोंकी प्रसविनी इस भारत भूमिकी गोदमें विख्यात पत्रकार खेलते न दिखाई दें जो शतशत जीवनको प्रभावित कर सकें और राष्ट्रकी धाराको अधिक श्रेयस्कर दिशाकी ओर मोडनेमें समर्थ हों। यह सच है कि कुछ लोग समझते हैं कि पत्रकार जन्मजात होता है अतः किसी शिक्षा-योजनासे उसका निर्माण नहीं किया जा सकता। एक सीमा तक यह बात सही भी है। पर जैसे पत्रकारके लिये सही है वैसे अन्य बहुतसे क्षेत्रोंके लिये भी सही है। डाक्टर हो, वकील हो, व्यवसायी हो, शासक हो, सेनापति हो, कवि हो, लेखक हो, वक्ता हो, नेता हो, सभी विशेष कार्यके लिये अपने मार्गमें विशेष नैसर्गिक प्रतिभा लेकर उत्पन्न होते हैं। सभी कवि रवि बाबू नहीं हो जाते और न सभी राजनीतिक कार्यकर्ता महात्मा गान्धी बन जायँगे। सब शासक अशोक, अकबर और बिस्मार्क नहीं होते और न सब सेनापति नेपोलियन, नेलसन या स्टालिन और हिटलर हो जाते हैं। परन्तु साधारण सफलता और योग्यता प्राप्त करनेवालोंकी कमी नहीं होती। पत्रकार भी ऐसे ही हैं। इन विद्यालयोंसे असाधारण गुण सम्पन्न और जन्मजात पत्रकारके मार्गका अवरोध न होगा। उसकी प्रतिभाके विकासमे भी इससे कुछ न कुछ सहायता ही मिलेगी। साथ साथ साधारण व्यक्ति भी, जिसको इस दिशामें रस होगा, जिसकी रुचि होगी, उपयुक्त वातावरण और साहाय्य प्राप्त करके अपने अध्यवसाय, सङ्कल्प और अभ्यासके द्वारा जो उपार्जन कर सकेगा उससे पत्रकार-कलाकी सेवा ही होगी।

एक ओर पत्रकारोंकी स्थितिमें सुधार, उनके स्वत्वोंकी रक्षाका प्रयत्न हो

और दूसरी ओर उसके साथ ही पत्रकार-कला अधिकाधिक, आधुनिक उन्नत और उपयुक्त तटपर पहुँचायी जाय। इन दोनोंका सम्बन्ध परस्पर अविच्छेद्य है। शिक्षा-योजनाके सिवा अन्य उपायोंका अवलम्बन भी किया जा सकता है। योग्य पत्रकारों द्वारा व्याख्यान कराये जायँ, पत्रकीय कार्यके विविध अंगोंपर प्रकाश डालते हुए लेख मालायें प्रकाशित की जायँ, इन व्याख्यानो और लेखोंको पुस्तकाकार प्रकाशित कराया जाय, अच्छी पुस्तकें योग्य विद्वानोंसे लिखायी जायँ। यदि हम इन साधनोंसे अच्छे पत्रकारोंका निर्माणकर सके तो निस्संदेह बहुत-सी हमारी समस्यायें आपसे आप हल हो जायँगी। साथ ही यदि पत्र-कारोंकी स्थिति अच्छी हुई तो योग्य व्यक्ति इधर आनेके लिये आकृष्ट होंगे। विचारपूर्वक देखा जाय तो इन दोनोंका गहरा अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों मिलकर विचित्र चक्रकी सृष्टि करते हैं। पत्रकारोंकी स्थिति खराब है अतः उनकी कला गिरि हुई है। कला गिरी हुई है अतः स्थिति उन्नत नहीं हो पाती। स्पष्ट है कि ये दोनों प्रश्न परस्पर सम्बद्ध हैं, अतएव पत्रकार संघको दोनों प्रश्न साथ ही साथ उठाने होंगे और समान प्रयत्न करके उन्हे सुलझाना होगा।

पत्रकारसंघके विचारार्थ दो एक और प्रश्न हैं जिनकी ओर संकेत कर देना कर्तव्य है। पत्रकारकी हैसियतसे काम करते हुए इनकी आवश्यकता प्रतीत होती रही है। एक प्रश्न तो उन उपयुक्त शब्दोंकी रचना या खोजका है जिनकी आवश्यकता आधुनिक पत्रकारको प्रतिदिन पड़ती रहती है। अंग्रेजी भाषाके पत्रोंके लिये कठिनाई इसलिए नहीं है कि उन्हे बने-बनाये शब्द मिल गये हैं जो उसी भावको व्यक्त करते हैं जिसके लिए प्रयुक्त होते है। हिन्दीमें उनके पर्यायवाची और अर्थवाची शब्द गढ़ने पड़ते है। कठिनाई यह होती है कि विभिन्न पत्र विभिन्न शब्द गढ़ते हैं क्योंकि सबके लिये प्रयुक्त करनेको कोई समानार्थक शब्द प्राप्त नहीं है। उदाहरणके लिए 'डेमोक्रेसी' को ले लीजिये। विभिन्न हिन्दी पत्र इस शब्दके लिए विभिन्न पर्याय प्रयोग में लाते हैं। लोक-तन्त्रवाद, प्रजातन्त्रवाद, जनतन्त्रवाद, प्रतिनिधि सत्तावाद आदि अनेक शब्द काममे लाये जाते हैं। पाठक आज किसी पत्रमें एक शब्द पढता है कल दूसरा, उसकी समझमें भी नहीं आता कि किसके क्या अर्थ हैं? फिर अँग्रेजी भाषामें कई शब्द हैं जिनके अर्थ और भावमें कुछ न कुछ भेद होता है। हम हिन्दीमे

उन सबके लिये एक या दो शब्द प्रयोग कर देते हैं और फल यह होता है कि मतलब स्पष्ट नहीं हो पाता। उदाहरण स्वरूप 'डेमाक्रेटिक गवर्नमेण्ट' रिपबलकिन गवर्नमेण्ट', पार्लमेण्टरी गवर्नमेण्ट' 'रिप्रजेन्टेटिवफार्म आफ गवर्नमेण्ट' हिन्दीमें सबके लिए कोई 'लोकतन्त्रवादी' सरकार, कोई प्रजातन्त्रवादी सरकार, कोई जनतन्त्रवादी सरकार कोई प्रतिनिधि मूलक सरकार का प्रयोग कर देता है। वस्तुतः अँगरेजीके शब्द परस्पर पर्याय नहीं हैं अपितु उनके अर्थोंमें भेद है। हिन्दीमें हम किसीके लिए भी उपर्युक्त शब्दोंमेंसे कभी कोई और कभी कोई प्रयोग कर देते हैं। विज्ञान तथा अन्य शास्त्रोंमें प्रयुक्त विशेष अर्थवाले शब्दोंके लिए जिन्हें अँगरेजीमें 'टेकनिकल टर्मस' कहते हैं समानार्थ बोधक विशेष शब्दोंकी खोज करनेकी समस्या तो अलग है ही। इस प्रकारके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि पत्रकारोंके लिए एक अच्छे कोषकी रचना की जाय और पत्रकारोंसे अनुरोध किया जाय कि लिखते हुए उन्हीं शब्दोंका प्रयोग करें। गढ़े हुए, प्रचलित, पुराने, साधारण बोलचालमें प्रयुक्त शब्दोंका संग्रह करके, अथवा किसी शब्दके लिए यदि समानार्थक दूसरे शब्द न हों तो उन्हें नये सिरेसे रचकर कोष बनाना होगा। इसके लिए कुछ अनुभवी विद्वान सम्पादकोंको नियुक्त करना चाहिये जो विविध विषयक विशेष शब्दों तथा सामान्यतः काममें आनेवाले शब्दोंके लिए हिन्दीमें पर्याय गढें, ढूँढ़े और बनावें। इसमें उन्हे विज्ञान और राजनीति आदि शास्त्रोंके पंडितोंसे भी सहायता लेनी हो सकती है।

पत्रकारसंघके सामने दूसरा प्रश्न आजकी दुनियामें प्रतिदिन उत्पन्न होनेवाले नये शब्दोंके समानार्थक शब्दोंकी रचनाका है। युद्ध चल रहा है और आनेवाले तारोंमें गोलों, बमवर्षकों और अस्त्रशस्त्रों तथा नये-नये आयुधोंका उल्लेख नये-नये नामसे होता है। उनका अनुवाद कैसे किया जाय? अभी तो विभिन्न पत्र विभिन्न अनुवाद करते हैं और पाठक कहीं कुछ और कहीं कुछ पढ़कर भ्रमित हो जाता है। उदाहरण स्वरूप एक शब्द लीजिए। 'स्पिटफायर' एक प्रकारके विमानका नाम है। इसके विचित्र विचित्र अनुवाद हमने देखे। एक पत्रमें 'अगिनथूक', एकमें 'आग उगलनेवाले', एकमें 'अग्निवर्षक' और एकमें 'अग्नि उत्क्लेदक' अनुवाद किया गया। हिन्दीका पाठक कैसे समझे कि

किस शब्दका अर्थ क्या है ? 'वार शिप' के लिए रण-पोत, लड़ाकू जहाज, भिड़न्तू जहाज़ आदि विचित्र विचित्र अनुवाद होते हैं जो न केवल भ्रममें डाल देते हैं पर बहुधा उपहास्य ज्ञात होते हैं।

हिन्दी-पत्रोंके सामने समस्या कठिन है क्योंकि अनुवाद करके शब्द रचनेकी आवश्यकता तत्काल ही रहती है। कोई पत्रकार अपने संघके प्रामाणिक विद्वानों द्वारा उपयुक्त शब्द गढे जानेकी राह देखते हुए तार लिए बैठा नहीं रह सकता। इस कठिनाईका निराकरण फिर कैसे हो। हम समझते हैं कि इसका एक ही उपाय है। पत्रकारसंघ निर्णय कर दे कि सब पत्र ऐसी स्थितिमें मूल शष्दका ही प्रयोग करें और आगे कोष्ठमें उसकी व्याख्या कर दें। यदि कभी किसी शब्दका समानार्थक शब्द बनाना आवश्यक या सम्भव होगा तो बनेगा अन्यथा ये शब्द हिन्दीमें ही प्रचलित हो जायँगे। रेल, ट्रेन, बाइसिकिल, मोटर, स्कूल, स्टेशन आदि अंगरेजी शब्द आखिरकार प्रचलित हो ही गये। पाठक इनका अर्थ जितनी सरलतासे समझता है उतनी सरलतासे उसका अनुवाद न समझेगा। धूमोच्चालित वाहन अथवा द्विचक्रिका यन्त्रकी अपेक्षा ट्रेन और बाइसिकिल अधिक सरल है।

मोटे-मोटे प्रश्नोंकी ओर सम्भवतः ध्यान आकर्षित किया जा चुका है। अभी बहुतसी समस्यायें हैं जिनका उल्लेख किया जा सकता है पर उसके लिए यह स्थान उपयुक्त नहीं है। सिद्धान्त रूपसे इतना ही मान लेना अनिवार्य है कि भारतके पत्रकारोंके सामने साधारणतः और हिन्दी पत्रकारोंके सम्मुख विशेषतः ऐसी समस्यायें हैं जो न केवल उनके वर्तमान और भविष्यको अपितु पत्रकार कलाके वर्तमान और भविष्यको तथा राष्ट्रके वर्तमान और भविष्यको स्पर्श करती हैं और उन्हें अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूपसे प्रभावित कर सकती हैं। अब वह युग आ गया है जब पत्रकार इन प्रश्नोंको हल करनेके लिए स्वयं अग्रसर हो। पहिली आवश्यकता संघटनकी सप्राण और सच्चा प्रतिनिधित्व करनेवाले संघटनकी है। और दूसरी आवश्यकता कृतसङ्कल्प होकर कुछ करनेकी है। केवल सम्मेलनोंसे काम न चलेगा और न चलेगा प्रस्ताव पास करनेसे। जरूरत है उन निर्णयोंको कार्यान्वित करनेके लिए सचेष्ट होने की। ये आरम्भिक

बातें हो जायँ तो क्रमशः सभी समस्यायें सामने आवेंगी और उनको हल करना सम्भव हो जायगा।

इस अध्यायको समाप्त करते हुए दो शब्द संचालकोंसे भी निवेदन कर देना उचित प्रतीत होता है। पत्रकारोंके संघकी ओर उन्हे उदार दृष्टि रखनेके लिए अपना हृदय तैयार कर लेना चाहिये। यदि वे अपने संकुचित स्वार्थको सामने रख कर भी देखें तो वे यह अनुभव करेंगे कि उनका हित पत्रकारकी स्थितिके सुधारमें ही है। तुष्ट, योग्य, कार्यक्षम, आदर्शवादी तथा प्रतिभावान और कलाकार पत्रकार ही पत्रोंको वह पद और प्रतिष्ठा प्रदान कर सकता है जिसके द्वारा वे राष्ट्रके, जनताके जीवनमें प्रविष्ट हो पाते हैं, उससे घुल मिल जाते हैं। पत्र-व्यवसायसे आर्थिक लाभ उठाना हो तो भी यह उसी दशामें सम्भव है जब पत्र जनताके जीवनके अङ्ग बन जायँ, उनके लिए अनिवार्य हो जाय। फलत. इस दृष्टिसे भी पत्रकारोंकी स्थिति सुधारनेमें सहायक होना, थोडा त्याग करना वाञ्छनीय है। इसके सिवा सञ्चालक भी देशके ही निवासी हैं। इस देशकी उन्नतिसे उनका हित संलग्न है। व्यवसायनामके साथ यदि देश सेवाकी हलकी आभाको भी वे अपने हृदय-मन्दिर पर चमकने दे सकें तो न केवल उनके हितकी रक्षा होगी अपितु वे अपने कर्तव्यको पूरा कर जायँगे।

हमारा भविष्य

इस ग्रन्थकी अन्तिम पंक्तियोको लिखते हुए हमारी दृष्टि अनायास धूमिल भविष्यके आवरणका भेदन करनेकी चेष्टा करती है जो सम्प्रति हमारे वर्तमानको आच्छन्न किये हुए है। हृदयमें सहसा एक प्रश्न उठ खडा होता है। हमारा पत्र-कारोंका पत्रकारोंके पत्रोका भविष्य कैसा है ? प्रश्नका उत्तर देने के लिये अन्त-स्तलमें विचित्र आकुलता छा जाती है। हम जिज्ञासा और उत्सुकताके साथ-साथ अपने वर्तमान की ओर, अपने देशके जीवनकी ओर और जगत्की गति-विधि की ओर देखने लगते हैं। हम देखते है कि आज तो इस देशके वक्षःस्थल पर उल्लङ्घिनी निरंकुशता प्रमत्त विभीषिकाका रूप ग्रहण करके भयावना नर्तन कर रही है । हमें आवेष्ठित कर रखनेवाली चारो दिशायें, अपनी और अम्बरके मध्यका शून्य, सुदूरपरिलक्षित होनेवाला हमारा क्षितिज, सबके सब गहन अन्धकारसे आछन्न दिखाई देते है। जिधर देखते हैं उधर अँधेरा, असीम विराट और भयप्रद अँधेरा । आरपार सूझता, नहीं, पथ विलुप्त, प्रकाशकी झिलमिल आभा अन्तरिक्षपर क्षणमात्रके लिये चमक जावेगी, इसकी आशा भी नहीं ।

इस देशमें मनुष्यके जीवनका मूल्य नहीं, उसके अधिकारोंका आदर नहीं। मानवताके विकासके महान पथपर पग-पग बढ़कर अब तक जो कुछ उपार्जन किया है, जिस विभूतिकी उपलब्धि की है और जिस ऐश्वर्यकी रचना की है उसमें हमरा कोई भाग नहीं। हमें स्वतः जीनेका अधिकार नहीं, अपने लिये और मनुष्यताके लिये हमारा प्रयोजन नहीं। हमारा प्रयोजन माना जाता है दूसरोंके दम्भ और स्वार्थकी पूर्तिमें, हमें सिसिक-सिसिककर जीवत रहने दिया जाता है इसलिये कि रक्तपान करनेवालोंको सजीव, उष्ण रक्त प्राप्त हो सके। भारतका मनुष्य मनुष्य है कहाँ ? उसकी वाणीपर नियंत्रण है, सम्मिलनका अधिकार नहीं है, विचार करनेकी स्वतंत्रता अपहृत है। देशभक्ति अपराध है, जनसेवा पांप है, राष्ट्रीयताका नाम लेना जुर्म है। इस अभागी

धरतीके करोड़ों बुभुक्षित और निर्दलित नरकङ्कालोंके नाम पर रोना भी कानूनकी दृष्टिमें आपत्तिजनक है।

मानवीय स्वत्वोंके लिये हलकी सी आवाज यदि निकलती तो जवान की खैर नहीं। प्रभुता, मद, निरङ्कुशता और घृणित स्वार्थके नग्नताण्डवकी ओर आँख उठाकर देखना भी भयावह है क्योंकि दीनताके भारसे दबी और सहमी हुई दोनों शुष्क पुतलियाँ अपनी रही सही ज्योति भी खो देनेको बाध्य होंगी। कानून, व्यवस्था और शान्तिके नामपर घोर स्वच्छन्दता, अव्यवस्था, और अशान्तिका सर्जन करना नीति मानी गयी है। न्याय और सत्यका पता नहीं, अनाचार और मिथ्याप्रचार धर्म मान लिया गया है। पीड़न और पशुता पर, दलन और दासता पर, स्वच्छन्दता और स्वार्थ पर, प्रताडना और प्रतिगामिता पर स्थापित शासनव्यवस्था राष्ट्रीय जीवनको निर्जीव और नष्ट कर रही है। स्वत्वापहारी काले कानूनोंकी भित्ति पर शासनपद्धतिका घृणित सङ्गठन खडा है जिसकी कलुषित छायामें जीवनाङ्कुरका उगना और विकसित होना सम्भव नहीं है।

यह तो हुई शासकोंकी बात। अपनी ओर दृष्टिपात करते हैं तो अन्धकार-का रूप और भी गहनतर दिखाई देता है। अज्ञान, अकर्मण्यता और आलस्यकी सीमा नहीं है! अपमान और पराधीनताकी शृङ्खलासे हमें प्रेम हो गया है। चरित्रके ह्रास और नैतिक तथा सांस्कृतिक पतनका ऐसा ज्वलन्त उदाहरण संसारमें ढूँढ़े न मिलेगा। अपनेमें अविश्वास, अपने भविष्यमें अविश्वास, अपने अतीतमें और वर्तमानमें अविश्वास है। विश्वास है तो केवल जर्जर रूढ़ियोंमें, दकियानूसी अन्धविश्वासोंमें और प्रभुओंके सबूटचरणोंके आघातमें। देशका बालत्व मुरझाया हुआ, वृद्धत्व रोता हुआ और यौवन पौरुषहीन, स्पन्दनविहीन, विशुद्ध जड़ताच्छन्न, भारत वसुधाके हृदयका भारभूत। धर्मके नामपर पाखण्ड पूजा, कर्मके नामपर एक मात्र पेट-पूर्तिका कुचक्र रचना! किसी समय जगतमें ज्योति स्वरूप जगमगा जाने वाला ब्राह्मणधर्म आज चूल्हे-चक्की और छूतछातमें रह गया। अरबके मरुस्थलमें निवास करनेवाली अज्ञानी और पिछडी हुई जातियोंको जगानेवाला और संसारको सोत्साह एकताका नव प्रदान करनेवाला, इसलाम भारतके राष्ट्रीय देहमें विषाक्त फोड़ा हुआ

चाहता है। देशको क्षत-विक्षत करनेमें, मसजिद और बाजेमें, गाय और क़ुर्बानीमें, नौकरी और नुमाइन्दिगीमें ही उसकी हिफाजत रह गयी!

देशका व्यवसायी केवल अपने स्वार्थमें मस्त है। धन और धनकी ही हाही उसके हृदयमें जला करती है। गरीबोंका खून चूसकर, देशको बेचकर भी धन मिले तो धन-पशुओंको वही चाहिये। भारतका गरीब क्षुधाकी आगमें जलकर राख होना जानता है पर उसमें उस भीषण प्रलयंकर ज्वालाके रूपमें परिवर्तित हो जानेकी क्षमता नहीं है जिसकी रौद्र और विकराल लपटकी लपेटमें आकर सारा धरातल जलकर क्षार होता दिखाई दे। देशका शिक्षित समुदाय एक ही शिक्षा जानता है। भारतीय होते हुए भी भारतीय बानेको छोड़ देना। भारतीयताको, भारतीय संस्कृतिको, भारतीय भाषा और भावको, भारतीय विचार और विवेकको, भारतके चरित्र और उसकी चिन्ताको, भारतके इतिहास और अतीतको, उसके दैन्य और दासताको, उसके अपमान और अवसादको भूल जाना, दूसरोंके चिल्लूसे पानी पीना, अपनी दीना हीना मातासे घृणा करना और भारतीय बननेमें भी लज्जित होना और दूसरेकी सन्तान बननेकी लालसा रखना। भारतका श्रीसम्पन्न सामन्तवर्ग और अमीर वर्ग, विषय-विलास और वासनाके घृणित झूलेमें झूलते रहनेके सिवा और कुछ नहीं चाहता। उसकी स्वतन्त्रता नष्ट हो उसकी बलासे। उसका अपमान किया जाय उसे चिन्ता नहीं! उसका देश भुक्खड़ों और शोषितोंके करुण क्रन्दनसे भर उठे, दलित दीनोंकी दर्दनाक आहसे उसके आकाशमें धूआँ छा जाय, उसके मस्तकपर आततायी पदाघात करें पर उसे चाहिये चुपचाप अपनी वासनाको पूर्ण करते रहनेका मौका।

अपने देशकी सीमाके बाहर, धरतीके सुदूर भूभागोंपर, दृष्टिपात करते हैं तो और भी निराशा होती है। वसुन्धरा उसी मानवसे आक्रान्त दिखाई देती है जिसे उसने अपने गर्भमें धारण किया। मानव प्रसविनीने हृदयका नीरपान कराकर मानवका पालन किया पर वह क्या जानती थी कि यह 'पयःपान' भुजंगको करा रही है जिसका फल 'विषवर्धन' के सिवा और कुछ न होगा। मानवका दर्पाभिभूत दानव कैसा भयावना अट्टहास कर रहा है? नरका नारायण

जाने कहाँ लुप्त हो गया है। सन्देह होता है कि नारायणका कहीं अस्तित्व भी है या केवल भ्रम ही भ्रम है! बड़े बड़े विचार मनुष्यके मस्तिष्कसे उपजे। ऊँचे ऊँचे पुनीत सिद्धान्तोंका प्रतिपादन कालान्तरसे होता चला आ रहा है। शाश्वत सत्यों और नैतिकत्वोंके अनुशीलन साक्षात्कार और अनुभूति तथा अभिव्यक्तिकी क्रियाका इतिहास हमारे सामने है। कहते हैं उसने संस्कृतियोंको जन्म दिया। उसने विकास, पूर्णता और अन्ततः मुक्तिकी अविरल तथा अनन्त धारायें लय कर देनेवाले पथका दावेदार और ठेकेदार होनेकी घोषणा भी की! पर इन तमाम पुनीत, उज्ज्वल और विराट् सिद्धान्तोंकी छत्रछायामें परिपालित मानवको तो देखिये? कहाँ है उसका वह महिमा मण्डित मस्तिष्क जिसने इन सबको अभिव्यक्त किया? क्या वह उसके समीप और संकुचित 'अहं' में ही लपटा हुआ नहीं है? क्या वह 'अहं' उसके अभिमान, दर्प, स्वार्थ, घृणा और विद्वेषके सम्मिलित और समन्वित रूपके सिवा कुछ और भी है?

बड़े-बड़े सिद्धान्तोंकी रचना हुई पर उसके आवरणमें मनुष्य अपने उसी 'अहं' की तृप्ति ही कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धान्त रचे गये इसलिये उनके परदेके पीछे मनुष्य अपने घृणित रूपको और अपने जघन्य कर्मको छिपा सके। न्याय, सत्य, मानवाधिकार, प्रगति, स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, दुर्बलोंकी रक्षा, जनसेवा और राष्ट्रसेवाका नाम लिया जाता है इसलिये कि न्याय, सत्य, मानवाधिकार, प्रगति, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्रताकी हत्या की जाय, दुर्बलोंको पीसा जाय, जनताको बहकाया जाय और राष्ट्रके नामपर साधन सम्पन्न, सुविधाप्राप्त लोग जनताका शोषण कर सकें। जितना ही न्याय न्याय चिल्लाया गया उतना ही अन्याय और अत्याचार बढ़ता गया। सत्यकी जितनी दुहाई दी गयी असत्यका उतना ही वेग होता गया। मानवाधिकार और स्वतन्त्रताकी घोषणा गला फाड़-फाड़कर जितने जोरसे की गयी उतनी ही तीव्रतासे उसका निर्दलन, अपहरण और लोप किया गया। इस पाखण्ड, इस धूर्तता, इस जालसाजी, इस फरेब और इस प्रवचन तथा धूलि प्रक्षेपनके काले आवरणसे ढँकी धरित्रीको देखकर यदि वर्तमानको गहनतम अंधकारसे आच्छन्न कहें तो उसमे अनुचित क्या है? वसुधाकी गोदमे क्रीडा .नेवाला मनुष्य नरमेधमे ही लिप्त हो और नरबध तथा नरबलिमें परितृप्ति-

का अनुभव कर रहा हो तो किसमें साहस है जो वर्तमानमें भविष्यके प्रति आशा करनेकी हिमाकत कर सके ?

आज तो मानव उत्पीड़ित है, पराधीन है, त्रस्त है, हताधिकार है, विताड़ित है। उसकी यह दशा किसने कर रखी है ? वस्तुतः मनुष्यने ही मनुष्यका उत्पीड़न किया है। मानवता मनुष्यके द्वारा ही संत्रस्त है। विभिन्न 'वादों'के विवादको खड़ा करके उसने वह जंजाल रचा है जिसमें फंसकर मानव-विकासकी धारा भटकी हुई दिखाई दे रही है। जगत्के किस कोनेमें है मनुष्यका स्वत्व ? कहाँ है उसका वह अधिकार जो निसर्गने उसे प्रदान किया है ? वे मौलिक, तात्विक, आरम्भिक, बातें, जिन्हें नियतिने मनुष्यको प्रदान किया था, जो मानवताका आधारभूत कही जाती हैं कहाँ शेष रह गयी हैं ? सर्वत्र तो वही हाहाकार है। स्वतन्त्रताका हनन, मानव स्वत्वका अपहरण, उद्दंडताका नंगा नाच, खड्गके बलपर स्वच्छंद शासन और प्रवंचनके आवरणमें पृथ्वीके समस्त साधनोंका थोडेसे लोगोंद्वारा दोहन और उपभोग ! विडंबना यह कि धर्म, आदर्श और पुनीत सिद्धान्तोका उपयोग, सभ्यता, संस्कृति और सत्यका उल्लेख किया जाता है अपने कुत्सित कार्योंका औचित्य सिद्ध करनेमे। इस कलामें आजका प्रभुवर्ग, शासक और अधिकारी समुदाय इतना प्रवीण और पटु है कि साधारण जनवर्ग उसके फुसलावेमें सरलताके साथ वहकर वहक जाता है।

वर्तमानका यही रूप हमारे सामने आता है। हममें प्रकाशकी मात्राका नाम भी नहीं जो आगतपर हलकी रोशनी भी डाल सके ? फिर हम पत्रकारोंका हमारे पत्रोंका भविष्य कैसा है इसे बताना कितना कठिन है ? पर पत्रकारकी एक विशेषता है। कठिनता ही उसे स्फूर्ति प्रदान करती है ! जो जितना ही अंधकाराच्छन्न है उसे उतने ही अधिक प्रकाशमें लाना उसका काम है। रहस्यों-के उद्घाटनमें, गूढ़के स्पष्टीकरणमें उसे रस मिलता है फिर मार्गमें बाधाएँ और कठिनाइयाँ कितनी भी क्यों न हों ? पत्रकार कल्पनाशील भी होता है। उसके कल्पनाकाशकी सीमा विस्तृत होती है। वह निर्मुक्त पक्षीकी भाँति लम्बी उड़ान लेना जानता है और ऊँचे उठकर, प्रस्तुत स्थितिमे निर्लिप्त होकर, सारी गतिविधिपर विहंगम दृष्टि डालता है। वह सदा जाग्रत होते हुए भी दिवा-स्वप्न देखा करता है। जगत् और जीवनकी धाराके सान्निध्यमें आनेसे उसे

अनायास प्रकृतिमें निहित उन अटल नियमोंकी झलक मिल जाती है जिनके द्वारा यह समस्त विधि विधान सञ्चालित है। उसीके आधारपर वह भविष्यकी रूप रेखाकी कल्पना करनेके लिये वाध्य होता है। उसे अन्धकारके अदृश्य गर्भमें प्रकाशकी रेखाके दर्शन होते हैं, व्यापकरूपसे फैली हुई विस्तृत अव्यवस्था और अनाचार तथा पतनके मध्यमें व्यवस्था सदाचरण और विकासका अंकुर उगता दिखाई देता है। वह देखता है उस प्राकृतिक नियमोंको जो अन्धकारमें प्रकाशकी शुभ सूचना प्रदान करता है, जो मृत्युमें जीवन और विकासमें निर्माणका बीज बो देता है। फलतः पत्रकार यदि वर्तमानकी विभीपिका और पातित्यमें किसी भावी मङ्गलमयी स्थितिके अमूर्त आलोक दर्शन करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? उसे यदि प्रकृति द्वारा प्रवाहित विकासकी प्रबल धारामें नैतिक विश्वास हो और उसके हृदयकी धारणा उस धाराकी अटूट सक्रियताके आधारपर भविष्यके अतल तलमें झाँकनेके लिये उत्साहित करे तो कौन उसे दोपी ठहरावेगा? हमारा विश्वास है कि सजीव पत्रकार अपनेको उपर्युक्त श्रेणीके पत्रकारोंके दलसे ही सम्बद्ध रखनेकी इच्छा करेगा। वह जगत्का प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है और दर्पण रूप अपने पत्रमें उसे ही प्रतिबिम्बित कर देता है। आज वे हमारे पत्र वर्तमानके ही प्रतिबिम्ब हैं वर्तमानमें जो भी भला बुरा है उसकी प्रतिच्छाया आप उसकी दर्पणमें पाते हैं। वर्तमानकी धन पिपासा, विलास और स्वार्थ वृत्तियाँ उसमें प्रतिबिम्बित हैं, पथसे भटकी हुई मानवताकी गति उसमें चिन्तित है पर जहाँ यह सब है वहीं पत्रकार उन धाराओंको भी प्रतिबिम्बित करता है जो अविरल और अविश्रान्त रूपसे मनुष्यको आगे ले जानेके लिये प्रवाहित रहती है।

आदर्शाभिभूत कर्तव्यशील पत्रकार न केवल उस धाराको प्रतिबिम्बित करके ही सन्तोप करता है अपितु अपनेको उसीके साथ प्रवाहित करनेकी चेष्टा भी करता है। अपने साथ-साथ मानवताको भी उसी प्रवाहमें लानेकी चेष्टा करता है। प्रगतिके लिये, विकासके लिये, विश्वको अधिकतर उन्नत स्तरकी ओर ले जानेके लिये उसकी सारी शक्ति, समस्त चेष्टा, स्फूर्ति और उत्प्रेरणा उन्मुख होती है। यही है उसका आदर्श और कर्तव्य! भारतीय पत्रकार

यदि वर्तमानमें निहित उस शुभ भविष्यके संकेतमें दृढ़ आशा रखते हुए मनुष्यको मानव बनानेकी चेष्टामें संलग्न रहता है, यदि उपर्युक्त धाराके साथ प्रवाहित होनेका यत्न करता है तो निस्सन्देह मङ्गलमय आगतके साथ-साथ उसका और उसके पत्रका भविष्य भी उज्वल ही होगा। भारतमें पत्रकारोंके सम्मुख तो कार्यका विस्तृतक्षेत्र अछूता पड़ा हुआ है। उनपर कर्तव्यका बोझ लदा हुआ है, और जो करने योग्य है वह बाकी दिखाई दे रहा है। आधुनिक भारत मानवताकी निम्नातिनिम्न सीढ़ीपर पहुँच गया है। अज्ञानके अनन्तोदधिमें हम गोते खा रहे है। हमारी वाणी, लेखनी और मस्तिष्क कपाटोंपर निरङ्कुश और स्वार्थान्ध सत्ताधारियोने वलपूर्वक ताले लगा दिये हैं। जनता नैतिक अधःपातके अन्धेरे गढेमें पड़ी हुई है। उसे न उठनेमें ही सुख मिल रहा है। पदाघात करनेवालोंका चरण-चुम्बन करना ही कर्तव्य ज्ञात होता है। इस स्थितिमें उसे ग्लानि नहीं होती, हृदय विद्रोह नहीं कर उठता।

स्वतन्त्रता, संस्कृति और मानवता, सत्य न्याय तथा पौरुपकी माँग क्या है, भविष्य क्या अपेक्षा कर रहा है इसका मानो उसे पता ही नहीं। उपेक्षा और घोर उपेक्षा चतुर्दिक् व्याप्त है। कही स्थिति पत्रोंका जीवन भी सङ्कटापन्न किये हुए है। पर पत्रकार सुदूर अन्तरिक्षपर भविष्यके आलोककी आभा देख रहा है। वह देख रहा है कि अब उस क्षणके आनेमें विलम्ब नहीं है जब उत्क्रान्तिकी महती वेगवती धारामें सडे-गले जर्जर और अमानवीय इस वर्तमानकी शृङ्खला झन झन करके टुकडे टुकडे हो जायगी। यह भारतभूमि उस क्रान्ति-प्रवाहसे परिप्लावित होगी। जो है वह विनष्ट होगा और उसीके गर्भसे सुन्दर भविष्य उद्भूत होगा। वह विद्रोह चतुर्दिक् होगा और भारतीय जीवनके सर्वतोमुख प्रभावित करेगा। सामाजिक जीवनकी रूढियों और अन्ध-परम्पराओंको हम विश्रृङ्खल करेंगे। राजनीतिक जीवनकी घृणित पतितावस्था देखते-देखते लुप्त होगी। धार्मिक क्षेत्रका पाखण्ड, दम्भ और अविवेक मुहूर्त भरमें तिरोहित होगा। देशपर छाया हुआ अनन्त अज्ञानाकाश जागृत जनवर्गके प्रचण्ड हुँकारसे छिन्न-भिन्न होगा।

साथ ही मानव निर्मुक्त होगा। मानवद्वारा मानवके शोषण और उत्पीड़न का अन्त होगा। मानवाधिकारकी सत्ता असन्दिग्ध रूपसे व्याप्त होगी।

समाजके लिए व्यक्ति होगा और व्यक्तिके लिए समाज होगा। दोनोंके हित परस्पर लय होंगे और उनके समन्वयसे नयी व्यवस्था आविर्भूत होगी। प्रवञ्चन और असत्यका नाम मिटेगा। निरङ्कुशता और स्वच्छन्दता, वर्गहित और वर्ग-स्वार्थके स्थानपर सच्चे जनतन्त्रकी स्थापना होगी जो समस्तविश्वको एक सूत्रमें आवद्ध करेगा। न किसी राष्ट्रकी प्रभुता राष्ट्र पर स्थापित रहेगी और न जाति-विद्वेपकी आग और अहम्मन्यताके अभिशापसे धरित्री जलती दिखाई देगी। सङ्कुचित स्वार्थके लिए पारस्परिक प्रतिस्पर्धा न होगी अपितु सहयोग, सहानुभूति और समवेदना उसका स्थान ग्रहण करेगी।

आज तो मानवताके सामनेसे उसका आदर्श लुप्त हो गया है। वह विकल है क्योंकि पथभ्रष्ट है। वह न यह जानती है कि जाना कहाँ है और न यह जानती है कि जाना किधरसे है। अतीतकी धारणाएँ, भावनाएँ, विश्वास, सिद्धान्त और आदर्श मर चुके हैं पर उनके स्थानपर वर्तमानमें नए तत्वोंको स्थापित नहीं किया जा सका। चारों ओर अविश्वास, आकुलता और सन्देहका वातावरण है। मनुष्य अन्धेरेमें टटोलता है, कुछ, खोज रहा है, पर उसे न यह पता है कि क्या खोज रहा है और न यह जानता है कि जो चाहिये वह मिलेगा कहाँ? यह घोर अव्यवस्था, असम्बद्धता सारे भूमण्डलको अव्यवस्थित और उच्छिन्न किये डाल रही है। जनजीवन उसी अव्यवस्थासे अभिभूत हो गया है।

युगधर्म मानवताके सम्मुख नये आदर्शोंकी स्थापनाकी पुकार कर रहा है। कालात्माकी यही माँग है क्योंकि इसीमें मनुष्यताका त्राण है। यदि जगतीतल को इस द्विपद प्राणीसे विहीन बना देना प्रकृतिका प्रयोजन नहीं है तो आज उन आदर्शोंकी स्थापना अनिवार्यतः होगी ही जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। वह शुभ क्षण होगा जब मनुष्यता सुखकी साँस लेगी। उसे ज्योति मिलेगी अपने पथपर अविचल भावसे चलते रहनेके लिये।

भारतीय पत्र जगतके भविष्यमें, मनुष्यताके भविष्यमे, अपने राष्ट्रके भविष्यमें यदि विश्वास करता है, यदि सारी अव्यवस्था और अन्धकारके रहते भी उसे विश्वासकी नैसर्गिक धाराका संकेत मिलता है, जिसकी विजय अन्ततः निश्चित है, तो वह अपनी सारी शक्तिसे भारतको उस मुहूर्तके लिये तैयार संलग्न होगा जब जगत्को उलट-पलट देनेवाली शान्तिधारा प्रबल

वेगसे धरातलको एक छोरसे दूसरे छोर तक प्लावित कर देगी। भारत उसका स्वागत करनेके लिये तैयार रहे, जागता रहे, अवसर देखता रहे। आज पत्रकार उसे जगानेका ही काम करेगा। फिर तो भविष्य उज्ज्वल है ही। भारत अपने बन्धनोंसे मुक्त होगा और जगतके नवनिर्माणमें अपना अकिञ्चन भाग पूरा करेगा और पत्र ? सुखकरी, श्रेयस्करी और मङ्गलमयी व्यवस्थाकी रचनाका सन्देश देनेवाला आजका यह अग्रदूत कल मानवताका पथ निदर्शक, सहायक और नेता बनेगा।

वह युग होगा जब घर-घर उसका आदर होगा, जब शासक उसकी स्वतन्त्रताको परिसीमित करनेका साहस न करेंगे, जब पूंजीपति उसके आदर्शको पुष्ट करके धन पिपासाकी तृप्ति करनेकी हिम्मत न करेगा, जब मानवकी कुत्सित और हीन प्रवृत्तियोंको परितृप्ति करके अपनी रोटी कमानेके लिये पत्रकार बाध्य न होगा। वह क्षण होगा जब विज्ञान उसका सहायक होगा, जब अधिक क्षमताके साथ पत्र प्रकाशित होंगे, जब अधिक सुविधाके साथ हम उसे सुदूर गाँवोंकी झोपडियों तक पहुँचा सकेंगे। वह मुहूर्त होगा जब पत्र वास्तवमें जनमतके प्रतीक होंगे, समाजका मनोरञ्जन करेंगे, जनताको ज्ञान प्रदान करेंगे, और समाज इसके एवजमें पत्रों और पत्रकारोंके योगक्षेमके लिये अपनेको उत्तरदायी समझेगा। कहे कोई कि पत्रकारका यह उद्गार और उसकी यह भावना कोरी कल्पना है, विशुद्ध स्वप्न है पर उसे इसकी परवाह नहीं हो सकती। वह इसीमें विश्वास करता है क्योंकि इसीमें विश्वका भविष्य निहित है। इस विश्वासको लेकर ही वह जीवित रहेगा, यत्न करेगा और अन्तमें पत्रोंको उत्सर्ग कर देगा। विश्वात्मा उसे बल दें कि वह अपने पथपर अविचल भावसे चल सके। इससे अधिक उसे चाहिये क्या ?

परिशिष्ट (क)

दो पत्रकारोंकी सूझ

सम्वाद ढूँढ़ निकालनेमे भारतके दो पत्रकारोंने अपने मनोरञ्जक अनुभव लिखे हैं जिन्हें यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है। पाठक देखें कि सम्वादकी खोज करनेमें सम्वाददाता किस सूझसे काम लेता है और किस प्रकार अपने सङ्कल्पको पूरा करनेमें सफल होता है।

पहली कहानी है श्री ए० एस० ऐयङ्गरकी जो उन्होंने सन् १९३९ ईसवीके ११ अप्रैलके 'लीडर' के अङ्कमे लिखी है। श्री ऐयङ्गर लिखते हैं:—

सर्वत्रकी भाँति भारतमे भी पत्रकारिताका क्षेत्र ऐसा क्रीड़ास्थल है जो सतत उत्तेजनासे परिपूर्ण रहता है। प्रतिस्पर्धियोंका पारस्परिक कठोर संघर्ष यहाँ भी निरन्तर जारी रहता है। किसी पत्रकारके जीवनमे एक नहीं अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते रहते है जब उसे अपने प्रतिद्वन्दियोंके सामने पराजित होनेके लिये तैयार रहना चाहिये और बहुत थोड़े मौके ऐसे आते हैं जब यह गूढ़ रहस्यका उद्घाटन करनेमें अपनी सफलतापर वह गर्व कर सकता हो। यदि संयोगसे कोई पत्रकार किसी समाचार-वितरण करनेवाली एजेन्सीका एकमात्र व्यवस्थापक हो जाता है तो उसमें सरकारी और प्रामाणिक विज्ञप्तियोंपर ही भरोसा करके खतरेको टालनेकी मनोवृत्ति क्रमशः बढती चली जाती है। पर ऐसे पत्रकारोंके जीवनमें भी ऐसे अवसर उपस्थित हो जाते हैं जब उन्हे खतरा उठानेके लिए बाध्य होना पड़ता है। खतरा उठानेमें उन्हे अपनी जीविकाकी बाजी तक लगानी पड़ती है अन्यथा उनकी एजेन्सीके सुयशको गहरी ठेस पहुँचनेकी सम्भावना उत्पन्न हो जाती है।

एकबार ऐसा ही एक अवसर मेरे जीवनमें भी उपस्थित हो गया। अवसर था २७ अगस्त सन् १९३१ ईसवीकी उस ऐतिहासिक घटनाका जब महात्मा गांधी कांग्रेसके अनन्य प्रतिनिधिकी हैसियतमें लण्डनके द्वितीय

गोलमेज परिषद्में सम्मिलित होनेके लिए रवाना होनेवाले थे। यद्यपि सन् १९३१ के मार्चमें हुए गांधी-अरविन समझौतेमें यह बात मान ली गई थी कि कांग्रेस द्वितीय गोलमेज परिषद्में सम्मिलित होगी तथापि महात्मा गांधीके लिए वहाँ जाना कठिन हो रहा था क्योंकि गुजरात, युक्तप्रान्त तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तमें ऐसी जटिल स्थिति उत्पन्न हो गई थी जिसके रहते वे उस परिषद्में सम्मिलित नहीं हो सकते थे। इधर यह कठिनाई उत्पन्न हो गई थी और उधर लण्डनमें परिषद्के अधिवेशनके लिये सारी तैयारी पूरी हो चली थी। भारतीय प्रतिनिधियोंको लण्डनतक ले जानेके लिए अन्तिम स्टीमर भी बम्बईके बन्दरमें तैयार खड़ा था। लण्डनसे आनेवाले तारोंमें उत्सुकता थी। ब्रिटिश अधिकारी उत्सुक थे इस बातके लिए कि गांधीजी लण्डन आवें और भारतकी सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक संस्थाके एकमात्र प्रतिनिधिके रूपमें परिषद्में सम्मिलित हों। गांधीजीके लण्डन जाने न जानेके प्रश्नका इतना महत्व था कि भारतके विभिन्न प्रान्तोंके पत्रकार तथा विदेशी पत्रोंके अनेक संवाददाता चारोंओरसे शिमलेकी ओर दौड़ पड़े और वहाँके समाचार प्राप्त करनेके लिये उतावले हो उठे। पर 'क्या गांधीजी जायँगे' इस प्रश्नका उत्तर देनेमें कोई समर्थ न था।

मेरे लिए तो वह अवसर विशेष रूपसे कठिन हो गया था। मेरे प्रमुख श्री के० सी० राय बुरी तरह बीमार हो गए थे। वास्तवमें इस घटनाके दस दिन बाद ही उनकी मृत्यु भी हो गयी। मेरे दो साथी और सहकर्मी भी उस समय भारतमें उपस्थित नहीं थे। फलतः पत्रकारिताके इस रणस्थलमें मुझे एकाकी अनेक प्रतिद्वन्द्वियोंका सामना करना था। ऐसे अवसरोंपर पत्रकारकी सहज अन्तःप्रेरणा निस्सन्देह पथप्रदर्शन करती है फिर भी उसकी सफलताके लिए भाग्यका सहायक होना भी आवश्यक होता है। जिस दिनकी घटनाका उल्लेख मैं कर रहा हूँ उस रोज प्रातःकालसे ही मुझे परेशान कर देनेवाली कई बातें लगातार होती गईं। जब किसी पत्रकारकी सारी शक्ति और योग्यता जिसका आवाहन वह अपने कार्यकी सफलताके लिए करता है, प्रतिकूल परिस्थितियोंमें पड़कर कुण्ठित हो गयी हो, उस समय यदि वह किसी सम्वादके बिखरे सूत्र एकत्र करके उसे रूप प्रदान करनेमें समर्थ होता है और अपने समस्त योग्य तथा अध्यवसायी प्रतिद्वन्द्वियोंको पीछे छोड़कर उसे सर्वप्रथम

प्रकाशमें लाता है तो उसकी यह उड़ान वस्तुतः विजयका रूप ग्रहण करती है जिसपर गर्व करनेका उसे उचित अधिकार हो सकता है।

छोटा शिमलामें रायबहादुर मोहनलालके 'फरग्रोव' में महात्माजी मेहमान होकर टिके थे। वायसराय भवनमें लार्ड विलिंगडनसे गान्धीजीकी लम्बी बात-चीत हो चुकी थी। वायसराय भवनसे वापस आनेपर गान्धीजीने कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक तत्काल ही आमन्त्रित की थी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू, खाँ अब्दुल गफ्फारखाँ तथा सरदार वल्लभभाई पटेल भी उक्त समितिके सदस्य थे। बैठकमें सम्मिलित होनेवाले सदस्योंकी मुखमुद्रापर गम्भीरताकी गहरी छाया झलक रही थी। उनके शब्दोंमें गम्भीरतर-ध्वनि थी। मैं केवल बैठक का परिणाम जाननेके लिए व्यग्र था। मेरे और श्रीरायके बीच यह व्यवस्था हो गयी थी कि सेसिल होटलसे वे वायसराय भवनकी बातें जाननेकी चेष्टा करेंगे और शिमलेके दूसरे छोर पर 'फरग्रोव' में घटनेवाली घटनाओंका सूत्र मैं सँभालूँगा और जो कुछ पता चलेगा उसकी सूचना श्रीरायको तुरत दूँगा जिसमें वे तत्काल ही मुख्य समाचारका वितरण कर सकें। परन्तु यह व्यवस्था तो शीघ्र ही देखते-देखते चूर हो गई क्योंकि 'फरग्रोव' की गतिका निरीक्षण करके मैं जो भी कल्पना कर पाता अथवा जो भी अनुमान लगा पाता उसे श्रीराय तत्काल ही अस्वीकार कर देते। सचमुच श्रीराय बहुत ही सशङ्क थे और इस प्रकार मेरे अनेक प्रतिद्वन्द्वियोंके सामने जो तारके फार्म लिए तैयार डँटे रहते थे मेरी कठिनाइयोंको और बढ़ा देते थे।

गांधीजीके सम्मुख जो समस्याएँ थीं वे यद्यपि संख्यामें अधिक न थीं तथापि कठिन अवश्य थीं। इग्लेण्ड जानेका समय आ गया था पर जो थोड़ा समय था उसमें उन समस्याओंका सुलझ जाना और भी कठिन ज्ञात हो रहा था। गोलमेज-सम्मेलनमें सम्मिलित होना कांग्रेसने अवश्य स्वीकार कर लिया था फिर भी गांधीजी तबतक भारतसे बिदा होनेमें असमर्थ थे जबतक बारडोली और युक्तप्रांतके किसानों तथा पश्चिमोतर सीमाप्रान्तके खुदाई खिदमतगारोंके प्रश्नोंका कोई समुचित निपटारा न हो जाता। गुजरातके लिए यह मांग उपस्थित कर दी गयी थी कि बारदोलीमें पुलिसकी ओरसे जो ज्यादतियाँ की गई हैं तथा माल-गुजारी वसूलीमें जो अनुचित सख्ती की गई है उसकी जाँचके लिए एक

पञ्चायत कायम कर दी जाय। सरकार पञ्चायतकी बात स्वीकार करनेको तैयार न थी पर इतना मान रही थी कि एक कलक्टरकी नियुक्ति-विशेष कर इन मामलोंकी जाँच करनेके लिए ही कर दी जाय। पर यह तो हुई बारदोलीके सम्बन्धकी बात। पण्डित जवाहिरलालजी इस बातपर दृढ़ थे कि युक्तप्रान्तके किसानोंकी समस्याओंका भी कोई ऐसा ही हल ढूँढ़ निकाला जाय। इन दोनों प्रश्नोंके मध्यमें सीमाप्रान्तके गान्धी अपनी समस्या लेकर आ डटे थे और यह अभियोग उपस्थित कर दिया था कि उनके प्रान्तमें सरकार गान्धी-अरविन समझौतेकी शर्तोंको खुल्लमखुल्ला भङ्ग कर रही है। दूसरी ओरसे तत्सम अभियोग सरकार कांग्रेस पर लगा रही थी और कहा जा रहा था कि सीमाप्रान्तमें वहाँके कांग्रेसजनोंकी ओरसे समझौता तोड़ा जा रहा है।

इस प्रकार शिमलेमें त्रिकोणात्मक सङ्घर्ष चल रहा था। पत्रकारोंके लिए विकट परिस्थिति थी। 'फरग्रोव' में इन प्रश्नोंकी विस्तृत और तफसीलवार विवेचना और समीक्षा चल रही थी पर पत्रकारोंके लिए उन तमाम बातोंका चढ़ाव उतार समझ लेना सरल न था। साथ ही यह भाँप लेना भी कठिन ही था कि इन तमाम बातोंकी क्या प्रतिक्रिया शिमलेकी अधिकारी मण्डलीपर हो रही है। कठिन था इसलिए कि एक ओर वायसराय-भवन मौन था तो दूसरी ओर 'फरग्रोव' भी चुप्पी साधे हुए था। अभी तक चलनेवाली बातचीतके तन्तु इतने कोमल थे कि वे प्रकाशमे नहीं लाए जा सकते थे। अवश्य ही टेलीफोनकी घण्टियाँ निरन्तर घनघनाया करती थीं पर 'फरग्रोव' और 'वायसराय-भवन' के मध्य टेलिफोनके तारोंके मध्यसे कौनसी धारा प्रवाहित हो रही थी। यह ठीक-ठीक जान लेना सम्भव न था। महात्मा गान्धीकी मूर्ति तो ऐसी थी मानो समस्त भावुकतासे विहीन हो। उनकी मुखमुद्रा सदा समस्थिर और निश्चल बनी हुई थी। उनके निकट सम्पर्कमें रहनेवाले कुछ कहनेमें समर्थ ही न थे, वे केवल आशा प्रकट करते कि कदाचित् गांधीजीकी पश्चिम-यात्रा सम्भव हो जायगी।

एक ओर शिमला और दूसरी ओर नैनीताल तथा पेशावारके बीच टेलिफोन द्वारा बराबर बातचीत होती रहती थी पर इनकी तफसीलमें जाना अनावश्यक है। भारत सरकारका गृह-विभाग जिसके मुखिया सर जेम्स क्रेरार तथा सर

हर्बर्ट इमर्सन थे–वायसरायभवनसे निकट सम्पर्क बनाए हुए था। उधर लार्ड विलिङ्गडनकी शासनपरिषदके प्रमुख सदस्य सर सी० पी० रामस्वामी ऐय्यर मामलोंके सुलझानेमें प्रमुख भाग ले रहे थे।

शिमलेसे कालकाके लिए रवाना होनेवाली ट्रेनके जानेमें केवल दो घण्टे बाकी बच गए थे। लण्डन जानेवाले आखिरी स्टीमरको यदि गान्धीजीको पकड़ना था तो इस गाड़ीको पकडना भी आवश्यक था क्योंकि समयसे पहुँचा देनेवाली यह अन्तिम ट्रेन थी। यह सब होते हुए भी 'फरग्रोव' में अबतक किसी प्रकारका सकेत नहीं मिल रहा था। मैं एकके बाद दूसरे कमरेको सूँघता फिरता था कि कहीं तो कुछ गन्ध मिल जाय पर जहाँ देखता यही देखता कि कमरोंमें जो भी जहाँ बैठा है वह देवताकी मूर्तिकी भांति मौन बैठा है। यदि कहीं कोई कुछ बात भी करता दिखाई देता तो वह परस्पर कानमें ही फुस-फुसाता नजर आता।

समय बीतता चला जा रहा था। मैं घबड़ा उठा और अपनी घबडाहटमें भावनगरके सन्त सर प्रभाशङ्कर पट्टनीकी ओर दौड़ पड़ा। सर प्रभाशङ्कर उसी सायंकाल लण्डनके लिए रवाना होनेवाले थे। बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने उन तमाम प्रश्नोंके स्वरूपकी रूपरेखा तो अवश्य चित्रित कर दी जिन-पर विवाद चल रहा था पर इस विवादका परिणाम क्या होगा और गान्धीजीका लण्डन जाना सम्भव होगा या नहीं, इसके सम्बन्धमें वे भी कुछ न बता सके। जब कभी टेलिफोनकी घण्टी टिनटिना उठती तो एकत्र समूह उत्सुकतापूर्ण उधर देखने लगता और आशा करता कि इस अन्तिम समयमें भी कदाचित् टेलिफोन की घण्टी कुछ जादू कर दे। ऐसेही टेलिफोन एक बार बोला। लोग जाननेके लिए उत्सुक हो गये कि कहाँका सन्देश आया है। पुकार वायसराय-भवनकी है या भारतसरकारके गृहविभागकी। पर यह ध्वनिलहरी आयी थी काशीसे जिसके द्वारा सूचना मिली कि पण्डित मदनमोहन मालवीय लण्डन जानेके लिए बम्बई रवाना हो रहे हैं।

वायसराय-भवन अथवा भारत-सरकारके गृह-विभागसे किसी प्रकारका सम्वाद न मिलनेसे वातावरण निराशासे भर रहा था। फलतः दूसरे पत्रकारोंके मुझे भी धैर्य धारण करके स्थितिको देखते रहनेके सिवा और कोई मार्ग

बाकी नहीं बचा था। पर स्थिति ऐसी होती जा रही थी कि हमारा धैर्य भी छूटने लगा था। भारतके पत्रोंको अबतक मैंने वही समाचार भेजे थे जो 'फरग्रोव' में उपस्थित दृश्य प्रकट करते थे। स्थिति ऐसी हो गई थी जब यकायक विचित्र संयोग उपस्थित हो गया। मै थककर बगलके एक कमरेमें ही एक प्याली चाय पीनेके लिए चला गया। वहाँ थोड़ी देर बाद श्रीदेवदास गान्धी आये। बातचीतके सिलसिलेमें वे पूछ बैठे कि 'यहाँ उपस्थितोंमें क्या किसीको इंग्लैण्डके जाडेका अनुभव भी है।'' श्रीदेवदासजीका प्रश्न क्या था मेरे लिए प्रकाश था। वहाँ कौन ऐसा था जिसने यह सोचा भी हो कि श्रीदेवदासजी कदाचित् अपने पिताके साथ इंग्लैण्ड जानेकी बात सोच रहे हों और सम्भवतः इसी कारण उन्होंने उपर्युक्त प्रश्न किया हो। मेरे लिए भावी सम्वादकी रूपरेखा चित्रित कर रखनेका मार्ग प्रशस्त हो गया। मैंने देखा कि मैं यह समाचार तैयार करके प्रस्तुत रख सकता हूँ कि गान्धीजी और वायसरायमें तमाम प्रश्नोंपर समझौता हो गया और गान्धीजी आज सायंकाल निश्चित रूपसे लण्डनके लिए रवाना होनेवाले हैं। मैंने यही सोचकर सेसिल होटेलमें श्रीरायको टेलिफोन करना चाहा पर दुर्भाग्यसे लाइन खाली न मिली। 'फरग्रोव' से यदि आदमीके हाथ तार भेजता तो तारघर तक पहुँचनेमें पन्द्रह मिनटसे कम न लगता। यदि अपने सम्वादको चतुर्दिक् उड़ा देना था तो यह आवश्यक था कि चार छ मिनटमें यह काम पूरा कर दिया जाय। कालका जानेवाली ट्रेनके छूटनेमें भी कुछ मिनट ही बाकी बच गए थे। हम लोगोंने यह सोच लिया कि गान्धीजी यदि इस ट्रेनसे नहीं जाते तो सम्भवतः वे कार द्वारा चले जायँगे।

मैंने श्रीरामको पुन- टेलीफोन किया। इस बार वे मिले। मैंने उन्हें सूचित किया कि उपर्युक्त ढङ्गका समाचार प्रकाशित करनेके लिये मैंने तार भेज दिया है। आप यदि कुछ और सूचना पावें जिससे मेरे समाचारकी पुष्टि हो रही हो तो कृपाकर तार भेज देनेकी आज्ञा दे दें। यदि विरोधी सूचनायें कुछ मिनटोंमें मिल जायँ तो मैं अपने तारेको रोक लेनेके लिए तैयार हूँ। श्रीराम तो मेरी बात सुनकर क्षुब्ध हो गये। उन्होंने मुझे आगाह किया, चेतावनी दी और कहा कि गांधीजीकी लण्डन रवानगीके सम्बन्धमें कहीं भी कोई संकेत नहीं दिखाई दे रहा है। इतने हीमें टेलिफोनकी घण्टी पुनः बज उठी और

स्वयं महात्माजी उसे सुननेके लिए भीतर बुलाये गये। गान्धीजी प्रायः दस मिनट तक टेलीफोनपर बात करते रहे। उस समयका दृश्य भुलाया नहीं जा सकता। कालका जानेवाली गाड़ी छूट चुकी थी और यहाँ कांग्रेसके एकमात्र नेता और सर्वेसर्वा महात्मा गान्धी टेलीफोनपर बातचीत करनेमें व्यस्त थे। मुझे बादमें मालूम हुआ कि वे सर हर्बर्टइमर्सनसे बातचीत कर रहे थे। इस दस मिनटकी बातचीतके बीचमें श्रीदेवदासजी एकबार कमरेके बाहर आये थे। थोड़ी देर बाद एक और सज्जन बाहर निकले और यह पूछा कि क्या बेंटलीकोड कहीं मिल सकता है। ये बातें निश्चित दिशाकी ओर सङ्केत कर रही थीं। इतने हीमें एक और सङ्केत मिला। रायबहादुर मोहनलाल बाहर आये और यह पूछा कि क्या सायङ्कालकी प्रार्थनाके लिए प्रबन्ध किया जाय। उन्हें जो उत्तर मिला वह यही था कि "कदाचित् इसकी आवश्यकता ही न पड़ेगी।" अब मैंने अपना मार्ग स्थिर कर लिया।

जैसे ज्यों ही महात्मा गान्धी कमरेसे बाहर आये वैसे ही मैं कमरेमें घुसा और तार घरके तार मास्टरको यह आदेश दिया कि मेरे तारको तत्काल 'अर्जेण्ट' करके भेज दिया जाय। गान्धीजी कमरेके बाहर आये तो उनके हाथमें कागजका एक पुलिन्दा भी था। मैंने अपना काम तो कर दिया पर श्रीरामको अपने कार्यकी सूचना न दे सका। क्योंकि इसी बीच कोई सज्जन भीतर आगये थे और टेलीफोनका उपयोग करने लगे थे। तार भेज देनेके बाद अब मेरा तात्कालिक कार्य यह था कि मैं पूरी तरहसे पता लगा लूँ कि जो समाचार मैंने भेजा है वह साधार है अथवा नहीं तथा मैंने संवाद भेजकर अपनेको या अपनी एजेन्सीको उपहास्य तो नहीं बनाया है। गान्धीजीकी मूर्ति वही शान्त और गम्भीर मूर्ति थी। मुखपर न कोई उत्तेजना थी और न भावुकताकी कोई रेखा। उनके निजी आदमियोंमें हलकी-सी सक्रियता अवश्य दिखलाई पड़ी। वह भी इतनी ही कि वे सामान बाँधनेकी ओर लगे दिखाई दिये।

वास्तवमें सर हर्बर्टइमर्सनका आखिरी सन्देश गान्धीजी और सरकारके बीचकी सारी खाईं पाट देनेमें सफल हुआ था और गान्धीजीके लण्डन जाने न जानेके प्रश्नका निर्णय कर देनेमें समर्थ हुआ था। पण्डित जवाहरलाल तथा खाँ अब्दुल गफ्फार खाँको सूचना दे देना मात्र बाकी था। सरकारने

न केवल बारडोलीके किसानोंके सम्बन्धमें जाँच करनेका वादा कर दिया था प्रत्युत यह वचन भी दे दिया था कि अन्य प्रान्तोंकी सरकारें भी, यदि उनके सामने निश्चित अभियोग उपस्थित किये जायँगे तो गुजरातके समान ही जाँच करनेके लिए तैयार रहेंगी। उपर्युक्त दोनों नेताओंको इस नये समझौतेकी सूचना दे दी गई जो गान्धी-अरविन समझौतेका ही विस्तार समझा गया। वास्तवमें सरकार और कांग्रेसके बीच वह एक और समझौतेके रूपमें ही स्वीकार किया गया। अब कतिपय पत्रकार टेलिफोनके कमरेमे टेलिफोनका उपयोग करनेकी दृष्टिसे घुस पड़े, पर इतने हीमें एक सज्जन पुनः आये और गृह विभागके सेक्रेटरीको टेलीफोन करना चाहा। फलतः जितने पत्रकार घुसे थे उन्हे पुनः बाहर आना पड़ा। 'फरग्रोव'में इसके सिवा कोई और टेलिफोन उपलब्ध न था।

यह देखकर कि अब जल्दी टेलीफोन पाना सम्भव नहीं है मै क्लार्क होटलकी ओर दौड़ पड़ा और वहाँसे सेसिल होटलको टेलीफोन किया। मैने जैसेही श्रीरामको यह सूचित किया कि मैने लण्डन तथा भारतके समस्त पत्रोंको अपने समाचारकी सूचना दे दी है वैसे ही वे प्रसन्नताके मारे उछल पड़े। मैंने श्रीरामसे प्रार्थना की कि वे नये समझौतेकी शर्तोंको प्रकाशित करनेवाली सरकारी विज्ञप्तिको प्राप्त करनेकी चेष्टा करें और उसे तत्काल सर्वत्र भेजनेका प्रबन्ध कर दें। इधर मैंने निश्चय किया कि 'फरग्रोव'से और जो संवाद मिले उसे सङ्कलित करते हुए तथा गांधीजीके निश्चयसे उद्भूत प्रतिक्रियाका ज्ञान सम्पादन करते हुए तब लौटूँ। मैंने क्लार्क होटलसे बाहर कदम रखा ही था कि दैवात् मुझे मेरे एक मित्र मिल गये। रेलवे बोर्डमें यह सज्जन काम करते थे। उनकी बातचीतसे मुझे यह सङ्केत मिला कि महात्माजीको कालका तक ले जानेके लिए स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था की जा रही है। इस सूचनासे मुझे बड़ी राहत मिल गई। अब यह निश्चित हो गया कि गान्धीजी लण्डन जा रहे हैं। मैने तुरन्त इसकी सूचना भी श्रीरामको दे दी और उनसे अनुरोध किया कि लण्डन तथा भारतमें भी इस समाचारका वितरण कर दें।

मै यह सब काम करके जब 'फरग्रोव' लौट रहा था तो रास्तेमें अपने तीन पत्रकार मित्रोंको तार घरकी ओर लपके जाते हुए देखा। 'फरग्रोव'में टेलिफोन

न पाकर ये विचारे अब सीधे तार घरकी ओर ही भागे जा रहे थे। मेरा पहला समाचार लण्डनमें दूसरे संवाददाताओंके भेजे हुए समाचारोंसे चालीस मिनट पूर्व पहुँच चुका था और कतिपय पत्रोंके सायंकालीन संस्करणोंमें बड़े धूमसे प्रकाशित हो गया। सायंकाल हमारी एजेन्सीके लण्डन आफिससे एक केबिल हमारे भारतीय कार्यालयको मिला जिसमें हमें उस समाचारको खोद निकालनेके लिए बधाइयाँ दी गयी थीं जिसके लिए अनेक कठिन परिस्थितियोंमें मैंने सारे दिन प्रचण्ड आयास किया था।

इधर स्पेशल ट्रेन महात्माजीको लेकर शिमलेसे रवाना हुई। शिमलाका रेलवे स्टेशन असंख्य नरनारियोंके उल्लासपूर्ण जयजयकारसे गुञ्जरित हो उठा जो गान्धीजीको विदा करने तथा लण्डनके गोलमेज सम्मेलनमें कांग्रेसका प्रतिनिधित्व करनेके महान ध्येयकी सफलताकी कामना हृदयमें लिये हुए एकत्र हो गये थे। यह सम्मेलन हो रहा था भारतके करोड़ों निवासियोंके राजनीतिक भाग्यका निबटारा करनेके लिए। कालकासे बम्बई जानेवाली मेलट्रेन कालकामें रोक ली गयी थी जिसमें गान्धीजीको स्पेशल ट्रेन पहुँच जाय और वे मेल पकड़ सकें। वायसरायने गान्धीजीको अपना सन्देश भेजते हुए उनकी यात्राकी सफलताकी कामना प्रकट की और लिखा कि आप सदा मेरे ऊपर भरोसा रख सकते हैं। गान्धीजीने भी अपनी ओरसे वाइसरायको वैसा ही मर्मस्पर्शी उत्तर भेजा और बम्बईके लिए रवाना हो गये।

गान्धी-अरविन समझौता

श्री दुर्गादासकी सूझ

श्री दुर्गादास भारतके प्रसिद्ध पत्रकार हैं। आप अति गुप्त समाचारोंको भी खोद निकालनेमें सिद्ध-हस्त माने जाते हैं। अधिकारियोंके मस्तिष्कसे, सेक्रेटेरियटकी गूढ़ फाइलोंसे नेताओंके हृदयसे संवाद निकालनेमें किसीकी चाल किसीकी मुख मुद्रासे, किसीकी भ्रूभंगिमासे संवादकी रूपरेखाकी झलक पा लेनेमें आप कुशल माने जाते हैं। गान्धी-अरविन समझौतेके समय आप असोशियेटेड प्रेसके प्रतिनिधिकी हैसियतसे दिल्लीमें नियुक्त थे। किस प्रकार उन्होंने समस्त प्रतिद्वन्द्वियोंको पराजित करके उक्त समझौतेके हो जानेका समा-

चार सर्व प्रथम वितरित कर दिया इसकी कहानी उन्हींकी लेखनीद्वारा वर्णित है जिसे पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ उद्धृत कर दिया जाता है।

श्री दुर्गादास लिखते हैं:—अक्षय सङ्घर्ष निरन्तर गतिशील रहता है। सारा विश्व ही अपना घर है। मुझसे कहा गया है कि इस जीवनके अध्यायका कोई एक पृष्ठ उपस्थित करूँ और पत्रकारिताके क्षेत्रमे अपनी विजयकी सर्वोत्कृष्ट घटनाका वर्णन करूँ। यह कार्य सरल भी है और कठिन भी।

पत्रकारिता जीवनकी अति मनोरञ्जक क्रीडाके समान है जो स्पंदन, उत्तेजना और घटनाओंसे परिपूर्ण है। अनेक घटनाओंमेंसे सर्वोत्तम कौन है इसका निर्णय निर्भर करता है अपनी-अपनी रायपर। यदि पत्रकारके पेशेके शानकी दृष्टिसे किसी घटना का चुनाव करना हो तो मै भारती व्यवस्थापक सभामें भगतसिंह द्वारा बम फेकेजानेवाली बातको उपस्थित करूँगा। तीन दर्जन पत्रकार सार्वजनिक स्थानमे इस घटनाको देख रहे थे फिर भी संवाद भेजनेमें मैंने सबसे बाजी मार ली और आठ घण्टेतक वह समाचार दुनियाके कोने कोनेमें अकेले घूमता फिरा। तबतक हमारे किसी प्रतिस्पर्धीका कोई भी तार कहीं नहीं पहुँचा। लण्डनके लोगोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और 'रायटर'ने तो जिज्ञासा भी प्रकट की कि आखिर ऐसा हुआ क्यों? ऐसी ही दूसरी घटना लाहौर कांग्रेस के समयकी है जब पूर्ण स्वतन्त्रताके प्रस्तावकी स्वीकृतिके सम्बन्धमें समाचार भेजनेमें मैंने प्रतिद्वन्द्वियोको पीछे छोड़ दिया। पर ये कहानियाँ हैं प्रत्युत्पन्नमतिकी तथा यान्त्रिक सफलताकी।

भारतीय होनेके नाते मैं उन बातोंपर गर्व करता हूँ जिनका आधार मानसिक तथा आध्यात्मिक हो। इस श्रेणीमें रखी जाने लायक मेरी कहानियोंमें मुख्य वह है जो गांधी-अरविन समझौतेकी ऐतिहासिक घटनासे सम्बन्ध रखती है तथा दूसरी है युक्तप्रान्त और बिहारमें उत्पन्न हुए उस वैधानिक सङ्कटके सम्बन्धकी जब उक्त दोनों प्रान्तोंके कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंने पदत्याग कर दिया था। पदत्याग तथा बादमें सङ्कटका निराकरण करनेके निमित्त हुए समझौतेका संवाद सर्वप्रथम उन्हीं पत्रोंमें प्रकाशित हुआ जिसका प्रतिनिधित्व मै कर रहा था। वहाँसे ये समाचार समुद्र पार भी गये। वैधानिक सङ्कटवाली घटना अत्यन्त हालकी है जिसके रहस्यमय पर्देके पीछे झाँकनेकी अपेक्षा मैं

गांधी-अरविन समझौतेकी कहानी कहना अधिक पसन्द करूँगा। इस घटनाका विश्वव्यापी महत्व था। दर्जनों ब्रिटिश और अमेरिकन पत्रकार उक्त घटनाका सम्वाद-संकलन करनेके लिये दिल्लीमें विशेष रूपसे नियुक्त किये गये थे। वे सब दिल्लीमें जमे हुए थे। अपने-अपने देशमें तो वे सब पत्रकार थे पर भारतमें सबके सब युरोपियन ही समझे जाते थे। मै ऐसा कह रहा हूँ इसलिये कि समाचार सङ्कलन करनेमें उनकी असफलताका कारण उनका युरोपियन होना भी हो सकता है क्योंकि कोई भी युरोपियन भारतमें आकर एक विशेष प्रकारका जीवन-यापन करने लगता है।

जिस समयकी बात मैं कह रहा हूँ उस समय मैं असोशियेटेड प्रेसका सम्पादक था। स्वर्गीय श्री के० सी० राय मेरे प्रधान थे। पत्रकारिता तो युद्धके सदृश ही होती है। वह निर्भर करती है व्यूह रचनापर, नीतिपर; कभी सामनेसे और कभी बगलसे अग्रसर होने और आघात करनेपर वह निर्भर करती है प्रत्युत्पन्नमतित्वपर तथा उचित नेतृत्वपर। प्रधान सेनापतिकी तरह श्रीरायने धावा बोलनेकी योजना बना ली थी। उन्होंने एक आदमीको तो सर तेजबहादुर सप्रू तथा डाक्टर जयकरके निवास स्थानपर नियुक्त कर दिया था। सरतेज और श्री जयकर ही तो सन्धिवार्ताके लिये दोनों पक्षोंको जोडनेवाले सूत्र थे। मेरे एक दूसरे साथीकी नियुक्ति डाक्टर अनसारीके निवास स्थानपर की गई थी, जहाँ महात्मा गाँधी टिके हुए थे। मेरी नियुक्ति उन्होंने वायसराय-भवनमे कर दी थी। युद्धके इन तीनों मोरचोंसे मिले संवाद-को श्रीराय पार्लमेण्ट स्ट्रीट के रायटर भवनमें पहुँचानेवाले थे। हम तीनोंका क्षेत्र अलग-अलग था और हम किसीकी सहायतापर भी निर्भर नहीं करते थे। परन्तु अमेरिकाके असोशियेटेड प्रेसके श्री जेम्सपिल हमारे मित्र थे। विभिन्न मोरचोंसे हम जो सम्वाद एकत्र करते वह श्री जेम्सको भी प्रदान किया जाता। हमारी कार्यपद्धतिमे श्री जेम्सको विश्वास था अतः हमे यह अधिकार प्राप्त था कि यदि आवश्यकता पडे तो हम 'न्यूयार्क' को 'केबल' भेज सकते हैं।

पहले दिन गाधीजीके वायसराय भवन पहुँचनेका दृश्य कभी भी न भूलेगा। वायसराय-भवनकी देहली लांघकर भीतर पहुँचनेवाला एक 'विद्रोही' है, जो आया है सन्धिकी शर्तें तै करनेके लिये! फलतः एक प्रकारकी सनसनी

फैली हुई थी। जो वायसराय-भवनके शान्त तथा गम्भीर वातावरणको क्षुब्ध कर रही थी। सैकड़ों वर्दीधारी चपरासी और खिदमतगार इधर-उधर बरामदों और दालानोंसे उत्सुकतापूर्वक झाँक रहे थे। महात्मा ज्यों ही पहुँचे वैसे ही चारों ओरसे इन झाँकनेवालोंने सम्मानमें सभक्ति अपना मस्तक नत किया। पुलिस और सैनिक 'सावधान' अपनी ड्यूटीपर डटे थे पर उनके नेत्रोंमें स्नेह तथा मैत्रीकी आभा झलक रही थी। वायसरायके समस्त अङ्गरक्षक सौजन्यकी प्रतिमा बने हुए थे। विदेशी तथा स्वदेशी पत्रकारोंकी महती सेना सारा दृश्य देख रही थी। जब लार्ड अरविन और महात्मा गाँधी वायसरायके दफ्तरमें बातचीतमें सलग्न हो गये तो वायसराय-भवनका जीवन पुनः साधारण तथा यथापूर्वक हो गया। अङ्गरक्षकोंके कमरोंकी दीवालोंपर तथा बरामदों और दालानोंमें टँगे चित्रोंसे सदाके लिये मन बहलाव करना सम्भव नहीं होता। फलतः धीरे-धीरे एकके बाद दूसरे पत्रकार रफू-चक्कर होने लगे। अन्ततः मैं ही अकेला रह गया। अब वहाँ कुछ करनेको नहीं रहा।

किसी अविश्रान्त तथा बेचैन व्यक्तिके लिये इससे बड़ा दण्ड और नहीं हो सकता कि उसे निष्क्रिय बना दिया जाय। कब समाचारका भण्डा फूटेगा, कैसे रहस्य उद्घाटित होगा, क्या मैं प्रतिस्पर्धियोंको पराजित करके पुनः बाजी मार ले जानेमें सफल होऊँगा? ये ही अटल और अनिवार्य प्रश्न थे, जो निरन्तर मेरे मस्तिष्कमें मड़राते रहते थे। क्या मुझे दिन-दिन और रात-रात भर इसी प्रकार राह देखते रहना होगा और महात्माका आना तथा जाना निहारते रहना पड़ेगा? क्या इस घटनामें कोई ऐसा अंश नहीं है जिसका मानवी स्वरूप हो जो लोगोंके मनोरञ्जनका कारण हो सकता हो?

अकेले बैठा-बैठा मैं उपर्युक्त प्रकारकी उधेड़-बुनमें पड़ा हुआ था जब सहसा मेरे कानोंमें धीमी फुसफुसाहटकी ध्वनि पहुँची। कोई गांधीजीके सम्बन्धमें धीरे-धीरे बातें कर रहा था। महात्मा किस जगह बैठे हैं, कैसे बैठे हैं, वायसरायसे किस प्रकार बातें कर रहे हैं, किस प्रकार दोनों कभी-कभी हँसते हैं, इसकी चर्चा चल रही थी। कान लगाकर बड़े ध्यानसे सुननेके बाद मैं यह समझ पाया कि चपरासियोंका एक अच्छासा गुट जमा हुआ है जो किसी जमादारकी बात बड़ी उत्सुकताके साथ सुन रहा है। यह जमादार

यदा-कदा उस कमरेमें जानेका अवसर पाता रहता था जिसमें गांधीजी और वायसरायकी बातचीत चल रही थी। जमादारकी बातचीतने मेरी जिज्ञासा और उत्सुकता जागरित कर दी। बातचीत सुनकर सहसा मेरे मनमें एक विचार उठ खड़ा हुआ। यह है इस घटनाका मानवी स्वरूप जिसके वर्णनमें कुछ क्षम्य अतिशयोक्ति भले ही हो पर जिसका फलत. सत्य होना निश्चित है। किस प्रकार ये दोनों महान व्यक्ति कमरेको गरमकर रखनेवाले चूल्हेके निकट बैठते हैं, कैसे दोनों समय-समयपर उसमें ईंधन डालते चलते हैं, कैसे भोजन करनेके समय वायसरायने गांधीजीको उनका प्याला उठाकर दिया, किस प्रकार वे दोनों समय-समयपर लिखते हैं और लिखते हुए कागजोंका आदान-प्रदान करते हैं।

इस प्रकारकी कहानियाँ दूसरे दिनसे पत्रोंमें प्रकाशित होने लगीं। जीवनका स्पर्श करनेवाले इन मानवीय वर्णनोंसे पत्रोंके स्तम्भ सुशोभित हो उठे। प्रकाशित इस समाचारोंने विदेशी पत्रकारोंकी, विशेषकर अमेरिकन पत्रकारोंकी प्रतिस्पर्धा जगा दी क्यों कि अमेरिकन स्वभावतः समाचारोंमें जीवन-सम्बन्धी बातोंके रङ्गको अत्यधिक पसन्द करते हैं। उन्हें सन्देह हुआ कि मेरे साथ पक्षपातका व्यवहार किया जाता है। मेरे प्रतिद्वन्द्वी वस्तुतः परेशान और चकित थे कि कैसे मैं इस प्रकारके सम्वाद और ऐसी तफसीलकी बातें प्राप्त कर लेता हूँ। विदेशी पत्रकारोंमें एक भारी कमी थी। वे समझते थे कि इस देशके करोड़ों तथोक्त अशिक्षित नरनारी वास्तवमें गूंगे हैं। वे यह नहीं जानते थे कि भारतीय चाहे वह कितना ही दीन और अशिक्षित क्यों न हो स्वभावतः जीवनके भावमय अंशका मूल्याङ्कन करना जानता है और बहुधा साहब लोगोंको मनुष्य समझ कर उसके स्वभावकी दुर्बलताओंसे क्रीड़ा करके उनसे अच्छी खासी 'बख्शीश' प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है। फलतः ये चपरासी भी प्रस्तुत परिस्थितिमें उपस्थित मानवी अंशका मूल्य समझते थे और बातचीतमें संलग्न उन दो महान् व्यक्तियोंके मुखकी मुद्रा तथा भाव-भङ्गिमासे यह समझ लेते थे कि उनकी बातचीत किस प्रकार चल रही है। वे उनके सम्बन्धमें आपसमें बातचीत करते थे और दालानोंसे [illegible] फुसफुसाहटकी ध्वनिसे समाचार मिल जाता था। उन्हें कभी यह

सन्देह भी न हो पाया कि मैं उनकी बातचीतका रसिया हूँ। वे मुझे प्रति दिन आया पाते और बहुधा मेरी जरूरतोंको पूरा करनेकी कृपा दिखाते। सिगरेट, चाय, काफी, मुझे खासे परिमाणमें उपलब्ध हो जाती। अङ्गरक्षकोंकी कृपासे वायसराय भवनके आतिथ्य सत्कारका मैं अच्छा रस लूटता।

जितने दिनोंतक यह वार्ता चली और मेरे दिन निष्क्रियतामें कटे उसमें मैं महात्मा और वायसरायको बस उसी समय देखता जब गांधीजी आते और जब बातचीत करके जाते। मैं प्रति दिन सावधानीके साथ दोनोंके मुख पर झलकनेवाले भावोंका चित्र अपने मानस-पर चित्रित करता और प्रतिदिन विभिन्न मोरचोंसे अपने साथियोंद्वारा लाये गये समाचारोंसे उनका मिलान करता। बातचीत करनेवालोंके मुखके भावोंको देखकर जो असर लेता वह कभी गलत भी हो सकता था पर उसका सुधार करनेके लिये तत्कालीन होम सेक्रेटरी सर हर्बर्ट इमर्सन मौजूद ही थे। उनके मुखपर आशा, निराशा, चिन्ता और संतोषके भावोंके प्रति छाया स्पष्टतः झलक जाती थी। वे अपने विशेष उत्तरदायित्वकी चेतनासे मानो सदा चैतन्य रहते थे।

इसी प्रकार उन्नीस दिन बीत गये और वायसराय भवनमें आते-जाते मेरा जीवन नीरस और विश्रान्त हो गया। चपरासियोंकी बातचीतमें भी अब रस न मिलता। मालूम हुआ, मानो सभीकी दिलचस्पी समाप्त हो रही है। अब महात्माके आनेजानेसे वर्दीधारी चपरासी भी आकृष्ट न होते। पत्रकार तो कोई अब वायसराय भवनकी ओर झाँकता भी दिखाई न देता। सम्भवतः डाक्टर अन्सारीके निवासस्थानका वातावरण अधिक निर्मुक्त था और कदाचित् दोनों सुलह करानेवाले सज्जनोंके यहां आतिथ्य सत्कार भी अधिक सरस था। मै निस्संकोच कह सकता हूँ कि मैं स्वयं अपने ही कार्यसे थकनेसा लगा था। एक दिन सायंकाल जब गांधीजी वायसराय भवनसे बिदा हुए और उनकी कार उन्हे लेकर तेजीसे भगी जिसमें वे अपने सायं भोजनके समयसे पहुँच जाँयं तो मैने निश्चय कर लिया कि श्री रायको सूचित कर दूँ कि वायसराय भवनका मेरा आना-जाना तो अनन्त निष्प्रयोजनताके सिवा और कुछ परिज्ञात नहीं होता। मैं यह सोच ही रहा था कि देखा कि एक मोटरगाड़ी आ लगी जिसमेंसे वायसरायकी शासन-परिषद्‌के एक सदस्य उतर पड़े। उसके बाद

दूसरी फिर तीसरी गाड़ियाँ आ धमकीं। यह देखकर मैं तो स्पन्दित हो उठा। कदाचित् जिसकी आशा न थी वह असाधारण रूपसे ही घटने जा रहा था। शायद कोई नई बात होनेवाली हो ! शासन परिषद्का अधिवेशन डेढ़ घण्टेतक होता रहा। जब अधिवेशन समाप्त हो गया और सदस्यगण विदा होने लगे तो मैंने साहस किया और जानेवाले अन्तिम सज्जनके निकट पहुँच ही गया। उन्होंने मुझे कारमें बैठ जानेके लिये आमन्त्रित किया।

मैंने पूछा "क्या मैं आपके साथ चल सकता हूँ और एक प्याली काफी पा सकता हूँ ?" कह कर मै झटसे कारमें दाखिल ही तो हो गया। गाड़ी जैसे ही बढ़ी वैसे ही मैं इस दीन भावसे भुनभुनाने लगा कि माननीय सज्जनकी सहानुभूति जागृत हो जाय। मै कहने लगा "गत तीन सप्ताहसे बिना खाये-पीये मारा मारा फिरता रहा हूँ और अब मेरा धैर्य छूटा ही चाहता है। मैं भूखों मरा जा रहा था जब आपने कृपा कर मुझे कारमें बिठा लिया। ओह ! मैं नहीं जानता कब यह कष्ट समाप्त होगा और अनिश्चित स्थितिका अन्त होगा।"

मेरी बातोंकी प्रतिक्रिया मार्केकी हुई। वे बोल उठे "मुझे आशा है कि आपका कष्ट शीघ्र ही समाप्त होगा।"

इतनेमे मोटर गाड़ी उनके निवासस्थानपर पहुँच गई। उन्होंने काफी ले आनेका आदेश भी तत्काल ही दे दिया। पर अब मुझे चैन कहाँ। मैं काफीकी राह कैसे देख सकता था। यदि उनकी बातका अर्थ वही था जो मैं समझ रहा था तो अब उसकी जाँच तत्काल ही करनी चाहिये। जाँचके लिए सच्ची कसौटी यही हो सकती थी कि महात्मा उसी रात पुनः वायसराय भवन को अनिवार्यत्तः वापस आयें। मैंने समझ लिया कि मुझे वायसराय भवनमें ही रहना चाहिए और देखना चाहिए कि महात्मा आते हैं या कहीं और यदि आते हैं तो उनके मुखपर कैसे भाव झलकते हैं। पर अब अपने कृपालु सज्जनको कैसे छोड़ भागूँ। उनके प्रति अशिष्टताका व्यवहार करनेका खतरा उठाना नहीं चाहता था। फलतः मैंने एक बहाना ढूँढ निकाला।

मैने कहा "आप तो जानतेही हैं कि श्रीराय वृद्ध हो गये हैं। वे आफिसमें राह देख रहे होंगे। उनके भोजनका समय भी होगया है। यदि मैं

तुरत पहुँच नहीं जाता तो उन्हे कष्ट होगा। मै देखता हूँ कि आपके साथ काफी पीनेके सम्मानको मुझे छोड़ना पड़ेगा। क्या आपकी मोटर मुझे आफिस पहुँचा देगी ?

उत्तर देते हुए उन्होंने कहा "यदि इसीमें आपकी सुविधा हो तो आप जायँ"। मोटर भी मुझे मिल गई पर सौभाग्यसे उन्होने ड्राइवरको इस सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया कि वह मुझे कहाँ पहुँचा देगा। फलतः मैंने वायस-राय भवनकी ओरही गाड़ी भगा देनेकी आज्ञा दे दी।

अब यह संयोग तो देखिए। इधर मेरी गाड़ी पहूँचती है और उधर तत्कालही उसका अनुगमन करती गान्धीजी कारकी आ पहुँची।

अब मै दो विचारोंमें लहराने लगा। जो नई घटनायें घट गई हैं उनकी सूचना श्रीरायको दूँ या न दूँ और उनसे यह कहूँ या न कहूँ कि वे दूसरे मोरचोंपर स्थित मेरे साथियोंको इन बातोका सङ्केत प्रदान कर दें और उनसे कह दें कि सावधानीके साथ नई बातोपर दृष्टि रखें।

थोड़ा विचार करनेके बाद मैंने मौनावलम्बन करनाही उचित समझा। मुझे भय हुआ कि जहाँ मैने कुछ कहा वहाँ दूसरे 'संवाद-शिकारी' इन बातोंकी गन्ध पा जायँगे। फलतः वगैर कुछ खाये-पिये मै जहाँका तहाँ चिपका रहा। एकके बाद दूसरे घंटे बीतते गये। आधी रात बीत चली। एक सन्तरी एकाकी सङ्गीन लिए हुए इधर-उधर टहल रहा था। उक्त निःशब्द अर्धरात्रिमें उसके पैरोंकी आवाज मेरे अकेलेपनको भङ्ग करती हुई जीवन प्रदान कर रही थी। मै स्वयं रह-रहकर इधर-उधर टहलने लगता था। सन्तरी मुझे देखता पर उसे किसी प्रकारका सन्देह न होता। उसने कदाचित् यह समझा कि मै खुफिया विभागका आदमी हूँ जो सादी वर्दीमें तैनात हूँ। जो भी हो, उसकी इस धारणाने मुझे परेशानीसे अवश्य बचाया क्यों कि मुझे सन्देह है कि वायस-राय भवनके उस भीतरी हिस्सेमें इतनी रातको पैठनेकी अनुमति शायद ही रही हो।

अव रातको पौने दो बजनेको आये। सहसा मैंने किसी-के पैरकी आहट सुनी मानो कोई सीढ़ियों परसे तेजीके साथ उतरता हुआ नीचेकी ओर भागता आ रहा हो। मैंने चुपचाप एक झरोखेसे झाँकना शुरू किया। देखा कि श्रीइम-

र्सन लड़खड़ाते हुए नीचे पहुचे। उनके हाँथोंमें कागजका एक पुलिन्दा भी देखा। उनके चेहरेपर चमक थी और प्रसन्नतासे मुख खिला उठा था। मैंने अपने हीसे प्रश्न किया कि उनके हाँथोंका कागजका पुलिन्दा क्या समझौतेका ही मसविदा है ?

पुनः मैंने अपनेसे ही तर्क किया। यदि बात यही हो तो निश्चय ही गान्धीजी शीघ्रही बिदा होते दिखाई देंगे। मैं तर्क वितर्क करही रहा था, और दो मिनट भी बीते न रहे होंगे कि मैंने महात्माको सीढ़ीपरसे उतरते देखा। उस समय वे लार्डअरविनके बाहुओंका सहारा लिये हुए धीरे-धीरे उतरते चले आ रहे थे। वायसरायके बाहुपाशमें गांधीजीकी वह मूर्ति अपूर्व थी। दोनों परस्पर मुस्कुरा रहे थे और धीमे स्वरमें कुछ बातें भी करते जा रहे थे। यह दृश्य देखतेही मैंने समझ लिया कि समझौता हो गया। मेरे मनमें अब कोई सन्देह रह ही नहीं गया। वायसराय महोदय ज्योंही गान्धीजीको कारमें बिठाकर वापस हुए त्योंही मै गांधीजीकी ओर झपटा। चारों ओर घोर अन्धेरा था। मैं समझता हूँ कि गांधीजी मुझे पहचान न पाये। उन्होंने कदाचित् मुझे वायसरायके प्राइवेट सेक्रेटरीके कार्यालयका कोई कर्मचारी समझा।

मै एक साँसमेंही उनसे पूछ बैठाः—महात्माजी ! क्या आप समझौतेके बारेमे कोई विज्ञप्ति प्रकाशित करेंगे।

मेरे प्रश्नने गांधीजीको चकित कर दिया। उन्होंने उत्तर देते हुए कहा "प्राइवेट सेक्रेटरीसे पूछो"। गांधीजीकी मोटर रवाना होगई।

उधर मैने देखा कि लार्डअरविन अपने दफ्तरसे बाहर निकल रहे है। मैं धीरे-धीरे चलकर उनके निकट पहुँच गया। मुझे देखकर वे स्तब्ध हो गये। पूछ बैठे "अरे तुम यहाँ क्या कर रहे हो" ?

मैंने तुरत ही उत्तर देते हुए कहा "अपनी ड्यूटीपर तैनात हूँ जनाब"। फिर पूछा "क्या समझौतेके बारेमें आज रातको कोई विज्ञप्ति प्रकाशित की जायगी ?"

लार्ड अरबिन सावधान थे। उन्होंने जवाब देते हुए कहा "कल तुम्हे बातें मालूम हो जायगी।"

अब मैंने अपना मार्ग स्थिर कर लिया। तुरत अपनी मोटरमें सवार हुआ। सेंट्रलटेलिग्राफ आफिस पहुँचा और तत्काल लण्डन तथा न्यूयार्कको समाचार भेज दिया। समाचार यह था गान्धी अरविन समझौता हो गया पर कांग्रेस कार्य समितिकी स्वीकृति मात्र लेना बाकी रह गया है। ऐसे समाचारोंके लण्डनतक पहुँचनेमें मुश्किलसे दस मिनट लगते हैं और पन्द्रह मिनटमें वे न्यूयार्क भी पहुँच जाते है। मैंने पत्रकार जीवनका गम्भीरतम खतरा उठा लिया था। जिन समाचार एजेन्सियोंका प्रतिनिधित्व करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था उनके सुनामकी गहरी बाजी भी लगा दी थी। मैंने जो समाचार भेजा था वह परिणाम था उस मानसिक और बौद्धिक प्रतिक्रियाका जो कुछ घण्टे पूर्वकी घटनाओं तथा दृश्योंने मेरे अन्तर्लोकमें उत्पन्न कर दिया था। घर लौटकर मैंने श्रीरायको टेलिफोन किया और अबतक जो कुछ हुआ था उसकी सूचना तफसीलसे दे दी। श्रीरायने मुझे बधाई दी और कहा कि अब तुम आरामकी नींद सोओ'।

इसके बाद उन्होंने डाक्टर अन्सारीके निवास स्थानपर नियुक्त मेरे दूसरे साथीसे सम्बन्ध स्थापित किया। वहाँ गान्धीजी वायसराय भवनसे लौटकर पहुँच चुके थे। पर उनके मुखकी मुद्रा इतनी गम्भीर और शान्त थी कि किसीको किसी नई बातके सम्बन्धमें कुछ सन्देह करनेकी भी गुन्जाइश न थी। श्री जेम्समिलने तो यह सोचा कि मैंने गलती की है और मुझसे यहाँतक कहा कि न्यूयार्कको भेजा हुआ संवाद रद्द कर दो। अब यह रद्द करनेका समय नहीं रह गया था। फिर मैं यह कदम उठानेके लिये राजी भी न था। भोर होने तथा जलपानके समयके बीच क्या हुआ यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। वह कहानी है लण्डन और दिल्लीके बीच चलनेवाली निरन्तर बातचीत तथा तारोंके विनिमयकी। वह उन पत्रकारोंकी परेशानीकी भी कहानी है जो घण्टों पूर्व-पराजित किये जा चुके थे। मैंने तो अपने टेलिफोन रिसीवरको असम्बद्ध करके अलग रख दिया। मैं जान बचाना चाहता था तरह-तरहके प्रश्नोंसे जो व्यर्थ ही मुझे परेशानी में डाल देते थे। मैं महान् तथा शक्ति सम्पन्न व्यक्तियोंकी डाँट और फटकार तथा विरोधसे भी अपनी जान बचाना चाहता था जो अबतक भेजी जानेवाली डाँकको सांकेतिक भाषामें तैयार करनेमें लगे

हुए थे। इधर मेरा भेजा हुआ समाचार सारे विश्वमें छाता हुआ दिखाई दिया। लण्डन 'टाइम्स'ने मेरे द्वारा भेजे गये समाचारको अपने प्रमुख पृष्ठके प्रमुख स्तम्भके मस्तकपर प्रकाशित कर दिया था।

गान्धी-आरविन समझौते थे ब्रिटिश-भारतीय सम्बन्धको नई दिशा प्रदान कर दी थी। इस समझौतेने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको भी एक नई हैसियत प्रदान की थी। समझौतेके बाद तरह तरहकी कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं। लार्ड विलिङ्गडन तथा लार्ड लिनलिथगोने उन कठिनाइयोंके परिहार करनेके कामको उठाया पर सब कुछ होते हुए भी वह समझौता भारत तथा ब्रिटेनके सद्भावपूर्ण पारिस्परिक सम्बन्धका आधार बना रहा जिसका फल आज प्रान्तीय स्वतन्त्रताके शासन विधानके कार्यान्वित किये जानेमें स्पष्ट ही झलक रहा है।

परिशिष्ट (ख)

प्रूफ संशोधन तथा तत्सम्बन्धी कुछ ज्ञातव्य बातें

प्रूफ-संशोधनको सम्मिलित किये विना पत्रकारिताका विषय अपूर्ण ही रहेगा। प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियाँ कभी-कभी अर्थका अनर्थ कर देती हैं। खण्डनके स्थानपर मण्डन तथा समर्थन के बदले विरोधका भाव प्रकट होने लगता है। ऐसी दशामें लेखका सारा उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। पाश्चात्य देशोंमें यह कला अपनी चरमावस्थाको प्राप्त हो चुकी है। विदेशोंमें छपनेवाली पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकोंमें कठिनाईसे ही प्रूफकी कोई अशुद्धि देखनेको मिलेगी। परन्तु हिन्दीमें अबतक इस ओर कम ध्यान दिया गया है। हमारे यहाँ तो प्रूफ शोधना सबसे सरल दायित्वहीन तथा बेगारका काम समझा जाता है! यही कारण है कि हिन्दीमें छपनेवाली पत्र पत्रिकाओं तथा पुस्तकोंमें कभी-कभी बड़ी भद्दी भूलें देखनेको मिलती हैं। अब यह दशा अधिक दिनोंतक न चल सकेगी। जिस शीघ्रताके साथ हिन्दीका क्षेत्र बढ़ रहा है, इस मुद्रणके युगमें प्रूफ-शोधन कलाको भी हमें उसी अनुपातसे उन्नत बनाना होगा। बिना इसके न तो भाषामें ही स्थिरता आ सकती है और न पुस्तक, पत्रादिका 'मेकअप' तथा 'बाइडिङ्ग' ही सुरुचिपूर्ण हो सकेगी।

प्रूफ-शोधकका कार्य बड़े उत्तरदायित्वका है। वह लेखक और प्रेसके बीचकी महत्वपूर्ण कड़ीके समान होता है। लेखक या सम्पादकके पाससे पाण्डुलिपि मिलनेके बादसे लेकर छपकर तैयार हो जानेतकका सारा दायित्व उसका है। अतः इस स्थानपर योग्य व्यक्तिका होना आवश्यक है। उसे अपनी भाषाका अच्छा ज्ञान तो होना ही चाहिये। व्याकरण, वर्ण-विन्यास तथा विरामादि चिन्होंकी पूर्ण जानकारीके विना यह कार्य नहीं हो सकता। साथ ही 'कम्पोजिङ्ग' तथा छपाईकी साधारण बातें भी वह जानता हो। जिस विषयका लेख शोधनेको आवे उसे भलीभाँति समझ लेनेकी बौद्धिक योग्यता भी उसमें

होनी चाहिए। प्रूफ-शोधकका कार्य मुख्यतः अशुद्धियोंको ढूँढ निकालना तथा उनका शोधन करना है। अतः छिद्रान्वेषिणी शक्ति, दृष्टिकी तीव्रता, बुद्धिमत्ता, धैर्य, सजगता तथा श्रमशीलता आदि गुणोंसे सम्पन्न होना उसके लिए आवश्यक हो जाता है।

मुद्रणके साथ प्रूफ-शोधन कला भी भारतमें पश्चिमसे आयी है। यह बहुत कुछ संकेत लिपिसे मिलती-जुलती है! इसमें व्यवहृत होनेवाले लगभग समस्त चिन्ह अंग्रेजोके ही हैं। हिन्दीके अपने स्वतन्त्र चिन्ह अबतक नहीं बने हैं। अंग्रेजीके ही चिन्होंसे काम लिया जाता है। इस कारण कभी-कभी कठिनाई भी आ पड़ती है। अंग्रेजीके चिन्होंसे हमारी आवश्यकता पूरी नहीं होती। मात्रा, रेफ, हलन्त तथा अनुस्वारादिमें यह कठिनाई विशेष रूपसे सामने आती है१ ऐसे स्थलोंमें अभीष्ट संशोधन स्पष्ट रूपसे 'मार्जिन' में लिख देना चाहिए।

इस विषयमें व्यवहृत होनेवाले लगभग समस्त चिन्होंका एक चित्र साथमें दिया जा रहा है। सभी अच्छे कम्पोजिटर इन सकेतोंका अर्थ समझते हैं। अतः सदा चिन्होका ही प्रयोग करना चाहिए। प्रूफके ऊपरसे रेखा खींचकर फिर मार्जिनमें शोधन करनेका ढङ्ग ठीक नही है। इससे प्रथम तो शोधित प्रूफ भद्दा हो जाता है, सारा कागज रेखाओंसे भर उठता है, और यदि रेखायें एक-दूसरेको काटकर चली गयी हो, तब तो कम्पोजिटरके लिये 'करेक्शन' करना भी कठिन हो जाता है। अनेक त्रुटियाँ पूर्ववत् रह जाती हैं, शोधकका श्रम व्यर्थ जाता और कार्यकी हानि होती है। हाँ, यदि दो चारही अशुद्धियाँ इधर-उधर हो तो इस प्रकारका शोधन अधिक हानिकर नहीं। प्रूफ-शोधनका उचित ढङ्ग समझानेके लिये उदाहरणार्थ एक दूसरा चित्र भी साथमें दिया जाता है। प्रथम चित्रके चिन्होंको याद कर इस विषयको सरलतापूर्वक समझा जा सकेगा।

देखा गया है कि बहुधा प्रूफ-शोधक साथही मूल प्रतिसे मिलाते और शोधन करते जाते हैं। यह ढङ्ग बदलना चाहिए। प्रूफ-शोधकका एक सहायक हो। इसे 'कापी होल्डर' कहते हैं। वह मूल प्रतिको जोर-जोरसे पढ़ता जाय। शोधक मिलान करके आवश्यक सुधार करता चले। इससे काममें शीघ्रता होगी और अशुद्धियोंकी कमसे कम सम्भावना रहेगी। प्रूफको जोरसे पढ़कर

पाण्डुलिपिसे मिलान करना ठीक नहीं। शोधनका आधार मूल प्रति है, न कि प्रूफ़।

इसके अतिरिक्त निम्न बातोंको ध्यानमें रखना चाहिए।

(१) कम्पोज़ होनेके लिए जानेसे पूर्व पाण्डुलिपिको सतर्कताके साथ देख लिया जाय। मात्रायें विराम आदि चिन्ह, शीर्षक, मोटे-पतले टाइपोंकी सूचना आरम्भमें ही दे देना ठीक है।

(२) समाचारपत्रोंमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि लेख जितने स्थानके लिए दिया जा रहा है, उससे कम या अधिक तो नहीं है। अन्यथा कम्पोज हो जानेके बाद बढ़ाने या काटनेमें कठिनाई होगी।

(३) प्रूफ स्वच्छ हो। अन्यथा दूसरा मगाया जाय।

(४) साधारणतया प्रूफ तीन बार देखा जाता है। अशुद्धियाँ अधिक होनेपर चार बार भी देखा जा सकता है।

(५) सर्वप्रथम तिथि, क्रम संख्या, पृष्ठ संख्या, शीर्षक आदि देखकर प्रूफ पढ़ना आरम्भ करना चाहिए।

(६) सांकेतिक चिन्ह बाईं ओरके 'मार्जिन'से बनाना प्रारम्भ किया जाय। प्रत्येक चिन्हके पश्चात एक खड़ी रेखा खींचकर अगलें संकेतसे उसे पृथक कर दिया जाता है। जब दाईं ओरके मार्जिनमें स्थान न रहे तभी दाहिनी ओर क्रमसे संकेत बनाये जाय। इसके विपरीत चलना अनर्थकारी हो सकता है। क्योंकि कम्पोजिटर सदा बाएँ 'मार्जिन' के प्रथम संकेतसेही संशोधन करना प्रारम्भ करेगा।

(७) जो भी संशोधन लेखमें किया जाय उसका सांकेतिक चिह्न मार्जिन-में अवश्य बना देना चाहिए। कम्पोजिटर मार्जिनके ही चिन्होंको देखता है।

(८) शोधन सदा ऐसी स्याहीसे करना चाहिए जो स्पष्ट दिखायी दे। लाल स्याही ठीक रहती है। पेंसिलका प्रयोग कभी न किया जाय।

(९) जिस अक्षर-शब्द या विरामको हटाना या बदलना होता है, उसको काटते हुए एक खड़ी रेखा खींच देते हैं। जिस स्थानपर कुछ बढ़ाना हो,

वहाँका काक पदका चिन्ह (/:) बना दिया जाता है। नया पैरा जहाँसे प्रारम्भ कराना हो वहाँपर बडे कोष्टकका चिन्ह ([ ) बना देते हैं। (यह चिन्ह लेखकके बीचके हैं। मार्जिनके चिन्हं चित्र नं. १ में देखिए।)

(१०) यदि कभी कोई शब्द या वाक्य पहले काट दिया हो पर बादमें उसे रखना अभीष्ट हो तो उसके नीचे बिन्दियाँ (......) बना देते हैं।

(११) अस्पष्ट शब्दों या चित्रोंको क्रासके चिन्ह (×) से काट देते हैं। इसका अर्थ उसे स्पष्ट करना है।

(१२) अवतरण, विराम तथा स्वर चिन्होंके संकेत मार्जिनमें स्पष्ट करने चाहिये। इस सम्बन्धमें सावधानीकी अपेक्षा है। आकारका चिन्ह (ा) ऐसा बनाया जाय (।) नहीं। मात्राके लिये (`); हलन्तके लिये (्); अवतरण चिन्हके लिये (‘) या (’), विरामके लिए (,); उकार या ऊकार के लिये (ु) या (ू); अनुस्वारके लिये (ं) आदि।

(१३) कई पंक्तियोंके अन्तमें बार-बार एक ही शब्दका या अधूरे शब्दका आना ठीक नहीं है। एक-दो शब्द बदल कर इसे रोकना चाहिये।

(१४) पाण्डु लिपिमे किसी भाँतिका परिवर्तन करनेका अधिकार शोधक को नहीं है। तद्विपयक सन्देहोंके लिये, संदिग्ध स्थानके नीचे बिन्दियां (......) बना कर मार्जिनमे तीन प्रश्नवाचक चिन्ह (???) बना देने चाहिये। और सन्देह निवारणके लिये पाण्डुलिपि सहित प्रूफ लेखकके पास भेज दिया जाय। प्रेसकी भाषामें इसे ‘क्वेरी’ ठीक करना कहते हैं।

(१५) संकेतोंके अतिरिक्त कम्पोजीटरकी सूचनाके लिए जो कुछ लिखा जाय, उसे गोल वृत्तसे घेर देना चाहिये।

(१६) ‘करेक्शन’ होनेके बाद दूसरी बार ‘रिवीजन’के लिये जो प्रूफ आता है, उसमें केवल करेक्शन मिला लेना भर ही पर्याप्त नहीं है। देखना चाहिये कि ‘करेक्शन’ दो बार तो नहीं हो गया? कोई टाइप तो नहीं निकल गया? कोई अचिन्हित टाइप तो नहीं बदल गया? आदि।

(१७) ‘करेक्ट’ करनेके पश्चात् कम्पोजीटर प्रूफके ऊपरी शिरेको पहिचानके लिये फाड़ देता है।

(१८) विभक्तियोंको मिलाकर या अलग लिखने, 'अनुस्वार या अर्धन' के प्रयोग आदिका लेखकका अपना ढंग होता है। लिखित आदेश लेकर उसका पालन किया जाय।

(१९) प्रथम दो प्रूफोंको पूर्णरूपसे शोध कर तीसरा प्रूफ लेखक या सम्पादकके पास स्वीकृतिके लिये भेजना चाहिये।

(२०) कभी-कभी छपनेमें भी मात्रायें आदि टूट जातीं या अक्षर निकल आते हैं। बीच-बीचमें इसको भी देखते रहना होता है।

(२१) 'मेकअप' 'वाइंडिग' आदिको सुरुचिपूर्ण बनाना भी प्रूफ शोधकका काम है।

(२२) केवल वर्ण-विन्यासका शोधन करके ही प्रूफ-शोधकका कार्य पूर्ण नहीं हो जाता। विचारों तथा भावोंकी अस्पष्टताकी ओर भी उसे लेखकका ध्यान आकर्षित करना चाहिये। इसके लिये आवश्यक है कि उसमें इस श्रेणी-की योग्यता हो। उसका विभिन्न विषयोंका ज्ञान जितना विस्तृत होगा अपने कार्यमें उतनी ही सफलता मिलेगी।

प्रूफ-संशोधनमें प्रयुक्त होनेवाले सङ्केत

सङ्केत	अर्थ	सङ्केत	अर्थ
ϑ	हटा दो या निकाल दो ।	“ ”	दो अवतरण चिह्न ।
□	एक एम स्थान छोड़ो, जैसा नये पैराके आरम्भमें होता है ।	‘ ’	एक अवतरण चिन्ह ।
#	स्पेस डालो या जगह करो ।	!	सम्बोधन ।
ᘓ	उल्टा लगा है ठीक करो ।	?	प्रश्नवाचक चिन्ह ।
⁀	अक्षरों को मिलाओ ।	|||	ऊपर नीचेकी पंक्तियोंके आदि या अन्तिम अक्षर एक सीध में करो ।
=	एक लाइनमें करो ।	✓	स्पेस (रिक्तस्थान) कम करो ।
¶	नया पैरा प्रारम्भ करो ।	×	टूटा अक्षर, बदलो ।
[	बायीं ओर हटाओ ।	ital	इटैलिक टाइप लगाओ ।
]	दाहिनी ओर हटाओ ।	rom	रोमन टाइप लगाओ ।
⊓	ऊपर हटाओ ।	run on	पैरा मत छोड़ो ।
⊔	नीचे हटाओ ।	ld >	दो पङ्क्तियोंके बीचमें और जगह करो ।
eq #	रिक्त स्थान (स्पेस) बराबर करो ।	(	दो पङ्क्तियोंके बीचकी जगह कम करो ।
tr	स्थान बदलो ।	⊙	अनुस्वार ।
stet	रहने दो ।	(:)	विसर्ग ।
w.f	विजातीय टाइप, बदलो ।	(SP)	गिनतीकी संख्या अक्षरोंमें प्रयोग करो । जैसे '२' को 'दो' ।
en	एक छोटा डेश लगाओ ।	(???)	क्वेरी ठीक कराओ ।
em	एक बड़ा डेश लगाओ ।	See copy	पाण्डु लिपि देखो ।
✓°	स्पेस उठा है, दबाओ ।		
९/	विराम दो ।		

(चित्र नम्बर १)

प्रूफ संशोधन

□/ॐ/#/।/ कला के क्षेत्र में हमें कुछ सत्य और उद्भासित होते हैं कला
१/ध्य/⁀/ सदा ही साधन रही है कभी साध्य नहीं बनी। वह स त्य का
=/⁀/उसे/ऋ/ समर्थन तथा उसका प्रकटीक रण ही करती है, विकृत और नष्ट
T/tr/en/ नहीं बना देती। कला द्वारा की मानव भावनाओं का व्यक्ती
stet/१/१/⁀/ करण तथा प्रकटीकरण होता है उनका विकृत करण नहीं।
१/के/ कला की भी कुछ सीमा है, उस भी कुछ नियम है, कुछ
चा/न/ँ/ सामाजिक सदा भी उसे मानने ही पड़ते है।

Run on
eq #
ता। वह हमारी सहृदय सहायका है, दुर्धर्ष शत्रु नहीं। कला
C/नहीं/ॐ/#/अ/ का पुजारी सत्य की हीं कर सक। कलाकार रहते हुये उसके
ॐ/नहीं/ लिये यह सम्भव ही है। उसने जिस दिन उसने अपने क्षुद्र
X/ स्वार्थों के चरणों में अपने सत्य की बलि चढ़ा दी वह कलाकार
W f/ँ/ँ/ रह जायगा। उसका अपने स्थान से पतन हो जायगा। निम्न
em/ँ/ँ/ तम सतह में जाकर वह कला का कलङ्क मात्र रह जायगा।

कला का कलङ्क से

अवहेलना न

(चित्र नम्बर २)

परिशिष्ट (ग)

प्रेस और मुद्रण : एक विहंगम दृष्टि

पुरातत्वकी खोजें मुद्रणके इतिहासको ईसाकी दूसरी शती तक ले गयी हैं। चीनमें १७५ ई० में ठप्पेसे मुद्रित ग्रन्थका कुछ भाग आज भी विद्यमान बताया जाता है। ९७२ ई० में एक लाख तीस हजार पृष्ठोंका त्रिपिटक ग्रन्थ छपा। कोरियामें १३३७ ई० की छपी पुस्तक लन्दनके संग्रहालयमें सुरक्षित है। परन्तु वर्तमान मुद्रण-पद्धतिकी कहानी ५०० वर्षसे पीछे नहीं जाती। अलग-अलग अक्षरोंका धातुका टाइप सर्वप्रथम १४५० ई० में जर्मनीमें बना। तत्पश्चात् १४६६ में फ्रान्स, १४७७ में इंगलैण्ड और १५४४ में पुर्तगालमें इस कलाका प्रचार हुआ। पुर्तगालके ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा १५५० ई० में दक्षिण भारतके गोवा शहरमें यह कला आयी। भारतकी सर्वप्रथम पुस्तक रोमन लिपि और देशी भाषामें १५६० ई० मे छपी थी। परन्तु १७७८ ई० में कलकत्तेमें प्रेस खुलने तक कोई गण्य उन्नति इस क्षेत्रमें नहीं हुई।

देवनागरी लिपिके टाइप-निर्माणका प्रयत्न १८०४ ई० में तथा उसके पश्चात् १८१२ ई० में कलकत्तेमें हुआ था, परन्तु उसमें अधिक सफलता नहीं मिली। इस विषयमें पूर्ण सफलता प्राप्त करनेका श्रेय बम्बईके श्रीजावजी दादाजीको है।

इस ऐतिहासिक दिग्दर्शनके पश्चात् प्रेसका स्मरण करते ही हमारा ध्यान सर्वप्रथम टाइप या कीलाक्षरोंकी ओर जाता है। जिस दृष्टिसे भी देखे वर्तमान मुद्रण कलाका भवन इसी भित्तिपर आधारित है। यद्यपि मुद्रणके अन्य प्रकार-भी हैं, जैसे—लिथो तथा फोटोग्राफर आदि, जिनमें कीलाक्षरोंकी आवश्यकता नहीं होती। परन्तु इस कलाको उन्नतिकी चरमावस्थामें पहुँचानेका श्रेय इस यंत्र प्रचलित कीलाक्षर-पद्धतिको ही है।

टाइप ढालनेके लिये सीसा, रांगा और सुर्माके निश्चित आनुपातिक मिश्रण से एक धातु तैयार की जाती है। दृढता लानेके लिये कभी-कभी तांबा भी ढाल देते है। जिस भाँतिका टाइप ढालना होता है, उसके लोहेके बने हुए साँचे (मैट्रिक्स) तैयार रहते हैं। मिश्रित धातुको गलाकर साँचोंमें भर दिया जाता है, और ठण्डा होनेके पश्चात उसे निकाल लेते हैं। बस टाईप तैयार हो जाता है। इन साँचोंको बनानेमें विशेष सावधान रहना पड़ता है। टाइप कितना ही पतला या मोटा हो, ऊँचाई सबकी समान होती है। ८ प्वाइण्ट और ७२ प्वाइण्टके टाइप ऊँचाईकी दृष्टिसे समान होंगे। अन्यथा दो प्रकारके टाइपोंको एक साथ छापना सर्वथा असम्भव हो जाय। हिन्दीके टाइपोंकी ऊँचाई '९१८" इञ्च रखी गयी है।

'फेस' अर्थात् छपनेवाले भागका साँचा भी सावधानीसे बनाया जाता है। उसे सुन्दर, आकर्षक और सुपाठ्य बनानेकी ओर विशेष ध्यान देते हैं। प्रत्येक टाइपमें नीचेकी ओर एक गलीसी छोड दी जाती है, इसे 'निक' कहते हैं। इसका उद्देश्य बिना देखे ही टाइपके उल्टे वा सीधेका ज्ञात कराना है। आज-कल इन साँचोंको गढने तथा टाइप ढालनेका काम अधिकतर मशीनोंसे लिया जाने लगा है। इससे काममें सफाई, समानता और शीघ्रता होती है।

मोटाईकी दृष्टिसे टाइपोके कई प्रकार हैं। अंग्रेजीमें स्वर चिह्नोंकी सुविधाके कारण बहुत पतले टाइप तैयार हो चुके हैं। परन्तु हिन्दीमें ८ पाइंटसे कमका टाइप अभी नहीं बना। सबसे मोटा टाइप ७२ प्वाइण्टका है। साधारणतया हिन्दीकी पुस्तकों तथा समाचारपत्रोंमें प्रयुक्त होनेवाला टाइप १२ प्वाइण्टका होता है। इसे 'पाइका' भी कहते हैं। प्वाइण्टका अर्थ रेखासे है। १२ प्वाइण्ट टाइपका अर्थ हुआ १२ रेखाओंकी मोटाईके तुल्य। एक इञ्चमें यह १२ प्वाइण्ट के टाइप ६ बैठते हैं। अतः ७२ प्वाइण्टका टाइप १ इञ्चका हुआ। इस १२ प्वाइण्ट (पाइका) को ही नापका परिमाण माना जाता है।

हिन्दीके १२ प्वाइन्ट टाइपका आशय उकार और इकार अर्थात् नीचे और ऊपरकी मात्राओंको लेकर अक्षरकी लम्वाईसे है। २ प्वाइन्ट ऊपरकी और २ प्वाइन्ट नीचेकी मात्राके लिए और ६ प्वाइन्ट अक्षरके लिए रहता है। केवल ऊपर या केवल नीचे मात्रा लगनेवाले अक्षरको ९ प्वाइन्टका ढालते है, और

३ प्वाइन्टमें मात्रा रहती है। इस प्रकार हिन्दीके एक फाण्डको ढालनेके लिए चार प्रकारके साँचोंकी अपेक्षा होती है। बीचके ठीक स्थानोंके 'स्पेस' अलग ढलते हैं, और टाइपसे कम लम्बे अर्थात् पौन इञ्चके होते हैं। फाण्डका अर्थ, एक निश्चित परिमाणमें निर्मित समस्त आवश्यक अक्षरोंका सञ्चय है। टाइपों की चौडाईके विषयमें कोई निश्चित नियम नहीं है, जितना स्थान अक्षर ले। हाँ, मोनो टाइप तथा लाइनो टाइपमें यह चौडाई निश्चित हो चुकी है।

स्वर, व्यञ्जन तथा मात्रा आदिके अतिरिक्त अनेक संयुक्ताक्षर और विरामादि चिन्ह मिलकर टाइपोंकी सख्याको बहुत बढ़ा देते हैं। अंग्रेजीके टाइपोंकी संख्या ८४ या ८५ होती है, परन्तु हिन्दीमें यह ३५० से लेकर २७५ तक पहुँच गयी है। हिन्दीमें दो प्रकारके टाइप आजकल प्रचलित हैं बम्बइया और कलकतिया। बम्बइयामें कुछ स्वर चिन्ह युक्त टाइप है। कलकतिया इसी पद्धतिपर कुछ अधिक अखण्ड (स्वर-चिन्ह-युक्त) टाइप बने है। उत्तर भारतमें आजकल इसीका प्रचार है। इसमें कम्पोज करनेमें शीघ्रता होती है। सीधे टाइपको रोमन तथा तिरछेको इटैलिक कहते हैं।

यहाँपर यह भी जान लेना चाहिए कि कम्पोजीटरको कम्पोज करनेके लिए जो प्रति (प्रेस कापी) दी जाती है, उसे सावधानी तथा सतर्कतासे तैयार करना अपेक्षित है। यद्यपि यह विषय लेखकसे सम्बन्ध रखता है, परन्तु छपाईकी गति तथा प्रकारपर प्रत्यक्ष प्रभाव पडनेके कारण इसकी चरचा यहाँ अप्रासङ्गिक नहीं है। हिन्दीमे अधिकांशतः अलग प्रतिलिपि न कराकर मूल प्रतिको ही प्रेसमें भेज देते हैं। इससे कई हानियाँ होती है। 'मैटर' कटा हो तो कम्पोज करनेमें अधिक अशुद्धियोंकी सम्भावना रहेगी। यदि प्रति कहीं खो जाय तो लेखकका मूल्यवान् श्रम व्यर्थ जाता है। ऐसी घटनायें बहुधा घटित होती देखी गयी है। अतः प्रेसके लिए अलग प्रतिलिपि करा लेना आवश्यक है। प्रतिलिपिके अक्षर स्वच्छ तथा पढ़नेमें सरलतासे आने योग्य हों। विभक्तियोंको मिलाने या अलग रखने और अनुस्वार या अर्ध 'न' के प्रयोग आदिका एक लेखक द्वारा सर्वदा एकही नियम रखना शोभनीय, उचित और सुविधा होता है।

समाचार-पत्रोंमें यह ध्यानमें रखना पड़ता है कि हमारे पास कितना स्थान है ? लेख या समाचार किस स्थानपर, कौन और कितना दिया जायगा आदि बातोंपर दृष्टि रखनी पड़ती है। ये समस्त बातें पहले निश्चित हो जानेपर आगेका काम बहुत हल्का हो जाता है। यदि लेखकने इन बातोंपर ध्यान न दिया हो तो प्रूफ-संशोधकको कम्पोज करनेके लिए प्रतिलिपि भेजनेके पूर्व ध्यानपूर्वक यथाविधि परिवर्तन तथा संशोधन कर देना चाहिए।

कीलाक्षरोंको शब्दों वा वाक्योंके अनुसार एकत्रित कर उन्हें छापने योग्य बनाना ही 'कम्पोज' करना है। टाइपोंको निश्चित नियमके अनुसार विभिन्न 'केसों' में भर देते हैं। केसोंमें खाने बने होते हैं और प्रत्येक टाइपका स्थान निश्चित रहता है। कम्पोजीटर हाथसे टाइपोंको निकाल कर धातुकी बनी एक दस्ती (स्टिक) में रखता जाता है। प्रत्येक शब्दके बाद स्पेस डाल कर उसे दूसरे शब्दसे पृथक् कर देते हैं। दस्तीमें पंक्तिकी लम्बाईके परिमाणसे अक्षर लगाये जाते हैं। जब दस्ती भर जाती है तो उतार कर पट्टीपर रख देते हैं। यह पट्टी 'गेली' कहलाती है। वांछित 'मैटर' कम्पोज हो जानेपर उसका प्रूफ (छाप) उठा लिया जाता है, और प्रूफ संशोधकके पास शोधनके लिये भेज देते हैं।

मुद्रणकी विधि और प्रकारोंका वर्णन करनेके पूर्व, कुछ ऐसे यन्त्रोंसे भी परिचय कर लेना चाहिये, जिन्होंने मुद्रण-कलाके क्षेत्रमें क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिये हैं। मुद्रणके व्यापक प्रचारने हाथसे कम्पोज करनेकी विधिकी अपूर्णता भलीभांति प्रकट कर दी। दैनिक पत्रोंके ग्राहकोंकी बढ़ती हुई संख्याने इस प्रश्नको और भी जटिल रूपमें लाकर सामने खड़ा किया। सहस्रों और कहीं-कहीं लाखोंकी संख्यामें समाचार-पत्रोंकी मांग हुई। स्वभावतः इन आवश्यकताओंने मुद्रण-यन्त्रोंमें आवश्यक सुधार करनेकी ओर लोगोंका ध्यान खींचा। इसके परिणाम बड़े आश्चर्यजनक हुये हैं। इनका परिचय हम यथा स्थान देंगे।

तेज छापनेवाली मशीनोंके लिए उसी अनुपातसे शीघ्र कम्पोज करनेकी व्यवस्था भी आवश्यक हो गयी। अतः कम्पोज करनेका पुराना ढङ्ग बदला और नयी-नयी मशीनें अस्तित्वमें आयीं। १८८६ ई० में 'औटोमर्गन थैलर' नामक

व्यक्तिने एक मशीनका आविष्कार किया। यह साँचे कम्पोज करती तथा उन्हें एक पंक्तिमें रखकर पूरी लाइन (पंक्ति) ढाल देती है। यही इसके 'लाइनो-टाइप' नाम पड़नेका कारण है। इसमें सामने टाइपराइटरकी भाँति 'कीबोर्ड' होता है। बटन दबानेपर, पीतलके बने हुये खानोंमेंसे जिसे मैगजीन कहते हैं, अभीष्ट साँचे (मैट्रिक्स) क्रमशः आकर दस्ती (स्टिक) में रुकते जाते हैं। पूरी पंक्ति तैयार हो जानेके पश्चात एक हैंडिल को घुमाकर इन साँचोंकी पंक्तिको एक अन्य स्थानमें पहुँचा देते है। वहाँ पिचकारीमें इनमें गरम सीसा भर दिया जाता है और लाइन ढलकर तैयार हो जाती है। दूसरा बटन दबतेही ये साँचे उठकर अपने-अपने खानोंमें यथास्थान चले जाते हैं। ढली हुई पंक्तियों को यह यंत्रही अपने साथ लगी हुई गैलीमें क्रमसे एकत्र करता जाता है। इसी प्रकार एकके पश्चात् दूसरी पंक्ति ढलती रहती है।

इसमें विभिन्न आकार प्रकारके टाइप भी कम्पोज हो जाते हैं। इसके लिए 'मैगजीन'को घुमाकर जिस नापका टाइप कम्पोज करना हो, उसी 'मैग-जीन'को सामनेकी ओर कर दिया जाता है। बेल-बूटे युक्त 'बर्डर' भी इस मशीनसे ढलते हैं। केवल एक आदमी अपेक्षित है, जो इस यंत्रकी सहायतासे आठ कम्पोजिटरोंके बराबर कम्पोज करता है। प्रूफ-सम्बन्धी अशुद्धियोंके लिए एक अक्षर या शब्दको बदलना इसमें सम्भव नहीं होता। पूरी पंक्ति बदल कर पुनः ढालनी पड़ती है। इसी प्रकारकी मशीनें 'इन्टर टाइप' तथा 'लडलो' भी हैं। 'लडलो' में अन्तर इतना है कि साँचे मशीनसे कम्पोज नहीं होते, वरन हाथसे एक विशेष प्रकारकी दस्तीमें कम्पोज करके लगा दिये जाते हैं। लाइनो टाइपकी हिन्दी लिपिकी मशीन बन चुकी है।

'मोनोटाइप' एक अन्य प्रकारकी मशीन हैं, जिसका हिन्दी लिपिके कम्पोजमें प्रयोग हो रहा है। इसके अलग-अलग दो भाग होते हैं, कीबोर्ड और कास्टर। कीबोर्डमें २२५ बटन होते हैं। इनसे ही भली भाँति शुद्ध हिन्दी कम्पोज हो जाती है। इसमें मैगजीन और साँचे नहीं होते। एक विशेष प्रकारकी कागजकी रील काममें लायी जाती है। कीबोर्डके बटनको दबानेपर रीलमें अभीष्ट अक्षरकी नापका छेद हो जाता है। इस रीलमें एक पंक्तिमें ३१ अक्षरों तकके लिए स्थान होता है। सम्पूर्ण रीलपर इसी भाँति कम्पोज करके अक्षरोंके छेद बना लिए

जाते हैं। एक व्यक्ति इसमें ६ कम्पोजिटरोंके बराबर काम करता है। यह रील तैयार होने पर 'कास्टर' नामक टाइप ढालनेवाले नापमें चढाई जाती है। वहाँ हवाके दबावसे प्रत्येक अक्षरके साँचे आकर एकत्र हो जाते है और उनसे पूरी पक्तिके टाइप अलग-अलग ढल जाते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण 'मैटर' ढल कर कम्पोजके रूपमें गैलीमें एकत्र होता जाता है। एक मिनटमें सवा सौसे लेकर डेढ सौ टाइप तक ढलते हैं।

इस मशीनसे कई लाभ है ! प्रत्येक टाइप अलग-अलग ढलता है, अतः प्रूफकी अशुद्धियों को 'करेक्ट' करना सरल है। उसी टाइपको 'डिस्ट्रिब्यूट' करके पुनः हाथसे कम्पोज करनेके काममें भी लाया जा सकता है। एक बार कम्पोज की हुई कागजकी रीलको टाइप ढाल लेनेके पश्चात रख देनेसे वही 'मैटर' पुनः कभी भी ढाला जा सकता है। इस मशीनके दोनों भागोंको एकत्र करनेके प्रयोग हो रहे हैं।

१९३७ में इङ्गलैंडमें एक 'सुपर टाइप' नामकी मशीनका आविष्कार हुआ हैं। यह बहुत कुछ लाइनोटाइप और मोनो टाइपका मिश्रित तथा संस्कृत स्वरूप है। अभी प्रयोगकी दशामे है, प्रचारमें नही आयी। भारतमे मोनो टाइप मशीन सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। साधारणतया समाचार-पत्रोंके लिए लाइनो टाइप और इन्टर टाइप तथा पुस्तक आदिके कम्पोजके लिए मोनो टाइपको ठीक माना जाता है।

प्रूफके शोधन तथा अशुद्धियोंके 'करेक्शन'के पश्चात् पुस्तकोंकी छपाईके लिए कम्पोज किये हुए 'मैटर' को पृष्ठोंमें विभाजित कर देते हैं। प्रत्येक पृष्ठका टाइप एक दृढ़ तागेसे बाँध दिया जाता है। इन पृष्ठोंको निश्चित नियमके अनुसार, छपनेके लिये मशीनपर लगानेके हेतु, लोहे या लकडीके ढाँचे (फ्रेम) में कस देते हैं। यह ढाँचा 'चेज़' कहलाता है। समाचार-पत्रोंकी छपाईमें 'मैटर' अलग-अलग कालमोंमें विभाजित करके चेज़में कर दिया जाता है। यही चेज़ मशीनमें लगा दिया और छापनेका काम प्रारम्भ हो जाता है।

छपाईकी मशीनोंके प्रकार, आकृति तथा प्रत्येक अङ्गके पृथक्-पृथक् कार्यों और तत्सम्बन्धी अन्य आवश्यक सामग्रीकी विस्तृत विवेचना करना हमारा उद्देश्य नहीं है। स्याही और कम्पोजके बिना छपाई नहीं हो सकती, इसे

सभी जानते हैं। रोलर एक अवश्यक वस्तु है। यह सरेसका ढाला जाता है। रोलरकी उत्तमता तथा सुरक्षाका छपाईपर पर्याप्त प्रभाव होता है। नष्ट तथा विकृत कर देनेवाले कारणोंसे इसकी रक्षा करना आवश्यक है।

मशीनोंकी दृष्टिसे अब तक मुद्रणके तीन सिद्धान्त अस्तित्वमें आये हैं। पहलेमें चेज़पर कसा हुआ फर्मा मशीनमें एक स्थानपर खड़ा रहता है, और उसको स्पर्श करके पूरे फर्मेकी सतह कागजपर छाप ली जाती है। इस प्रकारसे छपाई करनेवाली मशीनें ट्रेडिल या प्लेटन कहलाती हैं। यह सबसे छोटी मशीन है। साधारण और छोटे प्रकारकी छपाई इनमें सरलता पूर्वक होती है। बहुत बढ़िया रङ्गीन कामों और तिरंगे चित्रोंकी छपाईमें यह लाभ-दायक और सुविधाजनक सिद्ध हुई है। भारतके छोटे छोटे प्रेसोंमें अब भी इन्हींका राज्य है। अकेला व्यक्ति पैरसे मशीन चलाकर छाप लिया करता है।

छपाईके दूसरे प्रकारमें फर्मा सीधा मशीनकी सतहपर पड़ा रहता है, और ऊपरसे बेलन पर कागज लगाकर छापते हैं। इस नियम पर बनी हुई मशीनें सिलैण्डर मशीन कहलाती हैं। हमारे देशमें अच्छी तथा तेज छपाईके लिए इन्हींका उपयोग हो रहा है। ये हाथसे पहिया घुमाकर या बिजलीके द्वारा चलाई जाती हैं। इसीका एक प्रकार 'टू-रेवोल्यूशन सिलैण्डर मशीन' है। इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है। ९-१० रङ्गोंके चित्रोंकी छपाई संसारमें इन्हीं मशीनोंसे की जाती है यह मशीन २६०० प्रतियाँ प्रतिघण्टाके हिसाबसे छापती है।

तीसरा प्रकार रोटरी मशीनोंका है। यह विशालकाय यन्त्र स्वयं एक भारी कारखाने सा प्रतीत होता है। संसारमें मुद्रणकलाकी असाधारण उन्नति का श्रेय इन्हींके आविष्कारकोंको है। साक्षरता तथा सामाजिक और राजनीतिक जागृतिके कारण दैनिक पत्रोंके पाठकोंकी संख्यामें आशातीत वृद्धि हो रही थी। नित्य ही ठीक समयपर, नवीनसे नवीन समाचारों तथा रङ्ग-विरङ्गे चित्रोंसे युक्त पत्र लाखोंकी संख्यामें छापकर देना आवश्यक हो गया। लाइनोटाइप और मोनोटाइप आदिके आविष्कारने हाथसे कम्पोज करनेमें नष्ट होनेवाला समय तो बहुत कुछ बचा लिया। परन्तु लाखोंकी संख्यामें प्रतियाँ छापकर तैयार कर देनेका कार्य सिलैण्डर मशीनोंकी शक्तिके बाहर था। अतः लोगोंका

ध्यान इस नयी आवश्यकताकी ओर गया और यह विशालकाय यन्त्र अस्तित्वमें आया।

इसमें छपाईका ढङ्ग ट्रैडिल तथा सिलैण्डर मशीनोंसे पूर्णतया भिन्न है। फर्मा कसनेके पश्चात् उसका गोल स्टीरियो ढाल लिया जाता है। स्टीरियोको इस मशीनपर एक बेलन या सिलैण्डरमें कस देते हैं। यह स्टीरियोवाला बेलन और कागजके बेलन साथ-साथ घूमते हैं और छपाई होती जाती है। यह मशीनें अब बहुत अच्छे प्रकारकी बनने लगी हैं। सरलताके साथ एक मशीन ३० से लेकर ६४ पृष्ठ तकके रङ्गीन चित्रदार अखबार २५ से लेकर ५० हजार तक प्रति घण्टेके हिसाबसे छाप, भाँज और काटकर तैयार निकाल देती है! इसके लिये लाइनोटाइप या इण्टरटाइप मशीनमें कम्पोज किया जाता है। इस प्रकारकी मशीनोंमें कागजके पूरे थान लगा दिये जाते हैं, क्योंकि छपाई बिना रुके बराबर होती रहती है।

दो मशीनोंका परिचय यहाँ और दे देना आवश्यक है। 'मिहिलीपरफेक्टिङ्ग टू-रेवोल्यूशन प्रेस' एक अमेरिकन यन्त्र है। यह उत्तम पुस्तकों तथा मासिक पत्रादिकी छपाईके काम आता है। इसमें चपटे कागज दोनों ओरसे छापकर १९०० प्रति घण्टेकी गतिसे तैयार निकालते हैं। 'डूप्ले फ्लैटबेड वेबपरफैक्टिङ्ग प्रेस' दूसरी अमेरिकन मशीन है। इसमें फर्मा सीधा कसा जाता है पर कागजके थान लगते हैं। २ से लेकर ८ पृष्ठ तकके अखबार छाप, भाँज और काटकर ६ हजार प्रतिघण्टाके हिसाबसे तैयार निकाल देती है। यह मशीन साधारण श्रेणीके समाचार-पत्रोंके लिए उपयोगी प्रतीत होती है।

पिछले पृष्ठोंमें वर्णित नियमोंके अनुसार अनेक प्रकारकी छपाई होती है, जैसे—बुक्केकी छपाई, ढाईकी छपाई, नकली उभरे अक्षरोंकी छपाई, प्लेटनपर उभरी छपाई आदि। परन्तु लिथोकी छपाईका ढङ्ग पूर्णतया पृथक् है। इसमें छापनेके लिए एक प्रकारके पत्थरका उपयोग होता है। इस पत्थरको सन् १७९६ या १७९८ के लगभग सेनेफेल्डर नामक एक जर्मनने अपने देशके दक्षिणी भागसे खोज निकाला था। एक विशेष प्रकारकी स्याहीसे विशेष प्रकारके कागजपर हाथसे लिख लेते हैं, और उसे शिलापर उल्टा उतार दिया जाता है। फिर पत्थरपर तेजाब लगाते हैं। इससे अक्षर ऊपरको उभर आते और

शिला नीची हो जाती है। पत्थरको भिगाकर रखा जाता है, अत. लियोकी स्याही अक्षरोंको छोड़कर अन्यत्र नहीं लगती। पर रोलरसे स्याही लगाते हैं और ऊपरसे कागज रखकर छाप लिया जाता है। अब पत्थरके स्थानमें अलमूनियम और जस्तेकी चद्दरोंका भी प्रयोग होने लगा है। हमारे देशमें फारसी लिपिकी छपाई अधिकांश इसी लिथो प्रेसमें होती है।

मुद्रण-कला आज किस स्तरपर पहुँच चुकी है, अब इसका अनुमान किया जा सकता है। परन्तु सीमा यहीं समाप्त नहीं हो जाती। प्रगतिका क्रम जारी है। करोड़ोंकी संख्यामें अभी मनुष्य हैं जो अक्षरों तक नहीं पहिचानते। जिन्हें अक्षरोंका ज्ञान है, उनमेंसे भी अधिकांश आर्थिक तथा अन्य कारणोंसे नियमित अध्ययन नहीं कर पाते। मुद्रित पुस्तकें तथा पत्रादि आज भी संसारके विशिष्ट समुदायकी ही निधि हैं। परन्तु ज्ञानकी प्यास बढ़ती जा रही है। मानवमात्र जिस दिन साक्षर होंगे, ज्ञानार्जनके मार्गमें बाधक भौतिक कठिनाइयोंका अन्त हो जायगा। मुद्रण-कला तब किस स्तरपर होगी इसकी कल्पना भी आज सम्भव नहीं है।

———

परिशिष्ट (घ)

निम्न तालिकामें उन शब्दोंको संग्रहीत किया गया है, जिनका प्रयोग पत्रके कार्यालयमें बहुशः होता है।

अखण्ड हिन्दी टाइप—उन कीलाक्षरोंको कहते हैं, जिनमें मात्रायें अक्षरों के साथ ही ढली रहती हैं।

इटैलिक—तिरछे टाइप इटैलिक कहलाते हैं।

इन्टर टाइप—यान्त्रिक कम्पोजकी एक मशीनका नाम है।

इन्डैक्स—अनुक्रमणिकाको कहते हैं।

इन्डैण्ट—यदि किसी संवादांशको विशेष महत्व देना होता है, तो उसके प्रारम्भ या अन्तमें या दोनों ओर एक 'एम' स्पेस डाल देते हैं। इससे अन्य पंक्तियोंकी अपेक्षा इन विशेष पंक्तियोंकी लम्बाई कम हो जाती है, और इन विशेष पंक्तियोंपर दृष्टि शीघ्र जाती है।

इम्पोजिङ्ग—कम्पोज किए हुए मैटरको पृष्ठोंमें बाँटकर उसे मशीन लगानेके योग्य बनानेको क्रिया इम्पोजिङ्ग कहलाती है।

एडवान्सकापी—वह लेख या संवाद है, जो अपने पत्रमें प्रकाशित होनेके पूर्व ही अन्य पत्रोंको प्रकाशनार्थ दे दिया जाता है।

एन—लम्बाईकी एक नाप है, जो परिमाणमें एक इञ्चका बारहवाँ भाग होती है। पंक्तिके अन्तमें यदि पूरा शब्द कम्पोज करनेमें न आवे तो वहाँपर जो छोटा डैस प्रयुक्त होता है, वह इसी 'एन' परिमाणका है।

एम—लम्बाईकी वह नाप है, जो परिमाणमें एनका दूना अर्थात् एक इञ्चका छटा भाग होती है। प्रयोगमें आनेवाले बड़े डैस इसी नापके होते हैं।

ओवर टाइम—निर्धारित समयके पश्चात् जो अतिरिक्त कार्य किया जाता है, वह इसी सीमामें आता है। इस कार्यका पारिश्रमिक भी अतिरिक्त मिलता है।

कटिङ्ग—अन्य पत्रोंमें प्रकाशित जो लेख या संवाद अपने उपयोगके लिए काट लिया जाता है, कटिंग कहलाता है।

कम्पोज करना—टाइप या कीलाक्षरोंको शब्दों या वाक्योंके अनुसार विभिन्न खानोंमेंसे उठाकर एकत्रित करनेकी क्रिया कम्पोज करना या कम्पोजिंग कहलाती है।

कम्पोजिंग स्टिक—धातुकी वनी हुई वह दस्ती है, जिसमें कम्पोज करते समय टाइपोंको एकत्रित किया जाता है।

कम्पोजिटर—टाइपोंको एकत्रित करनेवाला अर्थात् कम्पोज करनेवाला व्यक्ति कम्पोजिटर कहलाता है।

करेक्शन—शोधन हो जानेके पश्चात्, प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियोंका कम्पोजिटर द्वारा शुद्ध किया जाना ही करेक्शन है।

कर्न—प्रत्येक टाइपमें उल्टे और सीधेकी पहिचानके लिए नीचेकी ओर जो खाली गली सी छोड़ी रहती है, वह कर्न कहलाती है।

कलकतिया टाइप—हिन्दीका वह प्रचलित टाइप है, जिसमें अखण्ड अक्षर अधिक होते हैं।

कवर—वाहरी पृष्ठको कहते हैं।

कापी या प्रेस कापी—लेखक या सम्पादक द्वारा कम्पोज होनेके लिये तैयार किया हुआ लेख या संवाद कापी कहलाता है।

कापी होल्डर—प्रूफ रीडरके साथ मूल प्रतिको जोर-जोरसे पढ़नेके लिए जो व्यक्ति रहता है, वह कापी होल्डर है।

कामा—अल्प विरामको कहते हैं।

कालम—पढ़नेकी सुविधाकी दृष्टिसे समाचार पत्रोंके प्रत्येक पृष्ठके मैटरको कई सीधे भागोंमें विभाजित कर देते हैं। प्रत्येक भाग सीधी लाइन द्वारा एक एक दूसरेसे पृथक् कर दिया जाता है। हिन्दीमे कालमको स्तम्भ कहते हैं।

कास्टिंग मसीन—यान्त्रिक कम्पोजकी मोनो टाइप नामक मशीनका वह भाग है, जिसमें टाइप ढलता है।

कीबोर्ड—मोनो टाइप मशीनका वह भाग है, जिसमें कास्टिंग मशीनके लिए कागजकी रीलपर साँचे तैयार किये जाते हैं।

केस—टाइपको रखनेके लिए लकड़ी या लोहेका एक खानेदार खुला बक्स बना होता है। केसमें प्रत्येक टाइपका खाना कुछ सर्वत्र प्रचलित नियमोंके अनुसार निश्चित रहता है।

कोटेशन—उस बडे स्पेसका नाम है, जो भीतरसे खोखला ढाला जाता है।

क्वाड—कोटेशनका दूसरा नाम क्वाड है।

क्वेरी—प्रूफ-शोधकको यदि पाण्डुलिपिमें कहींपर अस्पष्टता प्रतीत हो तो मार्जिनमें उसके लिये निर्धारित चिन्ह बना कर प्रूफ तथा पाण्डुलिपिको लेखकके पास भेज देते है। इस क्रियाका नाम क्वेरी ठीक कराना है।

क्रास हेडिंग—लम्बे समाचार या लेखके बीच-बीचमें छोटे टाइपमें जो शीर्षक दिये जाते है, उन्हे क्रास हेडिंग कहते हैं।

गैली—तीन ओरसे घिरी हुई लोहे या लकड़ीकी एक चौकी-सी होती है। इसमें कम्पोजिंग स्टिकके भर जानेके बाद मैटर उतार कर रखा जाता है।

गैली प्रूफ—पृष्ठों या कालमोमें विभाजित करनेके पूर्व ही प्रूफ शोधनके लिये, कम्पोज किये हुये मैटरकी जो छाप उतार ली जाती है, उसे गैली-प्रूफ कहते हैं।

गैली रैक—गैलीको रखनेके लिये बनी हुई आलमारीका नाम है।

चेज—लोहेकी उस चौखटको कहते हैं, जिसमें पृष्ठ या कालमोंमें विभाजित करनेके पश्चात् मैटर कस दिया जाता है।

जस्टिफाइ—पूरी पंक्तिके कम्पोज हो जानेके पश्चात् उसे स्टिककी नापमें ठीक बैठानेके लिये बीच-बीचमें कुछ अतिरिक्त स्पेस डालने पड़ते हैं। यह क्रिया जस्टिफाइ करना कहलाती है।

जाबवर्क—फुटकर काम या मानचित्र आदिकी छपाईको कहते हैं।

टाइप—सीसा, रांगा और सुर्माके मिश्रित धातुसे बनी हुई अक्षरोंकी छापका नाम ही टाइप है।

टाइप फाउण्डरी—वह कारखाना जहाँ टाइपोंकी ढलाई होती है, टाइप-फांउण्डरी कहलाता है।

टाइपहाइ—टाइपकी ऊँचाईको नापको कहते हैं।

टेलिप्रिन्टर—यह बिजलीसे संचालित होनेवाली मशीन हैं। संसारके कोने-कोनेसे रायटर और ऐसोशियेटेड प्रेस नामक संवाद-समितियों द्वारा भेजे

हुये समाचार प्रत्येक पत्रके कार्यालयमें लगी हुई इसी मशीनपर स्वत एक कागजमे टाइप होते रहते हैं। यह वर्तमान दैनिक-पत्रोंकी प्राण है।

ट्रैडिल मशीन—छपाईकी छोटी मशीनको कहते हैं। इसमें एक आदमी पैरसे मशीनको चला कर छापता जाता है।

डिस्ट्रिब्यूट—छपाई हो जानेके पश्चात् कम्पोज किये हुये मैटरके टाइपोंको पुनः केसके खानोंमें यथास्थान डाल देना डिस्ट्रिब्यूट करना कहलाता है।

पाइका—१२ पाइन्टके टाइपका नाम पाइका है। टाइपोंकी मोटाईके परिमाण इसी पाइकाको आधार मानकर निर्धारित किया गया है।

पाई—कम्पोज किया हुआ मैटर यदि गिर कर टूट जाय और फिर उसका जोडना सरल न हो तो ऐसे मैटरको पाई कहते हैं।

पेज-प्रूफ—मैटरको पृष्ठोंमें विभाजित करनेके पश्चात् जो प्रूफ लिया जाता है, उसे पेज-प्रूफ कहते हैं।

पैराग्राफ—एक भाव जहाँ समाप्त हो और दूसरेका प्रारम्भ हो, ऐसे स्थानों पर आगे लिखनेके लिये प्रथम पंक्तिको एक 'एम' स्थान रिक्त देकर प्रारम्भ करते हैं। यह एक 'एम' स्थान रिक्त देकर लिखना ही पैराग्राफका प्रारम्भ है।

प्रूफ—कम्पोज हो जानेके बाद, कम्पोज करनेमें जो अशुद्धियाँ हो गयी हों, उनके शोधनेके लिये मैटरकी कागजमें छाप उतार ली जाती है, 'यह छाप ही प्रूफ है।

प्रूफ प्रेस—उक्त प्रकारकी छापा जिस छोटी-सी हाथसे चलानेवाली मशीनमें उतारी जाती है, उसे प्रूफ-प्रेस कहते हैं।

प्रूफ-रीडिंग—कम्पोजकी अशुद्धियोंके शोधनकी क्रिया प्रूफ-रीडिग कहलाती है।

प्रूफ-रीडर—प्रूफ शोधनकी क्रियाको सम्पादित करनेवाला व्यक्ति ही प्रूफ-रीडर है।

प्लैटन—ट्रैडिल मशीनका दूसरा नाम प्लैटन है।

प्वाइण्ट—एक रेखाकी मोटाई प्वाइण्ट कहलाती है। टाइपके अक्षरोंकी मोटाई इसी आधारपर आश्रित है। १२ प्वाइण्ट अर्थात् पाइका टाइपका आशय १२ रेखाओंकी मोटाईके तुल्य मोटे टाइपसे होता है।

फर्मा—कम्पोज किये हुए शोधित मैटरको कागजके आकारके अनुसार पृष्ठोंमें विभाजित किया जाता है। प्रत्येक पृष्ठके मैटरको एक दृढ तागेसे बाँध देते हैं। फिर सब पृष्ठोंका मैटर एकत्रित कर नियमानुसार चेजमें बैठा दिया जाता है। इसी प्रकार पत्रोंमें विषयके महत्व आदिके अनुसार सम्पादक गैली-प्रूफको आगे पीछे यथा-स्थान बाँट देता है। उसीके अनुसार कम्पोज किया हुआ मैटर विभाजित करके चेजमें कस दिया जाता है। यह यथा-स्थान विभाजित और चेजमे कसा हुआ मैटर ही फर्मा है।

फाइनल प्रूफ—अशुद्धियोंके शोधन तथा करेक्शन हो जानेके पश्चात् जो अन्तिम प्रूफ लिया जाता है, उसे फाइनल प्रूफ कहते हैं इस प्रूफको देखनेके पश्चात् ही मुद्रणके लिये आदेश दिया जाता है।

फाण्ड—एक निश्चित परिभाषामें निर्मित समस्त आवश्यक अक्षरों, मात्राओं तथा विरामादि चिन्होंका सञ्चय फाण्ड कहलाता है।

फुट-नोट—पाद टिप्पणीका नाम है। किसी विषयकी अधिक स्पष्टताके लिए पृष्ठके अन्तमें एक पंक्ति देकर उसके नीचे छोटे टाइपमे इस टिप्पणीको दे देते हैं। किसी अन्य पुस्तक या लेखक आदिके उद्धरण देनेमें भी इस प्रकार-को अपनाया जाता है।

फेस—टाइपके उस भागको कहते हैं, जिसकी छाप कागजपर छपती है।

फोरमैन—कम्पोज, छपाई आदि विभागोंमें सब कर्मचारियोंमेंसे अपने कामको अधिक समझनेवाले एक व्यक्तिको उनका मुखिया या नायक बना देते हैं। अपने आधीन अन्य कर्मचारियोंको ऊपरके आदेशानुसार कार्य सौंपना और उनका निरीक्षण आदि इसका काम होता है। यह नायक फोरमैन कहलाता है।

फोल्डिङ्ग—छपे हुए फार्मोंको पृष्ठोंके हिसाबसे मोड़नेकी क्रिया फोल्डिङ्ग कहलाती हैं।

फोलियो—पत्रका नाम, तिथि, क्रम-संख्या आदि तथा संवाद और लेखके अतिरिक्त सुन्दरताके वर्द्धनके लिए जो अन्य वाक्यांश या रेखायें आदि रहती हैं, वह सब इस फोलियोकी सीमाके ही अन्तर्गत हैं।

बम्बइया टाइप—हिन्दीका एक अन्य प्रचलित टाइप, जिसमें अखण्ड अक्षरोंकी संख्या कम है।

बाडी—टाइपके शरीरका नाम ही बाडी है।

बार्डर—लेख या संवाद आदिके चारों ओर सुन्दरता और सजावटके लिए प्रयुक्त होनेवाला बेल-बूटोंका टाइप बार्डर कहलाता है।

ब्लाक—छाया चित्र, व्यंग्य चित्र या मान-चित्रका सीसा, तांबा आदि धातुओंकी प्लेटोंमें चित्र उतारकर उसे टाइपोंके साथ छपने योग्य बना देते हैं। समाचार-पत्रोंमें हम जो चित्र आदि देखते हैं वे इसी भाँतिके ब्लाकोंसे छापे जाते हैं।

बाक्स हेडिङ्ग—किसी मैटरको विशेष महत्व देनेके लिये उसके ऊपरके हेडिङ्गको सादे या बेल बूटेदार बार्डरसे घेर देते हैं। इस प्रकार घिरा हुआ हेडिङ्ग बक्स हेडिङ्ग कहलाता है।

भँजाई—फोल्डिङ्गका दूसरा नाम है।

मशीनमैन—छपाईके यन्त्रपर कार्य करनेवाला मुख्य-व्यक्ति मशीनमैन कहलाता है।

मार्जिन—पुस्तकों या पत्रादिमें छपे हुए मैटरके चारों ओर जो रिक्त स्थान रहता है उसे मार्जिन कहते हैं।

मेक-अप—फर्मा तैयार करनेकी उक्त वर्णित समस्त क्रियाका सम्पादन मेक अप करना कहलाता है।

मेक-रेडी—तैयार फर्मेको छपनेके लिए मशीनमें चढ़ानेके पश्चात्, छपाई प्रारम्भ करनेसे पूर्व यह देख लेते हैं कि कागजपर अक्षरोंका दबाव समान हो, स्याही हर स्थानपर समान रूपसे लगे, ब्लाक स्पष्ट छपे आदि। इनमें जो कमी हो उसे ठीक करना ही मेक-रेडी है।

मैन्युस्क्रिप्ट—लेखक द्वारा तैयार की हुई पाण्डुलिपिको कहते हैं।

मैटर—छापनेके लिए बाहरसे आया हुआ या अपने कर्मचारी-मण्डल द्वारा तैयार किया हुआ लेख, संवाद आदि मैटर कहलाता है। ऐसे लेखादिको ज हो जानेके बाद भी मैटरकीही संज्ञा दी जाती है।

मैट्रिक्स—उन साँचोंको कहते हैं, जिनमें गरम सीसा, रांगा आदि डालकर टाइप ढाले जाते हैं।

मोनोटाइप—कम्पोज करनेकी एक मशीनका नाम है। इसके दो भाग होते हैं।

मोल्ड—यदि रोटरी पर छपाई करनी हो तो फर्मा कस जानेके पश्चात् उसका एक साँचा तैयार करना पड़ता है। यह साँचा मोल्ड कहलाता है।

रांगफाण्ड—विजातीय टाइपको रांगफाण्ड कहते हैं। जैसे-कोई लेख १२ प्वाइन्ट टाइपमें कम्पोज किया गया हो परन्तु बीचमें कोई अक्षर १६ प्वाइन्ट या १० प्वाइन्टका लग गया हो। यह बीचका अक्षर रांगफाण्ड होगा।

राउटिंग मशीन—तैयार ब्लाक या ढले हुये स्टीरियोको ठीक और साफ करनेमें इस यन्त्रका उपयोग होता है।

रिवाइज करना—प्रूफके शोधन तथा कम्पोजीटर द्वारा उसके करेक्शनके पश्चात् पूर्वके शोधन तथा अशुद्धियोंके करेक्शन आदिको मिलानेके लिए पुनः जो प्रूफ देखा जाता है, उसे रिवाइज करना या रिवीजन कहते हैं।

रेडी करना—मेक-रेडीकी समस्त क्रिया ही रेडी करना है।

रोटरी मशीन—समाचारपत्रोंकी छपाईकी सबसे बड़ी मशीनका नाम है।

रोमन—सीधे अक्षरोंको रोमन कहते हैं।

रोलर—सरेसका ढाला हुआ होता है। इससे छपाईके समय कसे हुए फर्मेमें स्याही लगती जाती है।

लाइनोग्राफ—एक प्रकारकी कम्पोज करनेकी मशीन होती है।

लाइनो टाइप—यह भी एक कम्पोजिङ्ग मशीन है।

लिथो प्रेस—पत्थरके द्वारा छपाईका एक यन्त्र होता है। इसमे टाइपोंका प्रयोग नहीं होता।

लेड—दो पंक्तियोंको दूर दूर रखनेके लिये बीचमें जो स्पेस डाला जाता है, उसे लेड कहते हैं।

लेडेड मैटर—उक्त प्रकारसे लेड डालकर कम्पोज किया हुआ मैटर लेडेड मैटर कहलाता है।

सालिड मैटर—जिस मैटरको कम्पोज करनेमें दो पक्तियोंके बीचमें लेडका प्रयोग न किया गया हो वह सालिड मैटर कहलावेगा।

सिलैण्डर मशीन-छपाईकी मध्य श्रेणीकी मशीन होती है। हमारे देशमें इसीका अधिक प्रचार है।

सुपर टाइप—लाइनो टाइप और मोनो टाइप दोनोंके सिद्धान्तोंके सम्मिश्रणसे एक नये कम्पोज करनेवाले यन्त्रका आविष्कार अभी कुछ वर्ष पूर्व हुआ है। सुपर टाइप अभी प्रचारमें कम आया है।

स्टिक—कम्पोजिंग स्टिकको स्टिक भी कहते हैं।

स्टीरियो—रोटरीकी छपाईके लिये मोल्डकी सहायतासे साँचे बनाकर उससे सीसेकी प्लेट ढाल ली जाती है, इसे स्टीरियो कहते हैं। पत्रोंमें बार-बार एकही प्रकारसे छपनेवाले विज्ञापनोंका भी इसी भाँतिका स्टीरियो ढाल लिया जाता है। इससे बार-बार कम्पोज नहीं करना पड़ता।

स्टैंडिंग मैटर—कम्पोज किया हुआ वह मैटर है, जो भविष्यमें पुनः उसी रूपमें छापनेके लिए रोक लिया जाता है, अर्थात् डिस्ट्रिब्यूट नहीं किया जाता।

स्पेस—कम्पोज करनेमें शब्दोंको एक दूसरेसे पृथक् करनेके लिए टाइपकी ही भाँतिके उनसे कुछ कम ऊँचे टुकड़ोंका प्रयोग होता है। यह भी उसी धातुके ढले होते हैं, जिसका टाइप ढलता है।

हेडिंग या हेड लाइन—मोटे टाइपमें लेखादिके ऊपर दिये जानेवाले शीर्षकको कहते हैं।

होल्ड ओवर—कम्पोज किये हुये मैटरके उस भागको रोक लेनेकी क्रिया को कहते हैं, जो स्थानाभाव या अन्य किसी कारणसे छापा न जा रहा हो।

विषयानुक्रमणिका

ग

त

द

ध

न

भ

श